दान उत्सर्ग की धर्मशास्त्रीय अवधारणा

डॉ. श्रीमती पुष्पा गुप्ता

दान उत्सर्ग की धर्मशास्त्रीय अवधारणा

डा. श्रीमती पुष्पा गुप्ता
एम.ए.एम.फिल, पी. एच.डी.
विभागाध्यक्ष संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय
अजमेर

राष्ट्रिय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर

ISBN : 81-88741-00-0

प्रकाशक : राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र,
29-ए, माली कॉलोनी, चान्दपोल दरवाजे बाहर,
जयपुर- 302016

संस्करण : प्रथम 2004

मूल्य : 600/-

टाईप सेटिंग : डिलाइट कम्प्यूटर्स
Ph. 2390106
जयपुर-302019

मुद्रक : शीतल ऑफसेट, जयपुर

प्राक्कथन

प्रस्तुत प्रबन्ध की रचना में मुझे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जिनका सहयोग व मार्गदर्शन मिलता रहा उन सभी के सहयोग की अविस्मरणीय चित्रावलि मानस पटल पर अङ्कित कर मैं यह प्राक्कथन लिखने जा रही हूँ। माननीय गुरूवर्य डा. प्रभाकर शास्त्री द्वारा प्रदत्त कुछ कर पाने के विश्वास की जीवनी शक्ति से यह गुरुतर कार्य सम्पन्न हो पाया, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

डा. राजेश्वरी भट्ट, डा. गंगाधर भट्ट, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, प्रो. मदन मोहन शर्मा आदि द्वारा प्रदत्त प्रेरणा निरन्तर मेरे साथ रहती आई है।

विभिन्न पुस्तकालय कर्मियों विशेषकर राजस्थान संस्कृत अकादमी, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजकीय महाविद्यालय अजमेर, लाल बहादुर शास्त्री मानित विश्वविद्यालय, दिल्ली राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान दिल्ली, महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर की मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिनके सहयोग में सदा अपनत्व का अनुभव होता रहा।

उन सभी मित्रों परिचितों व परिवारजनों विशेषकर मेरे पति व ज्येष्ठ पुत्री की भी हृदय से आभारी हूँ जिनका प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग सदा मेरे साथ रहा।

अन्त में श्री रामशरण जी नाटाणी, राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र जयपुर के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने पुस्तक प्रकाशन का महान् दायित्व अपने ऊपर लेकर मुझे अनुगृहीत किया। अन्त में-

कृतज्ञ हूँ मैं उन गुरुजनों की,

अंगुली पकड़ चलना सिखाया जिन्होंने।

कैसे भूलूं मैं उन सभी को,

लड़खड़ाहट में दिया सहारा जिन्होंने।

याद है मुझे उन सभी की,

अपने स्मितों से आगे बढ़ाया जिन्होंने।

स्नेह, श्रद्धा और विश्वास की

पगडण्डियों को मुझ अकिञ्चन हेतु बनाया जिन्होंने।

डा. श्रीमती पुष्पा गुप्ता

डा. श्रीमती पुष्पा गुप्ता

प्रस्तावना

प्रस्तुत प्रबन्ध का आलोच्य विषय ''दान और उत्सर्ग की धर्मशास्त्रीय अवधारणा'' है। ''दान'' और ''उत्सर्ग'' जैसे विषयों का विवेचन भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्राचीन काल से होता रहा है एवं इनके उपयोग एवं महत्व को स्वीकार किया जाता रहा है। तथापि यह सर्वविदित है कि सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों के क्षरण के साथ-साथ धर्म की उपादान ''दान'' और ''उत्सर्ग'' के विषय में भी जनमानस की धारणा परिवर्तित होती चली गई। एक ओर तो किसी भी भिक्षुक की झोली में यत्किंचित् द्रव्य या अन्न को श्रद्धा अथवा अश्रद्धापूर्वक डाल देना दान मान लिया गया तो दूसरी ओर तीर्थस्थानों में तीर्थयात्रियों से अधिकतम प्राप्त करने की लालसा ने अनास्था को जन्म दिया। अशुद्ध उपायों में प्रभूत-धन अर्जित कर, उसके कुछ अंश का दान कर, प्रतिष्ठा प्राप्त करने वालों के कारण भी दान का प्रत्यय दूषित हुआ। ''दान'' और ''उत्सर्ग'' कर्म करने वालों को पाखण्डी एवं दान लेने वालों को अत्यन्त हीन कोटि का मान लिया गया। दान सम्बन्धी ग्रन्थों में लिखे गये विवरण को ब्राह्मणों के द्वारा फैलाया गया मायाजाल कह कर प्रचारित किया गया। किन्तु ''वैदिक काल से चले आ रहे ''दान'' और ''उत्सर्ग'' का स्वरूप इतना हीन कोटि का नहीं हो सकता'', यही मन की आस्था प्रेरित कर रही थी कि ''दान'' और ''उत्सर्ग'' के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर तत्सम्बन्धी भ्रांतियों का निराकरण किया जाये एवं इनका कालानुरूप समायोजन करने का प्रयत्न किया जाये।

उपर्युक्त प्रेरणा के प्रतिफलस्वरूप प्रस्तुत प्रबन्ध में सर्वप्रथम विषय का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हुए, विषय के महत्व एवं उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। तदनन्तर धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में दान विवेचक धर्मसूत्रकारों, स्मृतिकारों तथा प्रमुख निबन्धकारों का का सामान्य-परिचय प्रस्तुत किया गया है। इससे दान एवं उत्सर्ग के क्रमिक विकास का एक समग्र चित्र प्रस्तुत करने में सहायता प्राप्त हुई है।

प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में ''दान'' शब्द के व्युत्पत्तिपरक एवं पारिभाषिक अर्थ का विवेचन करते हुए, दानसामान्य की इतिकर्तव्यता, के अन्तर्गत अधिकारी, श्रद्धा, पात्रता, देय-द्रव्य, पुण्य-देश, पुण्य-काल, दातृ-कृत्य, प्रतिगृहीतृ-कृत्य, उभय-कृत्य, प्रमाद-कर्तृ धर्म आदिं बिन्दुओं पर विचार किया गया है। अन्त में विभिन्न ग्रन्थकारों द्वारा प्रतिपादित दान-प्रकारों का विवेचन किया गया है।

प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में दान-कर्म का आवश्यक अंग होने के कारण द्रव्यप्रतिनिधि, दान-परिभाषा, दक्षिणाप्रमाण, द्रव्यमान, धान्यादिमान एवं भूमान, दानमण्डप, यज्ञ कुण्ड, ग्रहपूजा, वास्तु-पूजा, द्वारपूजा, वस्वाद्येकादश-देव आदि का यथामति विवेचन किया गया है।

प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में षोडश महादानों एवं उनके भेदोंपभेदों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन महादानों के भव्य स्वरूप को ज्ञात कर स्पष्ट होता है कि, ये महादान महान राजाओं एवं सामन्तों द्वारा ही किये जाते थे।

चतुर्थ अध्याय में मध्यमधनसामर्थ्ययुक्त यजमानों द्वारा किये जाने वाले दश महादानों का विवेचन किया गया है। इन्हीं दोनों में कन्या-दान का भी समावेश है, जो लगभग सभी गृहस्थों को करना होता है।

पंचम अध्याय में अन्यान्य दानों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इनमें वे सभी दान आ जाते हैं जो पूर्वतः भी अधिक कृशधनसामर्थ्य वाले गृहस्थों द्वारा किये जाते रहे हैं अथवा किये जाते हैं।

षष्ठ अध्याय को ''उत्सर्ग'' खण्ड नाम दिया गया है। इस अध्याय में ''उत्सर्ग'' व ''दान'' में भिन्नता स्पष्ट करते हुए जलाशय, वृक्षाराम एवं आश्रय, प्रतिश्रय, आरोग्यशाला आदि की उत्सर्ग-महत्व एवं उत्सर्ग विधि का प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया गया है।

इस प्रयत्न में मैं कितना सफल हो पाई हूँ, यह विद्वद्जनों के आंकलन का विषय है। इसमें जो त्रुटियां या न्यूनतायें हैं, वे मेरी अपनी हैं और यदि इसमें मैं किंचित् भी सफलता प्राप्त कर पाई हूँ तो वह गुरुजनों का प्रसाद एवं आशीर्वाद है।

विषय- सूची

द्वितीय अध्याय

द्वितीय खण्ड
उत्सर्ग-विवेचन

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

नवम अध्याय

:: "दान" और "उत्सर्ग" की धर्मशास्त्रीय अवधारणा ::

❋ विषय का संक्षिप्त इतिहास ❋

भारतीय जीवन दर्शन कभी भी एकान्ततः भौतिकतावादी दर्शन नहीं रहा, अतः मानव के सम्पूर्ण विकास के लिए चार पुरुषार्थों का निर्देश किया गया। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक इन चारों पुरुषार्थों का जो क्रम निर्दिष्ट है, उससे संकेत मिलता है कि अर्थ और काम का उपभोग मोक्ष को दृष्टि में रखते हुए धर्मानुसार करना चाहिये। वस्तुतः धर्म और मोक्ष, अर्थ और काम के दोनों ओर नियंत्रणकर्ता प्रहरी के समान स्थित हैं। मोक्ष का साधक है "धर्म" । इस प्रकार पुरुषार्थ चतुष्ट्य में धर्म का विशेष महत्त्व है। धर्म का लक्षण देते हुए कहा गया है -

"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः[1]"

अर्थात् धर्म वह है, जिससे मानव की भौतिक व पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति होती है।

भारतीय संस्कृति में "भोग" को सर्वथा हेय या त्याज्य नहीं माना गया है, परन्तु यह "भोग" धर्म की मर्यादा से हीन नहीं होना चाहिये। धर्म की मर्यादा से हीन भोग सदा विसंगतियों और विनाश को जन्म देता है। धर्म का ही एक साधन है "त्याग" । श्रुति स्पष्ट रूप से कहती है -

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्[2]" तथा

"केवलाघो भवति केवलादी[3]" । इस प्रकार त्यागपूर्वक उपभोग के माध्यम से भारतीय मनीषा स्वार्थ के साथ-साथ परार्थ का भी ध्यान दिलाती है। किसी भी समाज का सम्पूर्ण विकास एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना समाज एवं संस्कृति के उत्थान से ही सम्भव है। इस उत्थान के लिए "दान" एवं "उत्सर्ग" महत्त्वपूर्ण प्रकल्प हैं।

"दान" एवं "उत्सर्ग" को ही स्मृतियों में इष्ट और पूर्त भी कहा गया है। इष्ट धर्म अग्निहोत्र यागादि से संबंधित कहे गये हैं तथा पूर्त धर्म के अन्तर्गत "दान" एवं "उत्सर्ग" का समावेश होता है। इस प्रकार इष्ट का तात्पर्य है - "यज्ञ " व "दक्षिणा" तथा पूर्त से तात्पर्य है - "दान" एवं उत्सर्ग[1]" इष्ट धर्म मनुष्य के स्वार्थ की ही पूर्ति

करते हैं, उनसे वह स्वर्ग के भोग प्राप्त कर सकता है, किन्तु परमार्थ की पूर्ति का साधन तो पूर्त अथवा ''दान'' व ''उत्सर्ग'' ही है। स्मृतियों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य वर्णों के कर्त्तव्यों में ''दान'' को एक आवश्यक कर्तव्य बताया है, किन्तु उत्सर्ग को चारों वर्णों के लिये धर्म का साधन बताया है-

यजनं याजनं विप्रे तथा दानप्रतिग्रहौ ।
अध्यापनमध्ययनं कर्माण्येतानि षट् तथा ॥

प्रजानां रक्षणं दानमरीणां निग्रहस्तथा ।
यजनाऽध्ययने राज्ञि विषयासक्तिवर्जनम् ॥

यजनाऽध्ययने दानं पाशुपाल्यं तथा विशि ।
वाणिज्यं च कुसीदं च षड्कर्मकं प्रकीर्तितम् ॥

- बृहत्पराशर स्मृति 4/213-215 [4]

इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्ये धर्मसाधने ।
अधिकारी भवेद् शूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥[5]

- लघुशङ्खस्मृति 1/6

भारतीय मनीषियों ने ज्ञान को दो श्रेणियों में विभाजित किया है- ''श्रुति'' एवं ''स्मृति[1]'' ''श्रुति'' ईश्वरीय वाक्य हैं और वेदों के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं। स्मृति आर्य ऋषियों के चिन्तन व मनन से उद्‌भूत ज्ञान है, जिसके अन्तर्गत वेदांग, इतिहास-पुराण, स्मृतियाँ, अन्य निबन्ध-ग्रन्थ तथा भाष्य एवं टीकाएं परिगणित होती हैं। इनमें ऋग्वेद सर्वप्राचीन है।

ऋग्वेद काल से ही दान एवं दानदाताओं की स्तुतियाँ प्रभूत मात्रा में प्राप्त होती हैं एवं उत्सर्ग का भी कहीं-कहीं संकेत प्राप्त होता है। ऋग्वेद के कतिपय सूक्तों एवं मन्त्रों को विद्वानों ने ''दान-स्तुति'' की संज्ञा दी है। इन मन्त्रों में सम्पन्न वर्ग द्वारा प्रदत्त ''दान'' व सामान्य-जन द्वारा किये गये ''दान'' दोनों की ओर ही संकेत मिलता है। ऋग्वेद के सूक्त संख्या 125[6] में दान की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि दान ऐश्वर्य और सुख प्राप्त करने का उत्तम साधन है। जो व्यक्ति अपने आश्रितों को धन-धान्य से समृद्ध करते हैं, उनकी शुभकामनाओं से दानी की आयु बढ़ती है। जो व्यक्ति दान देकर

अपने धन का सदुपयोग नहीं करता, वह सदा ही मानसिक चिन्ताओं और शोक से पीड़ित रहता है। ऋग्वेद 1/126/2 में कहा गया है कि - ''जो लोगों को भरपूर दान देता है, उसका यश कभी नष्ट नहीं होता, वह सर्वत्र फैल जाता है।[7] ऋग्वेद 5/61/6-9 में कहा गया है कि दान न देने वाले लोभी पुरुष की अपेक्षा दान देने वाली व दया आदि गुणों से युक्त स्त्री श्रेष्ठ है।[8] ऋग्वेद 1/126/3 में स्वनय द्वारा दिये गये दान की प्रशंसा है।[9] ऋग्वेद 5/61/10 में दानी राजा तरन्त का उल्लेख किया गया है।[10] ऋग्वेद 6/47/22 व 6/47/23 में दिवोदास से अश्व, सुवर्णमय कोश, अधिक भोजन, वस्त्र, सुवर्णपिण्ड इत्यादि प्राप्त करने का उल्लेख है।[11] ऋग्वेद 6/47/25 में सृञ्जय के पुत्र द्वारा भरद्वाज के पुत्रों को धन प्रदान कर सत्कार करने का उल्लेख है।[12] ऋग्वेद 6/47/24 में अश्वथ द्वारा दान किये गये रथ और गायों का निर्देश है।[13] इसी प्रकार ऋग्वेद 7/18/22-23 में देववत के पौत्र तथा पिजवन के पुत्र सुदास द्वारा गायों, वधुओं, रथों इत्यादि का दान करने का उल्लेख है।[14] इसके अतिरिक्त कशु चैद्य[15] पर्शु के पुत्र तिरिन्दर,[16] पृथुश्रवस् कानीन,[17] इन्द्रोत,[18] अतिथिग्व के पुत्र[19] तथा ऋक्ष के पुत्र[20] सावर्णिमनु[21] इत्यादि दानकर्ताओं के दान की प्रशंसा की गयी है। ऋग्वेद 10,107,2,3,7,9,10,11 में क्रमशः दक्षिणा रूप में अश्व देने वालों को सूर्य के द्वारा स्वास्थ्य, स्वर्णदाता को अमरत्व व वस्त्र देने वालों को दीर्घायु प्रदान करने आदि का वर्णन है।[22] ऋग्वेद 10/117/6 में अन्न और जल के दान की प्रशंसा की गई है।[23]

संक्षेपतः ऋग्वेद में गायों, रथों, अश्वों, ऊँटों, दासियों, वस्त्रों, भोजन, जल, स्वर्ण, चाँदी इत्यादि के दान का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। कालान्तर में अश्व दान की महिमा में अन्तर पड़ता चला गया। तैत्तिरीय संहिता 2/3/12/1 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो अश्व दान लेता है उसे वरुण पकड़ता है, अर्थात् वह रोग ग्रस्त हो जाता है।[24] तैत्तिरीय संहिता 2/2/6/3 में कहा गया है कि अश्वादि दो दन्तपंक्तियों वाले प्राणियों को ग्रहण करने पर पश्चात्तापस्वरूप द्वादशकपाल हवि देनी चाहिये।[25] काठक संहिता 12/6 में दो दन्तपंक्ति वाले जीव, यथा अश्व आदि का ग्रहण करने का निषेध है।[26] तैत्तिरीय ब्राह्मण 2/2/5/2-4 में स्वर्ण, वस्त्र, गाय, अश्व, पुरुष (दास), पर्यंक, रथ इत्यादि के दान की ओर संकेत है और इनके देवता क्रमशः अग्नि, सोम, रुद्र, वरुण, प्रजापति, मनु, वैश्वानर इत्यादि बताये गये हैं।[27] ऐतरेय ब्राह्मण 39/6 में कहा

गया है कि अपनी शक्ति के अनुसार प्रभूत धन दान देना चाहिये। क्षत्रियों के पास अपरिमित धन होता है, अतः उन्हें अपरिमित दान करना चाहिये।[28] ऐतरेय ब्राह्मण 30/9 में कहा गया है कि जिस दक्षिणा को पुरोहित ने लेने से निषेध कर दिया है, वह दक्षिणा दूसरे व्यक्ति को ग्रहण नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वह दक्षिणा शोकाविद्ध होने के कारण शोक की जनक होगी।[29] शतपथ ब्राह्मण 2/2/1/6 में दक्षिणा व आहुति में अन्तर स्थापित किया गया है एवं ब्राह्मणों को मनुष्य-देव बताया गया है।[30] तैत्तिरीय संहिता 6/1/6/3 में स्पष्ट कहा गया है कि ''सर्वस्व'' दान करना महान् तप है।[31] छान्दोग्योपनिषद् में वर्णन है कि राजा जानश्रुति पौत्रायण ने सर्वत्र भोजनशालाएं स्थापित कीं, जिनमें पथिक निर्द्वन्द्व होकर भोजन प्राप्त कर सकें।[32] इसी जानश्रुति पौत्रायण ने संवर्ग विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हजार गायें, निष्क, अश्वयुक्त रथ, अपनी पुत्री और ग्राम महात्मा रैक्व को प्रदान किये।[33] बृहदारण्यकोपनिषद् में दम, दान व दया का पालन करने की शिक्षा क्रमशः देवताओं, मनुष्यों व असुरों को प्रदान की गई है।[34] ऐतरेय ब्राह्मण ने भी सोने, पृथिवी एवं पशु के दान की चर्चा की है।[35] कठोपनिषद् 1.1.1. में वाजश्रवस् गौतम ने स्वर्ग की कामना से सर्वस्व दान कर दिया,[36] किन्तु दक्षिणा में वृद्ध व अशक्त गायों को दी जाती हुई देखकर,गौतम पुत्र नचिकेता ने अपने पिता को पाप से बचाने के लिये दक्षिणा रूप में स्वयं को प्रस्तुत कर दिया।[37] ऋग्वेद 10/4/1 में प्रपा का उल्लेख हुआ है -''धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन्।[38]'' ऋग्वेद 10/107/10 में पुष्करिणी (तालाब) का उल्लेख हुआ है -''भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्।[39]''

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्य में दान के दो रूपों- दक्षिणा व अन्य दान का पर्याप्त उल्लेख हुआ है। परवर्ती साहित्य में ''दान'' के इन दोनों रूपों को ''अन्तर्वेदी'' एवं ''बहिर्वेदी'' दान नाम दिया गया। परवर्ती साहित्य के समान वेदों में स्पष्ट रूप से दान संबंधी विधियां प्राप्त नहीं होतीं, किन्तु उनमें ''दान'' के उल्लेख अवश्य पाये जाते हैं।

इतिहास-पुराण साहित्य में भी दान एवं उत्सर्ग का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। महाभारत के अनुशासन पर्व के अध्याय 57 से 99 में दान के विभिन्न स्वरूपों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त भी महाभारत के सभी पर्वों में दान संबंधी सामान्य संकेत प्राप्त होते हैं। अग्निपुराण (अध्याय 209-213), भविष्यपुराण

(IV 150), ब्रह्मपुराण (109, विशेष रूप से अन्नदान), ब्रह्मवैवर्तपुराण (प्रकृतिखण्ड 27), गरुडपुराण (51), कूर्मपुराण (उत्तरार्द्ध 26), लिङ्ग पुराण (उत्तरार्द्ध 28-महादान), मत्स्यपुराण (अध्याय 81-91, 205-206, 247-289), नारदपुराण (पूर्वार्ध 19 व 31, उत्तरार्द्ध 4-42,), पद्म पुराण (आदि 57, भूमि 39-40, 94, ब्रह्म 24, सृष्टि 45 व उत्तर 27,28,33) स्कन्दपुराण (I-2 III-2,34, VIII-1,5 व 208) एवं वराह पुराण 99-111 में दान संबंधी साहित्य प्राप्त होता है। उत्सर्ग व प्रतिष्ठा विषय का भी अग्निपुराण (38-106), भविष्यपुराण (IV), गरुडपुराण (45-48) नारदपुराण (I-13), पद्मपुराण (उत्तर 122, 127, 128 सृष्टि 54-56) व शिवपुराण (11) में विवेचन हुआ है। इस प्रकार इतिहास पुराणों में भी ''दान'' संबंधी साहित्य की विस्तृत परम्परा प्राप्त होती है।

कालान्तर में धर्म का उपादान होने के कारण ''दान'' और ''उत्सर्ग'' का धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में भी प्रमुख स्थान रहा । धर्म-सूत्रों, स्मृतियों इत्यादि में इनका विवेचन होने के साथ-साथ स्वतन्त्र रूप से भी इन विषयों पर ग्रन्थ रचना हुई। ''दान'' और ''उत्सर्ग'' विवेचक धर्मशास्त्रीय वाङ्मय को हम मुख्यतः तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं - (1) धर्मसूत्र, (2) स्मृति ग्रन्थ, (3) स्मृतियों की टीकाएं एवं भाष्य तथा धर्म के संक्षिप्त नीति संग्रह अथवा निबन्ध-ग्रन्थ। धर्म शास्त्र के ग्रन्थों का काल-निर्णय करना अत्यन्त कठिन कार्य है, तथापि महामहोपाध्याय डॉ. पी.वी. काणे महोदय ने अन्तः साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य के आधार पर अलग-अलग ग्रन्थों की समय-सीमा निर्धारित करने का प्रयत्न किया है।

दान विवेचक धर्मसूत्रों में मुख्यतः गौतमधर्मसूत्र, बौधायनधर्मसूत्र, आपस्तम्बधर्मसूत्र, वसिष्ठधर्मसूत्र व विष्णुधर्मसूत्र की गणना की जा सकती है। दान व उत्सर्ग पर प्रकाश डालने वाली स्मृतियों में सर्वप्रथम मनुस्मृति का नाम लिया जा सकता है। इसके उपरान्त याज्ञवल्क्यस्मृति, बृहस्पति स्मृति, दक्षस्मृति, बृहद्यमस्मृति, व्यासस्मृति, संवर्तस्मृति, अत्रिस्मृति, विष्णुस्मृति, शातातपस्मृति, बृहत्पाराशर स्मृति, कात्यायन स्मृति, गौतम स्मृति व वृद्धगौतम स्मृति की प्रमुख रूप से गणना की जा सकती है। स्मृति ग्रन्थों पर कतिपय भाष्य एवं टीकाएं इस प्रकार की हुई हैं कि विषय-विवेचन के दृष्टिकोण से उनका स्थान स्वतन्त्र ग्रन्थ से किसी भी प्रकार कम नहीं आँका जा सकता। ऐसे उपलब्ध भाष्य एवं टीकाओं में याज्ञवल्क्य स्मृति पर विश्वरूप की

बालक्रीडा टीका, याज्ञवल्क्यस्मृति पर विज्ञानेश्वर का मिताक्षरा नामक भाष्य, याज्ञवल्क्यस्मृति पर ही अपरादित्य की अपरार्क नामक टीका, मनुस्मृति पर मेघातिथि का भाष्य, पराशरस्मृति पर माधवाचार्य की पाराशरमाधवीय टीका एवं विष्णु धर्म सूत्र पर नन्दपण्डित की वैजयन्ती नामक टीका इत्यादि उल्लेखनीय हैं। धर्म शास्त्र के निबन्ध ग्रन्थों में लक्ष्मीधर के कृत्य कल्पतरु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके दानकाण्ड में दान व उत्सर्ग का विस्तार से विवेचन हुआ है। इसके अतिरिक्त दान विवेचक निबन्ध ग्रन्थों में बल्लालसेन का दानसागर, हेमाद्रि के चतुर्वर्गचिन्तामणि का दानखण्ड, चण्डेश्वर का दानरत्नाकर और दानवाक्यावलि, मदनसिंह के मदनरत्नप्रदीप का दानविवेकोद्योत गोविन्दानन्द की दानक्रियाकौमुदी, नीलकण्ठ के भगवन्तभास्कर का दान व उत्सर्ग मयूख, मित्र मिश्र के वीरमित्रोदय का दान प्रकाश अनन्तदेव का दान कौस्तुभ इत्यादि प्रमुख ग्रन्थ माने गये हैं।

''कृत्यकल्पतरु'' के दान काण्ड (बड़ौदा ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट से 1941 में प्रकाशित) की भूमिका में, सम्पादक श्री के.वी. रंगास्वामी आयंगर ने दान व उत्सर्ग का विवेचन करने वाले निबन्धों व निबन्धांशों की सूची निम्न प्रकार से दी है-

1. लक्ष्मीधर का दान कल्पतरु (1100 ई.)
2. बल्लालसेन का दानसागर (1168 ई.)
3. हेमाद्रि का दानकाण्ड (चतुर्वर्गचिन्तामणि का अंश- 1270 ई.)
4. चण्डेश्वर का दानरत्नाकर (1300 ई.)
5. मदनसिंह का दानविवेकोद्योत (मदनरत्नप्रदीप का अंश 1425 ई.)
6. दलपति का दानसार (नृसिंह प्रसाद का अंश- 1500 ई.)
7. गोविन्दानन्द की दानक्रिया कौमुदी (1500 ई.)
8. रघुनन्दन का दान तत्व (1550 ई.)
9. टोडरमल का दान सौख्य (टोडरानंद का अंश 1580 ई.)
10. नन्दपण्डित का दान कौतुक (हरिवंशविलास का अंश 1600 ई.)
11. कमलाकर भट्ट का दानकमलाकर (1625 ई.)

12. भट्ट नीलकण्ठ का दान व उत्सर्ग मयूख (भगवन्तभास्कर का अंश 1625 ई.)

13. मित्र मिश्र का दान प्रकाश (वीरमित्रोदय का अंश - 1625 ई.)

14. अनन्तदेव का दान-कौस्तुभ (स्मृति कौस्तुभ का अंश - 1650 ई.)

15. भारद्वाज महादेव के पुत्र दिवाकर का दान हीरावलिप्रकाश (धर्मशास्त्रसुधानिधि का अंश - 1650 ई.)

16. भट्टराम का दानरत्नाकर (अनूपविवेक का अंश - 1675 ई.)

17. मनीराम दीक्षित का दानरत्न (अनूपविलास या धर्माम्बोधि का अंश 1160 ई.)

18. वर्णि कुबेरानन्द का दान-भागवत (1500 ई.)

19. नागेश भट्ट के पुत्र अनन्त भट्ट का दानपारिजात (1625 ई.)

दान विषय पर कतिपय संग्रहात्मक निबन्धों की रचना भी हुई है, जिसकी सूचना उपर्युक्त ग्रन्थ में इस प्रकार से दी गई है-

1. दानकाण्ड (रुद्रयामल का अंश)
2. श्रीनाथ आश्चर्य चूड़ामणि की दानचन्द्रिका ।
3. गौतम की दानचन्द्रिका।
4. जयराम की दानचन्द्रिका।
5. दिवाकर की दानचन्द्रिका।
6. नीलकण्ठ की दानचन्द्रिका।
7. वृन्दावन की दानचन्द्रिका।
8. श्रीधरपति की दानचन्द्रिका।
9. रघुनन्दन द्वारा उद्धृत दानदर्पण ।
10. कमलाकर का दानदिनकर।
11. दिनकर के पुत्र दिवाकर का दानदिनकर।
12. भास्कर पुत्र नीलकण्ठ का दानदीधिति।

13. दानदीपावलि।

14. दानदीपवाक्य समुच्चय।

15. अर्जुन मिश्र की दानधर्मव्याख्या।

16. मिथिला के कृष्णदेव के पुत्र भवदेव भट्ट की दानधर्मप्रक्रिया।

17. सूर्यशर्मन् की दानपंजिका।

18. रत्नाकर ठक्कुर की दानपंजिका।

19. रामदत्त की दानपद्धति।

20. गागा भट्ट की दानपद्धति।

21. श्रीधरमिश्र की दान प्रकाशिका।

22. क्षेमेन्द्र का दानपारिजात।

23. विष्णुपुत्र महादेव का दानप्रदीप।

24. भट्टोजि का दानप्रयोग।

25. व्रजराज की दानमंजरी।

26. सदाशिव का दानमनोहर।

27. योगीश्वर का दानवाक्य समुच्चय।

28. विद्यापति ठक्कुर की दानवाक्यावलि।

29. वीरेश्वरसूनुः चण्डेश्वर की दानवाक्यावलि।

30. हेमाद्रि व नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत दानविवेक।

31. भट्टोजिदीक्षित के पुत्र भानुजि दीक्षित का दानविवेक।

32. मिथिला के कामदेव महाराज का दानसार।

33. विश्वेश्वर भट्ट का दानसार या अघवाडव।

34. रानी धीरमति के लिये निर्मित दानार्णव।

35. कृष्णराम का दानोद्योत।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि, ऋग्वेद काल से ही दान संबंधी साहित्य की एक अविच्छिन्न परम्परा रही है। दान संबंधी विचारों में कालानुरूप परिवर्तन एवं परिवर्द्धन भी होता रहा है। यही कारण है कि दान संबंधी धर्मशास्त्रीय साहित्य युगानुरूप स्वरूप ग्रहण करता रहा। परवर्ती काल में आश्रयदाता राजाओं ने अपने राज्य में, धर्म के प्रसार व कहीं-कहीं समाधान के लिये भी विद्वानों को धर्मसंबंधी साहित्य की रचना के लिये प्रोत्साहन दिया। यह साहित्य कहीं पूर्व ग्रन्थों के सार रूप में, कहीं सुबोध शैली में आवृत्त होकर व कहीं नूतन रूप में प्रगट होता रहा। कारण यह है कि भारतीय बुद्धि सनातन रूप से कर्मवाद के सिद्धान्त में विश्वास करती आई है। प्रारब्ध, क्रियमाण और संचित कर्मों का प्रत्यय कभी भी भारतीय जन की बुद्धि से परे नहीं हुआ। जो इस जन्म में दिया जायेगा, वह एक प्रकार से जन्मान्तर के लिये संचित कोष है, यह अटल विश्वास मनुष्य मात्र को दान करने के लिये प्रेरित करता रहा।

: विषय का महत्त्व एवं उपयोगिता :

उपर्युक्त अटल विश्वास एवं दान की प्रवृत्ति के कारण ही समाज ने स्वार्थ के साथ-साथ परमार्थ का भी ध्यान रखा । इससे समाज के सम्पूर्ण विकास के साथ-साथ मानवीय मूल्यों की स्थापना में भी सहायता मिली। ''दान'' के कारण ही भारतीय संस्कृति के मूल्य विद्वान् प्रतिगृहीताओं में सुरक्षित रह सके तथा उनके संरक्षण की समुचित व्यवस्था हो सकी, जिससे ज्ञान का अबाध संवर्द्धन व संरक्षण होता रहा व कर्तव्य बोध कभी क्षीण नहीं हुआ।

स्मृतिकार यम ने दान को गृहस्थ का परम-धर्म बताते हुए कहा है-

यमिनां परमो धर्मस्त्वनाहारो वनौकसाम् ।
दानमेव गृहस्थानां शुश्रूषा ब्रह्मचारिणाम् ॥[40]

क्योंकि ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम व संन्यासाश्रम में से गृहस्थी ही अर्जन करने की सामर्थ्य रखता था, अतः गृहस्थाश्रमी के ऊपर सारे समाज का भार था, गृहस्थाश्रम समाज के ऋण से उऋण होने का माध्यम था। न्याय से धन अर्जन करना, उसकी वृद्धि, रक्षा व सत्पात्र को दान सभी शास्त्रों में निर्दिष्ट था-

न्यायेनार्जनमर्थस्य वर्धनंचाभिरक्षणम्।
सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥[41]

महर्षि मनु ने कलियुग में एकमात्र ''दान'' को श्रेष्ठ माना है -

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥[42]

वसिष्ठ स्मृति अथवा वसिष्ठ धर्मसूत्र में ''दान'' को सभी कामनाओं की प्राप्ति का साधन बताया गया है -

दानेन सर्वकामानवाप्नोति ।[43]

हेमाद्रि दान खण्ड पृष्ठ 5 पर उद्धृत सौरपुराण में भी कुछ इस प्रकार की ही ध्वनि है -

न दानादधिकं किंचिद्दृश्यते भुवनत्रये।
दानेन प्राप्यते स्वर्गः श्रीर्दानेनैव लभ्यते ॥

दानेन शत्रून् जयति व्याधिर्दानेन नश्यति।
दानेन लभ्यते विद्या दानेन युवतीजनः।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम्॥

व्यास स्मृति में महर्षि वेदव्यास ने कहा है -

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥[44]

जीवन्ति जीविते यस्य विप्रा मित्राणि बान्धवाः।
जीवितं सफलं तस्य आत्मार्थे को न जीवति ॥[45]

मत्स्यपुराण में दान धर्म का महत्त्व स्पष्ट करते हुए पुराणकार ने कहा है-

दानमेव परो धर्म्मो दानमेव परन्तपः ।
न हि दानात् परतरमिह लोके परत्र च ॥

दानेन भोगानाप्नोति दानेनायुश्च विन्दति।
नरः स्वर्गापवर्गो च दानेनैव समश्नुते ॥[46]

इसलिये शास्त्रकारों का मत है कि अपने पास जो कुछ भी है, उसमें से कुछ अंश अथवा शक्ति के अनुसार दान अवश्य देना चाहिये। यथा-

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥[47]

दानं च विधिना देयमशुभान्तकरं शुभम् ।
द्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे ॥

तत्तत् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता।
श्रोत्रियाय दरिद्राय अर्थिने च विशेषतः।।[48]

इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः ।
तस्माद्दानं प्रदातव्यं यथाशक्त्या सदा नरैः ॥[49]

महर्षि मनु ने दान-धर्म को दो श्रेणियों में विभक्त किया है - इष्ट और पूर्त। यथा-

दानधर्म्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्त्तिकम्।
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ॥[50]

चतुर्वर्गचिन्तामणिकार हेमाद्रि ने इष्ट एवं पूर्त में भेद स्पष्ट करते हुए लिखा है-

इष्टे यज्ञे यद्दीयते दक्षिणादि तदैष्टिकम्।
बहिर्वेदी च यद्दानं तत् पौर्तिकम् ॥[51]

महर्षि अत्रि का मत इससे कुछ भिन्न है। उनके मत में-

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥

वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥[52]

अत्रि स्मृति के उपर्युक्त मत से साम्य रखने वाली स्मृतियां हैं-

लघुशङ्ख स्मृति (1-6), लिखित स्मृति (1-6) व लघुयमस्मृति (68-70)। ''नीलकण्ठ'' ने ''भगवन्तभास्कर'' में इस पूर्त धर्म को उत्सर्ग प्रकरण में स्थान दिया है। ''लक्ष्मीधर'' ने ''कृत्यकल्पतरु'' में व ''हेमाद्रि ने '' चतुर्वर्गचिन्तामणि'' में ''पूर्त धर्म'' अथवा उत्सर्ग का दान में ही अन्तर्भाव कर लिया है। इस प्रकार दान और उत्सर्ग में सूक्ष्म भेद अवश्य है।

उपर्युक्त विवेचन से दान और उत्सर्ग का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। स्वर्ग प्राप्ति, श्री प्राप्ति, मोक्ष प्राप्ति, इस लोक में यश, जन्मान्तर के लिये संचित-कोष, जनोपयोगी

कार्यों के प्रति आसक्ति इत्यादि ''दान'' और उत्सर्ग से ही सम्भव है। चतुर्वर्गचिन्तामणिकार हेमाद्रि ने स्पष्ट कहा है-

दानेन भूता वशी भवन्ति वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानात् दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति ॥[53]

यह सर्वविदित है कि सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों के क्षरण के साथ-साथ धर्म के उपादान- ''दान'' और ''उत्सर्ग'' के विषय में भी जनमानस की धारणा परिवर्तित होती चली गई। एक ओर तो किसी भी भिक्षुक की झोली में यत्किंचित् द्रव्य या अन्न को श्रद्धा अथवा अश्रद्धापूर्वक डाल देना दान मान लिया गया, दूसरी ओर तीर्थ स्थानों में तीर्थ यात्रियों से अधिकतम प्राप्त करने की लालसा व सम्पन्न व्यक्ति के यहाँ ही धार्मिक कृत्य सम्पन्न करवाने की मनोवृत्ति ने अनास्था को जन्म दिया। अशुद्ध उपायों से प्रभूत धन अर्जित कर, उसके कुछ अंश का दान करके प्रतिष्ठा प्राप्त करने वालों के कारण भी दान का प्रत्यय दूषित हुआ । इस अनास्था के वशीभूत होकर ही, कुछ लोगों ने हमारे देश को मिलने वाली विदेशी सहायता तथा ऋण पर व्यंग्य करते हुए यहाँ तक कह दिया कि भारत तो दान के धन पर ही पलता आया है, यहाँ याचकों की कभी कमी नहीं रही। किन्तु ऐसा नहीं है। दाता और प्रतिगृहीता दोनों ही यदि भारतवासी हों तो यह आक्षेप स्वतः ही निरर्थक हो जाता है। सम्प्रदाय विशेष के कुछ लोगों का तो यह भी कहना है कि, दान संबंधी सभी ग्रन्थ ब्राह्मणों के द्वारा रचे गये हैं और उन्होंने अपने लाभ के लिये इस प्रकार के ग्रन्थों की रचना कर, स्वार्थ सिद्धि की, किन्तु वैदिक काल से ही चले आ रहे दान धर्म का स्वरूप कभी भी इतना हीन कोटि का नहीं हो सकता। विद्वान् ग्रन्थकर्ताओं ने यदि जन-जन को दान और जनोपयोगी कार्य करने के लिये प्रेरित किया है, तो प्रतिगृहीता के लिये अनेक शुभ्र गुणों का समावेश करने का भी विस्तार से प्रतिपादन किया गया है, अन्यथा वह दान लेने का अधिकारी नहीं माना गया है। दान में द्रव्य की शुद्धता व श्रद्धा पर विशेष बल दिया गया है। दान की सामान्य परिभाषा से ही यह तथ्य स्पष्ट होने लगता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में दान व उत्सर्ग संबंधी भ्रान्तियों का निराकरण करने एवं उनके वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है तथा यथासम्भव कालानुरूप चिन्तन का मार्ग प्रशस्त किये जाने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है।

धर्म शास्त्रीय वाङ्मय में ''दान'' विवेचक धर्मसूत्रकारों स्मृतिकारों तथा प्रमुख निबन्धकारों का सामान्य परिचय

प्रस्तुत प्रकरण में दान विवेचक धर्मसूत्रकांरों, स्मृतिकारों, प्रमुख भाष्यकारों एवं निबन्धकारों का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। सूत्रग्रन्थों का निर्माण युग की आवश्यकता को देखते हुए उत्तर वैदिककाल से प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञयागादि का विधान इतना विस्तृत हो गया था कि उसको क्रमबद्ध करने की आवश्यकता हुई। धर्मसूत्र वेदांगों में कल्पसूत्रों का अंग माने जाते हैं। कल्पसूत्र मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं-

(1) श्रौतसूत्र, (2) गृह्यसूत्र, (3) धर्मसूत्र, (4) शुल्वसूत्र।

विषय वस्तु के दृष्टिकोण से गृह्यसूत्रों व धर्मसूत्रों में पर्याप्त साम्य है। गृह्यसूत्रों में गृह्याग्नि, गृह-यज्ञ, उपासना, हवन, वार्षिक यज्ञ, संस्कार, स्नातक नियम, मधुपर्क एवं श्राद्धकर्म वर्णित हैं। धर्मसूत्रों में भी विवाह संस्कार, छात्रों एवं स्नातकों से संबंधित नियम, श्राद्ध एवं मधुपर्क आदि की गौण रूप से विवेचना है, किन्तु मुख्य रूप से धर्मसूत्रों के प्रतिपाद्य विषय हैं - आचार, विधि-नियम और संस्कारों की विशद व्याख्या एवं विवेचन।

गौतम :

धर्म शास्त्र के ग्रन्थों का कालनिर्णय बड़ा कठिन कार्य है, तथापि उपलब्ध धर्मसूत्रों में गौतमधर्मसूत्र प्राचीनतम माना जाता है। गौतमधर्मसूत्र का प्रकाशन अनेक बार हुआ है। अन्तः साक्ष्य के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि, गौतमधर्मसूत्र की रचना बौद्ध काल से पहले हो चुकी थी, क्योंकि बौद्धों ने हिन्दू धर्म व धर्म ग्रन्थों पर जो अनेक प्रहार किये, उनकी चर्चा इस धर्मसूत्र में नहीं है। पाणिनि व्याकरण का पूर्ण प्रयोग इस धर्म सूत्र में नहीं हुआ है, अतः या तो पाणिनि से पहले इस ग्रन्थ की रचना हो चुकी थी अथवा ग्रन्थ निर्माण के समय तक पाणिनि का व्याकरण प्रचलित नहीं हो पाया था। महामहोपाध्याय पी.वी. काणे के अनुसार ''600 ईसा पूर्व से 400 ईसा पूर्व के मध्य गौतमधर्मसूत्र का रचना काल माना जा सकता है।[53]

ऐसा प्रतीत होता है कि गौतम एक जातिगत नाम है। कठोपनिषद् में नचिकेता

तथा उसके पिता गौतम नाम से पुकारे गये हैं[54] छान्दोग्योपनिषद् में हारिद्रुमत् गौतम नामक एक आचार्य का नाम आया है।[55] गौतमधर्मसूत्र केवल गद्य में है, इसमें उद्धरण रूप में भी कोई पद्य नहीं है, किन्तु पराशरमाधवीय में माधवाचार्य ने किसी श्लोक गौतम को भी उद्धृत किया है।[56] अपरार्क, हेमाद्रि इत्यादि ने ''वृद्ध गौतम'' को उद्धृत किया है। जीवानन्द के धर्मशास्त्र संग्रह में एक ''गौतम संहिता'' (पृष्ठ 403 से 434) प्रकाशित है। इसमें 29 अध्याय हैं। यह पूर्णतः गद्यात्मक है तथा इसके सूत्र गौतमधर्मसूत्र से अत्यधिक साम्य रखते हैं, प्रकाशित धर्म सूत्र व इसके सूत्रों में केवल अध्याय विभाजन का अन्तर है। इस धर्म शास्त्र संग्रह में ही एक ''वृद्धगौतमसंहिता'' (पृष्ठ 497 से 638) प्रकाशित है। यह पूर्णतः पद्यात्मक है। इसमें 22 अध्याय हैं। ये दोनों ही ग्रन्थ स्मृतिसन्दर्भ, भाग-4 में ''गौतमस्मृति'' व ''वृद्धगौतमस्मृति'' के नाम से क्रमशः पृष्ठ संख्या 1879 से 1918 व पृष्ठ संख्या 1919 से 2082 तक प्रकाशित हैं। गौतम संहिता अथवा गौतमस्मृति के अध्याय 5 में ''गृहस्थाश्रमवर्णनम् '' के अन्तर्गत अन्न-दान पर विचार व्यक्त किये गये हैं । वृद्धगौतमसंहिता या वृद्धगौतमस्मृति में अध्याय 3 में उत्तम, मध्यम व अधम दान, अध्याय 4 में उत्तम, मध्यम व अधम ब्राह्मण, अध्याय 5 में दान का महत्त्व व प्रकार, अध्याय 6 में सभी दानों का फल, अध्याय 7 में वृषदान का महत्त्व अध्याय 9 में कपिलादान-प्रशंसा, अध्याय 10 में कपिला-गौ-प्रशंसा, अध्याय 12 में दान देने योग्य साधु ब्राह्मणों की विशेषता व अन्न दान की महत्ता, अध्याय 19 में दानकाल-विधि इत्यादि का वर्णन करते हुए दान-कर्त्तव्य का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। दोनों ग्रन्थों में से प्रथम को धर्मसूत्र व द्वितीय को स्मृति का स्थान दिया जा सकता है। महामहोपाध्याय काणे ने गौतम धर्मसूत्र का सामवेद से गहरा संबंध माना है।[57]

प्रकाशित गौतमधर्मसूत्र में 3 प्रश्न व 28 अध्याय हैं। इसमें भिक्षा देने का नियम[58] दान देने की विधि,[59] दान का फल,[60] बहिर्वेदिदान,[61] अन्न दान,[62] दान के अपात्र,[63]दान के नियम और अपवाद,[64] दान में देने योग्य वस्तुएं[65] आदि का विवेचन है। हरदत्त ने गौतमधर्मसूत्र पर मिताक्षरा नामक टीका लिखी है। भर्तृयज्ञ भी गौतमधर्मसूत्र के टीकाकार कहे जाते हैं।

बौधायन :

बौधायन कृष्ण यजुर्वेद के आचार्य थे । इनकी जन्म-भूमि का सही ज्ञान होना कठिन है। वर्तमान समय में बौधायनीय लोग अधिकांशतः दक्षिण में ही पाये जाते हैं।

वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण बौधायनीय थे। डॉ. काणे की मान्यता है कि ''बौधायन ने दक्षिणापथ के लोगों को मिश्रित जातियों में गिना है, अतः वे दक्षिणी नहीं हो सकते, क्योंकि वे अपने को नीच जाति में क्यों रखते ।''[66] हो सकता है बौधायन दक्षिणापथ के नहीं हों, उसके पड़ौसी राज्य के निवासी हों और बाद में उनके अनुयायी या उनके वंशज दक्षिणापथ में रहने लगे हों।

बौधायन धर्मसूत्र में ''कण्व बौधायन'' का नाम मिलता है । ऋषितर्पण प्रसंग में बौधायन सूत्र है - ''कण्वं बौधायनं तर्पयामि।[67]'' इस आधार पर कण्व बौधायन को सूत्रकार बौधायन का पिता व पूर्वज मान सकते हैं। इस धर्मसूत्र का सम्पादन कई बार हुआ है।

बौधायन धर्मसूत्र रचना में कुछ शिथिल व आवश्यकता से अधिक विस्तृत है। इसकी शैली गद्य-पद्य मिश्रित है। उपलब्ध बौधायन धर्मसूत्र गौतम धर्मसूत्र के बाद की कृति है, क्योंकि इसमें दो बार गौतम का नाम आया है।[68] गौतम ने केवल एक धर्मशास्त्राचार्य मनु का नाम लिया है,[69] किन्तु बौधायन ने अपने धर्मसूत्र में कात्य, कश्यप, प्रजापति, मनु, मौद्गल्य, हारीत, कण्व बौधायन, बौधायन, इतिहास, पुराण, वेद-वेदांग, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि का भी उल्लेख किया है। उपनिषदों से तो उद्धरण भी लिये गये हैं, अतः बौधायन का समय उपनिषदों के बहुत बाद का है। बौधायन भाल्लवी की गाथा से भी परिचित थे, जिसमें आर्यावर्त की भौगोलिक सीमाएं दी गई हैं। बौधायन धर्मसूत्र में बहुत से धर्म सम्बन्धी उद्धरण भी पाये जाते हैं, अतः उनके पूर्व अनेक ग्रन्थ विद्यमान थे, यह सिद्ध हो जाता है। इसके ऋषितर्पण प्रकरण में सूत्रकार आपस्तम्ब, कण्व बौधायन, सत्याषाढ हिरण्यकेशी, वाजसनेयी याज्ञवल्क्य, आश्वलायन शौनक तथा व्यास का तो स्वयं ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है। स्मृति सन्दर्भ के चतुर्थ भाग (पृष्ठ 1767 से 1878) में बौधायनस्मृति के नाम से एक ग्रन्थ प्रकाशित है। इसकी शैली भी गद्य-पद्य मिश्रित है। वस्तुतः सूत्र वही हैं, जो बौधायन धर्मसूत्र में हैं । केवल इन सूत्रों का प्रश्न विभाजन व अध्याय विभाजन भिन्न प्रकार से है। डॉ. काणे (धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ 14) ने भी माना है कि ''डॉ. आर शामशास्त्री, डॉ. कैलेण्ड आदि ने अपने ढंग से इस धर्मसूत्र को गठित किया है।

बौधायन धर्मसूत्र में पाणिनि के नियमों के विपरीत भी व्याकरण व्यवहार है, पुराने अर्थों में शब्द प्रयोग है। शबर के बहुत पहले से ही बौधायन धर्मसूत्र प्रमाण स्वरूप माना जाता था । इन्हीं प्रमाणों के आधार पर श्री पी.वी. काणे (धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग प्रथम, पृष्ठ 16) ने बौधायन का समय 500 ईस्वी पूर्व से 200 ईस्वी पूर्व के बीच कहीं

माना है। वर्तमान उपलब्ध ग्रन्थ में 39 अध्याय हैं, जो चार प्रश्नों में विभक्त हैं। इसके प्रथम प्रश्न में अन्यान्य विषयों के साथ पक्वान्न दान, द्वितीय प्रश्न तृतीय अध्याय में अन्न व धन दान का नियम, द्वितीय प्रश्न अष्टम अध्याय में दान को विधि, तृतीय प्रश्न दशम अध्याय में दान देने योग्य वस्तुओं, चतुर्थ प्रश्न द्वितीय अध्याय में दान लेने का प्रायश्चित्त एवं षष्ठ अध्याय में जप तथा दान का विवेचन किया गया है।

आपस्तम्ब :

आपस्तम्ब के जीवन व निवास स्थान के विषय में भी कुछ ज्ञान नहीं है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (2.7.17.17) में उदीच्यों की विलक्षण श्राद्ध परम्परा की चर्चा है।[70] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के टीकाकार हरदत्त के अनुसार शरावती के उत्तर के देश को उदीच्य कहते हैं।[71] हो सकता है, यह उनके निवास -स्थान का सूचक हो। आपस्तम्ब गृह्य सूत्र में यमुना के तीर पर साल्व देश का उल्लेख आया है।[72] कुछ विद्वानों के अनुसार साल्व देश रावी नदी के पास पंजाब का एक भाग था, इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यमुना और रावी नदी के आस-पास इनका निवास स्थान होगा।

आपस्तम्ब के श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र तीनों उपलब्ध हैं। रचना संबंधी समानता को देखकर यह कहा जा सकता है कि धर्म सूत्र और गृह्यसूत्र एक ही व्यक्ति की रचना होगी।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र का काल भी अनुमान के सहारे ही निश्चित किया जा सकता है। शैली और अपाणिनीय प्रयोगों के कारण यह धर्मसूत्र पाणिनि से पहले अस्तित्व में आ चुका था, ऐसा प्रतीत होता है। याज्ञवल्क्यस्मृति (1.4) ने आपस्तम्ब को धर्मशास्त्रकार कहा है ।[73] इसमें बौद्ध धर्म अथवा ब्राह्मण विरोधी किसी सम्प्रदाय की कोई चर्चा प्राप्त नहीं होती। विश्वरूप ने याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका में आपस्तम्ब को लगभग 20 बार उद्धृत किया है। मेधातिथि ने मनुस्मृति की टीका में कई बार आपस्तम्ब की चर्चा की है। मिताक्षरा में आपस्तम्ब के कई उद्धरण हैं। अपरार्क में भी आपस्तम्ब के लगभग 200 सूत्र उद्धृत हैं। आपस्तम्बधर्मसूत्र में पूर्वमीमांसा के अनेक पारिभाषिक शब्द व सूत्र पाये जाते हैं तथा जैमिनिभाष्य में शबर ने आपस्तम्ब को उद्घृत किया है ।[74] सम्भवतः जैमिनी और आपस्तम्ब समकालीन हों । इस आधार पर आपस्तम्ब धर्म सूत्र की रचना 600 ईस्वी पूर्व से 300 ईस्वी पूर्व के मध्य मानी जा सकती है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में दो प्रश्न हैं, जिनमें प्रत्येक में ग्यारह पटल हैं। दोनों प्रश्नों में क्रमशः 32 और 29 कण्डिकाएं हैं। यह धर्मसूत्र अन्य धर्मसूत्रों की अपेक्षा अधिक

संक्षिप्त व सुसंगठित है। यह धर्मसूत्र अधिकांशतः गद्य में है, किन्तु कहीं-कहीं पद्य भी पाये जाते हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कण्व (1.6.19.3 पृष्ठ 143), काण्व (1.6.19.7 पृष्ठ 144 एवं 1.10.28.1 पृष्ठ 198), कुणिक (1.6.19.7 पृष्ठ 144), कौत्स (1.6.19.4 पृष्ठ 143, एवं 1.10. 28 .1 पृष्ठ 198 (पुष्करसादि) 1.6.19.7 पृष्ठ 144, 1.6.19.8 पृष्ठ 144, 1.10.28.1 पृष्ठ 198), वार्ष्यायणि (1.6.19.5 पृष्ठ 143 एवं 1.10.28.2 पृष्ठ 198), श्वेतकेतु (1.2.5.6 पृष्ठ 39), (1.4.13.19 पृष्ठ 102) एवं हारीत 1.6.19.12 पृष्ठ 145 एवं 1.10.28.1. पृष्ठ 198) का उल्लेख किया गया है। आपस्तम्ब ने सूत्र ग्रन्थ लिखते समय वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष एवं निरुक्त से सहायता ली है। इस धर्मसूत्र की व्याख्या हरदत्त ने उज्ज्वला वृत्ति के नाम से की है।

आपस्तम्ब का कहना है कि सभी दान जल के साथ देने चाहिये।[75] नौकर चाकरों व दासादि के बल पर ही दानादि नहीं करना चाहिये।[76] दान करने में स्वयं को, अपनी पत्नी या बच्चों को कष्ट हो जाये, किन्तु नौकर चाकरों को कष्ट नहीं होना चाहिये।[77] उचित समय तथा स्थान में सुपात्र को दान देना चाहिये।[78] बच्चे का दान या क्रय नहीं हो सकता।[79] राजा को चाहिये कि वह ब्राह्मणों को भूमि एवं धन का दान दे।[80]

स्मृति सन्दर्भ भाग 3 में पृष्ठ संख्या 1387 से 1407 तक एक आपस्तम्ब स्मृति प्रकाशित है। इसमें दस अध्याय हैं। यही स्मृति आनन्दाश्रम के संग्रह में पृष्ठ संख्या 35 से 45 तक प्रकाशित है। यह पूर्णतया पद्यात्मक है। इसमें मुख्य रूप से शुद्धि व प्रायश्चित्त का विधान है। दान-विषय का स्पर्श नहीं किया गया है।

वसिष्ठ :

दान विवेचक धर्मसूत्रकारों में आपस्तम्ब के पश्चात् वसिष्ठ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस धर्मसूत्र का भी कई बार प्रकाशन हुआ है। वसिष्ठ धर्मसूत्र में ऋग्वेद एवं वैदिक संहिताओं से उद्धरण लिये गये हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों में अधिकतर ऐतरेय ब्राह्मण व शतपथ ब्राह्मण की ओर संकेत किया गया है। आरण्यकों, उपनिषदों एवं वेदांगों से भी उद्धरण लिये गये हैं। इतिहास पुराण से भी धर्मसूत्रकार अनभिज्ञ नहीं है। इस धर्मसूत्र में अन्य धर्मशास्त्रकारों व धर्मशास्त्र ग्रन्थों का भी उल्लेख किया गया है। मनु ने सबसे पहले इस धर्मसूत्र को धर्म प्रमाण माना है।[81] विश्वरूप, मेधातिथि आदि अन्य व्याख्याकारों ने इस धर्मसूत्र की चर्चा करते हुए इसे उद्धृत भी किया है। वसिष्ठ ने अपने धर्म सूत्र में म्लेच्छ भाषा के शिक्षण का निषेध किया है - ''न म्लेच्छभाषां शिक्षेत्।[82]'' इससे प्रतीत होता

है कि यूनानी आक्रमण के बाद भारतीयों के यूनानियों से सम्पर्क के समय वसिष्ठ विद्यमान थे। महामहोपाध्याय काणे के अनुसार ''यदि इस धर्म सूत्र को ईसा पूर्व 300 से ईसा पूर्व 100 के मध्य रखा जाये तो असंगत न होगा ।[83]''

विषय और शैली के दृष्टिकोण से वसिष्ठधर्मसूत्र अन्य धर्मसूत्रों से बहुत कुछ साम्य रखता है। मुख्यतः यह गद्य में है, यत्र- तत्र पद्य भी मिलते हैं। गौतम धर्मसूत्र में इससे बहुत कुछ लिया गया है। ''बौधायन धर्मसूत्र'' का भी यह ऋणी है। इसमें कुल 30 अध्याय हैं।

''जीवानन्द'' के ''धर्मशास्त्रसंग्रह'' में पृष्ठ 456 से पृष्ठ 496 तक ''वसिष्ठ संहिता'' नाम से इस धर्मसूत्र का प्रकाशन हुआ है। इसमें इक्कीस अध्याय हैं। आनन्दाश्रम के स्मृतीनां समुच्चयः[84] में यही धर्मसूत्र (पृष्ठ 187 से 231) वसिष्ठस्मृति के नाम से प्रकाशित है। इसमें 30 अध्याय हैं। प्रारम्भ के 21 अध्याय जीवानन्द के संग्रह वाले ही हैं। स्मृति सन्दर्भ भाग तृतीय में यह धर्मसूत्र वसिष्ठस्मृति (पृष्ठ 1468 से 1543) के नाम से ही प्रकाशित है। इसमें भी तीस अध्याय हैं। धर्मशास्त्र के अन्यान्य विषयों के साथ-साथ अध्याय 29 में दानादि के फल का निरूपण किया गया है। स्मृतिसन्दर्भ के ही चतुर्थ भाग में एक वसिष्ठ स्मृति नं 2 (पृष्ठ 2139 से 2246) प्रकाशित है। यह पूर्णतया पद्यात्मक है। इसमें सात अध्याय हैं। यह स्मृति वैष्णव सम्प्रदाय के आचार-विचार से सम्बद्ध है, तथा तत्संबंधी विषय का प्रतिपादन करती है। एक ''वसिष्ठधर्मशास्त्रम्'' बाम्बे संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज में भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना से सन् 1930 में प्रकाशित हुआ है। यह उपर्युक्त'' वसिष्ठ स्मृति ही है।

विष्णु :

''विष्णुधर्मसूत्र'' का प्रकाशन भारत में कई बार हुआ है। जीवानन्द (धर्मशास्त्रसंग्रह) ने 1876 ई. में, बंगाल एशियाटिक सोसायटी ने 1881 ई. में तथा डॉ. जौली के सम्पादन में श्री एम. एन. दत्त ने 1909 में इसका प्रकाशन करवाया है। स्मृति सन्दर्भ प्रथम भाग (पृष्ठ 401 से 546) में भी ''वैष्णवधर्मशास्त्र'' के नाम से विष्णु धर्मसूत्र उपलब्ध है। इस धर्मसूत्र में 100 अध्याय हैं। सूत्र छोटे-छोटे नहीं हैं। प्रथम एवं अन्तिम दो अध्याय पूर्णतया पद्यबद्ध हैं, किन्तु अन्य अध्याय या तो गद्य में अथवा गद्य-पद्य मिश्रित रूप में हैं। विष्णुधर्मसूत्र की वैजयन्ती टीका के लेखक नन्द

पण्डित हैं। इस धर्मसूत्र में मनु, याज्ञवल्क्य एवं व्यास के वाक्यों को प्रमाणस्वरूप माना गया है। वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण, वेदांग एवं इतिहास-पुराण के उद्धरण भी इस धर्मसूत्र में हैं। मिताक्षरा, अपरार्क आदि टीकाओं में पुनः पुनः विष्णुधर्मसूत्र का उल्लेख आया है।

विष्णुधर्मसूत्र का कालनिर्णय अत्यन्त कठिन कार्य है। इसके कुछ अध्याय गौतम एवं आपस्तम्ब के समान प्राचीनता के द्योतक हैं, किन्तु अधिकांश अध्याय सरस शैली में व्याकरण के नियमानुकूल लिखे गये हैं । इसलिये महामहोपाध्याय काणे के मत में इस धर्मसूत्र के प्रारम्भिक भागों का काल ईसापूर्व 300 से ईसा पूर्व 100 के मध्य कहा जा सकता है।[85] किन्तु यह केवल अनुमान मात्र है।

धर्मशास्त्र के अन्यान्य विषयों के साथ इसके अध्याय 87-88 में मृगचर्मदान व गोदान, अध्याय 90 में भांति-भांति के दानों की स्तुति, अध्याय 91-93 में कूप, तालाब, वाटिका, पुल, बाँध, भोजन-दान आदि जनकल्याण के कार्य, प्रतिग्राहकों के अनुसार पात्रता भिन्नता इत्यादि का वर्णन किया गया है।

''स्मृतिसन्दर्भ'', प्रथम भाग (पृष्ठ 389 से 400) में एक विष्णु स्मृति भी प्रकाशित है, किन्तु यह पूर्णतया विष्णु आराधनापरक है, अतः धर्मशास्त्र की अपेक्षा भक्ति शास्त्र का ग्रन्थ प्रतीत होती है।

हिरण्यकेशी :

हिरण्यकेशिधर्मसूत्र का प्रकाशन आनन्दाश्रम प्रेस, पूना ने किया है। डॉ. काणे के अनुसार ''हिरण्यकेशिधर्मसूत्र को एक स्वतंत्र रचना कहना जँचता नहीं, क्योंकि इसके सैकड़ों सूत्र ज्यों के त्यों आपस्तम्बधर्मसूत्र से ले लिये गये हैं।[86] ''

हारीत :

''हारीत धर्मसूत्र'' को बौधायन, आपस्तम्ब एवं वसिष्ठ ने अनेक बार प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया है। विश्वरूप से लेकर अन्त तक के धर्मशास्त्रविदों द्वारा हारीत का नाम लिया जाता रहा है, इससे हारीत धर्मसूत्र की महत्ता स्पष्ट है। डॉ. काणे के अनुसार ''स्वर्गीय पं. वामन शास्त्री इस्लामपुरकर को नासिक में हारीत धर्मसूत्र की एक हस्तलिखित प्रति मिली है।''[87]

हेमाद्रि कृत चतुर्वर्गचिन्तामणि में हारीतधर्मसूत्र का एक सूत्र उद्धृत है- ''पालंकया नालिका-पौतीक-शिग्रु-सृसुक-वार्ताक-भूस्तृण-कफ्फेल-माष-मसूर-कृतलव-णानि च श्राद्धे न दद्यात्'' जिस पर हेमाद्रि ने टिप्पणी दी है। - ''कफ्फेलाख्यविशेषः काश्मीरेषु प्रसिद्ध इति हारीत स्मृतिभाष्यकारः ।''[88] इससे स्पष्ट है कि हारीत को कश्मीरी कहा जा सकता है तथा हारीत के एक भाष्यकार भी थे।

हारीत धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं होता, किन्तु निबन्धों में हारीत के जो उद्धरण प्राप्त होते हैं, उनसे ज्ञात होता है कि हारीत के धर्मसूत्र में वे सभी विषय थे, जो अन्य धर्मसूत्रों में पाये जाते हैं।

शंख लिखित :

शंख लिखित का धर्मसूत्र आज पूर्णरूप से उपलब्ध नहीं है। यह धर्मसूत्र गद्य-पद्य मिश्रित है। जीवानन्द के स्मृति संग्रह में शङ्खसंहिता के 18 अध्यायों में विभक्त 330 पद्य (पृष्ठ 343 से 374) तथा लिखित स्मृति के 93 श्लोक (पृष्ठ 375 से 382) पाये जाते हैं। किन्तु आनन्दाश्रम, पूना के ''स्मृतिसमुच्चयः'' में लघुशङ्खस्मृति (पृष्ठ 214 से 128) के 73 पद्य, लिखित स्मृति (पृष्ठ 182 से 186) के 96 पद्य, शङ्खलिखितस्मृति (पृष्ठ 372 से 373) के 32 पद्य एवं शङ्खस्मृति (पृष्ठ 374 से 395) के लगभग 384 पद्य हैं । शङ्खस्मृति 18 अध्यायों में विभक्त है। नाग पब्लिशर्स, दिल्ली के स्मृति सन्दर्भ भाग तृतीय में प्रकाशित लघुशङ्ख स्मृति में 71 पद्य, लिखित स्मृति में 96 पद्य, शङ्खलिखित स्मृति में 32 पद्य व शङ्खस्मृति में 357 पद्य हैं जो 18 अध्यायों में विभक्त हैं।

महाभारत (शान्तिपर्व अध्याय 23)[89] में शङ्ख और लिखित की कथा आयी है। याज्ञवल्क्य[90] ने शङ्खलिखित को धर्मशास्त्रकारों में माना है। पाराशरस्मृति में आया है कि द्वापर में शङ्खलिखित का धर्म मान्य होता है।[91] धर्मशास्त्र के भाष्यकारों एवं निबन्धकारों ने भी शङ्खलिखित को बहुशः उद्धृत किया है। ये उद्धरण अधिकांशतः गद्य में हैं। इससे प्रतीत होता है कि शङ्खलिखित के नाम से आज प्राप्त होने वाले साहित्य के अतिरिक्त कोई प्राचीन सूत्रात्मक प्रति भी थी, जो आज उपलब्ध नहीं होती। इस पर भाष्य भी लिखा गया था, जिसकी चर्चा कृत्यकल्पतरू, विवादरत्नाकर, एवं विवादचिन्तामणि में है। इस आधार पर यह धर्मसूत्र गौतम एवं आपस्तम्ब के बाद

की, किन्तु याज्ञवल्क्यस्मृति के पहले की कृति है। डॉ. काणे के अनुसार इसके प्रणयन का काल ईसा पूर्व 300 से लेकर ईस्वी सन् 100 के बीच में अवश्य है।''[92]

उपलब्ध उद्धरणों एवं अंशों में शङ्खलिखित के अन्य धर्मशास्त्रीय विषयों के साथ इष्ट और पूर्त संबंधी विचार उल्लेखनीय हैं।

वैखानसधर्मप्रश्न :

श्री टी. गणपति शास्त्री ने 1913 में त्रिवेन्द्रम संस्कृतग्रन्थमाला में इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया है। सामान्यतः वैखानस शब्द वानप्रस्थ के लिये आता है, किन्तु बौधायन, गौतम व मनु के अनुसार वैखानस वह है जो वैखानस-शास्त्र में कथित नियमों के अनुसार चलता है।[93]

वैखानस धर्मप्रश्न में तीन प्रश्न हैं, जो कुल मिलाकर 41 खण्डों में विभक्त हैं। इनके प्रथम प्रश्न में गृहस्थ के कर्तव्य तथा तृतीय प्रश्न में गृहस्थ के आचार नियमों के अन्तर्गत दान संबंधी विचार व्यक्त किये गये हैं।

अत्रि :

डेकन कालेज, पूना के हस्तलिखित ग्रन्थों में नौ अध्यायों में आत्रेय धर्मशास्त्र भी है। इन अध्यायों में दान, जप, तप का वर्णन है, जिनसे पापों से छुटकारा मिलता है। यह धर्मग्रन्थ गद्य-पद्य मिश्रित है।

हस्तलिखित प्रतियों में अत्रिस्मृति या अत्रिसंहिता नामक एक अन्य ग्रंथ मिलता है। जीवानन्द के संग्रह में भी अत्रिसंहिता का प्रकाशन हुआ है, जिसमें 400 श्लोक हैं। जीवानन्द के संग्रह (भाग प्रथम पृष्ठ 1-12) में ही एक लघु अत्रिस्मृति प्रकाशित है, जो 6 अध्यायों में विभक्त है और इसमें 120 श्लोक हैं। जीवानन्द के संग्रह (भाग प्रथम पृष्ठ 47-57) में एक वृद्धात्रेय स्मृति भी है, जिसमें 140 श्लोक एवं 5 अध्याय हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व में भी अत्रि के मत का वर्णन आया है।[94] नाग पब्लिशर्स, दिल्ली से प्रकाशित स्मृति-सन्दर्भ, प्रथम भाग में अत्रिसंहिता (पृष्ठ 352 से 388)में 398 पद्य व अत्रि स्मृति (पृष्ठ 336 से 351) में 145 गद्यपद्यात्मक सूत्र हैं, जो 6 अध्यायों में विभक्त हैं । आनन्दाश्रम प्रेस पूना से प्रकाशित ''स्मृतीनां समुच्चयः'' में उपलब्ध अत्रिसंहिता (पृ. 9 से 27) में 400 पद्य एवं अत्रि स्मृति (पृ. 28 से 34) में 9 अध्याय हैं, जिसमें गद्य-पद्य मिश्रित 157 सूत्र हैं। विषय विस्तार व भाषा-शैली के

आधार पर यह रचना ईसा की प्रथम शताब्दी की लगती है। स्मृति सन्दर्भ में प्रकाशित अत्रि स्मृति में पृथिवी, स्वर्ण व गोदान की महत्ता[95] तथा दान से स्वर्ग की प्राप्ति[96] का वर्णन किया गया है। स्मृति सन्दर्भ में ही प्रकाशित अत्रि संहिता में दान व दया में भेद व इष्टापूर्त में भेद निरूपण,[97] दान फल वर्णन और दान-पात्र का वर्णन किया गया है।[98]

च्यवन :

याज्ञवल्क्यस्मृति की मिताक्षरा टीका तथा अपरादित्य की टीका में च्यवन के कतिपय पद्य एवं सूत्र उद्धृत किये गये हैं। अपरादित्य ने याज्ञवल्क्य स्मृति (1.127) की टीका में गोदान करने तथा उसके लिये मन्त्रोच्चारण की विधियों के संदर्भ में च्यवन का प्रमाण दिया है।[99] अतः सिद्ध है कि च्यवन नामक कोई धर्मसूत्रकार हो चुके हैं, जिनके मत आज केवल उद्धरण रूप में ही प्राप्त हैं।

जातुकर्ण्य :

उद्धरणदाता धर्मशास्त्रविदों के द्वारा यह नाम अनेक प्रकार से लिखा गया है, यथा जातुकर्णि, जातुकर्ण्य या जातुकर्ण। जातुकर्ण्य को मिताक्षरा, अपरार्क आदि लेखकों ने श्लोकों के रूप में उद्धृत किया है। अपरार्क पृष्ठ 24 में जातुकर्ण्य के नाम से एक श्लोक उद्धृत है :-

इष्टापूर्तौ द्विजातीनां धर्मः सामान्य इष्यते।
अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥

यही पद्य अत्रि स्मृति और लिखित स्मृति में भी प्राप्त होता है। इस से स्पष्ट है कि जातुकर्ण्य का एक धर्मशास्त्र अवश्य था, जो कालान्तर में विस्मृत या लुप्त हो गया।

देवल :

धर्मशास्त्र के भाष्य ग्रन्थों एवं निबन्ध ग्रन्थों में देवल के नाम से अनेकानेक उद्धरण प्राप्त होते हैं। कृत्यकल्पतरू के दानकाण्ड, चतुर्वर्गचिन्तामणि के दान खण्ड, भगवन्तभास्कर के दान-मयूख, वल्लालसेन के दानसागर इत्यादि सभी निबन्ध कारों ने देवल को सर्वसम्मत प्रमाण रूप में उद्धृत किया है, अतः देवल कृत एक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ विद्यमान था, यह निश्चित है। मिताक्षरा ने देवल के गद्यांश भी उद्धृत किये हैं।

आनन्दाश्रम पूना के स्मृतीनां समुच्चयः में 90 पद्यों (पृष्ठ 85 से 89) की एक देवल स्मृति है। नाग पब्लिशर्स, दिल्ली के स्मृति सन्दर्भ में भी 90 पद्यों (पृष्ठ 1655 से 1663) की उपर्युक्त देवल स्मृति है, किन्तु यह प्राचीन प्रतीत नहीं होती और न ही प्राप्त उद्धरणों से इसका सामंजस्य स्थापित होता है।

पैठीनसि :

पैठीनसि एक प्राचीन धर्मसूत्रकार थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है, यद्यपि याज्ञवल्क्य ने धर्मशास्त्रकारों में पैठीनसि की गणना नहीं की है। लक्ष्मीधर ने दानकल्पतरू (पृष्ठ 33-34) में पैठीनसि के तीन पद्य उद्धृत किये हैं, जिनमें ब्राह्मण व दाता का लक्षण दिया गया है। दानसागर में वल्लालसेन ने पैठीनसि के दो सूत्र उद्धृत किये हैं।[100] इस प्रकार के उद्धरणों से यह स्वतः सिद्ध है कि पैठीनसि एक धर्मसूत्रकार थे और उन्होंने ''दान'' विषय का भी अपने ग्रंथ में प्रतिपादन किया था।

बृहस्पति :

कौटिल्य के अर्थशास्त्र, महाभारत के शान्तिपर्व (59.80-85), वनपर्व (32.61), अनुशासनपर्व (39.10.11), कामसूत्र, अश्वघोष, पंचतन्त्र आदि में अर्थशास्त्रकार बृहस्पति की विद्यमानता के प्रमाण प्राप्त होते हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति (1/4-5) ने बृहस्पति को ''धर्मवक्ता'' कहा है, किन्तु कोई धर्मसूत्रकार बृहस्पति भी थे, यह संदेहास्पद है। विभिन्न संग्रहों में बृहस्पति के नाम से एक स्मृति अवश्य प्राप्त होती है तथा उसके उद्धरण भाष्यों एवं निबन्ध ग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं। स्मृतिसन्दर्भ में एक बृहस्पतिस्मृति (पृष्ठ 1610 से 1617) प्राप्त होती है। इसमें 81 पद्य हैं। स्मृतीनां समुच्चयः में भी यही बृहस्पतिस्मृति प्राप्त होती है। इसमें 80 पद्य हैं। इस बृहस्पति स्मृति में ससुवर्ण पृथ्वी-दान-फल, गोचर्मलक्षणपृथिवी-दान-फल, भूमिहर्ता की निन्दा, तडागादि निर्माण फल इत्यादि का वर्णन किया गया है।

शातातप :

याज्ञवल्क्य (1.4-5) एवं पराशर (1.14) ने शातातप की धर्मप्रवक्ताओं में गणना की है। सभी धर्मशास्त्रीय भाष्य एवं निबन्ध ग्रन्थों में शातातप के अनेक पद्य प्राप्त होते हैं। शातातप नाम से कोई गद्यात्मक धर्मग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। सम्भव है शातातप का कोई धर्मसूत्र रहा हो, जो अब लुप्त हो गया है। आनन्दाश्रम मुद्रणालय के ''स्मृतीनां

समुच्चयः'' में लघुशातातपस्मृति (पृष्ठ 128 से 135), वृद्धशातातपस्मृति (पृष्ठ 232 से 235) एवं शातातपस्मृति (पृष्ठ 396 से 410) प्राप्त होती है। लघुशातातपस्मृति में 173 पद्य हैं, जिनमें प्रायश्चित्त विधान, अतिथि, भिक्षा आदि लक्षण, बहुश्रुत को दान, श्राद्ध, दान प्रशंसा इत्यादि विवेच्य विषय हैं। दानप्रशंसा पद्य संख्या 145 से 151 में की गई है। वृद्धशातातपस्मृति में 68 पद्य हैं, जिनमें प्रायश्चित्त, श्राद्ध, पुत्र-प्रसव पर दान इत्यादि का विवेचन किया गया है। शातातप स्मृति में 6 अध्याय हैं, जिनमें विभिन्न प्रकार के पाप व उनके प्रायश्चित्त, गोचर्मदान, अश्वदान कर्पूरजफलदान, महीदान, स्वर्णदान, दुग्धधेनुदान, गुडधेन्वादिदान, दासीदान आदि का निरूपण किया गया है। उपर्युक्त शातातपस्मृति ही स्मृतिसन्दर्भ, प्रथम भाग में प्रकाशित है।

उपर्युक्त धर्मसूत्रकारों के अतिरिक्त विद्वानों ने कतिपय अन्य धर्मशास्त्रकारों को भी धर्मप्रवक्ता माना है। यथा चाणक्य, कश्यप या काश्यप, हिरण्यकेशी गार्ग्य, बुध, भारद्वाज या भरद्वाज, सुमन्तु इत्यादि, किन्तु दान या उत्सर्ग के विषय में इनका योगदान न होने अथवा महत्त्वपूर्ण उल्लेख प्राप्त न होने के कारण इनको दान-विवेचक सूत्रकारों की श्रेणी में परिगणित नहीं किया जा सकता, यद्यपि अन्य धर्मशास्त्रीय विषयों में इन सूत्रकारों का योगदान उल्लेखनीय है।

स्मृतिकार :

महामहोपाध्याय श्री काणे ने धर्मसूत्रों और स्मृतियों में भेद स्पष्ट करते हुए निम्न बिन्दु प्रस्तुत किये हैं-[101]

(क) बहुत से धर्मसूत्र या तो प्रत्येक चरण के कल्प के भाग हैं या गृह्यसूत्रों से गहरे रूप से संबंधित हैं।

(ख) धर्मसूत्र कभी-कभी अपने चरण तथा अपने वेद के उद्धरण के प्रति पक्षपात प्रदर्शित करते हैं।

(ग) प्राचीन धर्मसूत्रों के प्रणेतागण अपने को ऋषि या अतिमानव नहीं कहते, किन्तु स्मृतियों के लेखक, यथा मनु एवं याज्ञवल्क्य ब्रह्मा ऐसे देवताओं के समकक्ष ला दिये गये हैं, अर्थात् इनके लेखक मानव नहीं कहे जाते, वे अतिमानव हैं।

(घ) धर्मसूत्र गद्य में या मिश्रित गद्य पद्य में हैं, किन्तु स्मृतियां पद्यबद्ध हैं।

(ङ) धर्मसूत्रों की भाषा स्मृतियों की भाषा की अपेक्षा अधिक प्राचीन है।

(च) धर्मसूत्रों की विषय-वस्तु एक तारतम्य से व्यवस्थित नहीं है, किन्तु स्मृतियों (यहाँ तक कि प्राचीनतम स्मृति मनुस्मृति) में भी ऐसी अव्यवस्था नहीं पाई जाती है, प्रत्युत इनकी विषय-वस्तु तीन शीर्षकों में है, यथा आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित्त ।

(छ) अधिकतम धर्मसूत्र अधिकतम स्मृतियों से प्राचीन हैं। श्रुति और स्मृति का भेद बताते हुए मनु ने स्पष्ट रूप से कहा है -''श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।''[102] वसिष्ठ धर्मसूत्र (1.3) के अनुसार स्मृति धर्म का उपादान है। प्रारम्भ में स्मृति ग्रन्थ कम ही थे। गौतमधर्मसूत्र (11.12) में एकमात्र मनुस्मृति का उल्लेख आया है।

मनु :

स्मृतियों में सर्वप्राचीन स्मृति मनुस्मृति मानी जाती है । भारतीय साहित्य में मनु के नाम का प्राचीनकाल से उल्लेख होता आया है। ऋग्वेद (1.180.16, 1.114.2 व 2.33.13) में मनु को मानव जाति का पिता कहा गया है। एक वैदिक ऋषि कामना करता है कि वह कभी भी मनु के मार्ग से च्युत न हो ।[103] ऋग्वेद में मनु को सर्वप्रथम यज्ञकर्ता घोषित किया गया है।[104] तैत्तिरीय संहिता व ताण्ड्यमहाब्राह्मण में कहा गया है कि मनु ने जो कुछ कहा, वह औषध है ।[105] शतपथ ब्राह्मण में मनु और प्रलय की कहानी है।[106] निरुक्त में स्वायंभुव मनु के मत को उपस्थित किया गया है।[107] महाभारत में मनु, स्वायम्भु मनु (शान्ति पर्व 21.12) प्राचेतस मनु (शान्तिपर्व 57.43) आदि का अनेकशः उल्लेख है। चतुर्वर्गचिन्तामणि व संस्कार मयूख में उद्धृत विष्णुपुराण से ज्ञात होता है कि स्वायंभुव मनुशास्त्र के चार संस्करण थे - ''भार्गवीया, नारदीया, बार्हस्पत्यांगिरस्यापि स्वायम्भुवस्य शास्त्रस्य चतस्रः संहिता मताः ।''[108] इससे प्रतीत होता है कि मनुस्मृति के अनेक संस्करण थे। मनु ने कुछ सिद्धान्त स्थापित किये, जिनको उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया। मनु द्वारा अपने दस शिष्यों को शास्त्राध्ययन करवाने एवं भृगु द्वारा अन्य ऋषियों को वह ज्ञान प्रदान करने का विवरण आज उपलब्ध मनुस्मृति में भी आया है।

मनुस्मृति का प्रणयन किसने किया यह कहना अत्यन्त कठिन है। मान्यता यह है कि मानव के आदि पूर्वज मनु ने ही इसका प्रणयन किया।

वर्तमान मनुस्मृति में 2694 पद्य हैं, जो 12 अध्यायों में विभक्त हैं । इसके सिद्धान्त गौतम, बौधायन एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्रों के सिद्धान्तों से अत्यधिक मिलते हैं। इसके अनेक पद्य वसिष्ठ एवं विष्णु धर्मसूत्रों में उद्धृत हैं। मनुस्मृति सरल एवं धाराप्रवाह शैली में प्रणीत है। इसका व्याकरण पाणिनि सम्मत है। मनुस्मृति में अपने पूर्व के साहित्य का भी प्रकरणानुसार अनेकशः उल्लेख किया गया है। इसमें तीनों वेदों का अनेक बार उल्लेख किया गया है तथा अथर्ववेद को अथर्वांगिरस श्रुति कहा गया है।[109] मनु ने आरण्यक, छः वेदांगों, आख्यान, इतिहास, पुराण एवं खिलों का भी उल्लेख किया है।[110] मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस, वसिष्ठ, भृगु, नारद (1.35)[111] अजीर्गत (10.105)[112] भारद्वाज (10.107)[113] वामदेव (10.106)[114] विश्वामित्र (10.108)[115] अत्रि, उतथ्यपुत्र, भृगु, शौनक (3.16)[116] वसिष्ठ (8.110 एवं 9.23) आदि धर्मप्रवक्ताओं का भी मनु ने उल्लेख किया है। डॉ. काणे के अनुसार -''मनुस्मृति की रचना ई.पू. दूसरी शताब्दी तथा ईसा के उपरान्त दूसरी शताब्दी के बीच कभी हुई होगी।''[117]

मनु के अनेक टीकाकार हुए हैं, इनमें मेधातिथि, कुल्लूक एवं गोविन्दराज प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त हैं - सर्वज्ञनारायण, नन्दन, रामचन्द्र, राघवानन्द, मनीराम, नारायण एवं भारुचि। भारतीय विद्या भवन बम्बई ने 1972 में 9 टीकाकारों की टीकाओं से युक्त मनुस्मृति छः भागों में प्रकाशित की है। इनमें से भारुचि की टीका छठे अध्याय से और खण्डित रूप में प्रकाशित है। कतिपय और व्याख्याकारों की कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। यथा- असहाय, उदयकर, भागुरि, भोजदेव एवं धरणीधर।

मनुस्मृति में दान-विवचेन विस्तार से नहीं हुआ है, तथापि गृहस्थ कर्तव्य के रूप में तथा वर्णों के कर्तव्यों के रूप में मनु के दान संबंधी विचार उल्लेख्य हैं। मनु के दान संबंधी विचार 4.226-237 (पृष्ठ 81-82), 7.85-86 (पृष्ठ 117), 10.3-10 (पृष्ठ 213- 214), 11.195-197 (पृष्ठ 230-231) में प्रकीर्ण रूप से उपलब्ध हैं।[117] स्मृतिसन्दर्भ भाग प्रथम में एक नारदीय मनुस्मृति (पृ. 250-335) भी प्रकाशित है। इसमें विशेष रूप से व्यवहारविधि पर चिन्तन किया गया है।

याज्ञवल्क्य :

धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में याज्ञवल्क्यस्मृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दू कानून इसकी मिताक्षरा टीका से अत्यन्त सम्बद्ध है, अतः याज्ञवल्क्यस्मृति की मान्यता भी अधिक है। इस स्मृति का प्रकाशन अनेक बार हुआ है।

याज्ञवल्क्यस्मृति के प्रणेता याज्ञवल्क्य कहे गये हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति (1.1-2) में कहा गया है कि मिथिला में स्थित योगीन्द्र याज्ञवल्क्य ने मुनियों को वर्णाश्रमधर्म का ज्ञान दिया। याज्ञवल्क्य वैदिक ऋषि परम्परा में आते हैं। महाभारत (शान्तिपर्व अध्याय 312) के अनुसार सूर्योपासना के फलस्वरूप याज्ञवल्क्य को शुक्लयजुर्वेद, शतपथ आदि का दिव्य-ज्ञान प्राप्त हुआ। शतपथब्राह्मण में अग्निहोत्री के संबंध में विदेहराज जनक व याज्ञवल्क्य के परस्पर वार्तालाप का अनेक बार उल्लेख हुआ है। बृहदारण्यकोपनिषद् (2.4 एवं 4.5) में याज्ञवल्क्य दार्शनिक रूप में अपनी पत्नी मैत्रेयी को आत्मज्ञान प्रदान करते हैं। उपर्युक्त विवरण से याज्ञवल्क्य मंत्रद्रष्टा ऋषि, दार्शनिक एवं धर्मशास्त्रकार सिद्ध होते हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति के निर्णयसागर संस्करण, त्रिवेन्द्रम संस्करण एवं आनन्दाश्रम संस्करण में क्रमशः 1010, 1003 व 1006 श्लोक हैं। विश्वरूप (आनन्दाश्रम संस्करण) ने आचार संबंधी 5 पद्यों को छोड़ दिया है।

विषय-विवचेन में समानता होने पर भी याज्ञवल्क्यस्मृति मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त एवं सुसङ्गठित है। याज्ञवल्क्यस्मृति में पुनरुक्ति दोष नहीं है। फलस्वरूप मनुस्मृति से इसका कलेवर आधा है। दोनों स्मृतियों में विषय साम्य व कहीं-कहीं शब्द साम्य को देखकर लगता है कि याज्ञवल्क्य के सामने मनुस्मृति की कोई प्रति अवश्य थी। नियोग, विधवा के अधिकार, जुए इत्यादि से संबंधित विचारधारा में याज्ञवल्क्य मनु से प्रगतिशील जान पड़ते हैं।

सम्पूर्ण याज्ञवल्क्यसमृति अनुष्टुप छंद में लिखी हुई है। संक्षिप्त होते हुए भी शैली सरल एवं धाराप्रवाह है। व्याकरण पाणिनि सम्मत है, परन्तु कहीं-कहीं अशुद्धता है, यथा पूज्य (1.293), दूष्य (2.296) इत्यादि। अग्निपुराण व गरुडपुराण पर भी याज्ञवल्क्यस्मृति का पर्याप्त प्रभाव है।

याज्ञवल्क्य समृति (1.3 पृष्ठ 1235) में वेद, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, वेदाङ्गों इत्यादि का उल्लेख हुआ है। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता व दण्डनीति की चर्चा हुई है। (1.311 पृष्ठ 1263)। सूर्य से प्राप्त अपने ग्रन्थ आरण्यक एवं स्वप्रोक्त योगशास्त्र की चर्चा भी याज्ञवल्क्य (3.110 पृ. 1314) ने की है, वेदों, पुराणों, उपनिषदों, अन्य विद्याओं, श्लोकों, सूत्रों एवं भाष्यों की भी ज्ञान के हेतु के रूप में

याज्ञवल्क्य ने चर्चा की है। स्मृति के प्रारम्भ में याज्ञवल्क्य (1.4-5 पृ. 1235) ने 19 धर्मशास्त्रकारों के नाम लिये हैं।

याज्ञवल्क्य के टीकाकार विश्वरूप नवीं शताब्दी में हुए थे तथा विश्वरूप की टीका से ज्ञात होता है कि विश्वरूप से पहले भी इसके कई टीकाकार थे अतः याज्ञवल्क्य 9 वीं शताब्दी से पहले हुए । डॉ. काणे के अनुसार- ''बहुत से सूत्रों के आधार पर याज्ञवल्क्यस्मृति को हम ई.पू. पहली शताब्दी तथा ईसा के बाद तीसरी शताब्दी के बीच कहीं रख सकते हैं।''[119]

याज्ञवल्क्यस्मृति में याज्ञवल्क्य (1.122 पृ. 1246) ने दान को सभी मनुष्यों के लिये आवश्यक कर्तव्यों में माना है। प्रथम अध्याय में ''दानप्रकरवर्णनम्'' के अन्तर्गत दान के पात्र, देय वस्तुएँ, दान-पुरस्कार, गोदान, अन्यवस्तुदान, ज्ञान-दान की श्रेष्ठता आदि का प्रतिपादन किया गया है। 1.304-306 (पृ. 1263) में ग्रह शान्ति के लिये दान, (1.178-179 पृ. 1288) ''दत्ताप्रदानिकप्रकरवर्णनम्'' में दान की प्रमाणहीनता आदि का विवेचन किया गया है।

याज्ञवल्क्यस्मृति पर कई टीकाएँ हैं, जिनमें विश्वरूप, विज्ञानेश्वर, अपरार्क एवं शूलपाणि प्रसिद्ध हैं। स्मृति सन्दर्भ के चतुर्थभाग में एक ''ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता'' भी प्रकाशित है, इसमें श्राद्ध, प्रायश्चित्त, अशौच आदि अन्य विषयों के साथ दान-विधि का भी वर्णन किया गया है।

पराशर :

पराशर ऋषि के नाम से प्रसिद्ध पराशर स्मृति का प्रकाशन कई बार हुआ है। इस स्मृति पर माधवाचार्य की प्रसिद्ध टीका है। जीवानन्द तथा बम्बई संस्कृत ग्रन्थमाला के संस्करण अधिक प्रसिद्ध हैं। माधवाचार्य की टीका सहित एक संस्करण दो खण्डों में सन् 1974 में एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता से भी प्रकाशित हुआ है। पराशरस्मृति प्राचीन स्मृति है, क्योंकि याज्ञवल्क्य ने पराशर को प्राचीन धर्मप्रवक्ताओं में गिना है, किन्तु वर्तमान प्रति को देखने से लगता है कि यह प्राचीन प्रति का संशोधन है। वर्तमान पराशरस्मृति में 12 अध्याय हैं।

पराशरस्मृति की भूमिका में आया है कि ऋषियों ने व्यास के पास जाकर, कलियुग में मानवों के लिये धर्माचरण का ज्ञान प्रदान करने का निवेदन किया। व्यास उन्हें

वदरिकाश्रम में अपने पिता शक्तिपुत्र पराशर के पास ले गये। पराशर ने उन्हें वर्णधर्म के विषय में बताया।[120] पराशर स्मृति में 19 धर्मशास्त्रकारों के नाम आये हैं।[121]

पराशरस्मृति में मनु, बौधायन, उशना, प्रजापति, वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र, स्मृति आदि की स्थान-स्थान पर चर्चा की गई है। विश्वरूप मिताक्षरा अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रि आदि ने पराशर को अधिकतर उद्धृत किया है। डॉ. काणे के अनुसार ''यह प्रथम शताब्दी तथा पांचवी शताब्दी के मध्य में कभी लिखी गई होगी।'' [122]

पराशरस्मृति में दान धर्म का किसी एक स्थान पर विवेचन न होकर प्रकरणानुसार कई स्थानों पर विभिन्न दृष्टियों से विवेचन किया गया है। इन स्थलों का विवरण निम्न प्रकार से है - सेवादान की निष्फलता, (1.28-29) विवाह इत्यादि यज्ञों में पूर्व संकल्पित द्रव्य में सूतक दोष न होना (3.34), विशेष परिस्थितियों में रात्रि में भी दान (12.22-23), गोचर्म की परिभाषा एवं गोचर्म दान की महत्ता (12.43-45) गोदान की महत्ता (12.66) इत्यादि।

पराशर नाम से एक बृहत्पराशरसंहिता भी है। इस संहिता को मिताक्षरा, विश्वरूप अथवा अपरार्क ने उद्धृत नहीं किया, अतः यह एक अपेक्षाकृत अर्वाचीन रचना है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में इसे ::सुव्रतप्रोक्तबृहत्पराशरधर्मसंहिता'' कहा गया है। इससे भी यह पराशर स्मृति का संशोधित रूप प्रतीत होती है। इस स्मृति में दान व उत्सर्ग का विस्तार से विवेचन किया गया है। इस स्मृति में 12 अध्याय एवं 3300 श्लोक हैं। अध्याय 6 में प्रतिग्रह (दान) वर्णन, अध्याय 10 में सर्वदानविधिवर्णन, हयगजदानविधिवर्णन, भूमिदान वर्णन, दानविधिवर्णन, विद्यादानवर्णन, तिथिदान-विधि-वर्णन, दानत्याज्यकालवर्णन, दानार्थगौलक्षणवर्णन, दानग्राह्यपुरुष-लक्षणवर्णन, मासपक्षतिथिविशेष से दानमहत्त्ववर्णन, कूपतडागादिकीर्त्तिमहत्त्ववर्णन आदि विषयों का विस्तृत व बोधगम्य विवेचन किया गया है। अध्याय 11 में गृहशान्ति हेतु दान एवं तडागादि प्रतिष्ठा का विधान बताया गया है। एक वृद्धपराशरस्मृति का भी उल्लेख मिलता है, इससे अपरार्क ने उद्धरण लिया है। एक ज्योतिपराशर है, जिससे हेमाद्रि ने उद्धरण लिये हैं।

बृहस्पति :

बृहस्पति को बृहस्पति स्मृति का प्रणेता माना गया है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में बृहस्पति के नाम से उपलब्ध प्रचुर उद्धरणों से ज्ञात होता है कि बृहस्पतिस्मृति में धर्मशास्त्र के सभी विषयों का समावेश था, किन्तु उपलब्ध बृहस्पतिस्मृति में 81 पद्य

हैं । इसमें ''दान'' का विस्तार से विवेचन प्राप्त होता है। यह स्मृति स्मृतिसन्दर्भ, तृतीय भाग (पृ. 1610 से 1617) में प्रकाशित है। अभी तक बृहस्पति स्मृति सम्पूर्ण रूप से नहीं मिल सकी है।

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में वृद्धबृहस्पति,ज्योतिर्बृहस्पति इत्यादि नाम भी आये हैं। बल्लालसेन कृत दानसागर, कृत्यकल्पतरु के दानकाण्ड इत्यादि में दानबृहस्पति के नाम से भी उद्धरण उपलब्ध होते हैं, जिनमें से कतिपय, उपलब्ध बृहस्पतिस्मृति में भी प्राप्त नहीं होते, अतः बृहस्पति का कोई अन्य ग्रन्थ भी रहा होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

डॉ. काणे के अनुसार ''बृहस्पति को 200 एवं 400 ईस्वी के बीच कहीं रखा जा सकता है।''[123]

कात्यायन :

शंख, लिखित, याज्ञवल्क्य एवं पराशर ने कात्यायन को धर्मवक्ताओं में गिना है।, शुक्ल यजुर्वेद का कात्यायन श्रौतसूत्र सुप्रसिद्ध है । निबन्ध ग्रन्थों में मनु, याज्ञवल्क्य एवं बृहस्पति तथा अन्य स्मृतिकारों के साथ कात्यायन को भी प्रमाण रूप से उद्धृत किया गया है। व्यवहार विधि के क्षेत्र में नारद, बृहस्पति एवं कात्यायन को आप्त माना जाता है। कात्यायन को यह महत्ता कई शताब्दियों में ही प्राप्त हो सकी होगी, अतः डॉ. काणे ने कात्यायन का समय चौथी तथा छठी शताब्दी के मध्य में कहीं माना है।[124] इस समय विभिन्न संग्रहों में जो कात्यायनस्मृति प्राप्त होती है, उसमें ''दान'' अथवा ''उत्सर्ग'' विषय का स्पर्श भी नहीं किया गया है, किन्तु बल्लालसेन ने दानसागर में लगभग 23 स्थानों पर कात्यायन को उद्धृत किया है। कृत्यकल्पतरू के दानकाण्ड, भगवन्तभास्कर के दानमयूख एवं चतुर्वर्गचिन्तामणि के दान खण्ड में भी कात्यायन को उद्धृत किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि धर्मशास्त्र के सभी विषयों पर कात्यायन का चिन्तन था, जो अब अधिकांशतः उद्धरण रूप में ही प्राप्त होता है।

अङ्गिरा :

याज्ञवल्क्य ने अङ्गिरा को धर्मशास्त्रकार माना है। विश्वरूप से लेकर आगे तक के सभी धर्मशास्त्रविदों द्वारा अङ्गिरा से उद्धरण लिये गये हैं। अपरार्क, मेधातिथि, हरदत्त आदि भाष्यकारों तथा अन्य लेखकों ने धर्मसंबंधी विवेचन में अङ्गिरा की अत्यधिक चर्चा की है। जीवानन्द के संग्रह में उपलब्ध अङ्गिरास्मृति में 72 श्लोक हैं।

आनन्दाश्रम मुद्रणालय के "स्मृतीनां समुच्चयः" में उपलब्ध "अंगिरः स्मृति" में 168 पद्य (पृष्ठ 1-8)हैं। "स्मृतिसन्दर्भ" के भाग प्रथम में प्रकाशित "अंगिरास्मृति" में प्रायश्चित्त विधान पर चर्चा की गई है। इस स्मृति में 73 पद्य हैं। प्रसंगतः कहा गया है कि नीला वस्त्र पहनकर अन्नदान करने से दान का फल नहीं मिलता तथा भोक्ता को पाप लगता है। स्मृतिसन्दर्भ के ही पंचम भाग में पूर्वाङ्गिरसम् व उत्तराङ्गिरसम् नाम से दो अंगिरास्मृतियाँ प्रकाशित हैं, किन्तु इनमें "दान" विषय पर विचार नहीं किया गया है।

अंगिरा ने "दान" पर भी अपने विचार व्यक्त किये थे, यह विभिन्न निबन्ध ग्रन्थों में उद्धृत अंगिरावचनों से ज्ञात होता है। दानसागर ने पृष्ठ 45 पर दो बार व पृष्ठ 69 पर एक बार अंगिरा को उद्धृत किया है। कृत्यकल्पतरू के दानकाण्ड में भी अंगिरा को दो बार उद्धृत किया गया है।

दक्ष :

याज्ञवल्क्य ने दक्ष का धर्मशास्त्रकार के रूप में उल्लेख किया है। विश्वरूप, मिताक्षरा तथा अपरार्क ने दक्ष से उद्धरण लिये हैं। जीवानन्द के संग्रह में जो दक्षस्मृति है, उसमें 7 अध्याय हैं। इसी प्रकार आनन्दाश्रम के स्मृतीनां समुच्चयः तथा स्मृतिसन्दर्भ, प्रथम भाग में प्रकाशित दक्षस्मृति में 7 अध्याय हैं। दक्षस्मृति में वेद, वेदांग तथा इतिहास पुराण का उल्लेख है। धर्मशास्त्र के कतिपय अन्य विषयों के विवेचन के साथ इसमें दान प्रशंसा (2 .32-35), दान के पात्र-अपात्र (3.15-16), अदेय वस्तुएं (3.17-18), न्यायोपार्जित धन से दान (3.24) एवं दान-फल (3.26-32) का वर्णन किया गया है। व्यवहार पर लिखने वालों ने भी दक्ष के मत को प्रामाणिक रूप से उद्धृत किया है।

पुलस्त्य :

मनु ने मनुस्मृति (1.35) में स्वयम्भुब्रह्मा से उत्पन्न 10 प्रजापतियों में पुलस्त्य की भी गणना की है। अपरार्क ने पुलस्त्य से अनेक उद्धरण लिये हैं। स्मृतिचन्द्रिका ने आह्निक एवं श्राद्ध पर पुलस्त्य का उल्लेख किया है।[125] दान सागर ने कृष्णाजिनदानविधि पर पुलस्त्य को उद्धृत किया है ।[126] स्मृतिसन्दर्भ चतुर्थ भाग में एक पुलस्त्यस्मृति है, जिसमें 28 पद्य हैं। इसमें संक्षेप में वर्णाश्रमधर्मवर्णन प्रस्तुत किया गया है, किन्तु दान

का केवल नामोल्लेख मात्र है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई अन्य विस्तृत पुलस्त्यस्मृति भी थी, जो अब उपलब्ध नहीं होती।

यम :

वसिष्ठधर्मसूत्र (18.13-15 एवं 19.48) ने यम को धर्मशास्त्रकार मानकर उनकी स्मृति से उद्धरण लिया है । याज्ञवल्क्य ने यम को धर्मप्रवक्ता कहा है। जीवानन्द के संग्रह में एक यम स्मृति है, जिसमें 78 श्लोक हैं। इसमें प्रायश्चित्त एवं शुद्धि का विवेचन किया गया है। आनन्दाश्रम से प्रकाशित स्मृतीनां समुच्चयः में एक बृहद्यमस्मृति (पृ. 99-107) व एक यमस्मृति (पृ. 112-116) हैं। स्मृतिसन्दर्भ के चतुर्थ भाग में एक यमस्मृति (पृ. 2083-2090), एक लघुयमस्मृति (पृ. 2091-2100) व एक बृहद्यमस्मृति (पु. 2101 - 2118) हैं । यमस्मृति में दान के अपात्र, लघुयमस्मृति में इष्टापूर्त व बृहद्यमस्मृति में दान के अपात्र व सत्पात्र का वर्णन किया गया है। उद्धरणों से प्रतीत होता है कि इसके अतिरिक्त भी यम का धर्मशास्त्रीय वाङ्मय कभी उपलब्ध था। कृत्यकल्पतरू के दानकाण्ड में ही लगभग 35 उद्धरण समाविष्ट हैं, इसी प्रकार दानसागर में भी यम के नाम से 53 उद्धरण दिये गये हैं।

व्यास :

जीवानन्द और आनन्दाश्रम के संग्रहों में प्राप्त ''वेदव्यासस्मृति'' चार अध्यायों में है। इसमें 250 श्लोक हैं। विश्वरूप ने व्यास के जिन श्लोकों की चर्चा की है, वे महाभारत में पाये जाते हैं। इसी प्रकार मेधातिथि ने भी व्यास के कुछ श्लोकों को उद्धृत किया है, जो महाभारत के अंश हैं। डॉ. काणे ने व्यासस्मृति की रचना ईसा के बाद दूसरी एवं पांचवी शताब्दी में कभी हुई, ऐसा माना है।[127] स्वभावतः एक प्रश्न उठता है कि क्या महाभारतकार व्यास एवं धर्मशास्त्रकार व्यास एक ही है ? महाभारत में उपलब्ध विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्भवतः दोनों एक ही हैं। बल्लालसेन ने अपने दानसागर में व्यास, लघु व्यास एवं दान व्यास के नाम लिये हैं। हो सकता है दान व्यास का तात्पर्य महाभारत के दानधर्म अंश से हो।

स्मृतिसन्दर्भ के तृतीय भाग में एक लघुव्यासस्मृति एवं एक वेदव्याससंहिता का प्रकाशन हुआ है । लघुव्यासस्मृति में दान विषय का प्रतिपादन नहीं किया गया है।

वेदव्यासस्मृति में 4 अध्याय हैं, जिनमें धर्मशास्त्र के अन्य विषयों के साथ दान-धर्म, सत्पात्र, ब्राह्मण-प्रशंसा इत्यादि विषयों का भी निरूपण किया गया है।

संवर्त :

याज्ञवल्क्य द्वारा प्रस्तुत की गई सूची में संवर्त का नाम भी धर्मशास्त्रकार के रूप में सम्मिलित है। विश्वरूप, मिताक्षरा, हरदत्त, अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका आदि ने सम्वर्त के धर्मसंबंधी विचारों को प्रस्तुत किया है । जीवानन्द और आनन्दाश्रम के स्मृतिसंग्रहों में सम्वर्त के क्रमशः 227 एवं 230 श्लोक हैं। स्मृति सन्दर्भ भाग प्रथम में भी सम्वर्त स्मृति का प्रकाशन हुआ है। इसमें ब्रह्मचर्य, अशौच एवं प्रायश्चित्त के साथ (पद्य संख्या 45 से 62 व 62-95) विविध दान एवं दानफल के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

हारीत :

हारीत नाम से दो स्मृतियाँ उपलब्ध होती हैं - लघु-हारीत-स्मृति एवं वृद्ध-हारीत-स्मृति । आनन्दाश्रम के ''स्मृतीनांसमुच्चयः'' एवं नाग पब्लिशर्स, दिल्ली के स्मृतिसन्दर्भ (द्वितीय भाग) में लघु-हारीत-स्मृति एवं वृद्ध-हारीत-स्मृति मिलती हैं। वृद्ध-हारीत-स्मृति पूर्णतया वैष्णव धर्म का विवेचन करती है और इस प्रकार यह सम्प्रदाय विशेष से संबंधित है। दोनों ही स्मृति संग्रहों में इस स्मृति की विषय-वस्तु एवं कलेवर समान है, किन्तु लघुहारीतस्मृति के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। आनन्दाश्रम से प्रकाशित लघुहारीतस्मृति में प्रायश्चित्त, उभयमुखीदान का फल, विवाहित कन्या का गोत्र परिवर्तन, दायाद निरूपण, श्राद्ध, अशौच, राहुदर्शन पर दानादि का विधान इत्यादि का विवेचन है, तो स्मृतिसन्दर्भ की लघुहारीतस्मृति का विवेच्य वर्णाश्रमधर्म, चारों वर्णों का धर्म, चारों आश्रमों का धर्म, योग वर्णन इत्यादि है। प्रसंगवश 1.23 में कहा गया है कि, जो धर्मशास्त्र न जाने उसको दान नहीं देना चाहिये व 4.74 में कहा गया है कि, गृहस्थ को चाहिये कि वह हिरण्य, गौ एवं पृथिवी का दान करे।

अरुण :

अरुणस्मृति आदित्य और अरुण के सम्वाद के रूप में निबद्ध है। स्मृति सन्दर्भ चतुर्थ भाग (पृष्ठ 2119 से 2133) में प्रस्तुत इस स्मृति में 148 पद्य हैं। अन्त में ''इति श्री अरुणस्मृतीये धर्मशास्त्रे अरुणसूर्यसम्वादे प्रतिग्रहप्रायश्चित्तनिर्णयो नाम

प्रथमोऽध्यायः'' कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि यह स्मृति अपूर्ण है। डॉ. काणे ने भी अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में इस स्मृति का कोई उल्लेख नहीं किया है।

इस स्मृति में प्रतिग्रहप्रायश्चित्त का वर्णन किया गया है। इस स्मृति के रचनाकार ने अपना नाम गुप्त रख इसे सूर्य प्रोक्त प्रतिपादित किया है। भाषा एवं शैली के आधार पर यह स्मृति अर्वाचीन प्रतीत होती है।

कपिल :

स्मृतिसन्दर्भ भाग पंचम में कपिलस्मृति, कपिल-शौनक सम्वाद के रूप में प्रस्तुत है। यह स्मृति जैन व बौद्ध धर्म के प्रवर्तन के पश्चात् प्रकाश में आई होगी, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि इसका प्रारम्भ ही वेदनिन्दकों की निन्दा से होता है। वैदिक कर्मों के अभाव, वेद मन्त्रों का उच्चारण करने में दोष इत्यादि का इसमें उल्लेख किया गया है, अतः यह स्मृति अर्वाचीन है। इस स्मृति में दान-विषय का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया गया है । दस प्रकार के दान,दान के अधिकारी, भूमिदान, ब्राह्मण का महत्त्व, विविध प्रकार के दान इत्यादि विषयों का इसमें विस्तार से विवेचन किया गया है । श्राद्ध, उपनयन, दत्तक, दण्डविधान प्रायश्चित्त आदि विषय भी समाविष्ट हैं। इस स्मृति में कुल 999 पद्य हैं। ये पद्य अध्यायों में विभक्त नहीं हैं। सांस्कृतिक व ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्मृति महत्त्वपूर्ण है।

मार्कण्डेय :

स्मृतिसन्दर्भ षष्ठ भाग (पृष्ठ 1-222) में मार्कण्डेय स्मृति संकलित है। इस स्मृति में अन्य ग्रन्थों के उद्धरण प्रभूत मात्रा में प्राप्त होते है। कभी -कभी मूल ग्रन्थ की अपेक्षा यह संकलन ग्रन्थ अधिक प्रतीत होने लगती है। इसमें दान-प्रकरण का अत्यन्त विस्तार से विवचेन किया गया है । दानप्रशंसा, देयद्रव्य, दान के अपात्र, अनेक प्रकार के दान और उनके फल, दान-पात्र आदि सभी विषयों का विस्तृत कथन इस स्मृति में होने के कारण यह स्मृति अत्यन्त उपादेय है। शैली व विषय वस्तु के आधार पर यह स्मृति अधिक प्राचीन प्रतीत नहीं होती।

भाष्यकार एवं निबन्धकार

धर्मशास्त्रीय वाङ्मय को लगभग तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - धर्मसूत्र, स्मृति ग्रन्थ तथा भाष्य एवं निबन्ध ग्रंथ। भाष्य एवं निबन्ध ग्रन्थों को एक ही वर्ग

में इसलिये रखा गया है कि भाष्य एवं निबन्ध में विभाजन रेखा खींचना सरल कार्य नहीं है । अपरार्क, विश्वरूप, मिताक्षरा पराशरमाधवीय, मेधातिथि आदि ऐसे भाष्य ग्रन्थ हैं, जिनका महत्त्व निबन्ध ग्रन्थों से किसी भी प्रकार से कम नहीं है। यहाँ प्रमुख दानविवेचक भाष्यकारों एवं निबन्धकारों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जायेगा।

विश्वरूप :

श्री टी. गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम-संस्कृत-माला में विश्वरूप की बालक्रीड़ा नामक टीका (दो भागों में) सन् 1922 व सन् 1924 में प्रकाशित की । यही टीका सन् 1982 में मुन्शीराम, मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा.लि. दिल्ली से पुनर्मुद्रित हुई है। विश्वरूप की आचार एवं प्रायश्चित्त संबंधी टीका विस्तृत है, किन्तु व्यवहार के संबंध में यह बात देखने को नहीं मिलती । आचाराध्याय में विश्वरूप ने याज्ञवल्क्य के दानधर्म-संबंधी विचारों का विशदीकरण किया है। मिताक्षरा के भूमिका भाग में विज्ञानेश्वर ने विश्वरूप की प्रशंसा करते हुए लिखा है -

याज्ञवल्क्यमुनिभाषितं मुहुर्विश्वरूपविकटोक्तिविस्तृतम्।
धर्मशास्त्रमृजूर्मिमिताक्षरैर्बालबोधविषये विविच्यते ॥[128]

विश्वरूप की शैली सरल एवं शक्तिशाली है। विश्वरूप ने गृह्यसूत्रकारों, धर्मसूत्रकारों, स्मृतिकारों, वैदिकग्रन्थों, चरक इत्यादि को यथास्थान उद्धृत किया है। बृहस्पति के अधिकांश उद्धरण गद्य में हैं, कतिपय पद्य में भी हैं। इससे प्रतीत होता है कि उनके समक्ष बृहस्पति के दो ग्रन्थ अवश्य थे। इन्होंने उशना, बृहस्पति एवं विशालाक्ष नामक राजनयविदों की चर्चा की है, किन्तु कौटिल्य की चर्चा नहीं की है।

विश्वरूप ने याज्ञवल्क्यस्मृति 3.263 की टीका में असहाय की गौतम धर्मसूत्र वाली टीका की चर्चा की है।[128] विश्वरूप की आस्था पूर्वमीमांसा के प्रति अधिक प्रतीत होती है। जैमिनी का तो उद्धरण भी दिया है - यथाह जैमिनिः ''श्राद्धवदिति चेत् ।''[129] जीमूतवाहन के दाय-भाग एवं व्यवहारमातृका में, स्मृतिचन्द्रिका, सरस्वतीविलास इत्यादि ग्रन्थों में विश्वरूप के मतों की चर्चा हुई है। डॉ. काणे ने विश्वरूप का समय 750 ई. तथा 1000 ई० के बीच माना है।[130] डॉ. काणे ने शंकर के शिष्य सुरेश्वर व विश्वरूप को एक मानते हुए विश्वरूप की स्थिति 800-825 ईस्वी के मध्य निश्चित रूप से मानी है।

मेधातिथि :

मनुस्मृति पर मेधातिथि की विद्वत्तापूर्ण व विस्तृत व्याख्या उपलब्ध होती है। मेधातिथि को मनुस्मृति का सबसे प्राचीन भाष्यकार माना गया है। मेधातिथि के भाष्य से यह स्पष्ट है कि आज़ की ही मनुस्मृति इनके समय में भी थी।

मेधातिथि ने गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब, वसिष्ठ, विष्णु, शंख[1] याज्ञवल्क्य, नारद, पराशर, बृहस्पति, कात्यायन आदि समृतिकारों एवं चाणक्य, उशना, बृहस्पति आदि दण्डनीति एवं राजनीतिकारों एवं असहाय इत्यादि भाष्यकारों का उल्लेख किया है। मेधातिथि ने पुराणों का भी उल्लेख किया है।

मेधातिथि के भाष्य में विधि एवं अर्थवाद जैसे पूर्वमीमांसा के शब्द निरन्तर आते गये हैं। मेधातिथि ने शबर-भाष्य से उद्धरण भी लिये हैं। कुमारिल व उनकी उपाधि भट्टपाद का भी उल्लेख हुआ है।[132]

मेधातिथि ने अनेक बार अपनी कृति स्मृतिविवेक से भी उद्धरण लिये हैं, किन्तु यह कृति अभी उपलब्ध नहीं हो पाई है। डॉ. काणे ने मेधातिथि का समय 820 ईस्वी से 1050 ईस्वी के मध्य कहीं माना है।[133]

विज्ञानेश्वर :

धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में विज्ञानेश्वर के मिताक्षरा नामक ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मिताक्षरा याज्ञवल्क्यस्मृति पर किया गया भाष्य होते हुए भी स्मृति संबंधी निबन्ध का स्वरूप रखता है। इसमें बहुत सी स्मृतियों के उद्धरण हैं। वस्तुतः विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में अपने पूर्व के लगभग दो हजार वर्षों से चले आते हुए मतों के सारतत्व को ग्रहण किया है। आज के भारतीय कानून में मिताक्षरा का अत्यधिक प्रभाव रहा है। व्याकरण में पतंजलि महाभाष्य व साहित्यशास्त्र में मम्मट के काव्यप्रकाश के समान धर्मशास्त्र में यह ग्रन्थ आप्त माना गया है।

मिताक्षरा में छः पूर्ववर्ती भाष्यकारों एवं निबन्धकारों के नामों का उल्लेख हुआ है। ये भाष्यकार हैं - असहाय, मेधातिथि एवं भारुचि,[134] विश्वरूप,[135] धारेश्वर,[136] श्रीकर।[137] लगभग 88 स्मृतिकारों या स्मृतियों के नाम आये हैं। काठक संहिता, बृहदारण्यकोपनिषद्, गर्भोपनिषद्, जाबालोपनिषद्, निरुक्त, नाट्याचार्य भरत, योगसूत्र,

पाणिनि, सुश्रुत, स्कन्दपुराण, विष्णुपुराण, अमरकोष प्रभाकरगुरु आदि की चर्चा हुई है। ग्रन्थ की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि भारद्वाज गोत्र के पद्मनाभ भट्ट के पुत्र व परमहंस उत्तम के शिष्य थे। मिताक्षरा की रचना के समय कल्याण नगरी में विक्रमार्क या विक्रमादित्यदेव का शासन था। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से भी मिताक्षरा का महत्त्व कम नहीं है।

मिताक्षरा के महत्त्व का ज्ञान इससे भी होता है कि मिताक्षरा पर विश्वेश्वर, नन्दपण्डित व बालम्भट्ट ने भाष्य लिखे। मिताक्षरा में विषय प्रतिपादन हेतु पूर्वमीमांसा न्याय का प्रयोग किया गया है। डॉ. काणे ने मिताक्षरा का रचना काल 1070 ईस्वी से 1100 ईस्वी के मध्य माना है।[138]

गोविन्दराज :

गोविन्दराज ने मनु टीका नामक स्वरचित मनु स्मृति भाष्य में लिखा है कि उन्होंने स्मृति-मंजरी नामक़ एक स्वतंत्र पुस्तक भी लिखी है।[139] मनुटीका में उन्हें, गंगा के किनारे रहने वाले नारायण के पुत्र माधव का पुत्र कहा गया है।[140] गोविन्दराज ने पुराणों, गृह्यसूत्रों, योगसूत्र आदि का उल्लेख किया है। कुल्लूक भट्ट ने मन्वर्थमुक्तावलि में मेधातिथि व गोविन्दराज के भाष्यों से अनेक उद्धरण लिये हैं।

लक्ष्मीधर :

लक्ष्मीधर रचित कृत्यकल्पतरु को विद्वानों ने कल्पतरु भी कहा है। यह ग्रन्थ चौदह काण्डों - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, आह्निक, श्राद्ध, दान, प्रतिष्ठा, पूजा, तीर्थ, व्रत, शुद्धि, राजधर्म, व्यवहार, शान्ति एवं मोक्ष में विभक्त है। लक्ष्मीधर राजा गोविन्दचन्द्र के संधिविग्रहिक मंत्री थे, कल्पतरु की भूमिका व पुष्पिका से यह स्पष्ट है। लक्ष्मीधर की कूटनीतिक चालों से ही गोविन्दचन्द्र ने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की । भूमिका में ग्रन्थ की प्रशंसा करते हुए स्वयं लक्ष्मीधर ने इस ग्रन्थ को कल्पवृक्ष, कल्पद्रुम व कल्पतरु नाम दिये हैं। कृत्यकल्पतरु के दानकाण्ड का प्रकाशन, गायकवाड़ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट से सन् 1941 में श्री के.वी. रंगास्वामी आयंगर के सम्पादकत्व में हुआ है। कृत्यकल्पतरु एक विशाल ग्रन्थ है। काशी पर मुस्लिम आक्रमणों के कारण परवर्ती काल में यह ग्रन्थ लुप्त प्रायः हो गया। अन्यथा इस ग्रन्थ ने मिथिला, बंगाल एवं सामान्यतः सम्पूर्ण उत्तर भारत को प्रभावित कर रखा था। इसमें धर्मशास्त्र संबंधी सभी विषयों का

निरूपण किया गया है। लक्ष्मीधर गहड़वार या राठौर राजा गोविन्दचन्द्र के मन्त्री थे, अतः उनका समय 12 वीं शताब्दी ही हो सकता है।

अपरार्क :

अपरादित्य ने याज्ञवल्क्यस्मृति पर एक विस्तृत टीका लिखी है। यह टीका अपरार्क-याज्ञवल्क्य-धर्मशास्त्र निबन्ध के नाम से प्रसिद्ध है। यह आनन्दाश्रम प्रेस पूना से दो खण्डों में प्रकाशित हुई है। ग्रन्थ की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इस टीका के लेखक विद्याधर वंश के जीमूतवाहन कुल में उत्पन्न राजा शिलाहार अपरादित्य हैं।

अपरार्क में गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों, स्मृतियों व पुराणों से बिना किसी रोक-टोक के लम्बे-लम्बे उद्धरण ले लिये गये हैं। इससे इस ग्रन्थ का कलेवर बहुत बढ़ गया है। विभिन्न प्रमाणों के आधार पर डॉ. काणे ने अपरार्क टीका का समय 12 वीं शताब्दी का प्रथमार्ध माना है।[141]

वल्लालसेन :

बंगाल के सेनवंशीय राजा वल्लालसेन धर्मशास्त्र के क्षेत्र में अपने कृतित्व के कारण प्रसिद्ध हैं। इन्होंने दान-धर्म पर दानसागर नामक ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ रायल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता से सन् 1956 में चार भागों में प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादक हैं-भवतोष भट्टाचार्य । इसके भाग प्रथम (पृष्ठ xxi) में वल्लालसेन की चार अन्य कृतियों का उल्लेख किया गया है। ये हैं - प्रतिष्ठासागर, आचारसागर, व्रतसागर एवं अद्भुत सागर। अद्भुत सागर अपूर्ण रह गया था। इनके उपरान्त इनके पुत्र लक्ष्मणसेन ने उसे पूर्ण किया ।

दानसागर में षोडष महादानों एवं छोटे-छोटे दानों का वर्णन है। दानसागर में महाभारत एवं पुराणों को पुनः पुनः उद्धृत किया गया है। वल्लालसेन ने अपना दानसागर सम्वत् 1090 में आरम्भ किया तथा 1091 में पूरा किया।

हरदत्त :

हरदत्त टीकाकार के रूप में विख्यात हैं। इन्होंने आपस्तम्बगृह्यसूत्र पर अनाकुला नामक टीका, आपस्तम्बीयमन्त्रपाठ पर भाष्य, आश्वलायनगृह्यसूत्र पर अनाविलाटीका, गौतमधर्मसूत्र पर मिताक्षरा नामक टीका व आपस्तम्ब धर्मसूत्र पर उज्ज्वला नामक

टीका लिखी है। धर्मसूत्रों के भाष्य में इन्होंने स्मृतियों से उद्धरण लिये हैं, किन्तु निबन्धकारों का उल्लेख नहीं किया है। डॉ. काणे ने इनका सम्भावित समय 1100 से 1300 ईस्वी के मध्य माना है।[142]

हेमाद्रि :

हेमाद्रि का ''चतुर्वर्गचिन्तामणि'' ग्रन्थ दक्षिणी धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ग्रन्थ एक प्रकार से प्राचीन धार्मिक कृत्यों का विश्वकोष कहा जा सकता है। इसमें पांच खण्ड हैं - व्रतखण्ड,दानखण्ड, श्राद्धखण्ड, कालखण्ड एवं परिशेषखण्ड; हेमाद्रि ने विषय का सांगोपांग विवेचन करने का पूर्ण प्रयत्न किया है, अतः यह ग्रन्थ अत्यन्त विशाल हो गया है। विषय प्रतिपादन के लिये स्मृतियों, पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों से भरपूर उद्धरण लिये गये हैं। शैली पूर्व मीमांसापरक है।

चतुर्वर्गचिन्तामणि की भूमिका से ज्ञात होता है कि हेमाद्रि वत्सगोत्र के वासुदेव के पुत्र कामदेव के पुत्र थे। ये देवगिरि के राजा महादेव के मन्त्री थे तथा समस्त राजकीय लेखप्रमाणों के अधिकारी थे। इससे सिद्ध होता है कि हेमाद्रि 1200 से 1260 ईस्वी के लगभग हुए थे।

कुल्लूक भट्ट :

कुल्लूक भट्ट ने मनुस्मृति पर ''मन्वर्थमुक्तावली'' नामक भाष्य ग्रन्थ की रचना की है। मेधातिथि के भाष्य के पश्चात् इस भाष्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुल्लूक का यह भाष्य संक्षिप्त, स्पष्ट एवं उद्देश्यपूर्ण है। इसमें अनावश्यक विस्तार का परिहार किया गया है। इसमें मेधातिथि गोविन्दराज आदि से उद्धरण लिये गये हैं । ग्रन्थ की भूमिका व पुष्पिका से ज्ञात होता है कि कुल्लूक भट्ट बंगाल के वारेन्द्र कुल के नन्दन निवासी भट्ट दिवाकर के पुत्र थे। इन्होंने पण्डितों की संगति में काशी में अपना भाष्य लिखा। डॉ. काणे ने कुल्लूक का समय 1150 से 1300 ईस्वी के मध्य कहीं माना है।[143]

चण्डेश्वर :

चण्डेश्वर ने स्मृतिरत्नाकर या रत्नाकर नामक एक विस्तृत धर्मशास्त्रीय निबन्ध लिखा है। इसमें कृत्य, दान, व्यवहार, शुद्धि, पूजा, विवाद एवं गृहस्थ नामक सात

अध्याय हैं। कृत्यरत्नाकर में 22 तरंग, गृहस्थरत्नाकर में 68 तरंग, दान रत्नाकर में 29 तरंग, विवाद रत्नाकर में 100 तरंग एवं शुद्धिरत्नाकर में 34 तरंग हैं।

चण्डेश्वर मिथिला के धर्मशास्त्रीय निबन्धकारों में श्रेष्ठ माने गये हैं। इन्होंने स्मृतिरत्नाकर के अतिरिक्त, कृत्यचिन्तामणि, राजनीतिरत्नाकर (16 तरंग), दानवाक्यावलि एवं शिववाक्यावलि नामक ग्रन्थ भी लिखे हैं।

माधवाचार्य :

धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में माधवाचार्य का नाम अत्यन्त आदरपूर्वक लिया जाता है। इनका व्यक्तित्व प्रकाण्ड विद्वान् व दूरदर्शी राजनीतिज्ञ का था। ये विजयनगर राज्य के प्रारम्भिक दिनों में मंत्री रहे । इनके दो ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं- पराशरस्मृति एवं कालनिर्णय पर टीका। प्रथम टीका पराशरमाधवीय के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रकाशन कई बार हो चुका है। यह केवल भाष्य ही नहीं है, अपितु आचार संबंधी एक निबन्ध भी है। इसमें पुराणों व स्मृतिकारों के अतिरिक्त प्रसिद्ध निबन्धकारों के नाम भी आये हैं। श्री जतीन्द्र विमल चौधरी ने कालमाधवलक्ष्मी नामक एक ग्रन्थ का 1941 में कलकत्ता से प्रकाशन किया है। इन्होंने कालनिर्णय पर माधवाचार्य की टीका, कालमाधव पर लक्ष्मी देवी पायगुण्डे द्वारा टीका किया जाना माना है , किन्तु ग्रन्थ की पुष्पिका व भूमिका से इसका खण्डन हो जाता है। वस्तुतः कालमाधव की टीका लक्ष्मी देवी के पति वैद्यनाथ पायगुण्डे ने की है।

माधवाचार्य की कृतियों से ज्ञात होता है कि वे यजुर्वेद के बौधायन चरण वाले भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण थे। इनके माता और पिता का नाम क्रमशः श्रीमती एवं मायण था। प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायण इनके भाई थे । दूसरे भाई का नाम भोगनाथ था। माधवाचार्य राजा बुक्कण के कुलगुरु एवं मन्त्री थे ।[144] डॉ. काणे ने इनके साहित्यिक कार्य का समय 1330 से 1385 ईस्वी के मध्य माना है।[145]

मदनरत्न :

मदनरत्न अथवा मदनरत्नप्रदीप महाराजाधिराज श्री शक्तिसिंह के पुत्र महाराजाधिराज श्री मदनसिंह विरचित कहा गया है। यथा- इति श्री कोदण्डपरशुरामेत्यादि

विविधबिरुदावलीविराजमानोन्नतमहाराजाधिराजश्रीशक्तिसिंहात्मज महाराजाधिराज श्रीमदनसिंह विरचिते मदनरत्नप्रदीपे दानविवेकोद्योतो ग्रन्थः समाप्तः।'' [146]

मदनरत्नप्रदीप एक विशाल ग्रन्थ है। इसमें सात उद्योत हैं - समय, आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त[1] दान, शुद्धि एवं शान्ति। दान विवेकोद्योत तीन भागों में उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद से सन् 1967 में प्रकाशित हो चुका है।

मदनरत्नप्रदीप में मिताक्षरा, कल्पतरु एवं हेमाद्रि के नाम उल्लिखित हैं, अतः 1300 ईस्वी के बाद इसका प्रणयन हुआ होगा। 16 वीं व 17वीं शताब्दी में नारायण भट्ट, कमलाकर भट्ट, नीलकण्ठ एवं मित्रमिश्र ने इसका उल्लेख किया है, अतः इसकी रचना सन् 1305 से 1500 ईस्वी के मध्य हुई होगी।

वाचस्पति मिश्र :

वाचस्पति मिश्र के दान संबंधी ग्रन्थों में महादाननिर्णय एवं दानार्णव का नाम आता है। इसके अतिरिक्त वाचस्पति मिश्र ने अनेक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना भी की है। वाचस्पति मिश्र महाराजाधिराज हरिनारायण के पारिषद् (परामर्शदाता) कहे गये हैं। मिथिला में वाचस्पति मिश्र का अत्यधिक प्रभाव है। इनका समय 15 वीं शताब्दी के मध्य माना गया है। [147]

नृसिंह प्रसाद :

नृसिंहप्रसाद को भी धर्मशास्त्रसंबंधी विश्वकोष कहा जा सकता है। यह बारह सारों में विभाजित है। यथा-संस्कार, आह्निक, श्राद्ध, काल, व्यवहार, प्रायश्चित्त, कर्मविपाक, व्रत, दान, शान्ति, वीर्य एवं प्रतिष्ठा इसमें प्रत्येक सार (विभाग) के अन्त में नृसिंहावतार विष्णु की अभ्यर्थना की गई है। सम्भवतः यही कारण है कि इसका नाम नृसिंहप्रसाद रखा गया ।

संस्कारसार में लेखक ने स्वयं को याज्ञवल्क्य शाखा के भारद्वाज गोत्र वाले वल्लभ का पुत्र दलपति कहा है। विद्वानों ने इसका रचना काल 1508 से 1533 ईस्वी के मध्य माना है। ये दलपति महाराज देवगिरी (दौलताबाद) के शासक निजामशाह के प्रधानमन्त्री व सचिवालय के अध्यक्ष (समस्तकरणाधीश्वर) थे। महाराज दलपति की उपाधि थी। नृसिंह प्रसाद विभिन्न खण्डों में विद्याविलास प्रेस, बनारस से महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के सम्पादकत्व में सन् 1934 में प्रकाशित हुआ है।

गोविन्दानन्द :

दानक्रियाकौमुदी की भूमिका से ज्ञात होता है कि गोविन्दानन्द गणपति भट्ट के पुत्र थे एवं पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इनकी उपाधि कविकंकणाचार्य थी। डॉ. काणे ने इन्हें बंगाल के मिदनापुर जिले के बाग्री नामक स्थान का निवासी वैष्णव माना है।[148] इन्होंने क्रियाकौमुदी नामक विशाल ग्रन्थ की रचना की, जिसमें दानकौमुदी, शुद्धिकौमुदी, श्राद्धकौमुदी एवं वर्षक्रियाकौमुदी अधिक प्रसिद्ध हैं । विषयविवेचन व धर्मशास्त्र के इतिहास की दृष्टि से इनका ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है। विद्वानों ने गोविन्दानन्द की कृतियों का समय 1500 से 1540 ईस्वी माना है।[149] इनकी दानक्रियाकौमुदी का प्रकाशन एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता से पण्डित कमल कृष्ण स्मृतिभूषण के सम्पादकत्व में सन् 1903 में हुआ है।

टोडरमल :

अकबर बादशाह के वित्तमन्त्री राजा टोडरमल ने एक विशाल ग्रन्थ की रचना की है, जिसका नाम है टोडरानन्द। इस ग्रन्थ में धर्मशास्त्र के विभिन्न विषयों का विवेचन किया गया है। प्रत्येक भाग को सौख्य नाम दिया गया है। यथा आचारसौख्य, दानसौख्य, व्यवहारसौख्य, विवेकसौख्य, प्रायश्चित्तसौख्य, समयसौख्य आदि। टोडरमल एक महान् विद्वान् ग्रन्थकार, कुशल सेनापति, मंत्री एवं राजनीतिज्ञ थे। वे जाति के खत्री थे। उनका जन्म अवध इलाके के लहरपुर में हुआ था एवं मृत्यु सन् 1589 में लाहौर में हुई।

नन्दपण्डित :

धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में विष्णुस्मृति अथवा विष्णुधर्मसूत्र पर लिखी गई केशववैजयन्ती नामक टीका अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका प्रकाशन पण्डित वी. कृष्णमाचार्य के सम्पादकत्व में अड्यार लाइब्रेरी एवं रिसर्च सेन्टर से सन् 1964 में दो भागों में हुआ है। इस पुस्तक के प्रथम भाग के भूमिका भाग (पृष्ठ xxiv) में नन्द पण्डित के 20 ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। स्वयं नन्द पण्डित ने केशववैजयन्ती में अपने छः ग्रन्थों का उल्लेख किया है। वे हैं- दत्तकमीमांसा (पृष्ठ 270 पर), प्रमिताक्षरा मिताक्षरा व्याख्या (पृष्ठ 257, 274, 376 पर),पराशरस्मृतिव्याख्या (विद्वन्मनोहरा, पृष्ठ 270 पर), शडशीतिव्याख्या (शुद्धिचन्द्रिका पृष्ठ 356 पर), स्मृतिसिन्धु (पृष्ठ 634, 670, 678, 679, 710 व 842 पर) व श्राद्धकल्पलता (पृष्ठ 350 व 774 पर) ।

नन्दपण्डित ने अपना केशववैजयन्ती भाष्य अपने आश्रयदाता केशवनायक के आग्रह पर लिखा था। केशववैजयन्ती की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि ये केशवनायक के धर्माधिकारी थे। नन्दपण्डित दक्षिणी थे। उनके पूर्व पुरुष दक्षिण से ही बनारस आये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि नन्दपण्डित बहुत से आश्रयदाताओं के यहाँ आते जाते रहते थे, क्योंकि उनकी विभिन्न कृतियों में भिन्न-भिन्न आश्रयदाताओं के नाम लिखे गये हैं। पं. कृष्णमाचार्य (भूमिका पृष्ठ xxiii) ने इनका कृतित्व काल 1580 ईस्वी से 1630 ईस्वी के मध्य माना है । नन्दपण्डित की दत्तकमीमांसा भी आधुनिक युंग में मान्य ग्रन्थ रहा है।

कमलाकर भट्ट :

कमलाकर भट्ट, नारायण भट्ट के पौत्र और रामकृष्ण भट्ट के पुत्र थे। दानतत्व का विवेचन करते हुए इन्होंने दानकमलाकर नामक ग्रन्थ लिखा है। कमलाकर भट्ट ने तर्क, न्याय, व्याकरण, मीमांसा, वेदान्त, साहित्यशास्त्र, वैदिक-यज्ञों इत्यादि पर कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। धर्मशास्त्र के क्षेत्र में शूद्रकमलाकर, विवादताण्डव व निर्णयसिन्धु उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। कमलाकर भट्ट ने लगभग 100 स्मृतियों तथा 300 से अधिक निबन्धकारों का उल्लेख किया है, यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। निर्णय सिन्धु में भी संक्रान्ति कृत्य एवं दान के अन्तर्गत दान का विवेचन प्राप्त होता है। कमलाकर भट्ट के साहित्य का रचनाकाल 1610 ई. से 1640 ईस्वी तक माना जा सकता है।

नीलकण्ठ भट्ट :

भगवन्तभास्कर नामक ग्रन्थ की पुष्पिकाओं से ज्ञात होता है कि नीलकण्ठ भट्ट, नारायण भट्ट के पौत्र एवं शंकर भट्ट के पुत्र थे। शंकर भट्ट स्वयं मीमांसा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। नीलकण्ठ ने यमुना और चम्बल के संगम पर भरेह नामक स्थान के सेमरवंशी बुन्देल सरदार भगवन्तदेव के आदेश से भगवन्तभास्कर नामक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ लिखा। यह ग्रंथ 12 मयूखों-संस्कार, आचार, काल, श्राद्ध, व्यवहार, दान, उत्सर्ग, प्रतिष्ठा, प्रायश्चित्त, शुद्धि एवं शान्ति में विभक्त है। धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में इस ग्रन्थ का महत्त्व बहुत अधिक है। डॉ. काणे ने भगवन्त भास्कर का रचना काल 1610 से 1645 ईस्वी के मध्य माना है।[150] भगवन्तभास्कर चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, चौक बनारस से सन् 1986 में पुनर्मुद्रित व प्रकाशित हुआ है।

मित्रमिश्र :

मित्रमिश्र ने धर्मशास्त्र के लगभग सभी विषयों पर एक विशाल निबन्ध ग्रन्थ की रचना की है, जो वीरमित्रोदय के नाम से प्रसिद्ध है । मित्रमिश्र ने वीरमित्रोदय नामक याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका भी लिखी है। मित्रमिश्र ने वीरमित्रोदय की रचना, अपने आश्रयदाता राजा वीरसिंह की आज्ञा से की । वीरसिंह एक वीर राजपूत थे। वीरसिंह ने ओरछा में सन् 1605 से 1627 तक राज्य किया था, अतः मित्रमिश्र का रचनाकाल 17 वीं शताब्दी का प्रथम चरण माना जा सकता है।

वीरमित्रोदय की विषय-वस्तु प्रकाशों में विभक्त है। यथा- परिभाषाप्रकाश, संस्कारप्रकाश, आह्निकप्रकाश, पूजाप्रकाश, प्रतिष्ठाप्रकाश, राजधर्मप्रकार्श व्यवहारप्रकाश, शुद्धिप्रकाश, श्राद्धप्रकाश, तीर्थप्रकाश, दानप्रकाश, व्रतप्रकाश, समयप्रकाश, ज्योतिःप्रकाश, शान्तिप्रकाश, कर्मविपाकप्रकाश, चिकित्साप्रकाश प्रायश्चित्तप्रकाश, प्रकीर्णप्रकाश, लक्षणप्रकाश, भक्तिप्रकाश, एवं मोक्षप्रकाश। उपर्युक्त विवरण से हम वीरमित्रोदय के आकार एवं उपयोगिता का अनुमान लगा सकते हैं। मित्रमिश्र ने अपने सभी ग्रन्थों में सैकड़ों ग्रन्थकारों एवं ग्रन्थों के मतों का उल्लेख किया है। वीरमित्रोदय की भूमिका से ज्ञात होता है कि मित्रमिश्र हंसपण्डित के पौत्र एवं परशुराम पण्डित के पुत्र थे। हंसपण्डित गोपाचल (ग्वालियर) के निवासी थे।

वीरमित्रोदय के परिभाषा, संस्कार, आह्निक, पूजा, लक्षण, राजनीति, तीर्थ, व्यवहार, श्राद्ध, समय, शुद्धि एवं भक्ति प्रकाश का प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी से हुआ है।

अनन्तदेव :

अनन्तदेव स्मृतिकौस्तुभ नामक निबन्ध के रचयिता हैं। स्मृतिकौस्तुभ में संस्कार, आचार, राजधर्म, दान, उत्सर्ग, प्रतिष्ठा, तिथि एवं संवत्सर नामक सात प्रकरण हैं प्रत्येक प्रकरण दीधितियों या किरणों में विभक्त है।

अनन्तदेव ने अपने आश्रयदाता के वंश का वर्णन किया है। बाजबहादुर उनके आश्रयदाता थे। अनन्तदेव महाराष्ट्र के संत एकनाथ के पुत्र आपदेव के पुत्र थे ।[151] अतः अनन्तदेव सम्भवतः 17वीं शताब्दी के तृतीय चरण में हुए थे।

बालम्भट्टी :

बालम्भट्टी विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा पर एक भाष्य है । इसके रचनाकार के नाम के संबंध में अनेक विप्रतिपत्तियाँ हैं। इस भाष्य को लक्ष्मी पायगुण्डे, उसके पति वैद्यनाथ पायगुण्डे व बाल भट्ट में से किसने लिखा, इस विषय में विद्वानों का मतैक्य नहीं है।

उपर्युक्त भाष्यकारों एवं निबन्धकारों के अतिरिक्त कतिपय ऐसे भाष्यकार एवं निबन्धकार भी हैं, जिनके कृतित्व का केवल नामोल्लेख मिलता है। प्राप्त उल्लेखों के आधार पर यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि उन्होंने दान-धर्म पर कितना लिखा या नहीं लिखा था। ऐसे विद्वानों में हम प्रमुख रूप से असहाय, भारुचि, प्रकाश, पारिजात इत्यादि की गणना कर सकते हैं।

प्रस्तुत प्रकरण में हमने "दान और उत्सर्ग" विषय के संक्षिप्त इतिहास, महत्त्व एवं उपयोगिता पर दृष्टिपात करते हुए धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में प्रमुख दानविवेचक, धर्मसूत्रकारों, स्मृतिकारों तथा भाष्यकारों एवं निबन्धकारों का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उपर्युक्त वर्णित ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थ ऐसे भी होंगे, जो या तो काल के गर्त में समा गये अथवा कहीं किसी भण्डार अथवा पोथीखाने में विस्मृत पड़े हुए हैं। सम्भव है कभी ऐसे विस्मृत ग्रन्थों का उद्धार होकर धर्मशास्त्र के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ सके। वस्तुतः आज धर्मशास्त्रीय वाङ्मय के पुनरावलोकन व तदनुसार ग्रन्थों के अन्वेषण की महती आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वैशेषिक सूत्र 2/षड्दर्शनम् (पृ.-53)/सम्पादक "स्वामी जगदीश्वरानंद सरस्वती, प्रकाशक- गोविन्दराम हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, 4408 नई सड़क, दिल्ली।
2. ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र संख्या-1, ग्रन्थ एकादशोपनिषदः, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली-6.
3. ऋग्वेद - 10/117/6.
4. स्मृति सन्दर्भ, भाग 2, पृ.- 734, प्रकाशक- नाग प्रकाशन, 11 ए, यू.ए., दिल्ली ।
5. स्मृति सन्दर्भ, भाग 3, पृ. - 1409, प्रकाशक- नाग प्रकाशन, दिल्ली।
6. ऋग्वेद संहिता (सम्पूर्ण),पृ.-96, सम्पादक-श्रीपाद दामोदर सातवलेकर। प्रकाशक स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट, पारड़ी, जिला बलसाड़।

7. वही, पृ. - 96.

8. वही, पृ. - 322.

9. वही, पृ. - 96.

10. ऋग्वेद संहिता (सम्पूर्ण)/ पृ.-322/सम्पादक- श्रीपाद दामोदर सातवलेकर। प्रकाशक स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट, पारड़ी, जिला बलसाड़।

11. वही, पृ. - 370.

12. वही, पृ. - 370.

13. वही, पृ. - 370.

14. वही, पृ. - 405.

15. ऋग्वेद 8/5/37, पृ. - 470.

16. ऋग्वेद 8/6/46, पृ. - 472.

17. ऋग्वेद 8/46/24, पृ. - 514.

18. ऋग्वेद 8/68/15, पृ. - 533.

19. ऋग्वेद 8/68/16, पृ. - 533.

20. ऋग्वेद 8/68/16, पृ. - 533.

21. ऋग्वेद 10/62/8,एवं 11, पृ. - 678 .

22. ऋग्वेद 10/62/8,एवं 11, पृ. - 724.

23. ऋग्वेद 10/62/8,एवं 11, पृ. - 732.

24. तैत्तिरीय संहिता (सम्पूर्ण), पृ. -82, प्रकाशक - रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत (हरियाणा,) सम्वत् - 2039.

25. वही, पृ. - 71.

26. काठक संहिता/ पृष्ठ सं. - 113-114 /सम्पादक-श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, प्रकाशक- स्वाध्याय मण्डल, ट्रस्ट, पारड़ी (जि.- बलसाड़)

27. तैत्तिरीय ब्राह्मणम् (द्वितीयाष्टकम्),भाग-2,पृ.-61-62, प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पुनर्मुद्रित सन् 1985.

28. ऐतरेयब्राह्मण, पृष्ठ सं. - 793, भाग-2, प्रकाशक-आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, ग्रन्थांक-32, पुनर्मुद्रित सन् 1977.

29. वही,

30. शतपथ ब्राह्मण ,भाग 1 ,पृ.-384,प्रकाशक-गंगाविष्णु श्री कृष्णदास लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस कल्याण, बम्बई , सन् 1940.

31. ''एतत्खलु वाव तप इत्याहुर्यस्स्वं ददातीति'' । तैत्तिरीय संहिता (सम्पूर्ण)/पृ.-254/ प्रकाशक-रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा।

32. ''ओउम् जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस'' ,सह सर्वत आवसथान् मापयाञ्चक्रे सर्वत एव मेऽस्यन्तीति ।।'' छान्दोग्योपनिषद् 4/1/1/ ''एकादशोपनिषदः'',पृ.- 311, प्रकाश-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

33. तं हाभ्युवाद-रैक्व इदं सहस्रं गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथ। इयं जायाऽयं ग्रामो यस्मिंन्नाससे अन्वेव मा भगवः शाधीति ।। छान्दोग्योपनिषद् 4/2/4/पृ.- 314/ग्रन्थ व प्रकाशक-उपर्युक्त ही।

34. ''तदेतदेवैषा देवी वागनुवदति स्तनयित्नुर्ददद इति दाम्यत, दत्त, दयध्वमिति तदेतत्त्रयं शिक्षेद् दमं दानं दयामिति।'' बृहदारण्यकोपनिषद् 5/1/3/पृ.- 622/ग्रन्थ व प्रकाशक-उपर्युक्त ही।

35. ऐतरेय ब्राह्मणम् 39/6/पृ.-793/भाग-2/आनन्दाश्रम प्रेस पूना, ग्रन्थाङ्क -32

36. पृ. संख्या 27,ग्रन्थ व प्रकाशक-उपर्युक्त ही।

37. ऐतरेय ब्राह्मणम् 39/6, पृ.-28,ग्रन्थ व प्रकाशक-आनन्दाश्रम प्रेस, पूना/ ग्रन्थांङ्क 32.

38. ऋग्वेद संहिता पृ. - 628.

39. ऋग्वेद संहिता पृ. - 724.

40. दानसागर में उद्धृत यम,पृ.- 13 ,प्रथम भाग, रायल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता (1956) .

41. मत्स्यपुराण 274/1.

42. मनुस्मृति 1,86,स्मृति सन्दर्भ, भागप्रथम , पृ.-9, नाग पब्लिशर्स दिल्ली।

43. वसिष्ठ स्मृति,29/1,स्मृति सन्दर्भ, भाग तृतीय, पृ.-1541 /प्रकाशक-वही।

44. व्यास स्मृति,4,17,स्मृति सन्दर्भ, भाग तृतीय, पृ. - 1649, नाग पब्लिशर्स दिल्ली।

45. व्यास स्मृति 4,21,स्मृति सन्दर्भ, भाग तृतीय, पृ.- 1650.

46. चतुर्वर्ग चिन्तामणि (हेमाद्रि) ,दान खण्ड, पृ.-8,पर उद्धृत , प्रकाशक-चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

47. व्यास स्मृति, 4,23,स्मृति सन्दर्भ, भाग तृतीय, पृ. - 1650.

48. सम्वर्त स्मृति पद्य 45,46,47,स्मृतिसन्दर्भ, भाग-प्रथम,पृ. -55.

49. बृहत्पाराशरस्मृति, 10/2 (स्मृतिसन्दर्भ) भाग-द्वितीय,पृ.-866.

50. मनुस्मृति, 4/227,स्मृति सन्दर्भ, भाग-प्रथम,पृ.-81.

51. चतुर्वर्गचिन्तामणि, दानखण्ड, पृ.-7.

52. अत्रिसंहिता- 43-44/स्मृति सन्दर्भ-भाग प्रथम,पृ. -356.

53. चतुर्वर्गचिन्तामणि,दानखण्ड,पृ.-12.

54. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग प्रथम, पृष्ठ 13, लेखक-महामहोपाध्याय पी.वी. काणे, प्रकाशक- उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ ।

55. कठोपनिषद् 2.4.15 व 2.5.6, पृष्ठ संख्या क्रमशः 61 व 64, एकादशोपनिषदः, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली ।

56. छान्दोग्योपनिषद् 4.4.3, पृष्ठ 318, एकादशोपनिषदः, प्रकाशक वही,

57. पराशरस्मृति, टीकाकार- माधवाचार्य, भाग प्रथम, पृष्ठ 643 पंक्ति 17-19, पृष्ठ 665, पंक्ति 17, 676, पंक्ति 19, पृष्ठ 771 पंक्ति 01, प्रकाशक-एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता ।

58. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग प्रथम, पृष्ठ 10, लेखक पी.वी. काणे,

59. गौतमधर्मसूत्राणि, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।-/1 1.5. पृष्ठ

60. गौतमधर्मसूत्राणि, 1.5.17 पृ. - 51.

61. गौतमधर्मसूत्राणि, 1.5.18 पृ. - 51.

62. गौतमधर्मसूत्राणि, 1.5.19 पृ. - 51.

63. गौतमधर्मसूत्राणि, 1.5.20 पृ. - 52.

64. गौतमधर्मसूत्राणि, 1.5.21 पृ. - 52.

65. गौतमधर्मसूत्राणि, पृष्ठ 179 से 181

66. गौतमधर्मसूत्राणि, पृष्ठ 205

67. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग प्रथम, पृष्ठ 16-17, लेखक पी.वी. काणे।

68. बौधायनधर्मसूत्रम् - 2.5.14, पृष्ठ- 243, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी- 1.

69. वही, 1.2.69 पृष्ठ - 70 एवं 2.2.17 पृष्ठ 201.

70. गौतमधर्मसूत्राणि, 3.3.7 (त्रीणि प्रथमान्यनिर्देश्यान्मनुः) महापातकविवेचन में।

71. उदीच्यवृत्तिस्त्वासनगतानां हस्तेषूदपात्रानयनम्। आपस्तम्बधर्मसूत्रम् 2.7.17.17, पृष्ठ 255, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस सम्वत्, 1989.

72. तस्याः शरावत्या उदक्तीरवर्तिनः उदीच्याः, आपस्तम्बधर्मसूत्रम् 2.7.17. 17 पर हरदत्त की टीका/ पृष्ठ 255.

73. उत्तरयोः पूर्वा साल्वानां ब्राह्मणानामितरा/ आपस्तम्ब गृह्यसूत्रम् 6.14.5,पृष्ठ 223, प्रकाशक-चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी।

उपर्युक्त सूत्र 6.14.5 पर हरदत्त की टीका-उत्तरयोः ऋचो या पूर्वा यौगन्धरिरित्येषा। सा साल्वानां सीमन्तकर्मणि गाथा साल्वेदेशनिवासिनां अस्यामृचि गानं कर्तव्यमित्यर्थः । स देशो यमुनातीरे भवति वैश्याश्च तत्र भूयिष्ठं भवन्ति। तेषामेव राजा यौगन्धरिः।

74. स्मृति सन्दर्भ, भाग-3, पृष्ठ - 1235.

75. मीमांसा शाबर भाष्यम्, प्रथमो भागः व्याख्याकार युधिष्ठिर मीमांसक, प्रकाशक - रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत , हरियाणा, पृष्ठ -5 वेदमधीत्य स्नास्यन् (आपस्तम्बगृह्यसूत्रम् 5.11.11)

76. आपस्तम्बधर्मसूत्रम् 2/4/8, पृष्ठ 269, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

77. वही 2/4/10, पृष्ठ 212.

78. आपस्तम्बधर्मसूत्रम् 2/4/11, पृष्ठ 212 प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी।

79. वही, 2/5/12 पृष्ठ 214.

80. वही, 2/13/10, पृष्ठ 231.

81. वही, 2/25/9, पृष्ठ 284.

82. वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्धिनीम्, अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते, मनुस्मृति 8/140, स्मृति सन्दर्भ, प्रथमभाग, पृ. 143.

83. वसिष्ठधर्मशास्त्रम् 6/36, स्मृतिसन्दर्भ, तृतीय भाग, पृ. 1487.

84. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे, प्रथम भाग, पृ.- 23.

85. आनन्दाश्रम ग्रन्थावलिः ग्रन्थांक 48, प्रकाशन वर्ष सन् 1929

86. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे, प्रथम भाग, पृ.- 25.

87. धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पी.वी. काणे, पृ.- 20.

88. वही, पृष्ठ 25, पादटिप्पणी 71.

89. श्राद्धचिन्तामणि, भाग 3, पृष्ठ 559.

90. महाभारतम्, पृष्ठ 32-33, प्रकाशक- सतगुरु पब्लिकेशन्स, शक्तिनगर, दिल्ली।

91. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/4-5, स्मृति सन्दर्भ तृतीय भाग।

92. पाराशरस्मृति 1/24, स्मृति सन्दर्भ भाग द्वितीय, पृष्ठ 627 .

93. धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ 27 (पी.वी. काणे)

94. बौधायनधर्मसूत्राणि 3.3.15 (वैखानसानां विहिता दश दीक्षाः (पृ. - 227, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस । एवं

    गौतमधर्मसूत्रम् 1.3.25 (वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशीलः), पृ.-35, प्रकाशक- वही । एवं मनुस्मृति 6/21 (पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा। कालपक्वैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमतेस्थितः।)

95. अनुशासन पर्व 65.4 पृष्ठ 112.

96. स्मृति सन्दर्भ 3.16-23 पृष्ठ 341.

97. वही - 6.2-5 पृष्ठ 351.

98. वही 40-46 पद्य, पृष्ठ 356.

99. वही 323-356 पद्य, पृ. 381-384.

100. याज्ञवल्क्यस्मृति (अपरार्क टीका) प्रथम भाग, ग्रन्थांक 46, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् 1903.

101. दानसागर- वल्लालसेन, पृ. 34 एवं पृ. 67.

     प्रकाशक- रायल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, 1956.

102. धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग (पी. वी. काणे), पृष्ठ -4.

103. मनुस्मृति 2.10.

104. ऋग्वेद 8.30.3 (मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः)।

105. ऋग्वेद 10.63.7.

106. तैत्तिरीयसंहिता 2.2.10.2 (यद्वै किं च मनुरवदत्तद् भेषजम्) एवं ताण्डयमहाब्राह्मण 23.16.17 (मनुर्वै यत्किंचिदवाचत्तद् भेषजं भेषजतायै)।

107. शतपथ ब्राह्मण 1/8/1.

108. निरुक्त अध्याय 3, पाद 1, खण्ड-4.

109. चतुर्वर्ग चिन्तामणि, दान खण्ड, पृष्ठ 528 एवं भगवन्तभास्कर-संस्कार मयूख, पृष्ठ-2, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

110. मनुस्मृति 11.33.

111. मनुस्मृति 3.232.

112. स्मृति सन्दर्भ प्रथम भाग, पृष्ठ 4.

113. वही, पृष्ठ 210.

114. वही, पृष्ठ 210.

115. वही, पृष्ठ 210.

116. वही, पृष्ठ 210.

117. वही, पृष्ठ 36.

118. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ- 46.

119. द्रष्टव्य- स्मृतिसन्दर्भ, प्रथम भाग ।

120. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ 55.

121. पाराशरस्मृति 1.2-18, स्मृति सन्दर्भ, द्वितीय भाग, पृ. 625-627.

122. पाराशरस्मृति 1.13.15, पृ.- 625.

123. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृ. 55.

124. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ- 57.

125. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ- 59.

126. स्मृति चन्द्रिका, खण्ड 3, पृष्ठ 12, प्रकाशक - नाग प्रकाशन 11 ए /यू.ए. जवाहरनगर, दिल्ली, 110007.

127. दानसागर, खण्ड 1, पृ.- 296, प्रकाशक-रायल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता।

128. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ- 63.

129. याज्ञवल्क्यस्मृति- वीरमित्रोदयमिताक्षरासहिता, पृष्ठ -5 .

प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी सम्वत् 1987.

130. याज्ञवल्क्यस्मृति बालक्रीड़ा टीका, भाग-2, पृष्ठ 157.

131. वही, पृष्ठ - 148, संस्करण - त्रिवेन्द्रम संस्कृतमाला।

132. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ - 67.

133. मनुस्मृति (9 टीकायुक्त), वोल्यूम-1, पृष्ठ 195 (उक्तं च भट्टपादैः) प्रकाशक- भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1972 ।

134. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ - 70.

135. याज्ञवल्क्यस्मृति (वीरमित्रोदय मिताक्षरासहिता) 2.14 पर टीका, पृष्ठ- 590, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, विद्या विलास प्रेस बनारस सिटी, सम्वत् 1987.

136. वही 1.1 पर टीका, पृष्ठ 5.

137. वही 2.135 पर टीका, पृष्ठ -611.

138. वही, 2.169 पर टीका, पृष्ठ 648.

139. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ - 73.

140. 3.247-248 पर टीका, मनुस्मृतिः (9 टीका युक्त), पृष्ठ 246 ''स्मृतिमंजर्यां ऋजुपंजिकायां विस्तरतो निरूप्यते''

141. वही, पृष्ठ- 250.

142. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ - 80.

143. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ - 83.

144. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ - 84.

145. पाराशर स्मृति, माधवाचार्य टीक़ा, वोल्यूम 1, पृष्ठ 2-3.
प्रकाशक- एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, सन् 1974.

146. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ - 86.

147. दानविवेकोद्योतः, तृतीय भाग, पृष्ठ 380.

148. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ - 89.

149. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ - 90.

150. वही।

151. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ - 95.

152. स्मृतिकौस्तुभ, तिथिदीधिति, पृष्ठ-2.
प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास सन्, 1985.

****

प्रथम अध्याय

दान शब्द की व्युत्पत्ति :

''दान शब्द दानार्थक ''दा'' धातु, अवखण्डनार्थक दो धातु एवं शोधनार्थक ''दैप्'' धातु से ''भाव'' अर्थ में ''ल्युट्'' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न होता है। तदनुसार इस शब्द के ''देना'', ''खण्डन करना'' व ''शोधन करना'' - ये तीन अर्थ संदर्भानुसार हो सकते हैं। साहित्य में ''दान'' अथवा ''दानवारि'' का अर्थ ''गजमदजल है।[1]'' व्यवहार में ''दान'' शब्द देने के अर्थ में ही अधिक प्रचलित है। देने के अर्थ में प्रचलित होने पर भी ''दान'' शब्द सभी प्रकार के देयत्व को परिभाषित नहीं करता। धर्मशास्त्र के क्षेत्र में ''दान'' प्रत्येक गृहस्थ का एक आवश्यक कर्तव्य एवं एक पारिभाषिक शब्द है।

दान की परिभाषा- विभिन्न शास्त्रकारों के मत

वाचस्पत्यम् में ''दान'' शब्द की परिभाषा देते हुए कहा गया है- स्वस्वत्वत्यागानुकूलव्यापारभेदे स्वत्वाभिरुन्धानापूर्वकस्वत्वत्यागे दानपदार्थनिरूपणम्।[1] इस परिभाषा का मुख्य तत्व है - अपने अधिकार की निवृत्ति, किन्तु केवल स्वत्व की निवृत्ति से ही दान की क्रिया सम्पूर्ण नहीं होती, यदि ऐसा होता तो अपने स्वामित्व को त्यागते ही, वस्तु को स्वामित्वहीन छोड़ देने से ही दान सम्पन्न हो जाता। दान क्रिया की पूर्णता के लियें स्वत्व की निवृत्ति के साथ परस्वत्व की उत्पत्ति होना भी आवश्यक है। अतः भगवन्तभास्कर के दान मयूख में नीलकण्ठ ने कहा है- परस्वत्वोत्पत्यन्तो द्रव्यत्यागो दानम्।''[2] अर्थात् परस्वत्व की उत्पत्ति होने में जिसकी परिणति हो, इस प्रकार से द्रव्य का त्याग ही दान है।

वस्तुतः दान की ये दोनों ही परिभाषाएं अपने आप में पूर्ण प्रतीत नहीं होती। प्रथम परिभाषा में स्वत्व की निवृत्ति पर अधिक बल दिया गया है और द्वितीय परिभाषा में परस्वत्व की उत्पत्ति पर विशेष बल दिया गया है। ''शबर'' ने मीमांसाभाष्य में दान का

जो लक्षण दिया है, उसमें इन दोनों परिभाषाओं का समाहार प्रतीत होता है। यथा- ''अथ ददाति किंलक्षणक इति। आत्मनः स्वत्वव्यावृत्तिः परस्य स्वत्वेन सम्बन्धः।''[3] अथवा ''ननु दानमित्युच्यते स्वत्वनिवृत्तिः परस्वत्वापादनं च।''[4] यह स्वत्व की निवृत्ति और परस्वत्व की उत्पत्ति अनेक प्रकार से हो सकती है, जैसे वस्तु के क्रय-विक्रय द्वारा अथवा वस्तु-विनियम के द्वारा, किन्तु इस प्रकार की स्वत्वनिवृत्ति व परस्वत्व की उत्पत्ति को कोई भी दान की श्रेणी में नहीं रखेगा, क्योंकि उपर्युक्त अवस्था में प्रतिग्रहीता के प्रति श्रद्धा का अभाव होता है और केवल व्यापार बुद्धि का साम्राज्य होता है। स्वत्वनिवृत्ति व परस्वत्वोत्पत्ति का एक रूप उपहार प्रदान करना भी है। सामाजिक मर्यादाओं के पालन, दाता की प्रसन्नता, भय व आधुनिक परिवेश पर ध्यान दें तो, चाटुकारिता स्वरूप भी उपहार दिया जा सकता है, किन्तु इसमें कहीं भी लोककल्याण की भावना अथवा शास्त्रकारों की भाषा में कहें तो अदृष्टबुद्धि कार्य नहीं करती है। उपहार प्रदान करते समय जाति, गुण इत्यादि का भी ध्यान नहीं रखा जाता है। उपहार देने में शास्त्रकथित प्रतिग्रह व्यापार भी नहीं होता, जैसा कि मेधातिथि ने कहा है - ''न च प्रीत्यादिना दानग्रहणे। न च तत्र प्रतिग्रहव्यवहारः।''[5] अतः उपहार प्रदान करना दान की श्रेणी में परिगणित नहीं किया जा सकता।

प्रश्न उठता है कि क्या भिक्षा प्रदान करना दान की कोटि में आ सकता है अथवा करुणायुक्त होकर दयापूर्वक कुछ दिया जाये तो क्या वह दान माना जा सकता है ? मेधातिथि ने स्पष्ट रूप से इसका निषेध करते हएु कहा है - ''ननु भैक्षग्रहणमपि प्रतिग्रह एव । नैव ग्रहणमात्रं प्रतिग्रहः । विशिष्ट एव स्वीकारे प्रतिपूर्वो गृह्णाति वर्तते। तेन न स्वीकारमात्रे। अदृष्टबुद्ध्या दीयमानं मन्त्रपूर्वं गृह्णतः प्रतिग्रहो भवति। न च भैक्ष्ये ''देवस्य त्वादि'' मन्त्रोच्चारणमस्ति। .....प्रतिग्राह्यस्यैव करुणया च प्रदीयमानं ग्रह्णतो न प्रतिग्रहः । ननु च करुणया दानमदृष्टायैव''। नेति ब्रूमः । न च तत्र दानधर्मः किं तर्हि? करुणाभ्यासात्परोपकाराद्वा। तत्र यथा हितोपदेशादावनुग्राह्यस्य विधिर्जात्यादि नापेक्षते तद्वत्करुणया दाने। तथा च शिष्टा नैवंविधे दाने वेदतत्वार्थविदुषे ब्राह्मणायेत्येतदनुरुध्यन्ते अत एव ब्राह्मणा अपि दैन्यमापन्नाः परेण दत्तं गृह्णाना न ब्राह्मणवृत्तिं प्रतिग्रहमाश्रिता भवन्ति।''[6]

परस्वत्व की उत्पत्ति उस स्थिति में भी हो सकती है, जब कोई बलपूर्वक अथवा छल से किसी की वस्तु का अपहरण कर ले और उस वस्तु का स्वामी दुर्बलता अथवा

भयवश उस वस्तु का त्याग करने में ही अपना कल्याण समझे, किन्तु इस प्रकार की स्वत्वनिवृत्ति परस्वत्व की उत्पत्ति निन्दित कार्य है। ''परस्वं नाददीत्'' कह कर शास्त्रों ने इस प्रकार के कार्य का निषेध किया है। अपहरण करने पर अपहर्ता दण्ड का भागी भी हो सकता है तथा अपहृत वस्तु उससे छिन जाने का भय भी रहता है, अतः परस्वत्व की उत्पत्ति एवं स्वत्व की निवृति मात्र से ''दान क्रिया'' सम्पन्न नहीं होती । यदि कोई व्यक्ति किसी के पास कोई धरोहर रखे व जिसके पास धरोहर रखी गई है, वह उस धरोहर का स्वामी माना जाये तो यह भी उचित नहीं है, क्योंकि धरोहर तो अन्ततोगत्वा वस्तु के मूल स्वामी के पास जाने वाली है। इस स्थिति में स्वत्व की निवृत्ति व परस्वत्व की उत्पत्ति होती भी नहीं है।

मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने दान की परिभाषा देते हुए कहा है -''स्वस्वत्वनिवृत्ति परस्वत्वापादनं च दानम्। परस्वत्वापादनं यदा परो स्वीकरोति तदा सम्पद्यते नान्यथा।'' [7]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दान क्रिया की सम्पन्नता के लिये स्वत्व की निवृत्ति होनी चाहिये, पर-स्वत्व की उत्पत्ति होनी चाहिये, दाता की अदृष्ट-बुद्धि होनी चाहिये। मन्त्रपूर्वक अथवा शास्त्रोक्त विधि से द्रव्य दिया जाये तभी वह दान है, अन्यथा नहीं । शास्त्रोक्त पात्र को ही दिया गया द्रव्य दान है, अन्यथा वह दान नहीं है। दानमयूख में उद्धृत विष्णुपुराण में कहा गया है -

मनसा पात्रमुद्दिश्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्।
दाता तत्फलमाप्नोति प्रतिग्राही न दोषभाक् ।।[8]

उपर्युक्त विधि से अन्य देश में स्थित सम्भावित प्रतिग्रहीता को देय द्रव्य भेजा गया, किन्तु वह द्रव्य मार्ग में ही खो गया अथवा चोरों द्वारा अपहरण कर लिया गया। ऐसी स्थिति में दाता ने तो शास्त्रोक्त विधि से द्रव्य का त्याग कर दिया, किन्तु परस्वत्व का आपादन नहीं हो सका, अतः यहाँ दान-क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकी, न ही दाता फल का अधिकारी हो सका।

दानक्रियाकौमुदी में दान की परिभाषा देते हुए कहा गया है - एतेन शास्त्रोक्तसम्प्रदान स्वीकारसम्पादकः शास्त्रोक्तप्रकारको द्रव्यत्यागो दानमिति वैधदानलक्षणमायातम् ।''[9] इस परिभाषा में ''दान'' के लिये आवश्यक तत्वों का समावेश तो हो गया, किन्तु दानक्रियाकौमुदीकार को स्वयं इसमें न्यूनता दिखाई दी।

विद्यादान में गुरु - शिष्य को विद्या देता है। गुरु विद्या दान करता है तो यह आवश्यक है कि गुरु शिष्य को दक्षिणा भी दे, क्योंकि दान सदा दक्षिणायुक्त होना चाहिये ।[10] विद्या दान के विषय में तो विपरीत स्थिति है, वहाँ शिष्य गुरु को दक्षिणा प्रदान करता है। अभयदान में भी न तो जल का प्रोक्षण होता है और न ही दक्षिणा दी जाती है। इसी प्रकार देवोद्देश्यक द्रव्य त्याग में देयगत स्वीकार का अभाव होता है। अतः कौमुदीकार ने पुनः दान सामान्य का लक्षण देते हुए लिखा है - ''उद्देश्यगत स्वामित्वजनकस्त्यागो दानम्।''[11] इस प्रकार पुनः स्वत्वनिवृत्ति व परस्वत्वोत्पत्ति पर ही दान का लक्षण आकर ठहर गया।

देवल के द्वारा दी गई दान की परिभाषा को प्रायः सभी निबन्धकारों ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है -

अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं व्याख्यानं तस्य वक्ष्यते ॥[12]

इस परिभाषा में ''दान'' के लिये जिन तत्वों की गणना की गई है, वे हैं - दाता, देय द्रव्य (अर्थ), उदित पात्र, श्रद्धा एवं दान की स्वीकारोक्ति । ''दानमयूखकार ने इसको ''सात्विकदान'' की ही परिभाषा कहा है, ''दान-सामान्य'' की नहीं । यथा- ''वक्ष्यमाणसात्विकदानोक्त्यर्थं न दानसामान्यपरम्।''[13]

देवल ने दानकर्त्तव्य के लिये छः अंग आवश्यक बताये हैं । ये छः अंग हैं - दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा धर्मयुक्तदेय, उचित देश एवं उचित काल । यथा -

दाता प्रतिग्रहीता च श्रद्धा देयं च धर्मयुक् ।
देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानि षड् विदुः ॥[14]

चतुर्वर्गचिन्तामणि में उद्धृत भविष्यपुराण में दान के पाँच अंग बताये गये हैं, किन्तु वस्तुतः वे छः अंग ही हैं-

प्रतिग्रहीता द्रव्यंच कालो देशश्च पावनः ।
श्रद्धा च सात्विकी ज्ञेयं दानानामङ्गपंचकं॥[15]

उपर्युक्त उद्धरण में दाता का परिगणन नहीं किया गया है, किन्तु दाता के अभाव में दानकर्म की कल्पना ही नहीं की जा सकती है, अतः दान के छः अंग बताना उचित है।

मनुस्मृति ने इनमें से प्रथम चार अंगों - दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा एवं धर्मयुक्त देय का निर्देश किया है ।[16] दक्ष ने देय द्रव्य, काल, पात्र दाता इत्यादि का उल्लेख करते हुए दान के अंगों की ओर संकेत किया है। यथा-

''दानं च विधिना देयं काले पात्रे गुणान्विते ।'' [17]

कृत्यकल्पतरु में उद्धृत बृहस्पति ने सामान्य रूप से श्वपच इत्यादि को दिये गये दान को भी गुण-युक्त माना है, किन्तु विशिष्ट दान देश एवं काल का ध्यान रखते हुए, उचित पात्र को विधिपूर्वक ही देना चाहिये -

सर्वत्र गुणवद्दानं श्वपाकादिष्वपि स्मृतम्।
देशे काले विधानेन पात्रे दत्तं विशेषतः ॥[18]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत याज्ञवल्क्य ने भी दान के अन्य अंगों के साथ ''उपाय'' अर्थात् विधि की ओर सङ्केत किया है -

देश-काल उपायेन द्रव्यं श्रद्धा समन्वितम्।
पात्रे प्रदीयते यत्तत् सकलं धर्मलक्षणम्॥ [19]

हेमाद्रि ने ''उपाय'' का अर्थ '' इतिकर्तव्यता'' से लिया है। यथा- ''उपायः इतिकर्तव्यता।''[20]

दानसामान्यइतिकर्तव्यता

'दान सामान्यइतिकर्तव्यता' का अर्थ है - दान सामान्य विधि। दान की सामान्य विधि के ज्ञान के लिये दान के अङ्गों अर्थात् दाता (अधिकारी), प्रतिग्रहीता (पात्र), श्रद्धा, धर्मयुक्त देय द्रव्य, देश एवं काल के स्वरूप का ज्ञान होना परमावश्यक है।

(1) दाता (अधिकारी) :

नीलकण्ठ ने दानमयूख में दान देने का अधिकार चारों वर्णों और स्त्रियों को भी दिया है। इस विषय में उनका स्पष्ट कथन है - ''तत्रदानाधिकारस्तु चतुर्णामपि वर्णानां स्त्रीणां च।''[21] अपने मत के समर्थन में नीलकण्ठ ने जातूकर्ण्य के मत को उद्धृत किया है - ''अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ।''[22] यही बात अत्रिसंहिता, लिखितस्मृति आदि में भी कही गई है।[23] स्मृतिकारों ने बहिर्वेदी दान को पूर्त एवं अन्तर्वेदी दान को इष्ट कहा है -

बहिर्वेदी च यद्दानं तत्पौर्तिकमुदाहृतम्।
अन्तर्वेद्यां च यद्दानमिष्टमित्यभिधीयते ॥[24]

अपरार्क द्वारा उद्धृत नारद के मत से ''इष्टं'' और ''पूर्त'' का यह भेद और अधिक स्पष्ट हो जाता है -

आतिथ्यं वैश्वदेवंच इष्टमित्यभिधीयते।
पुष्करिण्यस्तथा वाप्यो देवतायतनानि च ॥

अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते।
ग्रहोपरागे यद्दानं सूर्य संक्रमणेषु च॥

द्वादश्यां चैव यद्दानं पूर्तमित्यभिधीयते।

अपरार्क ने इस विषय में कहा है - ''अनेन चाऽऽदिशब्देन यज्ञदक्षिणा-दानाद्दानान्तरं गृह्यते ।''[25]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बहिर्वेदी दान अथवा पूर्त कर्म समाज के सभी लोग कर सकते थे। इस विषय में यह ध्यातव्य है कि अर्थोपार्जन का कार्य गृहस्थाश्रमी ही करता था, अतः दान का अधिकार गृहस्थ को ही था । मार्कण्डेय स्मृति में कहा गया है। - ''एतादृशमहादानक्रियादिषु तु मुख्यतः । गृहस्थ एक एव स्यादधिकारी न चापरः।''[26] कपिलस्मृति ने सभी को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार दान करने का अधिकारी माना है-

सर्वदानानि सर्वैश्च कर्तव्यानि मनीषिभिः।
शक्तौ सत्यां विशेषेण पुण्यकालेषु तेषु वै ॥[27]

धर्म ग्रन्थों में उद्धृत देवल ने दानकर्ता अधिकारी के लिये कतिपय गुणों का होना प्रशस्य बताया है। ये गुण हैं - पाप रोग से रहित होना, धर्मात्मा होना, देने की इच्छा वाला होना, व्यसनों से रहित होना, पवित्र होना व अनिन्दनीय जीविका वाला होना।[28] पाप रोग आठ प्रकार के बताये गये हैं - उन्माद, त्वग्दोष, राजयक्ष्मा, श्वास, मधुमेह, भगन्दर, महोदर व अश्मरी (पथरी)।[29]

दानसागर में उद्धृत भविष्यपुराण में अधिकारी (दाता) की विशेषताएं इस प्रकार बताई गई हैं। -

आचारयुक्तः श्रद्धावान् प्राज्ञो योऽध्यात्मवित्तमः।
कर्मणां फलमाप्नोति न्यायार्जितधनश्च यः ॥[30]

एवं देवीपुराण में इस विषय पर विचार प्रकट करते हुए कहा गया है -

शुचिना भावपूतेन क्षान्तिः सत्य व्रतादिना।
अपि सर्षपमात्रोऽपि दातारं तारयेदिह ॥[31]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत वाराहपुराण में अधिकारी की विशेषताओं का परिगणन करते हुए निम्न विचार प्रस्तुत किये गये हैं -

सुस्नातः सम्यगाचान्तः कृतसन्ध्यादिकक्रियः।
कामक्रोधविहीनश्च पाखण्डस्पर्शवर्जितः ॥
जितेन्द्रियः सत्यवादी पात्रं दाता च शस्यते।[32]

पवित्रता से रहित, अधिकारी के ज्ञान, दान व जप को हारीत ने निष्फल माना है-

ज्ञानं दानं तपस्त्यागोमन्त्रकर्मविधिक्रियाः।
मङ्गलाचारनियमाः शौचभ्रष्टस्य निष्फलाः ॥[33]

(2) श्रद्धा :

महाभारत में अधिकारी में अन्य गुणों के साथ श्रद्धावान् होने की विशेष रूप से अपेक्षा की गई है -

क्रियावान् श्रद्दधानश्च दाता प्राज्ञोऽनसूयकः।
धर्माधर्मविशेषज्ञः सर्वन्तरति दुस्तरम् ॥[34]

मनु ने भी अधिकारी का श्रद्धावान् होना आवश्यक बताया है-

श्रद्धया इष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
श्रद्धाकृते ह्यक्षते ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥[35]

याज्ञवल्क्य ने सदा श्रद्धापूर्वक व शक्तिपूर्वक दिये गये दान को ही उचित माना है-

दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः।
याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतन्तु शक्तितः ॥[35]

देवल ने श्रद्धा का लक्षण निम्न प्रकार से दिया है -

सौमुख्याद्यातिसम्प्रीतिरर्थिनां दर्शने सदा।
सत्कृतिश्चानसूया च तदा श्रद्धेति कीर्त्यते ॥[36]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि दाता जब अन्तः एवं बाह्य पवित्रता से युक्त हो, तभी वह दान करने का अधिकारी माना गया है। इस कार्य के लिये उसका आचारवान्, ज्ञानवान्, श्रद्धावान्, न्यायार्जितधनवाला, सहनशील, सत्यशील एवं देने की इच्छा वाला होना भी आवश्यक माना गया है। ऐसे दाता के द्वारा दिये गये दान को अक्षय फल वाला माना गया है ।

(3) पात्रता :

दाता अथवा अधिकारी के गुणों के विवेचन के साथ ही भारतीय धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में दान ग्रहण करने की पात्रता के लिये भी अनेक शुभ्र गुणों का होना आवश्यक माना गया है। दान दो प्रकार के होते हैं, समन्त्रक व अमन्त्रक । समन्त्रक दान देने के लिये प्रतिग्रहीता की पात्रता व अपात्रता के चिन्तन को विशेष महत्व प्रदान किया गया । हेमाद्रि ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि अपात्र को दिया गया दान कल्याणकारक नहीं होता -

मन्त्रपूर्वं तु यद्दानमपात्राय प्रदीयते ।
दातुर्निकृत्य हस्तं तु श्रोतुर्जिह्वां निकृन्तति ॥[37]

लक्ष्मीधर द्वारा उद्धृत महर्षि यम ने पात्रता के परीक्षण के लिये तीन मानदण्डों का निर्देश किया है -

शीलं संवसनाज्ज्ञेयं शौचं संव्यवहारतः।
प्रज्ञा संकथनात् श्रेया त्रिभिः पात्रं परीक्ष्यते ॥[38]

दानसागर में उद्धृत देवल ने पात्र की विशेषतायें बताते हुए कहा है -

त्रिशुक्ल : कृशवृत्तिश्च कृपालु : सकलेन्द्रियः।
विमुक्तो योनिदोषेभ्यो ब्राह्मणः पात्रमुच्यते ॥[39]

तदनुसार विद्या, कुल एवं चरित्र में निर्मल, दुर्बल आजीविका वाला, सबके प्रति

कृपा-भाव रखने वाला, विकलाङ्गता दोष से रहित, वंश दोष से रहित ब्राह्मण ही पात्र कहलाने योग्य है। याज्ञवल्क्य ने विद्या एवं तप को पात्रता के लिये आवश्यक बताया है-

न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रचक्षते ॥[40]

महर्षि वसिष्ठ ने स्वाध्याय, कुल, धर्म, ज्ञान एवं संयम को पात्रता की कसौटी माना है -

स्वाध्यायाद् यं योनिमन्तं प्रशान्तं,
वैतानस्थं पापभीरुं बहुज्ञम्।
स्त्रीषु क्षान्तं धार्मिकं गोशरण्यं,
व्रतैः क्लान्तं तादृशं पात्रमाहुः ॥[41]

कृत्यकल्पतरु में उद्धृत महर्षि यम भी प्रकारान्तर से पात्रता के लिये उपर्युक्त विशेषताओं का निर्देश करते हुए कहते हैं-

विद्यावन्तश्च ये विप्राः सुव्रताश्च तपस्विनः।
सत्यसंयमसंयुक्ता ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः ॥

पुनन्ति दर्शनं प्राप्ताः किं पुनः संगतिं गताः।
तेषां दत्वा च भुक्त्वा च प्राप्नुयुः परमां गतिम्।।

दत्वा द्विजाय शुद्धाय दाता याति शुभां गतिम्।
विद्या तपः शीलवांश्च स च तारयते नरः॥

तथा-

विद्यायुक्तो धर्मशीलः प्रशान्तः,
क्षान्तो दान्तः सत्यवादी कृतज्ञः।

वृत्तिग्लानो गोहितो गोशरण्यो,
दाता यज्वा ब्राह्मणः पात्रमाहुः ॥[42]

सम्वर्त स्मृति दरिद्र श्रोत्रिय के लिये प्रदान किये गये दान को शुभ कारक मानती है-

श्रोत्रियाय दरिद्राय अर्थिने च विशेषतः।
यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम्।।[43]

चतुर्वर्गचिन्तामणि में उद्धृत भविष्यपुराण में पात्रता के लिये आठ विशेषताओं का परिगणन किया गया है -

क्षान्ति-स्पृहा-दया-सत्यं-दानं-शीलं-तपः- श्रुतम्।
एतदष्टाङ्मुद्दिष्टं परमं पात्रलक्षणम्।।[44]

पात्र और अपात्र की परीक्षा के साथ ही पात्र के दान लेने के प्रयोजन पर भी ध्यान देना आवश्यक है, अन्यथा कुछ लोग निष्प्रयोजन दान लेकर संचय भी करने लगेंगे। इस विषय में गौतम का मत है कि गुरु के लिये, विवाह के लिये, औषध के लिये, वृत्ति की क्षीणता के कारण, अध्ययन के लिये, विश्वजित् यज्ञ करने वाले के लिये बहिर्वेदी दान के रूप में द्रव्य प्रदान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त याचना करने वाले को केवल पक्वान्न प्रदान करना चाहिये।

''गुर्वर्थनिवेशौषधार्थ-वृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोग-वैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागो बहिर्वेदि भिक्षमाणेषु कृतान्नमितरेषु ।''[45]

इस विषय में आपस्तम्ब का कथन है कि भिक्षा का निमित्त यदि, आचार्य, विवाह, यज्ञ माता-पिता का भरण-पोषण हो तो पात्र के गुणों की समीक्षा कर शक्तिपूर्वक दान देना चाहिये। यदि पात्र अपनी इन्द्रियों की संतुष्टि के लिये ही याचना करे तो उसका आदर नहीं करना चाहिये यथा-

भिक्षणे निमित्तमाचार्यो विवाहो यज्ञो मातापित्रोबुभूर्षार्हितश्च नियमविलोपः। तत्र गुणान् समीक्ष्य यथाशक्तिर्देयम्। इन्द्रियप्रीत्यर्थं तु भिक्षणमनिमित्तं न तदाद्रियेत्।''[46]

मनु के अनुसार सन्तान के प्रयोजन से विवाह करने वाले, यज्ञ करने वाले तथा मार्ग व्यय के लिये याचना करने वाले के लिये, सर्वस्वदान करने वाले के लिये, गुरु, माता-पिता तथा स्वाध्याय के प्रयोजन से याचना करने वाले के लिये तथा रोगी ब्राह्मण के लिये उसकी विद्या के स्तर को देखकर दक्षिणायुक्त दान देना चाहिये, इससे भिन्न याचकों को पक्वान्न दान में देना चाहिये-

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सार्ववेदसम्।
गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायर्थ्युपतापिनः।।

नवैतान् स्नातकान् विद्याद् ब्राह्मणान् धर्मभिक्षुकान् ।
निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ।।

एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् ।
इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं तु विधीयते ।।[47]

वृहत्पराशरस्मृति का यह भी कथन है कि पात्रता के निकष पर पूरा उतरने वाला प्रतिग्रहीता भी यदि दान में प्राप्त द्रव्य का असत् कार्यों में उपयोग करे अथवा प्रतिग्रहीत का संचय करे तो उसको कुछ भी नहीं देना चाहिये-

पात्रभूतो हि यो विप्रो प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम् ।
असत्सु विनियुंजीत तस्मै देयं न किंचन ।।

संचयं कुरुते यश्च समादाय इतस्ततः ।
धर्मार्थं नोपयुंजीत न तं तस्करमर्चयेत् ।।[48]

व्यास, वसिष्ठ, बृहस्पति आदि धर्मशास्त्रकारों ने स्पष्ट रूप से यह उद्घोषणा की है कि सन्निहित मूर्ख पात्र की अपेक्षा दूरस्थ ज्ञानवान् पात्र को ही दान देना श्रेयस्कर है-

यश्चैको गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः ।
बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ।।[49]

धर्मशास्त्रकारों ने पात्र के गुणावगुण की न्यूनता व अधिकता के आधार पर भी विचार किया है। मनु ने स्पष्ट रूप से कहा है -

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधधानस्तथैव च ।
अल्पम्वा बहु वा प्रेत्य दानस्य प्राप्यते फलम् ।।[50]

दक्ष भी मनु के उपर्युक्त मत से सहमत हैं-

शतं द्विगुणसाहस्रं अनन्तं च यथाक्रमम् ।
दाने फलविशेषस्याद्विद्यायामेवमेव हि ।।

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
सहस्रगुणमाचार्ये त्वनन्तं वेदपारगे ।।[51]

व्यास ने अब्राह्मण इत्यादि की परिभाषा देते हुए कहा है -

ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मंत्रसंस्कारवर्जितः।
जातिमात्रोपजीवी च भवेदब्राह्मणः स तु ॥

गर्भाधानादिभिर्युक्तस्तथोपनयनेन च ।
नाध्यापयति नाधीते स भवेद् ब्राह्मणब्रुवः ॥ [52]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत महाभारत में आचार्य की परिभाषा देते हुए कहा गया है -

अध्यापयेत्तु यः शिष्यं कृतोपनयनं द्विजः।
सरहस्यं च सकलं वेदं भरतसत्तम् ॥

तमाचार्यं महाबाहो प्रवदन्ति मनीषिणः ।[53]

इस प्रकार भारतीय धर्मशास्त्र में दान के लिये पात्रापात्र के विवेचन को विशेष महत्त्व दिया गया है, किन्तु पात्र और अपात्र के विवेचन की यह आवश्यकता मन्त्रपूर्वक गाय, पृथिवी, स्वर्ण इत्यादि के दान में ही है। अमन्त्रक दान अथवा अन्न और वस्त्र के दान में पात्र के गुणावगुण के विवेचन पर अधिक बल नहीं दिया गया है। अन्न और वस्त्र के दान में तो पात्र की आवश्यकता को जानने पर बल दिया गया है । यह भारतीय ऋषियों की सूक्ष्म दृष्टि का परिणाम है कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के विषय में उनका दृष्टिकोण पूर्णतः मानवतावादी हो जाता है। दानमयूख में उद्धृत महर्षि बृहस्पति ने भी कहा है -

अन्नाच्छादनदानेषु पात्रं नैव विचारयेत्।
अन्नस्य क्षुधितं पात्रं विवस्त्रो वसनस्य च ॥[54]

भगवन्तभास्कर द्वारा उद्धृत विष्णु के अनुसार दान के लिये अन्य पात्रों का परिगणन करते हुये कहा गया है -

मातृष्वसा स्वसा चैव तथैव च पितृष्वसा।
मातामही भागिनेयी भागिनेयस्तथैव च॥

दौहित्रश्चैव जामाता तेषु दत्तमिहाक्षयम्।
श्रीभ्रष्टेषु तथा दत्तं तदप्यक्षयमुच्यते॥

मातापित्रोर्गुरौमित्रे विनीते चोपकारिणि।
दीनानाथ विशिष्टेभ्यो दातव्यं भूतिमिच्छता ।। [55]

अमन्त्रक दान में भी शूद्रादिवर्णक्रमानुसार दान का प्रशस्यत्वाप्रशस्यत्व निर्धारित होता है। यथा दानखण्ड में उद्धृत बृहस्पति-

शूद्रे समगुणं दानं वैश्ये तु तद्द्विगुणं स्मृतम्।
क्षत्रिये त्रिगुणं प्रोक्तं ब्राह्मणे षड्गुणं स्मृतम् ।।[56]

व्यास के अनुसार पिता को दिया गया दान सौ गुना, माता को दिया गया हजार गुना, पुत्री को दिया गया अनन्त व भाई को दिया गया अक्षय होता है -

पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरेव च।
अनन्तं दुहितुर्दानं सोदर्ये दत्तमक्षयम् ।।[57]

दान के विषय में कतिपय पात्र इस प्रकार के हैं, जिनका अतिक्रमण नहीं करना चाहिये । भविष्य पुराण में कहा गया है -

सन्निधानस्थितान्विप्रान् दौहित्रं विट्पतिं तथा।
भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धून्गृहागतान् ।।

नातिक्रमेन्नरस्त्वेतान्सुमूर्खानपि दीयते।
अतिक्रम्य महारौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत् ।।[58]

मूर्खों का भी अतिक्रमण न करने का उपर्युक्त निर्देश केवल अमन्त्रक दान के विषय में है। समन्त्रक दान में तो पात्र की गुणवत्ता पर विचार करना आवश्यक माना गया है । हेमाद्रि द्वारा उद्धृत महाभारत में कहा गया है -

यदि स्यादधिको विप्रो दूरे वृत्तादिभिर्युतः।
तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि सन्निधिम् ।।[59]

मनु ने अयोग्य को दान देना हानिकारक बताया है तथा दान के अपात्रों का विस्तार से विवेचन किया है -

अनर्हते यद्ददाति न ददाति यदर्हते।
अर्हानर्हापरिज्ञानाद् धनाद् धर्माच्च हीयते ।।[60]

न वार्यपि प्रयच्छेत्तु वैडालव्रतिके द्विजे।
न वकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित्॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥[61]

मनु और विष्णु ने वैडालव्रत और वकव्रत को स्पष्ट करते हुए कहा है -

धर्मध्वजी सदा लुब्धः छाद्मिको लोकदाम्भिकः।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः॥

अधोदृष्टिनैकृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकवृत्तिधरो द्विजः ॥[62]

दक्ष ने विधि-विधान से रहित पात्र को दान देना हानिकारक बताया है-

विधिहीने तथा पात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम्।
न केवलं हि तद् विनश्येच्छेषमप्यस्य नश्यति॥[63]

व्यास ने पवित्रता से रहित, व्रत भ्रष्ट एवं वेदविवर्जित को दान का पात्र नहीं माना है -

नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते।
रोदित्यन्नं दीयमानं किं मया दृष्कृतं कृतम्॥[64]

दक्षस्मृति में दान के अपात्रों का निम्न प्रकार से परिगणन किया गया है-

धूर्ते बन्दिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे।
चाटुचारणचौरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम्॥[65]

वृहद्यमस्मृति में भी दान के अपात्रों के विषय में कहा गया है -

श्वित्री कुष्ठी तथा शूली कुनखी श्यावदन्तकः।
रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः पिशुनो मत्सरी तथा॥

दुर्भगो हि तथा षण्ढः पाखण्डी वेदनिन्दकः।
हैतुकः शूद्रयाजी च अयाज्यानां याजकः ॥

नित्यं प्रतिग्रहे लुब्धो याचको विषयात्मकः।
श्यावदन्तोऽथ वैद्यश्च असदालापकस्तथा।।

एते श्राद्धे च दाने च वर्जनीया प्रयत्नतः ।
तथा देवलकश्चैव भृतको वेदविक्रयी।। [66]

वल्लालसेन ने महाभारत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि विकलाङ्ग और व्याधिपीड़ितों का भरण-पोषण करना चाहिये। वे दान के पात्र नहीं होते -

पङ्वन्धबधिरामूका व्याधिनोपहताश्च ये।
भर्तव्यास्ते महाराज न तु देयः प्रतिग्रहः ।। [67]

(4) देय-द्रव्य :

भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने दान देने के अधिकारी एवं पात्र के गुणावगुण का विवेचन करने के साथ देय द्रव्य के विषय में भी विस्तार से चिन्तन-मनन किया है। देय द्रव्य की शुद्धता, परिवार का पालन करते हुए कितना देना चाहिये व कितना नहीं, किस पात्र को क्या देना चाहिये, क्या अदेय है, पात्र विशेष से क्या अदेय है एवं क्या अग्राह्य है, इत्यादि प्रश्नों का समाधान समाज की आवश्यकता एवं मानवीय दुष्टिकोण को मूल में रखकर प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। इस विषय में दानकाण्ड में उद्धृत देवल ने देय की जो परिभाषा प्रस्तुत की है, उसके अनुसार, जिसको देने से परिवार में किसी को भी बाधा न हो, तथा मानसिक कष्ट का भी अनुभव न हो, इस प्रकार का प्रयत्नपूर्वक (शुद्ध उपायों के द्वारा) अर्जित धन, चाहे वह थोड़ा हो या अधिक देय कहलाता है। यथा-

अपराबाधमक्लेशं प्रयत्नेनार्जितं धनम्।
अल्पं वा विपुलं वापि देयमित्यभिधीयते।।[68]

भगवन्तभास्कर में देय द्रव्य की शुद्धता पर बल देते हुए कहा गया है, कि जिस प्रकार के धन से मनुष्य कोई कार्य करता है, वैसा ही फल उसको इस लोक व परलोक में मिलता है -

यथाविधेन द्रव्येण यत्किंचित्कुरुते नरः।
तथाविधमाप्नोति स फलं प्रेत्य चेह च ।।[69]

तदनुसार विष्णुधर्मोत्तरपुराण ने देय द्रव्य की तीन श्रेणियां निर्धारित की हैं - शुक्ल,

शबल एवं कृष्ण। शुक्ल द्रव्य के दान का फल शुद्ध, शबल द्रव्य के दान का फल दुःखमिश्रित एवं कृष्ण द्रव्य के दान का फल दुःख पहुँचाने वाला माना गया है।[69] विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार वर्णानुसार निर्धारित कर्म से अर्जित द्रव्य शुक्ल, वर्ण के विपरीत कर्म से अर्जित द्रव्य शबल एवं अपने वर्ण से हीन वर्ण के लिये निर्धारित कर्म से अर्जित द्रंव्य कृष्ण कहलाता है -

वर्णानां हि धनं शुक्लमर्जितं यत् स्वकर्मणा।
वर्णोत्तमस्य हीनस्य कर्मणा कृष्णमुच्यते ॥[70]

इसके अतिरिक्त उत्कोच, जुए, चोरी, परपीड़ा, मणि, सुवर्ण इत्यादि के प्रतिरूपीकरण द्वारा धोखा, लूट, डाका, दम्भपूर्वक तप इत्यादि के द्वारा प्राप्त धन सभी वर्णों के लिये कृष्ण कहा जायेगा, यह स्पष्ट है -

पार्श्वैकद्यूतचौर्यार्तिप्रतिरूपकसाहसैः।
व्याजेनोपार्जितं यत्तत् सर्वेषां कृष्णमुच्यते ॥[71]

तथा किसी से उपहार में प्राप्त, वंश क्रम से प्राप्त, पत्नी के साथ विवाह में प्राप्त धन सभी वर्णों के लिये शुक्ल कहा जायेगा —

क्रमागतं प्रीतिदायं प्राप्तं च सह भार्यया।
अविशेषेण सर्वेषां धनं शुक्लमुदाहृतम्॥[72]

यहाँ पत्नी के साथ विवाह में प्राप्त धन की शुक्लता का तात्पर्य यह नहीं समझ लेना चाहिये कि किसी भी प्रकार से कन्या पक्ष को बाध्य करके प्राप्त किया गया धन भी शुक्ल समझ लिया जायेगा। धन के शुक्ल माने जाने के लिये यह आवश्यक है कि न तो वह किसी को बाध्य कर प्राप्त किया गया हो और न बाध्य होकर प्रदान किया गया हो। शबल द्रव्य वह कहा गया है, जो किसी शिल्प की अनुवृत्ति (नकल) करके प्राप्त किया गया हो, ब्याज द्वारा प्राप्त किया गया हो, तथा जिस पर उपकार किया गया है, उससे प्राप्त किया गया हो -

शिल्पानुवृत्या यत् प्राप्तं कुशीदेन तथा धनम्।
कृतोपकारादाप्तं च शबलं समुदाहृतम् ॥[73]

मनु ने सात प्रकार के द्रव्य को धर्म्य बताया है - वंश-क्रम से प्राप्त द्रव्य, वाणिज्य

में प्राप्त लाभ, क्रीत द्रव्य, विजय में प्राप्त द्रव्य, वृद्धि के लिये न्यायपूर्वक किये गये विनियोजन से प्राप्त द्रव्य, यज्ञ कार्य से प्राप्त द्रव्य एवं सत्प्रतिग्रह।

सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥[74]

धर्मशास्त्र में वर्णित वर्णों के कर्त्तव्यों से स्पष्ट है कि इनमें से ''दाय'' सभी वर्णों के लिये धर्म्य है, जय क्षत्रियों के लिये धर्म्य है एवं लाभ व प्रयोग वैश्यों के लिये धर्म्य है।

विष्णुस्मृति की देय द्रव्य के विषय में मान्यता है -

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे।
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥[75]

धर्मशास्त्र में दान देना आवश्यक बताया है, किन्तु दान की सीमायें भी निर्धारित की गई हैं। धर्मशास्त्रकार सामान्य गृहस्थ को कभी भी यह उपदेश नहीं देता कि वह अपने परिवार के हितों पर कुठाराघात कर दान दे। याज्ञवल्क्य[76] ने स्पष्ट कहा है कि अपने कुटुम्ब में जिसका विरोध न हो, वह दे, पत्नी व पुत्र का दान न करे, वंश में कोई भी विद्यमान हो तो सर्वस्व दान न करे तथा किसी प्रतिज्ञात द्रव्य का दान न करे-

स्वं कुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते ।
नान्वये सति सर्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम् ॥[77]

दानसागर में उद्धृत बृहस्पति ने कुटुम्बाविरोध की परिभाषा देते हुए कहा है कि कुटुम्ब के भोजन और वस्त्र पर व्यय करने के उपरान्त जो शेष बचे, वही दान में देना चाहिये-

कुटुम्बभक्तवसनाद्देयं यदतिरिच्यते ।
मध्वासादो विषं पश्चादातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत् ॥[78]

मनु ने भी स्वजनों को दुःख देकर दिये गये दान को अनुचित बताया है -

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि
मध्वापानो विषास्वादः स धर्मप्रतिरुपकः ॥[79]

लक्ष्मीधर द्वारा उद्धृत महाभारत में कुटुम्ब को पीड़ित करके भी अन्नदान को आवश्यक बताया है -

कुटुम्बं पीडयित्वापि ब्राह्मणाय महात्मने ।
दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो भूतिमिच्छता ।।[80]

बौधायनधर्मसूत्र में पक्वान्न के विषय में कहा गया है कि नित्य भक्षण करने वाले सेवकों इत्यादि को भूखा रखकर दान नहीं देना चाहिये-

ये नित्याभक्तिकास्तेषामनुपरोधेन दातव्यं नान्यथा।[81]

यहाँ यह भी कहा गया है कि दान देने में अपने स्त्री व पुत्रों को भले ही कष्ट हो जाये, किन्तु अपने सेवकों को कष्ट नहीं होना चाहिये।

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत 'शिवधर्म'' के अनुसार स्वोपार्जित धन के पांच भाग करने चाहिये। पांच भागों में से तीन भाग जीवन-यापन के लिये रखकर शेष दो भाग धर्म कार्यों में लगाने चाहियें -

तस्मात्त्रिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत्।
भागद्वयन्तु धर्मार्थमनित्यं जीवितं यतः ।।[82]

कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं,जो विवाह में, वंश क्रम से व युद्ध में विजय आदि के द्वारा प्राप्त होती हैं। हेमाद्रि द्वारा उद्धृत कात्यायन का मत है कि विवाह में प्राप्त वस्तु को स्त्री की अनुमति से, वंशक्रम से प्राप्त वस्तु को संबंधियों की अनुमति से व विजय से प्राप्त धन को स्वामी की अनुमति से दिया जा सकता है -

सौदायिकं क्रमायातं शौर्यप्राप्तं च यद् भवेत्।
स्त्री-ज्ञाति स्वाम्यनुज्ञातं दत्तं सिद्धिमवाप्यनुयात् ।।[83]

गौतम का मत है कि देने की प्रतिज्ञा करके भी अधर्माचरण करने वाले को दान नहीं देना चाहिये-

प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात्।[84]

दानखण्ड में उद्धृत कात्यायन का मत है कि विपत्ति में पड़कर की गई दान देने की प्रतिज्ञा का कोई औचित्य नहीं है-

प्राणसंशयमापन्नं यो मामुत्तारयेदितः।
सर्वस्वंमन्ते प्रदास्यामीत्युक्तेऽपि न तथा भवेत्।।[85]

भारतीय धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि किसको क्या देना चाहिये ? इस विषय में विष्णुधर्मोत्तरपुराण का स्पष्ट मत है कि जिसके लिये जो द्रव्य उपयोगी है, अथवा जिस द्रव्य से जिसका जीवन-यापन होता है, उसको वह द्रव्य देना उचित है। यथा-

यस्योपयोगि यद्द्रव्यं देयं तस्यैव तद्भवेत्।
येन येन च भाण्डेन यस्य वृत्तिरुदाहृता।
तत्तत्तस्यैव दातव्यं पुण्यकामेन धीमता।।[86]

उदाहरण रूप में विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी कहा गया है -

यज्ञोपकरणं द्रव्यं क्षत्रिये द्विज पुङ्गवाः।
पण्योपयोगि तद्वैश्ये शूद्रे शिल्पयोगि च ।।[87]

इसी प्रकार ब्रह्मचारियों को कृष्णमृगचर्म, दण्ड एवं कमण्डलु, गृहस्थ के लिये वस्त्र, शय्या, आसन, धान्य, गृहोपयोगी उपकरण, वानप्रस्थी को नीवार, वल्कल, शाक, फल-मूल, गोरस इत्यादि; यति को भिक्षा आदि को प्रदान करने का विधान विस्तार से किया गया है।

अत्रि संहिता में कहा गया है कि दुर्भिक्ष में अन्न, सुभिक्ष में स्वर्ण व अरण्य में पानी देने वाला मोक्ष प्राप्त करता है -

दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे हिरण्यदः।
पानीयदस्त्वरण्ये च स्वर्गलोके महीयते।।[88]

लक्ष्मीधर द्वारा उद्धृत देवल ने देय व अदेय के स्वरूप को संक्षेप में इस प्रकार स्पष्ट किया है -

अन्यायाधिगतां दत्वा सकलां पृथिवीमपि।
श्रद्धावर्जमपात्राय न कांचिद्भूतिमाप्नुयात्।।

प्रदाय शाकमुष्टिम्वा श्रद्धाभक्तिसमुद्यताम्।
महते पात्रभूताय सर्वाभ्युदयमाप्नुयात्।।[89]

तथापि विभिन्न स्मृतिकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न वस्तुओं के दान का विस्तार से वर्णन किया है। मनु ने जल, अन्न, तिल, दीप, भूमि, हिरण्य, गृह, रजत, वस्त्र, अश्व, वृषभ, गौ, यान, शय्या, अभय, धान्य, विद्या इत्यादि के दान का फल बताते हुए ब्रह्म (विद्या) को सबसे बड़ा बताया है -

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।[91]

अत्रि स्मृति में स्वर्ण, पृथिवी एवं गौ के दान की प्रशंसा की गई है।[92] अत्रि संहिता में रेशम अथवा कपास के पट्टसूत्र अथवा यज्ञोपवीत,घृतपूर्ण कांस्यपात्र, उपानह, भरे हुए तिलपात्र, उभयतोमुखी गौ, वस्त्र, कृष्णाजिन, भूमि, कन्या, प्राण, विद्या इत्यादि के दान की प्रशंसा की गई है [93] एवं विद्यादान को सबसे बढ़कर बताया गया है।[94]

विष्णुस्मृति में कृष्णाजिन, उभयतोमुखी गौ, अभय, भूमि, मृगचर्म, धेनु, कपिला गौ, वृषभ, अश्व, वस्त्र, स्वर्ण, रजत, तैजस द्रव्य (घी, दूध, दही, मधु), औषध, लवण, धान्य, शस्य, अन्न, तिल, ईंधन, आसन, शय्या उपानह, छत्र,पंखा, चामर व वास्तु (गृह इत्यादि) के दान की प्रशंसा की गई है एवं अभयदान को सर्वोत्तम बताया गया है।[95]

सम्वर्तस्मृति में वस्त्र, रजत, हिरण्य, अभय, अन्न व जल, घृत, अलङ्कार-फल, मूल, शाक, पुष्प, ताम्बूल, खडाऊ, जूता, छत्र, शय्या, आसन, यान, शिशिर ऋतु में काष्ठ, रोगी को औषध, स्नेह व आहार, कन्या इत्यादि के दान का माहात्म्य वर्णित है। सम्वर्तस्मृति में ही एक अन्य स्थान पर तेल, बिछौना, पैरों की मालिश, हल सहित बैल, कांस्य पात्र व वस्त्र से युक्त दूध देने वाली गाय, शस्यवती भूमि, अर्द्ध प्रसूता गौ, स्वर्ण, भूमि, जल, अन्न, मुखवास,दन्तधावन, रोगियों को औषध, पथ्य, स्नेह, लेप आश्रय आदि, गुड़, ईख का रस, लवण, व्यंजन, सुगन्धित पेय द्रव्य, विद्या, दीप, तिल इत्यादि के दान की प्रशंसा के साथ अन्न दान की संक्षिप्त विधि का भी निरूपण किया गया है।

शातातप स्मृति में विभिन्न रोगों व पापों की शान्ति के लिये नैमित्तिक दानों के अन्तर्गत, गौ, वृषभ, भूमि, स्वर्ण, अश्व, महिषी, गज, पुष्प, मिष्ठान्न, धान्य, वस्त्र आदि के दान का वर्णन किया गया है।[96] लघुहारीत स्मृति ने हिरण्य, गौ एवं पृथिवी के दान को महत्त्वपूर्ण माना है।[97]

दान के विषय में बृहत्पाराशरस्मृति का दृष्टिकोण सर्वाधिक व्यावहारिक एवं

सम्वेदनशील है। इस स्मृति में अन्न व जल के दान की महती प्रशंसा[98] के साथ, वर्षा ऋतु में आश्रय, छाजन के लिये तृण इत्यादि, पैरों की मालिश, शीत में ईंधन, ओढ़ना इत्यादि, खड़ाऊ, जूता, गृहोपयोगी उपकरणों सहित कच्चा या पक्का घर, उत्तम बैल इत्यादि के दान की विशेष प्रशंसा की गई है। इस स्मृति में उपर्युक्त सामान्य दानों के अतिरिक्त उभयमुखी गौ, तिलधेनु, घृतधेनु, जलधेनु, सुवर्णधेनु, कृष्णाजिन आदि के दान की विधियों का भी विस्तार से प्रतिपादन किया गया है ।[99]

याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है - ''गो भूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम्।''[100] इसके अतिरिक्त इस स्मृति में गौ, कपिला गौ, उभयतोमुखी गौ, भूमि, दीप, अश्व, अन्न, वस्त्र, जल, तिल, घी, आश्रय, गृह, स्वर्ण, वृषभ, धान्य, अभय, उपानह, छत्र, माला, अनुलेपन, यान, वृक्ष, शय्या, विद्या आदि के दान का माहात्म्य वर्णित है। याज्ञवल्क्य ने भी विद्या-दान को सबसे बड़ा दान कहा है ।[101]

वसिष्ठ स्मृति में भी जल, अन्न, गौ, शय्या, आसन, छत्र, गृह, उपानह, भूमि, कमण्डलु, वृषभ आदि के दान की प्रशंसा के साथ तीन अतिदान बताये गये हैं - गाय, पृथिवी व सरस्वती।[102]

बृहस्पतिस्मृति में भूमि, अन्न, वस्त्र, शङ्ख, आसन, छत्र, चमर व स्थावर गज, ईंधन आदि के दान की प्रशंसा की गई है।[103] इसमें दीप व प्रोक्षणीय के दान का विशेष माहात्म्य बताया गया है।[104]

वृद्धगौतमस्मृति में जल व अन्न के दान को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है।[105] इस विषय में इस स्मृति का दृष्टिकोण बृहत्पाराशर स्मृति से भी अधिक मानव कल्याण की भावना से ओत-प्रोत दिखाई देता है। इसमें श्रान्त-संवाहन, पादावसेचन, प्रतिश्रय, शय्या, आसन आदि के दान की भी प्रशंसा की गई है।[106] मानव-मात्र के लिये प्रदत्त उपर्युक्त दानों के अतिरिक्त वृद्धगौतमस्मृति में भूमि, कन्या, दरिद्र ब्राह्मण को सुवर्ण, रजत, तिलपर्वत, तिलधेनु, गौ, दीपक की कान्ति, शय्या, आसन, पात्र, उपकरण, धान्य, पूर्ण अलङ्कृत दासी, गौ व भूमि सहित घर इत्यादि दान करने के महत्त्व का भी प्रतिपादन किया गया है। इस स्मृति में अन्य स्मृतियों में उल्लिखित अन्य दातव्य वस्तुओं के अतिरिक्त धर्म सुनाने में काम आने वाले नाट्य व गान्धर्व वाद्य यन्त्रों के दान का भी उल्लेख किया गया है। यहाँ अनडुह् के दान का विस्तृत महत्त्व वर्णित है एवं सम्पूर्ण

नवम अध्याय में कपिला-दान की प्रशंसा वर्णित है। इस प्रकार इस स्मृति ने अनुडुह् व कपिला दान को विशेष महत्त्व प्रदान किया है।[107]

कपिलस्मृति में धरा, धेनु, वाहन, गज, रथ, वस्त्र, वृषभ, शय्या आदि के दान, तुलादान, कल्पवृक्षदान, गोदान, रत्न, पुष्प, ताम्बूल, सुगन्ध, चन्दन, कपूर, वायु से ठंडे गृह, कुंकुम व कक्कोल के चूर्ण, लाल कमल, नील कमल, गुड़, घी, लवण, दूध, दही, कस्तूरी, स्वर्ण, रजत, श्वेत कनेर, धन, धान्य, चन्दनकाष्ठ, कर्पूर, इलायची, मिर्च, देवपुष्प एवं सुपारी, शाक, आभूषण, कम्बल, दोहर, पगड़ी, उत्तरीय, मध्यम वस्त्र, मुख सुवास के पदार्थ, पर्दों, रस्सियों, सवत्सा गौ, लोहा, बकरी, भेड़, त्रिशूल, तांबा व पीतल के पात्र, दास, दासी आदि दानों का उल्लेख किया गया है।[108]

कपिलस्मृति ने अदेय द्रव्य के विषय में बताते हुए कहा है कि अन्याय से उपार्जित द्रव्य, सार्वजनिक द्रव्य, जिसको देने से किसी को पीड़ा पहुँचे ऐसा द्रव्य, संदिग्ध द्रव्य, परास्वाद्य द्रव्य, किसी को नहीं देना चाहिये। जिस द्रव्य को देना शास्त्रों से सुनिश्चित हो, वही द्रव्य दान में देना चाहिये।[109]

हेमादि द्वारा उद्धृत महर्षि यम ने भी कहा है कि दूसरे के धन का अपहरण करके दान कभी नहीं देना चाहिये -

परिभुक्तमवज्ञातमपर्याप्तमसंस्कृतम्।
यः प्रयच्छति विप्रेभ्यस्तद्भस्मन्यवतिष्ठते ॥[110]

दक्ष ने नौ वस्तुओं को अदेय बताया है -

सामान्यं याचितं न्यास-आधिर्दाराश्च तद्धनम्।
क्रमायातंच निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सति ॥

आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा
यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते नरः ॥[111]

अर्थात् अनेक स्वामी वाली वस्तु, उपयोगार्थ मांग कर लाई गई वस्तु, न्यास की वस्तु अथवा आवास, स्त्रियाँ, स्त्री-धन, विवाह के पश्चात् पितृकुल या पति-कुल द्वारा स्त्री को प्रदत्त सम्पत्ति, धरोहर एवं सन्तान के होने पर सर्वस्व दान में नहीं देना चाहिये। मनु ने स्त्री-धन की परिभाषा देते हुए कहा है-

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥[112]

अर्थात् अग्नि के समक्ष पिता आदि के द्वारा दिया गया, पति के द्वारा उपहार में दिया गया व भाई, माता एवं पिता से प्राप्त धन स्त्री-धन कहलाता है। हेमाद्रि द्वारा उद्धृत याज्ञवल्क्य ने एक अन्य प्रकार के स्त्रीधन की ओर भी इंगित किया है और उसे ''आधिवेदनिक''. नाम दिया है। पति जब अन्य स्त्री से विवाह करने की इच्छा करे एवं पत्नी को इस कारण से कुछ धन दे, तो वह आधिवेदनिक कहा गया है। इसको हम पति द्वारा दी गई भरण-पोषण वृत्ति भी कह सकते हैं।

उद्धृत उद्धरण में दक्ष ने स्त्रियों के दान का निषेध किया है, किन्तु दानखण्ड में उद्धृत वसिष्ठ ने केवल ज्येष्ठ पुत्र के व स्त्री के दान का निषेध किया है - शुक्रशोणितसम्भवः पुरुषो मातृपितृनिमित्तकस्तस्य प्रदान-विक्रय-परित्यागेषु माता-पितरौ प्रभवतः न त्वेकं पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा।'' [113]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत औपकायन का मत है कि कन्या, शय्या, गृह, गौ व स्त्री एक ही व्यक्ति को देनी चाहिये -

कन्या-शय्या-गृहंचैव देयं यद्गोस्त्रियादिकम्।
तदेकस्मै प्रदातव्यं न बहुभ्यः कथंचन ॥[114]

उपर्युक्त वस्तुएं ऐसी हैं, जिनमें एक वस्तु एक को ही देना उचित है । एक ही वस्तु बहुतों को देने से उसके उपयोग में कठिनाई उपस्थित हो सकती है।

धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में गाय और पृथ्वी के दान का अत्यधिक महत्त्व बताया गया है, किन्तु दी जाने वाली गाय व पृथ्वी इस प्रकार की होनी चाहिये, जिनका प्रतिग्रहीता भली प्रकार उपयोग कर सके। देवल ने निम्न प्रकार की गाय को देना दोषपूर्ण माना है-

विवत्सां रोगिणीं रूक्षां स्थविरां शृंगभीषणीम्।
क्षीणक्षीरशरीराङ्गां दत्वा दोषमवाप्नुयात् ॥[115]

लक्ष्मीधर द्वारा उद्धृत कात्यायन ने निम्न प्रकार की पृथ्वी का दान उचित नहीं माना है ।

न चोषरां न निर्दग्धां महीं दद्यात् कथंचन।
न श्मशानपरीतांच न च पापानिषेविताम्।।[116]

यदि ऐसे पात्र को कोई वस्तु प्रदान की जाये, जो उसका उपयोग ही न कर सके अथवा दुरुपयोग करे तो वह दान निष्फल है, अतः धर्मशास्त्रकारों ने पात्रविशेष से देय व अदेय को भी अपने चिन्तन की परिधि से छूटने नहीं दिया। लक्ष्मीधर ने यम को उद्धृत कर इस विषय में कहा है -

सुवर्णं रजतं ताम्रं यतिभ्यो यः प्रयच्छति।

न तत् फलमवाप्नोति तत्रैव परिवर्त्तते।।[117]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत देवल का इस विषय में मत है-

पक्वमन्नं गृहस्थस्य वानप्रस्थस्य गोरसः।
वृत्तिश्च भिक्षुवृत्तिभ्यो न देयं पुण्यमिच्छता।।[118]

देवल ने यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि शूद्र को हवि, प्रणाम करने पर स्वस्ति, तिल और मधु नहीं देना चाहिये और न उनसे लेना चाहिये, यदि लेना ही पड़े तो उसके बदले में कोई अन्य उपयुक्त द्रव्य अवश्य दे देना चाहिये एवं गोरस, स्वर्ण, भूमि, गौ, तिल, मधु, घी तथा अन्य रसों को भी चाण्डालों को नहीं देना चाहिये ।[119]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार भूमि, धेनु, अश्व, रत्न, स्वर्ण, तिल एवं हाथी गुणावगुणों का विवेचन किये बिना नहीं देने चाहियें।[120]

अनेक बार ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जब अनधिकारी से भी दान ग्रहण करना आवश्यक हो जाता है तथा कुछ इस प्रकार की वस्तुएं हैं, जिनको अनधिकारी से भी ले लेना दोषास्पद नहीं माना जा सकता। इस विषय में चिन्तन करते हुए धर्मशास्त्रकारों का मत है कि विपत्तिकाल में अनधिकारी से भी दान ले लेना अनुचित नहीं है। व्यास को उद्धृत कर कहा गया है -

कुटुम्बार्थं हि सच्छूद्रात् प्रतिग्राह्यमयाचितम्।
वृत्यर्थमात्मने चैव न हि याचेत कर्हिचित्।।[121]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत स्कन्दपुराण में कहा गया है।-

दुर्भिक्षे दारुणे प्राप्ते कुटुम्बे सीदति क्षुधा।
असाधोरपि गृह्णीयात् प्रतिग्रहमतन्द्रितः ॥[122]

याज्ञवल्क्य की मान्यता है कि अन्य लोगों के प्रयोजनार्थ तथा अपने तथा अपने जीवन-यापन (तृप्ति नहीं) के लिये शूद्रादि से भी दान ग्रहण कर लेना चाहिये-

अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः।
अन्यत्रकुलटाषण्डपतितेभ्यस्तथा द्विषः ॥

देवातिथ्यार्चनकृते गुरुभृत्यादिवृत्तये।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयादात्मवृत्यर्थमेव च ॥[123]

मनु ने उन वस्तुओं का उल्लेख किया है, जो बिना मांगे प्राप्त हों तो किसी (शूद्रादि) से भी ग्रहण कर लेनी चाहिये -

शय्यां, गृहान्, कुशान्, गन्धान् पयः पुष्पं महीं दधि।
मत्स्याः धानाः पयो मांसं शाकंचैव न निर्णुदेत् ॥[124]

एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ।
सर्वतः प्रतिग्रह्णीयान्मधु चाभयदक्षिणाम् ॥[124]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत महर्षि अंगिरा का मत है कि धान्य, जल एवं दूध आवश्यकता पड़ने पर बिना किसी के दिये भी ग्रहण कर लेना चाहिये-

खलक्षेत्रगतं धान्यं वापीकूपगतं जलम्।
अददभ्योऽपि तद्ग्राह्यं यच्च गोष्ठगतं पयः ॥[126]

याज्ञवल्क्य ने भी कुश, शाक, दूध, मत्स्य, गन्ध, पुष्प, दही, पृथ्वी मांस, शय्या, आसन, धान व जल के दान का प्रत्याख्यान न करने का आदेश दिया है।[126] तथापि कुछ वस्तुएं ऐसी हैं, जिन्हें अग्राह्य कहा गया है व कतिपय ऐसे चरित्र हैं, जिनसे दान नहीं लेना चाहिये। स्कन्दपुराण में कहा गया है-

अजिनं मृतशय्यां च शृंगींचोभयतोमुखीम्।
कुरुक्षेत्रे च गृह्णानो न भूयः पुरुषो भवेत् ॥[126]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत मनु के अनुसार निम्न से आई हुई भिक्षा भी ग्रहण नहीं करनी चाहिये-

चिकित्सक-कृतघ्नानां शल्यकर्त्तुश्च वार्द्धुषेः ।
षण्डस्य कुलटायाश्च उद्यतामपि वर्जयेत् ।।[128]

तथा सम्वर्त ने राजप्रतिग्रह को अत्यन्त निकृष्ट बताया है -

राजप्रतिग्रहो घोरो मध्वास्वादो विषोपमः ।
पुत्रमांसं वरं भुक्तं न तु राजप्रतिग्रहः ।।[129]

भारतीय धर्मशास्त्रकारों का मत है कि अविद्वान् व्यक्ति को दान ग्रहण नहीं करना चाहिये। वस्तुतः अविद्वान् यदि दान ग्रहण करने लगें तो उससे समाज की उन्नति होने की अपेक्षा अधोगति होने की सम्भावनाएं अधिक रहती हैं। मनु ने इस विषय में कहा है -

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान् घृतम् ।
अविद्वान् प्रतिगृह्णानो भस्मी भवति दारुवत् ।।[130]

याज्ञवल्क्य भी इस से सहमत हैं -

विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्याः प्रतिग्रहाः ।
गृह्णन् प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च ।।[131]

मनु की मान्यता है कि जहाँ तक हो सके दान ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि दान ग्रहण करने से ब्राह्म-तेज का नाश होता है।

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ।।[132]

याज्ञवल्क्य ने दान न ग्रहण करने वालों की प्रशंसा करते हुए कहा है -

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम् ।
ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति पुष्कलान् ।।[133]

देय द्रव्य संबंधी उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शुद्धाजीव के द्वारा उपार्जित द्रव्य को ही दान के योग्य माना गया है। दान यथासम्भव विद्वानों व तपस्वियों को ही देना चाहिये। जिसके लिये जो वस्तु उपयुक्त हो, वही उसको दान में देनी चाहिये। विद्वान् को भी जहाँ तक हो सके दान ग्रहण करने से बचना चाहिये। अन्न, वस्त्र व प्रतिश्रय के दान में, दाता को मानवीय दृष्टिकोण रखकर, मानव मात्र को आवश्यकतानुरूप दान

देना चाहिये, उसमें पात्रापात्र का अधिक ध्यान नहीं रखना चाहिये और न ही समय, स्थान आदि का विचार करना चाहिये। समन्त्रक दान में उचित स्थान व समय का ध्यान रखना आवश्यक है।

(5) पुण्य देश :

दान के छः अंगों में ''देश'' नामक अंग का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामान्य रूप से विचार किया जाये तो दान किसी भी स्थल पर दिया जा सकता है, किन्तु धर्मशास्त्रकारों की इस विषय में मान्यता है कि स्थल विशेष से दान-फल की न्यूनाधिकता पर प्रभाव पड़ता है। दानमयूख में उद्धृत भविष्योत्तर पुराण ने इस विषय में कहा है -

गृहे दशगुणं दानं गोष्ठे चैव शताधिकम्।
पुण्यतीर्थेषु सहस्रमनन्तं शिवसन्निधौ ॥[133]

चतुर्वर्गचिन्तामणि में उद्धृत देवीपुराण में पुण्य-देशों के विषय में कहा गया है-

सर्वे शिवाश्रमा पुण्याः सर्वा नद्यः शुभप्रदाः।
दानस्नानोपवासादिफलदाः सततं नृणाम् ॥[134]

याज्ञवल्क्य ने जिस देश में कृष्णमृग हैं, उस देश को पवित्र माना है -

यस्मिन् देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन् धर्मान्निबोधत।[135]

व्यास ने सभी सूर्याश्रमों, नदियों, पर्वतों, गौ सिद्ध एवं मुनियों के निवासों को पवित्र स्थल मानते हुए एवं इन स्थानों पर दिये गये दान को अनन्त फल वाला बताते हुए कहा है -

सर्वे सूर्याश्रमा पुण्याः सर्वा नद्यश्च पर्वताः।
गोसिद्धमुनि वासाश्च देशाः पुण्याः प्रकीर्तिताः ॥

सूर्यायतनसंस्थाने यदल्पमपि दीयते।
तदनन्तफलं प्रोक्तं सूर्यक्षेत्रानुभावतः ॥[136]

भविष्यपुराण में शिव मन्दिर में लिङ्ग भेद से दान फल की न्यूनाधिकता पर विचार किया गया है-

क्रोशमात्रं भवेत् क्षेत्रं शिवस्य परमात्मनः।
प्राणिनान्तत्र पंचत्वं शिवसायुज्यकारणम्।
फलं दत्तहुतानांच अनन्तं परिकीर्तितम्॥

मनुजैः स्थापिते लिङ्गे क्षेत्रे मानमिदं स्मृतम्।
स्वयम्भुवि सहस्रं स्यादार्षे चैव तदर्धकम्॥[137]

दानखण्ड में उद्धृत मत्स्यपुराण के अनुसार तीर्थों व पवित्र मन्दिरों एवं नदियों और पवित्र वनों में दान देना अक्षय फल प्रदान करता है -

प्रयागादि तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च।
दत्वा चाक्षयमाप्नोति नदी पुण्यवनेषु च ॥[138]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत स्कन्दपुराण में वाराणसी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर इत्यादि में दिये गये दान को अनन्त फल वाला बताया गया है -

वाराणसी कुरुक्षेत्रं प्रयागः पुष्कराणि च।
गंगा समुद्रतीरं च नैमिषामरकण्टकम् ॥

श्रीपर्वत-महाकालं गोकर्णं वेदपर्वतम् ।
इत्याद्याः कीर्तिताः देशाः सुरसिद्धनिषेविताः॥

सर्वे शिलोच्चयाः पुण्याः सर्वा नद्यः ससागराः ।
गोसिद्धमुनिवासाश्च देशाः पुण्या प्रकीर्तिताः॥

एषु तीर्थेषु यद्दत्तं फलस्यानन्त्यकृद् भवेत्।[139]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत व्यास ने निम्नलिखित पवित्र स्थलों में दान करना उचित बताया है -

गङ्गाद्वारे प्रयागे च अविमुक्ते च पुष्करे।
नगरे चाट्टहासे च गङ्गासागरसङ्गमे।

कुरुक्षेत्रे गयायां च तीर्थे वामरकण्टके।

एवमादिषु तीर्थेषु दत्तमक्षयतामियात्।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा तत्र दत्तं महाफलम्॥[140]

मत्स्यपुराण में पुण्य देशों का विस्तार से नामोल्लेख किया गया है और कहा गया है -

एतेषु सर्वदेवानां सान्निध्यं पठ्यते यतः।
दानमेतेषु सर्वेषु भवेत्कोटिगुणाधिकम्॥[141]

उल्लिखित नामों में अधिकांशतः तीर्थस्थलों के रूप में प्रसिद्ध हैं, तथापि वहां जो नाम दिये गये हैं,उनमें से कतिपय के विषय में ऐतिहासिक दृष्टि से अनुसन्धान की आवश्यकता है कि वे स्थल, कहां स्थित हैं, पूर्व में उनके नाम क्या थे और अब उनके नाम क्या हो गये हैं ?

घर में दान करने के संबंध में विष्णु स्मृति में कहा गया है कि गोबर से लीपे हुए सुन्दर घर में भी दान दिया जा सकता है -

''गोमयेनोपलिप्तेषु मनोज्ञेशु गृहेषु च''।[142]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यद्यपि किसी भी स्थान पर दान दिया जा सकता है, किन्तु दान देने का स्थान पवित्र होना चाहिये। स्थान जितना पवित्र होगा, दान फल की महत्ता भी उतनी ही अधिक होगी। यहाँ यह ध्यातव्य है कि सहायतात्मक दानों में स्थान और काल के विवेचन पर ध्यान नहीं दिया जा सकता, क्योंकि भूखे को अन्न, अनावृत को वस्त्र, आश्रय रहित को आश्रय व विपत्ति में पड़े हुए को अभय प्रदान करने में देश और काल के विवेचन का अवकाश ही नहीं रहता । इसीलिए लक्ष्मीधर द्वारा उद्धृत देवल ने कहा है -

यत्र यद्दुर्लभं द्रव्यं यस्मिन् कालेऽपि वा पुनः।
दानार्हौ देशकालौ तौ स्यातां श्रेष्ठौ न चाऽन्यथा ॥[143]

सहायतात्मक दानों के अतिरिक्त दान देते समय पुण्य-काल इत्यादि के विवेचन का अवकाश रहता है, अतः भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने दान के लिये पवित्र काल नामक बिन्दु पर भी अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है।

(6) पुण्यकाल :

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है -

दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः।
याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतन्तु शक्तितः ।।[144]

उपर्युक्त उद्धरण में ''निमित्तेषु विशेषतः'' पर ध्यान देना आवश्यक है। इसका तात्पर्य है - शास्त्रवर्णित निमित्तों के अवसर पर विशेष रूप से दान देना चाहिये। इन शास्त्रवर्णित निमित्तों के अन्तर्गत विशिष्ट तिथियां, युगादि, मन्वन्तरादि, अयन, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, संक्रान्ति, विषुव, व्यतीपात, वैधृति, षडषीति, विष्णुपद आदि का परिगणन किया जाता है।

चतुर्वर्गचिन्तामणिकार ने पुराणों के उद्धरणों के आधार पर कार्तिक मास के दोनों पक्षों की प्रतिपदा, आश्विन मास के दोनों पक्षों की द्वितीया, वैशाख शुक्ला तृतीया (शिवा नामक) भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी, (शान्ता नामक) माघ शुक्ला चतुर्थी, (सुखदा नामक) मंगलवार युक्त चतुर्थी, मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी, श्रावण शुक्ला पंचमी,भाद्रपद मास की षष्ठी, (विजया नामक) रविवार युक्त शुक्ल पक्ष की सप्तमी, पंचतारक नक्षत्र (रोहिणी, अश्लेषा, मघा व हस्त) के होने पर जया नामक शुक्ल पक्ष की सप्तमी, नन्दा नामक मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, रविवार को रेवती युक्त सप्तमी, पौष मास में (महारुद्रा नामक) बुध युक्त शुक्लाष्टमी, सभी अष्टकायें अर्थात् सभी मासों की शुक्ल पक्ष की अष्टमी, आश्विन शुक्ला नवमी, ज्येष्ठ शुक्ला दशमी, पुष्य नक्षत्र से युक्त शुक्ल पक्ष की एकादशी, श्रवण नक्षत्र से युक्त भाद्रपद शुक्ला द्वादशी पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र से युक्त चैत्र की द्वादशी, वैशाख में हस्त नक्षत्र युक्त द्वादशी, ज्येष्ठ में स्वाति नक्षत्र युक्त द्वादशी, आषाढ में ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त द्वादशी, श्रावण में मूल नक्षत्र से युक्त द्वादशी, भाद्रपद में श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी, आश्विन में पूर्वभाद्रपद नक्षत्र से युक्त द्वादशी, कार्तिक में रेवती नक्षत्र से युक्त द्वादशी, मार्गशीर्ष में कृत्तिका नक्षत्र से युक्त द्वादशी, पौष में मृगशिरा नक्षत्र से युक्त द्वादशी, माघ में पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त द्वादशी तथा फाल्गुन में पुष्य नक्षत्र से युक्त द्वादशी, चैत्र त्रयोदशी, चैत्र शुक्ला चतुर्दशी, श्रावण शुक्ला चतुर्दशी, भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी एवं माघ कृष्णा चतुर्दशी, वैशाख, माघ और कार्तिक मास की पूर्णिमाओं, मास के नक्षत्र से युक्त पूर्णिमाओं, पूर्णेन्दु के योग से युक्त महापूर्णिमा तथा कृत्तिका अथवा भरणी अथवा प्राजापत्य नक्षत्र से युक्त कार्त्तिक पूर्णिमा को दान, उपवास आदि के लिये श्रेष्ठ माना है।[145]

विष्णु स्मृति में माह के नक्षत्र से युक्त पूर्णिमाओं में विभिन्न वस्तुओं के दान का माहात्म्य विस्तार से बताया है ।[146]

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत शङ्ख के मतानुसार यदि सोमवार को अमावस्या, रविवार को सप्तमी, मंगलवार को चतुर्थी, एवं बुधवार को अष्टमी हो तो इन तिथियों में दिया गया दान, ग्रहण विषुव इत्यादि में दिये गये दान के समान पुण्यकारक होता है -

अमावस्या तु सोमेन सप्तमी भानुना सह ।
चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी ।।

चतस्रस्तिथयस्त्वेतास्तुल्याः स्युर्ग्रहणादिभिः ।
सर्वमक्षयमत्रोक्तं स्नानदानजपादिकम् ।।[147]

दान खण्ड में उद्धृत मनु का मत है कि युगादि में प्रदत्त दान सहस्र गुना होता है। यथा-

सहस्रगुणितं दानं भवेद्दत्तं युगादिषु ।[148]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत स्कन्दपुराण में युगादि के संबंध में बताया गया है-

नवम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके निरगात् कृतम्।
त्रेता सिततृतीयायां वैशाखे समपद्यत ।।
दर्शे तु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं परम् ।
कलिः कृष्णत्रयोदश्यां नभस्ये मासि निर्गतः ।
युगादयः स्मृता ह्येते दत्तस्याक्षयकारकाः ।।[149]

तदनुंसार कार्तिक शुक्ला नवमी को सत्ययुग का, वैशाख शुक्ला तृतीया को त्रेता युग का, माघमास की अमावस्या को द्वापर युग का और श्रावण मास की कृष्ण चतुर्दशी को कलियुग का प्रारम्भ हुआ। इन तिथियों में दिया गया दान अक्षय होता है।

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत ब्रह्मपुराण में युगान्त के विषय में कहा गया है -

सूर्यस्य सिंहसंक्रान्त्यामन्तः कृतयुगस्य च ।
तथा वृश्चिकसंक्रान्त्यामन्तस्त्रेता युगस्य च ।।

ज्ञेयस्तु वृषसंक्रान्त्यां द्वापरान्तस्तु संख्यया।
तथा च कुम्भसंक्रान्त्यामन्तः कलियुगस्य च ॥[150]

पद्मपुराण में युगादि व युगान्त में स्नान, दान और जप के महत्त्व को बताते हुए कहा गया है -

युगादिषु युगान्तेषु स्नानदानजपादिकम् ।
यत्किंचित्क्रियते तस्य युगान्ताः फलसाक्षिणः ॥[151]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत याज्ञवल्क्य ने दान के लिये पवित्र कालों के विषय में बताते हुए लिखा है -

शतमिन्दुक्षये दानं सहस्रन्तु दिनक्षये।
विषुवे शतसाहस्रं व्यतीपातेत्वनन्तकम् ॥[152]

यहाँ इन्दुक्षय और दिनक्षय का तात्पर्य चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण से है। कहीं-कहीं इसे उपराग भी कहा गया है। पद्मपुराण में इसकी परिभाषा देते हुए कहा गया है -

चन्द्रस्य यदि वा भानोः राहुणा सह सङ्गमः।
उपराग इति ख्यातस्तत्रानन्तफलं स्मृतम् ॥[153]

यदि रविवार को सूर्यग्रहण और सोमवार को चन्द्रग्रहण हो तो वह दान के लिये और भी अधिक पुण्यप्रदकाल माना जाता है। जैसा कि पद्मपुराण में कहा गया है-

रविवारे रवेर्ग्रासः सोमे सोमग्रहस्तथा ।
चूडामणिरिति ख्यातस्तत्रानन्तं फलं स्मृतम् ॥[154]

दिन क्षय के विषय में यह भी कहा गया है कि, जब तीन तिथियां एक ही दिन पड़ जाती हैं, तो उसे दिनक्षय कहा जाता है, क्योंकि बीच वाली तिथियां पंचांग में दबा दी जाती हैं। इस विषय में दान खण्ड में उद्धृत वसिष्ठ ने कहा है-

एकस्मिन् सावने त्वह्नि तिथिनां त्रितयं यदा।
तदा दिनक्षयः प्रोक्तस्तत्र साहस्रिकं फलम् ॥[155]

अमरकोष में विषुव की परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है -

समरात्रिन्दिवे काले विषुवद्विषुवं च तत्।[156]

इसको और स्पष्ट करने के लिये वृद्धगौतमस्मृति का यह पद्य उद्‌धृत किया जा सकता है-

राजनयनयोर्मध्यं विषुवं सम्प्रचक्षते।
समरात्रिदिने तत्र सन्ध्यायां विषुवे नृप ॥[157]

दानखण्ड में उद्‌धृत वृद्धवसिष्ठ ने विषुव को अन्य प्रकार से परिभाषित करते हुए कहा है -

''विषुवे च तुला मेषे गोलमध्ये तता पराः।''[158]

तात्पर्य यह है कि राशि चक्र में जब सूर्य तुला और मेष राशि पर रहता है, उस समय सन्ध्या में दिन और रात बराबर रहते हैं वह विषुव काल कहलाता है। इसी आधार पर वृद्धवसिष्ठ ने दो विषुव बताये हैं।

चतुर्वर्गचिन्तामणि में व्यतीपात की परिभाषा इस प्रकार से उद्‌धृत की गई है-

व्यतीपातोऽत्र विष्कुम्भादियोगेषु सप्तदशयोगः।[159]

अर्थात् विष्कुम्भादि योगों में सत्रहवां योग व्यतीपात कहलाता है। एक अन्य परिभाषा के अनुसार शुक्लपक्ष में मङ्गल और बृहस्पति यदि सिंह राशि पर हों और सूर्य मेष राशि में हो तो हस्त नक्षत्र से युक्त पाश नाम वाली वह द्वादशी व्यतीपात कहलाती है। यथा-

पंचाननस्थौ गुरु भूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे।
पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः ॥[160]

इस तिथि के विषय में कहा गया है -

अस्मिन् हि गो- भूमि- हिरण्य- वस्त्र दानेन सर्वं परिहाय पापम्।
शूरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं मन्वाधिपत्यं लभते मनुष्यः ॥[161]

दान खण्ड में ही उद्‌धृत वृद्ध मनु ने अन्य प्रकार से व्यतीपात की परिभाषा देते हुए कहा है -

श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तके।
यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥[162]

अर्थात् श्रवण, अश्वि, धनिष्ठा, आर्द्रा अथवा आश्लेषा के प्रथम चरण में यदि रविवार से युक्त द्वितीया हो तो वहां व्यतीपात होता है। यहीं उद्धृत भरद्वाज ऋषि ने व्यतीपात के साथ एक वैधृत नामक योग भी बताया है, जिसमें दान देना उत्तम बताया गया है -

व्यतीपाते वैधृते च दत्तस्यान्तो न विद्यते।
व्यतीपाते विशेषेण स हि सूक्ष्मः प्रकीर्तितः ।।[163]

ज्योतिष शास्त्र में सूर्य और चन्द्र के योगों में सत्ताइसवां योग वैधृत योग कहलाता है।

बल्लालसेन ने महर्षि शातातप को उद्धृत करते हुए दान के पवित्र कालों के विषय में निर्देश दिया है -

अयनादौ सदा देयं द्रव्यमिष्टं गृहेषु यत्।
षडशीतिमुखे चैव विमोक्षे चन्द्रसूर्ययोः ।।

संक्रान्तौ यानि दत्तानि हव्यकव्यानि दातृभिः।
तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि ।।

अयनेषु च यद्दत्तं षडशीतिमुखेषु च।
चन्द्रसूर्योपरागे च दत्तं भवत्यक्षयम् ।।[164]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत वृद्धवसिष्ठ ने दो अयन, दो विषुव, चार षडशीति, चार विष्णुपद व बारह संक्रान्तियाँ बताई हैं, जिनमें दान देना श्रेयस्कर है -

अयने द्वे च विषुवे चतस्रः षडशीतयः।
चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः ।।[165]

इनमें दो अयन-सूर्य के मकर व कर्क राशि में संक्रमण करने पर उत्तरायण व दक्षिणायन, दो विषुव- तुला और मेष राशि में सूर्य की गति, चार षडशीतियाँ - कन्या, मिथुन, मीन और धनु में सूर्य की गति व चार विष्णुपद जब सूर्य वृष, वृश्चिक, कुम्भ या सिंह राशि में हो, तब होते हैं । यथा-

झषकर्कट संक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने ।
विषुवे च तुला मेषे गोलमध्ये ततो पराः ।।

कन्यायां-मिथुने-मीने-धनुष्यपि खेर्गतिः।
षडशीतिमुखा प्रोक्ता शडशीतिगुणा फलैः ।।

वृष-वृश्चिक-कुम्भेषु-सिंहे चैव यदा रविः।
एतद्विष्णुपदं नाम विषुवादधिकं फले ।।[166]

चतुर्वर्गचिन्तामणि में उद्धृत गालव के मतानुसार विषुव के मध्य में, विष्णुपद और दक्षिणायन के प्रारम्भ में षडशीतिमुख के व्यतीत होने पर तथा उत्तरायण में दान देना अत्यधिक फलदायी होता है -

मध्ये विषुवति दानं विष्णुपदे दक्षिणायने चादौ।
षडशीतिमुखेऽतीते तथोदगयनं भूरिफलम् ।।[167]

रात्रि में दान करने का निषेध किया गया है। स्कन्दपुराण में स्पष्ट रूप से कहा गया है -

रात्रौ दानं न कर्तव्यं कदाचिदपि केनचित्।
हरन्ति राक्षसा यस्मात्तस्माद्दातुर्भयावहम् ।।

विशेषतो निशीथे तु न शुभं कर्म शर्मणे।
अतो विवर्जयेत् प्राज्ञो दानादिषु महानिशाम् ।।[168]

किन्तु धर्मशास्त्रकारों ने इस नियम के अपवादों का भी उल्लेख किया है । अत्रिसंहिता का इस विषय में मत है -

ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तौ स्त्रीणां च प्रसवे तथा।
दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रौ चापि प्रशस्यते ।।[169]

पाराशरस्मृति भी उपर्युक्त विषय में सहमत प्रतीत होती है-

खलयज्ञे विवाहे च संक्रान्तौ ग्रहणेषु च ।
शर्वर्यां दानमेतेषु नान्यत्रेति निश्चयः ।।

पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि।
राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यथा निशि ।।[170]

पूर्व में भी कहा गया है कि सहायतात्मक दानों में कालविवेचन का अवकाश नहीं रहता। अतः अभय, प्रतिश्रय, जल व अन्न आदि के दान में समय का विचार नहीं करना चाहिये। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में इस विषय में कहा गया है -

कालः सर्वो परिनिर्दिष्टः पात्रः सर्वश्च मानदः।
अभयस्य प्रदाने तु नात्र कार्या विचारणा॥

तदैव दानकालस्तु यदा भयमुपस्थितम्।
न कालनियमो दृष्टो दीयमाने प्रतिश्रये॥

तदैव दानमस्योक्तं यदा पान्थसमागमः।
न हि कालं प्रतीक्षेत जलं दातुं तृषान्विते॥
अन्नोदकं सदा देयमित्याह भगवान्मनुः।[171]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत मत्स्यपुराण उपर्युक्त सभी मत- मतान्तरों से ऊपर उठकर अत्यन्त सरलता से कहता है -

यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम्।
तदैव दानकालो स्याद्यतोऽनित्यं हि जीवितम्॥[172]

(7) दातृकृत्य :

धर्मशास्त्रकारों द्वारा निर्दिष्ट गुणों से युक्त दाता के लिये, दान करते समय कतिपय कृत्य आवश्यक थे। इनको हम ''दातृ कृत्य'' कह सकते हैं। ये कृत्य ''दानसामान्यविधि'' के आवश्यक अंग थे।

सर्वप्रथम दाता को स्नान क्रिया के द्वारा पवित्र होना आवश्यक था। इस विषय में विष्णु स्मृति में कहा गया है -

स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च कर्मणि।
पवित्राणां तथा जाप्ये दाने च विधिचोदिते॥[173]

दान देने से पूर्व शुद्धता के लिये आचमन करना भी अत्यन्त आवश्यक है। वीरमित्रोदय में उद्धृत कालमाधवीय के अनुसार -

क्रियां च कुरुते मोहादनाचम्येह नास्तिकः।
भवन्ति न तथा तस्य क्रियाः सर्वा न संशयः ॥[174]

किन्तु प्रौढपाद (उकड़ूं) बैठकर आचमन इत्यादि कोई क्रिया नहीं करनी चाहिये-

दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम्।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥[175]

कभी भी जल में शुष्क वस्त्र से व स्थल पर गीले वस्त्र से दान नहीं देना चाहिये। इस विषय में बृहत्पाराशर स्मृति का कथन है-

यज्जले शुष्कवस्त्रेण स्थले चैवार्द्रवाससा।
कुर्याद्धोमं जपं दानं तत् सर्वं निष्फलं भवेत् ॥[176]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत ''श्लोक-गौतम'' के अनुसार दान देते समय आसुरी कक्षा (परिधान के बाहर की ओर बाँधी गयी गाँठ) नहीं बांधनी चाहिये-

स्नाने, दाने, जपे, होमे, दैवे पित्र्ये च कर्मणि।
बध्नीयान्नासुरीं कक्षां शेषकाले यथा रुचिः ॥[177]

वीरमित्रोदय में उद्धृत योगियाज्ञवल्क्य ने आसुरी कक्षा की परिभाषा देते हुए धर्म कार्यों में उसको वर्जित माना है -

परिधानाद्बहिः कक्षा निबद्धा ह्यासुरी भवेत्।
धर्मकर्मणि विद्वद्भिः वर्जनीया प्रयत्नतः ॥[178]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत पराशर ऋषि के अनुसार दान इत्यादि कार्यों में दोनों हाथों को पवित्र कर लेना चाहिये -

स्नाने दाने जपे होमे दैवे पित्र्ये च कर्मणि।
सव्यापसव्यौ कर्तव्यौ सपवित्रौ करौ द्विजैः ॥[179]

सभी प्रमुख धर्मशास्त्रकारों का मत है कि दान जलपूर्वक होना चाहिये। इस विषयः में क्रमशः आपस्तम्ब, गौतम, व हारीत के मत द्रष्टव्य हैं- ''सर्वाण्युदकपूर्वाणि दानानि यथा- श्रुतिवीहारे'' (आप ध. सू. 2/4/8-9)[180] ''तस्माददभिरवोक्ष्य

दद्यादालभ्य वा'' एवं ''स्वस्तिवाच्य भिक्षादानमप्पूर्वंददातिषु चैवं धर्मसु'' (गौतमधर्मसूत्र 1/5/16-17)[181] तथा ''दर्भहीना तु या सन्ध्या यच्च दानं विनोदकम्। असंख्यातं च यज्जप्तं तत् सर्वं निष्प्रयोजकम् ॥''[182]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत वाराहपुराण ने इसको और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है-

तोयं दद्यात् द्विजकरे, दाने विधिरयं स्मृतः।
सकुशोदकहस्तश्च ददामीति तथा वदेत् ॥[183]

दानसागर में उद्धृत लघुहारीत का मत है कि, दान देते समय हाथ में स्वर्ण, रजत अथवा कुश में से कुछ न कुछ अवश्य होना चाहिये-

तपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे।
अशून्यन्तु करं कुर्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः॥[184]

दान-विधि के सन्दर्भ में हेमाद्रि ने माना है कि दान देते समय दाता को वस्तु के नाम तथा स्वयं के गोत्र का उच्चारण करना चाहिये। देश एवं काल आदि का उल्लेख करते हुए प्रतिग्रहीता से कहना चाहिये कि मैं यह वस्तु आपको दे रहा हूँ-

नामगोत्रे समुच्चार्य सम्यक् श्रद्धान्वितो ददेत्।
सङ्कीर्त्य देशकालादि तुभ्यं सम्प्रददे इति ॥[185]

हेमाद्रि एवं नीलकण्ठ का मत है कि ''न मम'' कहकर अपने अधिकार की निवृत्ति का भी उच्चारण करना चाहिये ।[186]

गौतम को उद्धृत करते हुए दानविधि के संबंध में नीलकण्ठ का मत है कि-

अन्तर्जानुकरं कृत्वा सकुशं सतिलोदकम्।
फलान्यपि च सन्धाय प्रदद्याच्छ्रद्धयान्वितः॥

नामगोत्रे समुच्चार्य प्राङ्मुखो देयकीर्तनात्।
उदङ्मुखाय विप्राय दत्त्वा तं स्वस्ति कीर्तयेत् ॥[187]

दानखण्ड में उद्धृत आपस्तम्ब का कथन है कि ''ओम्'' का उच्चारण करके हीं दानादि क्रियाएं करनी चाहिये-

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञ-दान-तपः-क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनः ।।[188]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत षट्त्रिशंन्मत एवं व्यास की क्रमशः मान्यता है कि दान में दक्षिणा का होना अनिवार्य है, दक्षिणा रहित दान निष्फल होता है तथा सभी दक्षिणाओं में स्वर्ण प्रदान किया जाता है -

श्रद्धायुक्तः शुचिर्दान्तो दानं दद्यात् सदक्षिणम्।
अदक्षिणन्तु यद्दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।।
सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।
सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणेष्यते।।[189]

अग्निपुराण ने स्वर्ण के दान में रजत की दक्षिणा को उचित बताया है-

सुवर्णे दीयमाने तु रजतं दक्षिणोच्यते।
अन्येषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृता।।[190]

अग्निपुराणोक्त विधि के अनुसार कन्यादान में दाता को अपने पितामह पिता व स्वयं के नाम का उच्चारण करना चाहिये-

नामगोत्रं समुच्चार्य सम्प्रदानस्य चात्मनः।
सम्प्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने पुनस्त्रयम्।।[191]

गोविन्दानन्द द्वारा उद्धृत ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार दान करते समय मास, पक्ष, तिथि इत्यादि का भी उच्चारण करना चाहिये -

मासपक्षतिथिनां च निमित्तानां च सर्वशः।
उल्लेखमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत्।।[192]

अनेक बार दान के समय पात्र दाता के निकट नहीं होता, उस स्थिति में अग्नि पुराण का कथन है कि -

मनसा पात्रमुद्दिश्य जलं भूमौ विनिक्षिपेत्।
विद्यते सागरस्यान्तो दानस्यान्तो न विद्यते।।[193]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत धौम्य के मतानुसार पात्र के निकट न होने पर अन्य पात्र को जल देना चाहिये-

दानकाले तु सम्प्राप्ते पात्रस्यासन्निधौ जलम्।
अन्यविप्रकरे दत्त्वा दानं पात्रे निधीयते ।।[194]

तथा षट्त्रिंशन्मत के अनुसार देय-द्रव्य को जल में प्रवाहित कर देना चाहिये-

पात्रं मनसि सन्चिन्त्य क्रियावन्तं गुणान्वितम्।
देश काले च सम्प्राप्ते देयमप्सु विनिक्षिपेत्।।[195]

(8) प्रतिगृहीतृ- कृत्य :

धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में दान लेते समय प्रतिग्रहीता के लिये भी कतिपय आवश्यक कृत्यों का निर्देश किया गया है। गरुड पुराण का इस विषय में कथन है कि प्रतिग्रहीता को स्नान करके, दो श्वेत वस्त्र धारण कर, हाथों को पवित्र कर दान ग्रहण करना चाहिये। यथा-

स्नातः सम्यगुस्पृश्य दधानो धौतवाससी।
सपवित्रकरश्चैव प्रतिगृह्णीत धर्मवित्।।[196]

इस प्रकार पवित्र होकर दान ग्रहण करना ही पर्याप्त नहीं है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण का कहना है कि प्रतिग्रहीता को दान ग्रहण करने की धार्मिक विधि का ज्ञान होना आवश्यक है। यथा-

प्रतिग्रहस्य यो धर्म्यं न जानाति द्विजो विधिम्।
द्रव्यस्तैन्यसमायुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ।।

विधिन्तु धर्म्यं विज्ञाय ब्राह्मणस्तु प्रतिग्रहे।
दात्रा सह तरत्येव महादुर्गाण्यसौ ध्रुवम्।।[198]

दान ग्रहण करने की विधि के विषय में ब्रह्माण्डपुराण का कथन है-

शुचिः पवित्रपाणिश्च गृह्णीयादुत्तरामुखः।
अभीष्ट-देवतां ध्यायन् मनसा विजितेन्द्रियः ।।

कृतोत्तरीयको नित्यमन्तर्जानुकरस्तथा।
दातुरिष्टमभिध्यायन् गृह्णीयात्प्रयतः शुचिः ॥[199]

इस विषय में हेमाद्रि द्वारा उद्धृत आदित्यपुराण का कथन है कि ओंकार का उच्चारण करते हुए, जल और कुश सहित द्रव्य को दक्षिण हाथ में ग्रहण करना चाहिये तथा अन्त में स्वस्तिवाचन करना चाहिये-

ओंकारमुच्चरन्प्राज्ञो द्रविणं सकुशोदकम्।
गृह्णीयाद्दक्षिणे हस्ते तदन्ते स्वस्ति कीर्तयेत्॥[200]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार प्रतिग्रहीता सभी दानों में सावित्री पाठ करे, द्रव्य के साथ द्रव्य के देवता का उचारण करे, काम-स्तुति के द्वारा प्रतिग्रह विधि का समापन करे एवं अन्त में स्वस्तिवाचन करे। यथा-

प्रतिग्रहीता सावित्रं सर्वत्रैवानुकीर्तयेत्।
ततस्तु कीर्तयेत्साद्धं द्रव्येण द्रव्यदेवताम्॥

समापयेत्ततः पश्चात्कामस्तुत्या प्रतिग्रहम्।
तदन्ते कीर्तयेत्स्वस्ति प्रतिग्रहविधिस्त्वियम्॥[201]

उपर्युक्त उद्धरणों में ओंकार एवं स्वस्तिवाचन का उल्लेख आया है। इस विषय में विष्णुधर्मोत्तरपुराण का मत है कि दाता यदि ब्राह्मण है, तो प्रतिग्रहीता को ओंकारपूर्वक स्वस्तिवाचन करना चाहिये। क्षत्रिय दाता हो तो मध्यम स्वर में ओंकार रहित मन्त्र पाठ करना चाहिये। वैश्य दाता हो तो उसके बिलकुल निकट जाकर ओंकार रहित मन्त्र पाठ करना चाहिये। यदि शूद्र दाता हो तो मन में ही स्वस्तिवाचन करना चाहिये। यथा-

प्रतिग्रहं पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमान्।
मन्त्रं पठेत्तु राजन्ये उपांशु च तथा विशि॥

मनसा तु तथा शूद्रे स्वस्तिवाचनमेव च ।
सोंकारं ब्राह्मणे कुर्यान्निरोंकारं महीपतौ॥

उपांशु च तथा वैश्ये मनसा स्वस्ति शूद्रजे।[202]

प्रतिग्रह विधि के प्रसंग में द्रव्य के देवता का भी उल्लेख आया है । इस विषय का

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में विस्तार से विवेचन किया गया है। वहाँ बताया गया है कि अभय के सभी देवता होते हैं, भूमि का देवता विष्णु, कन्या, दास एवं दासी का देवता प्रजापति, सभी एक खुर वाले प्राणियों का देवता यम, भैंस का देवता यम, ऊँट की देवता दक्षिणी पश्चिमी दिशा, धेनु का देवता रुद्र, बकरे या बकरी का देवता अग्नि, भेड़ का देवता वरुण शूकर का देवता विष्णु, सभी जंगली पशुओं का देवता वायु, सभी जलाशयों जलपात्रों, कमण्डलु, घड़े, सकोरे (करक) तथा समुद्र से उत्पन्न होने वाले रत्नों का देवता वरुण, स्वर्ण एवं सभी लौह एवं रक्त पदार्थों का देवता अग्नि, सभी पक्वान्नों का देवता प्रजापति, सभी गन्धों का देवता गन्धर्व, वस्त्रों का देवता बृहस्पति, सभी रसों का देवता सोम, सभी पक्षियों का देवता वायु, विद्या एवं विद्या के उपकरणों का देवता ब्रह्म, पुस्तक आदि की देवी सरस्वती, घर के सभी पात्रों का देवता विश्वकर्मा, सभी वृक्षों, पुष्पों, हरे शाकों एवं फलों का देवता वनस्पति, मत्स्य एवं मांस का देवता प्रजापति, छत्र, कृष्णमृगचर्म, शय्या, रथ, आसन, पादत्राण यान इत्यादि का देवता अंगिरस, शूरवीरों के लिये उपयोगी, युद्ध के उपकरणों के सभी देवता, घर का देवता इन्द्र एवं अन्य सभी अनुक्त द्रव्यों का देवता विष्णु होता है।[203]

धर्मशास्त्रकारों ने इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि किस द्रव्य का, किस स्थान से स्पर्श करके प्रतिग्रहण करना चाहिये ? बृहत्पाराशरस्मृति में कहा गया है कि भूमि का ग्रहण भूमि की प्रदक्षिणा करके, कन्या का ग्रहण हाथ पकड़कर, दास और दासी का ग्रहण भी हाथ पकड़कर, हाथी का ग्रहण आरूढ होकर, अश्व का ग्रहण कान से पकड़कर, सभी सींगधारी एक खुर वाले प्राणियों का ग्रहण सींग पकड़कर, वस्त्र का ग्रहण छोर पकड़कर अथवा धारण करके एवं घर का ग्रहण प्रवेश करके करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य अनेक वस्तुओं के भी प्रतिग्रहण की विधि इस स्थल पर द्रष्टव्य है।[204]

(९) उभय कृत्य :

दान विधि के अन्तर्गत कतिपय कृत्य इस प्रकार के होते हैं, जो दाता एवं प्रतिग्रहीता दोनों के लिये करने आवश्यक होते हैं। इन कृत्यों में सर्वप्रथम कार्य है - स्नान । इस विषय में गरुडपुराण की मान्यता है-

स्नानमेव द्विजातीनां परं शुद्धिकरं स्मृतम्।
अतः स्नातोऽर्हतामेति दाने चैव प्रतिग्रहे॥[205]

महर्षि मनु के अनुसार ''दान'' सम्मानपूर्वक लेना व देना चाहिये -

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव वा।
तावुभौ गच्छतः स्वर्ग नरकं तु विपर्यये।।[206]

हेमाद्रि ने महर्षि शातातप को उद्धृत करते हुए कहा है कि लोभपूर्वक दान न तो देना चाहिये और न लेना चाहिये-

कार्यलोभेन यो दद्यादगृह्णीयाद्यः प्रतिग्रहम्।
दाताग्रे नरकं याति ब्राह्मणस्तदनन्तरम्।।[207]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत कात्यायन का मत है कि कुशों पर बैठकर व यज्ञोपवीत से युक्त होकर दान देना व लेना चाहिये। दाता को पूर्वाभिमुख होकर दान देना चाहिये व प्रतिग्रहीता को उत्तराभिमुख होकर दान लेना चाहिये-

कुशोपरि निविष्टेन तथा यज्ञोपवीतिना।
देयं प्रतिग्रहीतव्यमन्यथा विफलं भवेत्।।

दद्यात्पूर्वमुखं दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः।
आयुर्विवर्द्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत्।।[208]

तथा व्यास के अनुसार कन्यादान में दाता और प्रतिग्रहीता की स्थिति अन्य दानों से विपरीत होती है। कन्यादान में दाता उत्तर की ओर मुख किए हुए व ग्रहीता पूर्व की ओर मुख किये हुए होता है -

सर्वत्र प्राङ्मुखो दाता ग्रहीता च उदङ्मुखः।
अयमुक्ता विधिर्दाने विवाहे च व्यतिक्रमः।।[209]

वायुपुराण के अनुसार दान लेने व देने का कार्य अंगूठे का उपयोग करते हुए होना चाहिये-

दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च।
साङ्गुष्ठेन सदा कार्यमसुरेभ्योऽन्यथा भवेत्।।[210]

स्कन्दपुराण के अनुसार दान लेने व देने का कार्य प्रणव का उच्चारण करके करना चाहिये ऐसा नीलकण्ठ का मत है -

तस्मात् प्रणवमुच्चार्य कार्यौ दानप्रतिग्रहौ ।।[211]

वाराहपुराण के अनुसार मन में सन्देह हो तो दान नहीं देना चाहिये, और मन यदि अनुमति न दे तो दान नहीं लेना चाहिये-

अपि सर्षपमात्रोऽपि न देयं विचिकित्सता।
मनसा ह्यननुज्ञातः प्रतिगृह्णीत नैव हि ।।[212]

दान विधि के अन्तर्गत दान मन्त्रों का भी विशेष महत्त्व है, क्योंकि समन्त्रक दान को धर्मशास्त्र में विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। दानमन्त्रों का अवसरानुकूल यथास्थान उल्लेख किया जायेगा।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ''दान विधि'' - का जो स्वरूप हमारे सामने उद्भासित होता है, उसको निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है-

दाता स्नान और आचमन से पवित्र होकर, यज्ञोपवीत धारण कर, शुद्ध आसन पर पवित्र प्रदेश में पूर्व की ओर मुख कर बैठे तथा दोनों घुटनों के मध्य हाथ कर, अंगुष्ठ सहित अंगुलियों से द्रव्य को पकड़कर दान दे। कभी भी उकडूं बैठकर दान न दे। दान देते समय उत्तरीय व अधोवस्त्र धारण करे। दाता देय-द्रव्य, उसके देवता एवं ब्राह्मण की पूजा कर ब्राह्मण के हाथ में जल दे तथा कहे कि ''अमुक द्रव्य मैं आपको देता हूँ । ब्राह्मण के द्वारा ''दीजिये'' ऐसा कहने पर, जल से देय-द्रव्य को पवित्र कर बांये हाथ से अंगुष्ठ सहित स्पर्श करते हुए, दांये हाथ में कुश, तिल व जल लेकर, ओंकारपूर्वक आज अमुक मास में, सूर्य के अमुक राशि में होने पर, अमुक पक्ष में अमुक तिथि को, अमुक स्थल पर अमुक गोत्र वाला, अमुक नाम वाला मैं, अमुक कामना से, अमुक गोत्र वाले, अमुक नाम वाले ब्राह्मण को अमुक देव वाला अमुक द्रव्य देता हूँ, यह कह कर ब्राह्मण के हाथ के मध्य कुश सहित जल दे। प्रतिग्रहीता हाथ के मध्य आग्नेय तीर्थ से द्रव्य को ग्रहण कर ओंकारपूर्वक दान-मन्त्र का उच्चारण करते हुए स्वस्ति बोले।

दाता ओंकारपूर्वक आज अमुक कामना से किये गये, अमुक दान-कर्म की प्रतिष्ठा के लिये, अग्नि देव है जिसका, ऐसा यह दक्षिणा स्वरूप स्वर्ण, अमुक गोत्र वाले, अमुक नाम वाले, आपको देता हूँ, ऐसा कहकर दक्षिणा दे। तब गृहीता स्वस्ति कहकर दक्षिणा का स्पर्श करे एवं कामस्तुतिपूर्वक गायत्री का उचारण करे।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट है कि धर्मशास्त्रकारों ने भारतीय गृहस्थ के लिये दान देना एक आवश्यक कर्तव्य बताया है, क्योंकि इससे सभी आश्रमों के सुचारु संचालन एवं सभी वर्गों के पोषण में सहायता प्राप्त होती है, किन्तु दान देने के लिये पात्र के गुणावगुण पर ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि दुर्जन से प्राप्त द्रव्य से दुष्परिणाम होने की सम्भावना बढ़ जाती है। देय-द्रव्य की शुद्धता होना भी आवश्यक है, क्योंकि साधन के अशुद्ध होने पर साध्य का अशुद्ध होना अवश्यम्भावी है। श्रद्धा भी दान का एक आवश्यक अंग है, क्योंकि दान के पात्र में इतने गुण होने ही चाहिये कि दानदाता की उसके प्रति स्वयमेव श्रद्धा उत्पन्न हो सके। रही पुण्य-देश और पुण्य-काल की बात, तो इस संबंध में यह स्पष्ट ही है कि यदि देश और काल पर विचार कर लिया जाये तो उत्तम है, अन्यथा प्रत्येक स्थान और प्रत्येक काल में सामर्थ्यानुसार दान दिया जा सकता है।

: दान प्रकार :

दान के प्रसंग में एक विचारणीय बिन्दु यह भी है कि, मानव चरित्र की जटिलता के कारण, ऐसी भी स्थितियां सम्भव हैं, जब मनुष्य किसी को, किसी प्रयोजनवश कुछ दे और समाज में स्वयं को दानशील व पुण्यशील के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न करे। भारतीय मनीषियों की दृष्टि से मानव चरित्र की यह दुर्बलता छिपी हुई नहीं थी, अतः उन्होंने उन स्थितियों का विवेचन किया, जिन स्थितियों में मनुष्य देने के लिये तत्पर हो सकता है और उसमें से धर्मदान की स्थिति को निकालकर स्पष्ट रूप से सामने रख दिया, जिससे दान के विषय में भ्रम का कोई स्थान न रहे। हेमाद्रि, लक्ष्मीधर इत्यादि द्वारा उद्धृत देवल ने इन स्थितियों को बताते हुए जो विवेचन प्रस्तुत किया है, वह निम्न प्रकार से है-

पात्रेभ्यो प्रदीयते नित्यमनवेक्ष्य प्रयोजनम्।
केवलं त्यागबुद्ध्या यद्धर्मदानं तदुच्यते ॥

प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते।
तदर्थदानमित्याहुरैहिकं फलहेतुकम् ॥

स्त्री-पान-मृगयाक्षाणां प्रसङ्गाद्यत् प्रदीयते।
अनर्हेषु च रागेण कामदानं तदुच्यते ॥

संसदि व्रीडया स्तुत्याचार्योऽर्थिभ्यः प्रयाचितः।
प्रदीयते च तद्दानं व्रीडादानमिति स्मृतम्॥

दृष्टवा प्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षवद्यत्प्रदीयते।
हर्षदानमिति प्राहुर्दानं तद्धर्मचिन्तकाः॥

आक्रोशनार्थहिंसानां प्रतीकाराय यद्भवेत्।
दीयते तापकर्तृभ्यो भयदानं तदुच्यते॥[213]

उक्त प्रकार से अधिकारी की परिस्थितियों के आधार पर दान के भेद बताने के उपरान्त देवल ने दान की प्रकृति के आधार पर दान के चार भेद बताये हैं। यथा-

ध्रुवमाजस्रिकं काम्यं नैमित्तिकमिति क्रमात्।
वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विजैः॥

प्रपारामतडागादि सर्वकामफलं ध्रुवम्।
तदाजस्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिने दिने॥

अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीबालार्थं यदिष्यते।
इच्छासंस्थन्तु तद्दानं काम्यमित्यभिधीयते॥

कालापेक्षं क्रियापेक्षमर्थापेक्षमिति स्मृतम्।
त्रिधा नैमित्तिकं प्रोक्तं सहोमं होमवर्जितम्॥[209]

देय द्रव्य के आधार पर भारतीय धर्मशास्त्र में दान के तीन भेद (उत्तम, मध्यम और अधम) बताये गये हैं और देय द्रव्यों के विषय में भी बताया गया है -

नवोत्तमानि चत्वारि मध्यमानि विधानतः।
अधमानीति शेषाणि त्रिविधवत्वमिदं विदुः॥

अम्लं-दधि-मधु-त्राणं-गो-भूरुक्माश्वहस्तिनः।
दानान्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः॥

विद्यादानादनावासपरिभोगौषधानि च।
दानानि मध्यमानीह मध्यमद्रव्यदानतः॥

उपानत्प्रेङ्ख-यानानि छत्रपानासनानि च।
दीप-काष्ठ फलादीनि चरमं बहुवार्षिकम्॥

बहुत्वादर्थजातानां सङ्ख्या शेषेषु नेष्यते।
अधमान्यशिष्टानि सर्वदानान्यतो विदुः ॥[214]

यहाँ ''परिभोग'' का अर्थ खाट, आसन आदि है तथा चरम का अर्थ पुराना, जीर्ण-शीर्ण है। कूर्मपुराण में दान-प्रयोजन के आधार पर दान के चार प्रकार (नित्य, नैमित्तिक, काम्य और विमल) बताये गये हैं। यथा-

अहन्यहनि यत्किंचिद्दीयतेऽनुपकारिणे।
अनुद्दिश्य फलं तत्स्यात् ब्राह्मणाय तु नित्यकं ॥

यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे।
नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम् ॥

अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते।
दानं तत् काम्यमारव्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकै: ॥

यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते।
चेतसा भक्तियुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥[215]

श्रीमद्भगवद्गीता में दान के तीन प्रकार (सात्विक, राजस और तामस) बताये गये हैं-

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असंस्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥[216]

यहाँ देवल प्रोक्त धर्मदान एवं आजस्रिकदान, कूर्मपुराणप्रोक्त नित्यदान एवं श्रीमद्-भगवद्गीता प्रोक्त सात्विक दान में अत्यधिक साम्य दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः मुख्य रूप से धर्मशास्त्र का विषय यही दान है, जिसका धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में विस्तार से विवेचन किया गया है।

: प्रमादकर्तृ-धर्म :

अनेक बार धार्मिक कृत्यों के सम्पादन में प्रमादवश अथवा अनायास कुछ त्रुटियाँ हो जाती हैं अथवा ऐसी भी स्थिति हो जाती है, जब कर्ता रोग इत्यादि के कारण कृत्यों के यथाविधि सम्पादन में अचानक अशक्ति अनुभव करता है। इन अयाचित स्थितियों के विषय में भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने जिन नियमों का प्रतिपादन किया है, उससे उनकी सूक्ष्म विचारशक्ति का परिचय मिलता है। दानसागर में उद्धृत कात्यायन के अनुसार पित्र्य मन्त्रों की अनुवृत्ति में आत्मप्रशंसा में इधर-उधर ध्यान चले जाने पर, अधोवायु विसर्जन पर, हँसने पर, असत्य भाषण करने पर, बिल्ली, चूहा इत्यादि के स्पर्श करने पर, आक्रोश उत्पन्न होने पर तथा क्रोध आने पर धर्म कार्य करता हुआ मनुष्य सदा जल का स्पर्श करे-

पित्र्यमन्त्रानुहरणे चात्मालम्भे ह्यवेक्षणे।
अधोवायुविसर्गे च प्रहासेऽनृतभाषणे॥

मार्जारमूषिकस्पर्शे आक्रुष्टे क्रोधसम्भवे।
निमित्तेष्वेषु सर्वत्र कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत्॥[217]

यदि किसी धार्मिक कृत्य का प्रारम्भ ही उचित रीति से न हो तो उस कार्य को वहीं समाप्त कर देना चाहिये और सम्पूर्ण कृत्य के समाप्त होने पर यदि ध्यान आये कि इसमें अमुक त्रुटि रह गई है तो उतना ही अंश पुनः करना चाहिये। प्रधान क्रिया के न किये जाने पर अङ्गों सहित वह क्रिया पुनः करनी चाहिये, किन्तु यदि सूक्ष्म त्रुटि रह जाये तो न तो उस क्रिया की आवृत्ति करनी चाहिये और न ही वह क्रिया अलग से करनी चाहिये।

प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद् यदि मोहात् कथंचन।
यतस्तदन्यथा भूतं तत एव समापयेत्॥

समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदन्यथा कृतम्।
तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः॥

प्रधानस्याक्रियायान्तु सांगं तत् क्रियते पुनः।
तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृतिर्न च तत्क्रिया ॥[218]

याज्ञवल्क्य की मान्यता है कि यदि जप इत्यादि में कोई त्रुटि रह जाये तो वैष्णव मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये अथवा विष्णु का स्मरण करना चाहिये-

यदि वाग्यमलोपः स्याज्जपादिषु कथंचन।
व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम्॥[219]

व्रत में स्थित कर्ता यदि अशक्ति अनुभव करे तो प्राण रक्षा के लिये जल, फल, मूल, दूध या यज्ञावशिष्ट हवि का भक्षण कर सकता है, ऐसा दानसागर में उद्धृत ब्रह्म पुराण का मत है -

व्रतस्थः प्राणरक्षार्थं कदाचिदुदकं पिबेत्।
फलमूलेऽथवा क्षीरं यज्ञशिष्टं च वा हविः॥

व्रतमध्ये च रोगार्तो वैद्यप्रोक्तमथौषधम्।
करोति च गुरोर्वाक्यं व्रतस्थस्तत् क्षणादपि॥

ब्राह्मणस्याभिलषितं साधयेदविचारयन्।
एतान्यष्टौ व्रतस्थानां न व्रतघ्नानि कुत्रचित्॥[220]

इस विवरण में यह पूर्णतः स्पष्ट है कि भारतीय धर्मशास्त्र में कट्टरता न होकर, व्यावहारिक दृष्टि पर बल दिया गया है।

---

1. ''वाचस्पत्यम्'' (सन् 1879), चतुर्दशखण्डम्, पृष्ठ 3515.
2. भगवन्तभास्कर (दानमयूख) पृष्ठ 1, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली । सन् 1986.
3. ''मीमांसाशबरभाष्यम्'', सम्पादक एवं व्याख्याकार, युधिष्ठिर मीमांसक। चतुर्थ भाग ''होमस्वरूपनिरूपणाधिकरणम्'' 4/2/28.
4. वही, पंचम भाग ''विश्वजिति सर्वस्वदाने पित्रादीनामदेयत्वाधिकरणम्'' 6/7/2.
5. मनुस्मृति 4/5, मेधातिथि-भाष्य, प्रकाशक- भारतीय विद्या भवन, बम्बई ।
6. मनुस्मृति 4/5 पर मेधातिथि-भाष्य।
7. याज्ञवल्क्यस्मृति-वीरमित्रोदयमिताक्षरासहिता, पृष्ठ 444, प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत

सीरीज ऑफिस, बनारस।

8. ''भगवन्तभास्कर'' दान मयूख, पृष्ठ-2.

9. ''दानक्रियाकौमुदी'',लेखक गोविन्दानन्द, पृष्ठ-2, प्रकाशक- एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, सन् 1903.

10. उपर्युक्त में उद्धृत ''व्यास'' पृष्ठ-3.

11. दानक्रियाकौमुदी, पृष्ठ-3.

12. कृत्यकल्पतरु- दानकाण्ड में उद्धृत ''देवल'', पृष्ठ-5, प्रकाशक- बड़ौदा ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट।

13. दानमयूख, पृष्ठ-2.

14. कृत्यकल्पतरु-दानकाण्ड, पृष्ठ-6.

15. दानखण्ड- पृष्ठ -21.

16. मनुस्मृति 4/226-227, स्मृति सन्दर्भ, पृष्ठ -81.

17. दक्षस्मृति 3/24, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ-578.

18. कृत्यकल्पतरु-दानकाण्ड, पृष्ठ-13.

19. हेमाद्रि कृत चतुर्वर्गचिन्तामणि दानखण्ड, पृष्ठ-87, याज्ञवल्क्यस्मृति 1.6.

20. वही ।

21. भगवन्तभास्कर-दानमयूख पृष्ठ- 3.

22. वही, पृष्ठ-4.

23. अत्रिसंहिता, पद्य 46, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ 356, लिखितस्मृति पद्य संख्या 6, पृष्ठ-1455.

24. भगवन्तभास्कर- दानमयूख, पृष्ठ-4.

25. याज्ञवल्क्यस्मृति-अपरार्क टीका, पृष्ठ-290 प्रकाशक-आनन्दाश्रम प्रेस।

26. स्मृतिसन्दर्भ भाग-6, मार्कण्डेयस्मृति, पृष्ठ 97.

27. ''कपिलस्मृति'', पद्य 427, ''स्मृति सन्दर्भ, पृष्ठ - 2569.

28. ''कृत्यकल्पतरु-दानकाण्ड'' में उद्धृत ''देवल'' पृष्ठ-6.

29. दानसागर में उद्धृत देवल पृष्ठ- 29.

30. वही, पृष्ठ-32.

31. चतुर्वर्गचिन्तामणि, दान खण्ड, पृष्ठ-88.

32. वही, पृष्ठ - 100.

33. वही, पृष्ठ - 92.

34. महाभारत, शान्तिपर्व, 235/28.

35. मनुस्मृति 1/226, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ-81.

36. याज्ञवल्क्यं स्मृति 1/203, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 253.

37. कृत्यकल्पतरु-दानकाण्ड में उद्धृत देवल, पृष्ठ-6.

38. चतुर्वर्गचिन्तामणि - दानखण्ड, पृष्ठ - 29.

39. कृत्यकल्पतरु - दानकाण्ड में उद्धृत ''यम'', पृष्ठ 26.

40. दानसागर में उद्धृत देवल, पृष्ठ 29.

41. याज्ञवल्क्यस्मृति-वीरमित्रोदयमिताक्षरासहिता, 1/200, पृष्ठ - 275.

42. वसिष्ठस्मृति 6/28, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 1486.

43. कृत्यकल्पतरु - दानकाण्ड में उद्धृत ''यम'' पृष्ठ 27-28.

44. सम्वर्त्तस्मृति पद्य संख्या 49, पृष्ठ - 552.

45. दानखण्ड, पृष्ठ - 24.

46. गौतमधर्मसूत्रम् 1/5/19, पृष्ठ -51, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी।

47. आपस्तम्बधर्मसूत्रम् 2/5/1-4 पृष्ठ - 214 चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी।

48. मनुस्मृति 11/1-3, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ - 213.

49. बृहद्पाराशरस्मृति, 10/291-292 स्मृति सन्दर्भ पृष्ठ -894.

50. स्मृतिसन्दर्भ में वसिष्ठ 3/10 पृष्ठ, 1476, बृहस्पति पृष्ठ 1616, व्यास 4/33, पृष्ठ - 1651.

51. मनुस्मृति 7/86, स्मृति सन्दर्भ, पृष्ठ -117.

52. दक्षस्मृति 3/25-26, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ - 578-579.

53. व्यासस्मृति 4/41-42, स्मृति सन्दर्भ, पृष्ठ- 1651.

54. चतुर्वर्गचिन्तामणि, दान खण्ड, पृष्ठ - 28.

55. भगवन्तभास्कर- दानमयूख में उद्धृत बृहस्पति, पृष्ठ-5.

56. दानमयूख- पृष्ठ 4, विष्णुधर्मोत्तरपुराण-3/299/8-10.

57. चतुर्वर्गचिन्तामणि, दान खण्ड, में उद्धृत बृहस्पति, पृष्ठ - 29.

58. व्यासस्मृति 4/30, स्मृति सन्दर्भ, पृष्ठ- 1650.

59. भगवन्तभास्कर- दानमयूख पृष्ठ -4.

60. चतुर्वर्गचिन्तामणि, दान खण्ड में उद्धृत महाभारत, पृष्ठ - 33.

61. उपर्युक्त में उद्धृत मनु पृष्ठ - 37.

62. मनुस्मृति 4/192-193, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ-78.

63. स्मृतिसन्दर्भ- मनुस्मृति 4/195-196, पृष्ठ 79 एवं विष्णुस्मृति अध्याय 92, पृष्ठ -535.

64. दक्षस्मृति 3/27, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 578.

65. व्यास स्मृति 4/51 स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 1652.

66. दक्षस्मृति 3/16, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 578.

67. वृहद्यमस्मृति 3/34-37, स्मृति सन्दर्भ पृष्ठ - 2107.

68. दानसागर, पृष्ठ 28 में उद्धृत महाभारत।

69. कृत्यकल्पतरु- दानकाण्ड में उद्धृत ''देवल'' पृष्ठ-6.

70. दानमयूख, पृष्ठ -6.

71. विष्णुधर्मोत्तरपुराण- 3/299/9-10, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली।

72. वही, 3/299/16.

73. विष्णुधर्मोत्तरपुराण- 3/299/16.

74. वही, 3/299/18.

75. वही, 3/299/17-18.

76. मनुस्मृति 10/115, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ - 211.

77. विष्णुस्मृति, अध्याय - 92 स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ - 534.

78. याज्ञवल्क्यस्मृति 2/178, स्मृति सन्दर्भ पृष्ठ 1288.

79. याज्ञवल्क्यस्मृति 2/178, स्मृति सन्दर्भ पृष्ठ 1288.

80. दानसागर में उद्‌धृत बृहस्पति, पृष्ठ - 42.

81. मनुस्मृति 11/9, स्मृति सन्दर्भ, पृष्ठ - 213.

82. कृत्यकल्पतरु दानकाण्ड में उद्‌धृत महाभारत, पृष्ठ-248.

83. बौधायनधर्मसूत्रम् 2/3/16, पृष्ठ - 209.

84. भगवन्तभास्कर-दानमयूख में उद्‌धृत ''शिवधर्म'' पृष्ठ -6.

85. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड में उद्‌धृत कात्यायन पृष्ठ - 45.

86. गौतमधर्मसूत्रम्- 1/5/21, पृष्ठ - 52.

87. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड में उद्‌धृत कात्यायन पृष्ठ - 47.

88. विष्णुधर्मोत्तर पुराण 3/316/13-14.

89. वही, 3/316/12-13.

90. अत्रिसंहिता पद्य 330, स्मृतिसन्दर्भ-पृष्ठ- 382.

91. कृत्यकल्पतरु-दानकाण्ड में उद्‌धृत देवल, पृष्ठ-9.

92. स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ 82, मनुस्मृति 4/229-233.

93. अत्रिस्मृति, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 351.

94. अत्रिसंहिता, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 382.

95. वही, पद्य संख्या 338, पृष्ठ 383.

96. विष्णुस्मृति अध्याय 87,88,90,91,92/ स्मृतिसन्दर्भ पृ. 528-534.

97. सम्वर्तस्मृति पद्य 46-61/ स्मृति सन्दर्भ पृष्ठ 551-553.

98. शातातप स्मृति / स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ - 599-615.

99. लघुहारीतस्मृति 4/74, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 987.

100. बृहत्पाराशरस्मृति 10/14-17, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 867.

101. वृहत्पाराशरस्मृति, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 866-893.

102. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/201, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ 1253.

103. वही, 1/212, पृष्ठ 1254.

104. वसिष्ठस्मृति अध्याय 29, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ 1541-1542.

105. बृहस्पतिस्मृति, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ 1615-1616.

106. वही पद्य संख्या 66, पृष्ठ 1616.

107. वृद्धगौतमस्मृति 6/1-34, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ 1958- 1961.

108. वही, 6/51-52, पृष्ठ - 1963.

109. वही, पृष्ठ- 1966-1983 एवं 1999-2011.

110. कपिलस्मृति पद्य 429-441, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ 2569-2570.

111. वही पद्य 447-459, पृष्ठ 2571-2572.

112. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 18.

113. दक्षस्मृति 3/17-18, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ 578.

114. मनुस्मृति 9/194, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 187.

115. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड में उद्धृत याज्ञवल्क्य पृष्ठ 51.

116. वही, पृष्ठ -51.

117. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड में उद्धृत याज्ञवल्क्य पृष्ठ - 52.

118. दान खण्ड में उद्धृत देवल पृष्ठ - 52.

119. कृत्यकल्पतरु-दानकाण्ड में उद्धृत कात्यायन पृष्ठ - 193.

120. कृत्यकल्पतरु-दानकाण्ड में उद्धृत कात्यायन पृष्ठ - 20.

121. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड में उद्धृत ''देवल'' पृष्ठ - 53.

122. वही, पृष्ठ - 53.

123. विष्णुधर्मोत्तरपुराण- 3/302/41-42.

124. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड में उद्धृत ''व्यास'' पृष्ठ- 54.

125. वही, पृष्ठ - 54.

126. याज्ञवल्क्यस्मृति-वीरमित्रोदयमिताक्षरासहिता, 1/215-216, पृष्ठ - 283.

127. मनुस्मृति 4/250, स्मृति सन्दर्भ पृष्ठ - 84.

128. वही, 4/247, पृष्ठ - 83.

129. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड में उद्धृत अंगिरा, पृष्ठ - 56.

130. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/214, पृष्ठ 284.

131. भगवन्तभास्कर, दानमयूख में उद्धृत स्कन्दपुराण, पृष्ठ - 7.

132. चतुर्वर्गचिन्तामणि दानखण्ड में उद्धृत मनु पृष्ठ - 58.

133. वही, पृष्ठ - 59.

134. मनुस्मृति 4/188, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ - 78.

135. याज्ञवल्क्यस्मृति-वीरमित्रोदयमिताक्षरासहिता 1/202 पृष्ठ 277.

136. मनुस्मृति 4/186, स्मृति सन्दर्भ, पृष्ठ 78.

137. याज्ञवल्क्यस्मृति-वीरमित्रोदयमिताक्षरासहिता 1/213 पृष्ठ 283..

138. भगवन्तभास्कर, दानमयूख, पृष्ठ - 10.

139. दानखण्ड- पृष्ठ - 82.

140. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/2, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 1235.

141. दानसागर में उद्धृत व्यास, पृष्ठ - 36.

142. दानखण्ड, पृष्ठ 84.

143. चतुर्वर्गचिन्तामणि, दानखण्ड, पृष्ठ - 84.

144. चतुर्वर्गचिन्तामणि, दानखण्ड, पृष्ठ - 83.

145. चतुर्वर्गचिन्तामणि, दानखण्ड में उद्धृत व्यास, पृष्ठ - 83.

146. मत्स्यपुराण 22/53-54.

147. विष्णुस्मृति, सम्पादक पण्डित वी. कृष्णमाचार्य, अध्याय 85, सूत्र 66 पृष्ठ- 815, प्रकाशक- अड्यार लायब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर।

148. कृत्यकल्पतरु - दानकाण्ड में उद्धृत देवल, पृष्ठ - 7.

149. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/203, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ 1253.

150. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ 62-68.

151. विष्णुस्मृति अध्याय 87-90, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ 528-532.

152. भगवन्तभास्कर- दानमयूख में उद्धृत ''शङ्ख'' पृष्ठ 8.

153. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड में उद्धृत ''मनु'' पृष्ठ 67.

154. वही, पृष्ठ - 67.

155. दानखण्ड, पृष्ठ -67.

156. दानखण्ड, पृष्ठ -67.

157. हेमाद्रि द्वारा उद्धृत '' याज्ञवल्क्य'' पृष्ठ 69.

158. वही, पृष्ठ - 71.

159. वही, पृष्ठ - 71.

160. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड में उद्धृत वसिष्ठ, पृष्ठ - 76.

161. अमरकोष 1/4/14 पृष्ठ - 48.

162. वृद्धगौतमस्मृति 19/4, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 2064.

163. चतुर्वर्गचिन्तामणि -दानखण्ड, पृष्ठ - 72.

164. चतुर्वर्गचिन्तामणि -दानखण्ड, पृष्ठ - 69.

165. वही, पृष्ठ - 69-70.

166. वही, पृष्ठ - 70.

167. वही, पृष्ठ - 69.

168. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 70.

169. दानसागर में उद्धृत शातातप, पृष्ठ - 34.

170. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड , पृष्ठ - 72.

171. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 72.

172. वही,

173. वही,

174. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 79.

175. अत्रि संहिता पद्य 325, स्मृति सन्दर्भ पृष्ठ - 382.

176. पाराशरस्मृति 12/22-23, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ - 677.

177. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 81.

178. वही, पृष्ठ - 82.

179. ''विष्णुस्मृति-अध्याय 64, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ - 503.

180. ''वीरमित्रोदय'' परिभाषाप्रकाश पृ.-82, प्रकाशक-चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी।

181. अत्रिसंहिता, पद्य 323, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ - 381.

182. वृहत्पाराशरस्मृति 2/202, स्मृति सन्दर्भ, पृष्ठ - 707.

183. चतुर्वर्गचिन्तामणि - दानखण्ड, पृष्ठ - 91.

184. वीरमित्रोदय- परिभाषाप्रकाश, पृष्ठ - 82.

185. हेमाद्रि - दानखण्ड में उद्धृत पराशर, पृष्ठ - 91.

186. आपस्तम्बधर्मसूत्रम्, पृष्ठ - 269.

187. गौतमधर्मसूत्रम् पृष्ठ - 5.

188. हेमाद्रि दानखण्ड में उद्धृत लघुहारीत, पृष्ठ - 91.

189. दानखण्ड (चतुर्वर्गचिन्तामणि) पृष्ठ - 92.

190. दानसागर में उद्धृत लघु हारीत, पृष्ठ - 53.

191. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 93.

192. भगवन्त भास्कर-दानमयूख, पृष्ठ - 11 एवं चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड, पृष्ठ - 93.

193. भगवन्त भास्कर- दानमयूख, पृष्ठ - 11-12.

194. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 93.

195. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 110.

196. अग्निपुराण 211/30 पृष्ठ 307, सम्पादक- बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक-चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

197. अग्निपुराण 209/22.

198. दानक्रियाकौमुदी - पृष्ठ - 16.

199. अग्निपुराण 209/56, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली।

200. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 92.

201. वही ,

202. वही, पृष्ठ - 95.

203. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3/302/38-40.

204. हेमाद्रि, दानखण्ड, पृष्ठ - 94.

205. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 95.

206. विष्णुधर्मोत्तरपुराण - 3/301/10-11.

207. वही, 3/301/12-14.

208. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3/301/14-27.

209. वृहत्पाराशरस्मृति 10/326-333, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 899-900..

210. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 99.

211. मनुस्मृति 4/235, स्मृतिसन्दर्भ पृष्ठ - 82.

212. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 102.

213. उपर्युक्त पृष्ठ - 101.

214. दानक्रियाकौमुदी में उद्‌धृत व्यास, पृष्ठ - 11.

215. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड में उदृधृत वायुपुराण-पृष्ठ - 100.

216. भगवन्तभास्कर- दानमयूख पृष्ठ - 12.

217. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड में उद्‌धृत वराहपुराण पृष्ठ - 102.

218. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड, पृष्ठ - 14, कृत्यकल्पतरु -दानकाण्ड पृष्ठ - 5-6.

219. याज्ञवल्क्य स्मृति-अपरार्क टीका, प्रथम अध्याय, पृष्ठ - 289.

220. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड, पृष्ठ - 16.

221. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 17.

222. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता 17/20-22, पृष्ठ - 992-994 .
व्याख्याकार-स्वामी रामसुखदास, प्रकाशक- गीताप्रेस गोरखपुर।

223. दानसागर - पृष्ठ - 56.

224. दानसागर, पृष्ठ - 56.

225. बृहद्‌योगियाज्ञवल्क्य संहिता -7/148, स्मृतिसन्दर्भ, पृष्ठ - 2297

226. दानसागर- पृष्ठ - 57.

द्वितीय अध्याय

: द्रव्य प्रतिनिधि :

भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने समाज के सभी वर्गों को दान, दया, करुणा, ईश्वर-प्रणिधान इत्यादि कर्तव्यों को करते रहने की प्रेरणा दी, जिससे समाज के सभी वर्ग सुख शान्ति से रह सकें तथापि आर्थिक विषमताओं से युक्त इस संसार में धार्मिक कृत्यों के पालन के लिये सभी के पास एक समान साधन हों, यह सम्भव नहीं है, यह भी आवश्यक नहीं है कि निर्दिष्ट विशिष्ट द्रव्य तत्काल उपलब्ध ही हो जाये, अतः धर्मशास्त्रकारों ने द्रव्य प्रतिनिधि का विवेचन किया। यह भारतीय धर्मशास्त्रकारों के उदार एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण का ही परिणाम है। इस विषय में दानसागर में उद्धृत छन्दोगपरिशिष्ट में कहा गया है -

यथोक्तवस्त्वसम्पतौ ग्राह्यं तदनुकारि यत्।
यवानामिव गोधूमा व्रीहिणामिव शालयः ॥[1]

अर्थात् यज्ञ इत्यादि में निर्दिष्ट वस्तु के न होने पर उसके अनुकरण की अन्य वस्तु ग्रहण की जा सकती है, जैसे जौ के स्थान पर गेहूँ व चावल के स्थान पर शालि धान्य।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहा गया है कि दही के अभाव में दूध तथा शहद के अभाव में गुड़ का प्रयोग किया जा सकता है। घी के न होने पर उसके प्रतिनिधि के रूप में दूध या दही को रखा जा सकता है। यथा-

दध्यलाभे पयः कार्यं मध्वलाभे तथा गुडम्।
घृतप्रतिनिधिं कुर्यात् पयो वा दधि वा नृप ॥[2]

दानमयूख में उद्धृत पैठीनसि का तो कहना है कि उपर्युक्त सभी न मिलें तो जौ का उपयोग किया जा सकता है -

सर्वाभावे यवः प्रतिनिधिः इति पैठीनसिनोक्तम्।[3]

दानमयूख में उद्धृत बौधायन के अनुसार हवन की समिधाएं पलाश, अश्वत्थ, खदिर, रौहितक व उदुम्बर की होती हैं, यदि इनमें से किसी की भी न मिलें तो सभी वनस्पतियों की समिधाएं हो सकती हैं -

पलाशाश्वत्थखदिररौहितकौदुम्बरीणामिध्मास्तदलाभे सर्ववनस्पतीनाम्।[4]

बौधायन के अनुसार ही सभी आज्य होमों में गौघृत का उपयोग होता है, किन्तु उसके अभाव में महिषी घृत, उसके अभाव में अजा घृत, उसके अभाव में भेड़ का घी, उसके अभाव में तिल का तेल, उसके भी अभाव में अपने आप उत्पन्न होने वाले तिलों का तेल, उसके अभाव में कुसुम्भ का तेल व उसके भी अभाव में सरसों का तेल उपयोग में लिया जा सकता है-

आज्यहोमेषु सर्वेषु गव्यमेव भवेद्घृतम्।
तदलाभे महिष्यास्तु आजमाविकमेव च ॥

तदलाभे तु तैलं स्यात्तदलाभे तु जार्तिलम्।
तदभावे तु कौसुम्भं तदभावे तु सार्षपम्॥[5]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत मैत्रायणी परिशिष्ट में दर्भ का प्रतिनिधि काश को बताया गया है -

दर्भाभावे काशः प्रतिनिधिः।[6]

वीरमित्रोदय में उद्धृत ''विष्णु'' के अनुसार कुश के अभाव में उसके स्थान पर काश या दूर्वा दी जा सकती है। यथा-

''कुशाभावे कुशस्थाने काशं दूर्वां वा दद्यात्''।

(वि. मि.परिभाषा प्रकाश पृष्ठ - ९९)

ब्रह्मपुराण में यह भी कहा गया है कि यदि कहीं मन्त्र और देवता का विधान न किया गया हो तो वहाँ प्रजापति देवता होता है और प्राजापत्य मन्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है -

आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते।
मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरितिस्थितिः॥[7]

हेमाद्रि के मतानुसार जहाँ देवता का मन्त्र निर्दिष्ट नहीं है वहाँ मूल मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये-

''यत्र तु देवतोक्ता मन्त्रश्च नास्ति तत्र मूलमन्त्रो वेदितव्यः।''[8]

मूल मन्त्र की परिभाषा देते हुए गरुड पुराण में कहा गया है -

प्रणवादि नमोऽन्तं च चतुर्थ्यन्तं च सत्तम।
देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः॥[9]

: दान परिभाषा :

दान प्रक्रिया के अन्तर्गत कतिपय शब्द ऐसे हैं, जिनको शास्त्रीय पदावलि के अन्तर्गत रख सकते हैं। विभिन्न प्रकार के दानों का ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व इन शब्दों का तात्पर्य ज्ञात करना आवश्यक है। वीरमित्रोदयकार ने ''परिभाषा प्रकाश'' में धर्मशास्त्र में उपयुक्त विशिष्ट पदों की परिभाषायें विभिन्न ग्रन्थों से संगृहीत कर धर्मशास्त्रीय वाङ्मय को समृद्धि प्रदान की है। दानमयूख में उद्धृत आदित्यपुराण में पंचरत्न की परिभाषा देते हुए कहा गया है -

सुवर्ण रजतं मुक्ता राजावर्तं प्रवालकम्।
रत्नपंचकमाख्यातं ....॥[10]

भगवन्तभास्कर के अनुसार एक अन्य स्मृति में पांच रत्न इस प्रकार से बताये गये हैं -

कनकं कुलिशं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम्।
एतानि पंचरत्नानि रत्नशास्त्रविदो विदुः॥[11]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मोती, तूतिया, लहसुनिया, माणक, पुखराज, गोमेद, नीलम, पन्ना एवं मूंगा को नवमहारत्न की संज्ञा दी गई है -

मुक्ताफलं हरितकं वैदूर्यं पद्ममरागकम्।
पुष्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा॥
प्रवालमुक्तायुक्तानि महारत्नानि वै नव।[12]

नीलकण्ठ द्वारा उद्‌धृत स्कन्दपुराण में रसों का परिगणन करते हुए कहा गया है-

दधिक्षीरमथाज्यं च माक्षिकं लवणं गुडः।
तथैवेक्षुरसश्चेति रसाः प्रोक्ताः मनीषिभिः ॥[13]

अर्थात् दही, दूध, घी, शहद, नमक, गुड़ व गन्ने के रस को विद्वानों ने ''रस'' कहा है।

भविष्यपुराण में ''अर्घ'' की परिभाषा देते हुए कहा गया है -

आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं दधि तथा मधु।
रक्तानि करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम्
अष्टांग एष अर्घो वै ब्रह्मणा परिकीर्तितम् ॥[14]

अर्थात् जल, दूध, कुशों के अग्र भाग, घी, दही, शहद, लाल करवीर तथा लाल चन्दन यह आठ अङ्गों वाला अर्घ बताया गया है।

भविष्यपुराण में ही सप्त-धातु की परिभाषा देते हुए कहा गया है -

सुवर्ण रजतं ताम्रमारकूटं यथैव च ।
लोहं त्रपुं तथा सीसं धातवः सप्त कीर्तिताः ॥[15]

आरकूट पीतल को कहा जाता है और त्रपु जस्ते को कहा जाता है। शेष धातुओं के नाम स्पष्ट हैं।

हेमाद्रि द्वारा उदृधृत पंचरात्र नामक ग्रन्थ में पंचवर्णरज के विषय में कहा गया है -

रजांसि पंचवर्णानि मण्डलार्थं हि कारयेत्।
शालितण्डुलचूर्णेन शुक्लं वा यवसम्भवम् ॥

रक्तं कुसुम्भसिन्दूरगैरिकादि समुद्भवम्।
हरितालोद्भवं पीतं रजनीसम्भवं तथा ॥

कृष्णं दग्धयवैः हरितं पीतकृष्णविमिश्रितम्।[16]

''हरिताल'' को सामान्य बोलचाल की भाषा में ''पेवडी'' भी कहा जाता है ।[2]'' ''रजनी'' शब्द हल्दी के लिये प्रयुक्त हुआ है।

दानमयूख में उद्धृत भविष्यपुराण में ''नवकौतुक'' की परिभाषा देते हुए कहा गया है -

दूर्वा यवाङ्कुरश्चैव वालकं चूतपल्लवा :।
हरिद्राद्वयसिद्धार्थशिखिपत्रोरगत्वचः ॥
कङ्कणौषधयश्चैताः कौतुकाऽऽख्या नव स्मृताः ।[17]

लोक में (हरिद्रा) हल्दी के दो प्रकार आमा हल्दी और प्रतिदिन काम में आने वाली सामान्य हल्दी के रूप में प्रचलित हैं।

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत मदनरत्न में दशाङ्गधूप की परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है -

षड्भागकुष्टं द्विगुणो गुडश्च।
लाक्षात्रयं पंचनखस्य भागाः ॥

हरीतकी सर्जरसः समांसी।
भागमैकमेकं त्रिलवं शिलाजम् ॥

धनस्य चत्वारि पुरस्य चैको।
धूपो दशाङ्ग कथितो मुनीन्द्रैः ॥[18]

अर्थात् छह भाग कुटज, दुगुना गुड़, तीन भाग लाख अथवा एक-एक भाग लाख, ढाक और लोघ्र (लाक्षात्रय), पांच भाग नखी नामक गन्ध द्रव्य, हरड, जटामांसी, सेंधा, सांभर व सोंचर नमक, शिलाजीत, मुस्ता के चार भाग व गुग्गुल का एक भाग, दशाङ्गधूप कहा गया है।

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत षट्त्रिंशन्मत नामक ग्रन्थ में सप्तधान्य इस प्रकार बताये गये हैं -

यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुस्तथैव च ।
श्यामाकं चीनकं चैव सप्तधान्यमुदाहृतम् ॥[19]

अर्थात् जौ, गेंहूँ, धान, तिल, मटर, तृणधान्य चीना या कङ्गनी धान्य को सप्तधान्य कहा जाता है।

वल्लालसेन द्वारा उद्धृत वायु पुराण में ''सप्तदशगण'' को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है -

> व्रीहयश्चैव यवाश्चैव गोधूमाः कङ्गुकास्तिलाः
> प्रियङ्गवः कोविदाराः कोरदूषाः सतीनकाः ।।
>
> माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुल्थकाः ।
> आढ्यकश्चणकाश्चैव गणः सप्तदशः स्मृतः ।।[20]

अर्थात् चावल, जौ, गेंहूँ, मटर, तिल, प्रियङ्गु, लाल कचनार, कोदों, कलाय, उड़द, मूंग, मसूर, निष्पाव, कुलथी, अरहर और चना ये ''सप्तदश गण'' कहा जाता है।

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत स्कन्दपुराण में ''अष्टादशधान्य निम्न प्रकार से परिगणित हैं-

> यव गोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गु कुलत्थकाः ।
> माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः श्यामसर्षपाः ।।
>
> गवेधुकाश्च नीवाराः आढ्यकोऽथ सतीनकाः ।
> चणकाश्चीनकाश्चैव धान्यान्यष्टादशैव तु ।।[21]

यहाँ गवेधुकाः का तात्पर्य मवेशियों के खाने की घास से है।

दानमयूखोद्धृत गरुडपुराण में चतुः सम, सर्वगन्ध एवं यक्षकर्दम की परिभाषा देते हुए क्रमशः कहा गया है -

> कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य च।
> कुङ्कुमस्य त्रयश्चैका शशिनः स्याच्चतुः समम्।।
>
> कर्पूरश्चन्दनं दर्पं कुङ्कुमं च समांशकम् ।
> सर्वगन्धमिति प्रोक्तं समस्तसुखवल्लभम्।।
>
> कर्पूरमगुरुश्चैव कस्तूरीचन्दनं तथा।
> कक्कोलं च भवेदेभिः पंचभिर्यक्षकर्दमः ।।[22]

यहाँ ''शशिनः'' का अर्थ है ''कपूर'' तथा ''दर्प'' शब्द कस्तूरी के लिये प्रयुक्त है। वीरमित्रोदय-उद्धृत शिवधर्मपुराण में पंचामृत की परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है-

पंचामृतं दधि-क्षीरं-सिता-मधु-घृतं नृप ॥[23]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत स्कन्द पुराण में ''पंचगव्य'' की परिभाषा देते हुए कहा गया है-

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिस्तथैव च।
पंचगव्यमिति प्रोक्तं सर्वपातकनाशनम्॥[24]

तथैव ब्रह्माण्ड पुराण में पंचभङ्ग के विषय में बताया गया है-

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः।
पंचभङ्गा इति प्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभनाः॥[25]

भविष्यपुराण में षट्रस की परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है -

मधुरोम्लश्च लवणं कषायस्तिक्त एव च।
कटुकश्चेति राजेन्द्र रसषट्कमुदाहृतम्॥[26]

छन्दोगपरिशिष्ट में षोडशोपचार इस प्रकार बताये गये हैं-

वासो-भूषणगन्धसुमनोयुतधूपदीपभोज्यानि प्रादक्षिण्यं नतिरिति कथयन्त्युपचारषोडशकम्।[27]

दानसागर में उद्धृत विष्णुपुराण में औषधिगण की परिभाषा देते हुए कहा गया है-

व्रीह्यः सयवा माषा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः।
प्रियंगुसप्तमा ह्येते अष्टमास्तु कुलत्थकाः॥

श्यामाका अथ नीवारा जर्तिलाः सगवेधुकाः।
तथा वेणुयवाः प्रोक्तास्तथा मर्कटका मुने॥

ग्रामारण्याः स्मृता एता ओषध्यस्तु चतुर्दश।[28]

वहीं छन्दोगपरिशिष्ट के अनुसार सर्वौषधिगण की परिभाषा देते हुए कहा गया है -

व्रीह्यः शालयो मुद्गाः गोधूमाः सर्षपास्तिलाः।
यवाश्चोषधयः सप्त विपदो घ्ननन्ति धारिताः॥[29]

मत्स्यपुराण में ''सर्वधातुगण'' निम्न प्रकार से बताया गया है -

तालकंसशिला-वज्रमंजनं श्याममेव च।
काक्षीकासीस-माक्षिकं गैरिकंचादितः क्रमात् ।।[30]

अर्थात् हरताल, मैनसिल, अभ्रक, काजल, सौराष्ट्र की मिट्टी, कसीस, स्वर्णमाक्षिक और गेरू सर्वधातुगण में परिगणित हैं।

प्रतिष्ठामहोदधि में सप्तमृत्तिका इस प्रकार बताई गई है -

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात् संगमाद्धदात्।
राजद्वाराच्च गोष्ठाच्च मृत्तिकां कलशे क्षिपेत् ।।[31]

दानसागरोद्धृत छन्दोग-परिशिष्ट में दर्भ की विशेषताएं बताते हुए कहा गया है -

हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पंचयज्ञियाः।
समूलाः पितृदैवत्याः कल्माषा वैश्वदैविकाः ।।[32]

वीरमित्रोदय के अनुसार लघुहारीत में वर्ज्य दर्भो के विषय में निम्न प्रकार से कहा गया है -

चितौ दर्भाः पथि दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु।
स्तरणासनपिण्डेषु षट्कुशान्परिवर्जयेत् ।।[33]

''भगवन्तभास्कर'' में नीलकण्ठ ने तत्तत् दानों में ''देवताप्रतिमाओं के स्वरूप, मान इत्यादि'' का वर्णन पुराणों से प्राप्त उद्धरणों के आधार पर किया है। तदनुसार तत्तत् दानों में उपयुक्त देवताप्रतिमाओं के निर्माण में लगने वाले द्रव्य और उनकी संख्या का भी उल्लेख किया गया है। दान-दाता के वित्त के अनुरूप वह प्रतिमा सुवर्ण, रजत, ताम्र, वृक्ष (अर्थात् काष्ठ) मिट्टी, पिष्ट-लेप की बनी हुई अथवा चित्र रूप में भी ग्रहण की जा सकती है व माषे से लेकर पल पर्यन्त कितने भी भार की हो सकती है तथा अंगूठे के पोर से लेकर कितनी भी बड़ी हो सकती है। यथा-

अनुक्तद्रव्यतत्संख्या देवताप्रतिमा नृप।
सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्तिकी तथा ।।

चित्रजा पिष्टलेपोत्था निजवित्तानुरूपतः।
आमाषात्पलपर्यन्ता कर्तव्या शाठ्यवर्जितैः।

अंगुष्ठपर्वप्रभृति वितस्त्यवधिका स्मृता । इति ।।[31]

किन्तु तत्तत् दानों के अंगभूत देवताओं के स्वरूप का चित्रण करते हुए कहा गया है कि ''ईश'' अर्थात् शङ्कर तीन नेत्र वाले, वृषभारूढ़, त्रिशूलधारी पाशपाणि व अर्द्धचन्द्र आभूषण वाले होते हैं। सोम श्वेत अश्व युक्त रथ पर गमन करने वाले, गदापाणि व वरद-मुद्रा युक्त होते हैं। वायु दौड़ते हुए हरिण की पीठ पर आरूढ़ व ध्वजधारी होते हैं रुद्र रक्त वर्ण के तीन नेत्रों वाले, दो भुजाओं वाले, मस्तक पर चन्द्र युक्त, जटा-जूट युक्त तथा बाण एवं धनुष धारण करने वाले बनाये जाने चाहिये।

सूर्य शुभ्र मूंछों वाले, सिन्दुर के समान लाल कांति वाले, कमल पर आसीन, कमल हाथ में लिये हुए, भूषित अंगों वाले एवं करधनीधारी होते हैं । विश्वकर्मा दाढी-मूंछधारी, करधनीधारी, छेनी हाथ में लिये हुए, द्विभुज एवं अत्यधिक तेजस्वी होता है। देवगुरु बृहस्पति पीत वस्त्रधारी, पीत वर्ण के शरीर वाला, किरीटधारण किये हुए चतुर्भुज, प्रशान्त, दण्डकमण्डलु एवं अक्षमाला धारण किये हुए होता है।

अंगिरा नामक देव अपने कराग्र में कमण्डलु, स्रुवा, शक्ति एवं दर्भ को धारण किये हुए होता है। अग्निदेव अपने हाथों में जपमाला, शक्ति, पुस्तक एवं कमण्डलु धारण किये हुए होता है। प्रजापति यज्ञोपवीतधारी, हंसस्थ एकवस्त्रधारी, चतुर्भुज एवं अक्षमाला स्रुवा व कुण्डिका को हाथों में धारण करने वाला होता है। अन्य सभी देव दक्षिण हाथ में बाण लिये हुए एवं बांये हाथ में धनुष लिये हुए बनाये जाने चाहिये । दश देव- क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धुरि, लोचन , पुरुरवा एवं आर्द्रव- विश्वदेवों के अन्तर्गत आते हैं। जगत् विधाता का रूप प्रजापति के समान ही होता है। अन्तर केवल यह है कि इसके चार मुख होते हैं।

पर्जन्य देव गजमुख, त्रपान्वित, सभी जीवात्माओं को धारण करने वाला, श्रेष्ठ, जीवन्त, शोषण करने वाला, कुल्हाड़ी, कमल, अत्यन्त पवित्र चिन्तामणि, पाश, चक्र, कोंपल व कुण्डी को दस हाथों से ग्रहण करता है। शम्भु ईश अर्थात् शङ्कर के समान ही होता है।

पितर कुशविष्टरपद्मस्थ एवं पिण्ड हाथ में लिये हुए होते हैं। किरीटी पीताम्बर व पीत वपु होता है। हरि चतुर्भुज व दण्डधारी होता है। सोम-पुत्र बुध चमड़े की तलवार धारण करने वाला, दाता, वरद, मुद्रा वाला तथा सिंह पर आरूढ होता है। धर्म

चतुर्मुख, चतुर्बाहु, श्वेत मालाधारी, श्वेत वस्त्रधारी सभी आभूषण धारण किये हुए, श्वेत एवं विशालकाय बनाया जाना चाहिये।

शचीपति इन्द्र चार दांतों वाले गज पर आरूढ, वज्र हाथ में लिये हुए एवं अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित बनाया जाना चाहिये। देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार हैं । ये दोनों दो-दो भुजाओं वाले व अश्व पर आरूढ बनाये जाने चाहिये। उनके दाहिने हाथों में दिव्य औषधियाँ बनाई जानी चाहिये और बांये हाथों में दर्शनीय पुस्तकें बनाई जानी चाहियें। वरुण का स्वरूप पाशधारी, सौम्य, पूर्व दिशा में मकराश्रय होना चाहिये। मित्र हाथ में कमल लिये हुए, कमल पर बैठे हुए, दो भुजाओं वाला, श्वेतमूर्ति एवं सबके हित में लीन होना चाहिये।

इन्द्र के समान तेज वाले 49 देव और हैं ,जो सूर्य के समान तेजस्वी, पुरुहूत (इन्द्र) के भाई हैं। जो कि किरीट हार, केयूर, कटक आदि से विभूषित हैं, जो खड्गचर्म को धारण करने वाले हैं व इन्द्र के अनुचर हैं तथा जिनका नाम मरुत् है। कुबेर छोटे, पीले नेत्र वाले, गदाधारी, पीले शरीर वाले, पुष्पक पर विराजमान और शिव के मित्र हैं। गन्धर्व, भक्त लोगों को वर देने वाले, किरीट कुण्डल और गदा धारण करने वाले, वीणावादन में रत एवं सुन्दर हैं। विष्णु प्रतिमा कौमोदकी गदा, पदम्, शंख व चक्र से विभूषित होती हैं।

धार्मिक कृत्य के उपरान्त इन प्रतिमाओं को ब्राह्मण को दान कर दिया जाता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में यह शंका उपस्थित की गई है कि ब्राह्मण इन देव प्रतिमाओं को विक्रय कर अथवा विभाजित कर अपने उपयोग में ले लेता है। इसी प्रकार तिलधेनु, गुडधेनु, इत्यादि का भी भक्षण करता है, तो क्या ब्राह्मण के इस कृत्य को प्रशंसनीय कहा जायेगा। इस शंका का परिहार करते हुए कहा गया है -

दानकाले तु देवत्वं प्रतिमानां प्रकीर्तितम्।
धेनूनामपि धेनुत्वं श्रुत्युक्तं दानयोगतः ॥

दातुर्वै दानकाले तु धेनवः परिकीर्तिताः ।
विप्रस्य व्ययकाले तु द्रव्यं तदिति निश्चयः ॥

दानसंबंधिविप्रेण द्रव्यमागच्छता गृहम्।
तत्सर्व विदुषा तेन विक्रेयं स्वेच्छया विभो ॥

कुटुम्बभरणं कार्य्यं धर्मकार्यं च सर्वशः।
अन्यथा नरकं याति इत्येवमाह पितामहः ।।[34]

दानमयूख में उद्धृत विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि यात्रा, विवाह, प्रतिष्ठा, अभिषेक दान आदि में स्वर्ण, रजत, ताम्र या मिट्टी के लक्षण युक्त कलश होने चाहिये। ये कलश पन्द्रह अंगुल व्यास के होने चाहिये। कुछ के अनुसार ये कलश 105 अंगुल व्यास के होने चाहिये। ऊंचाई में ये कलश सोलह अंगुल के होने चाहिये। मूल में 12 अंगुल के व मुख आठ अंगुल का होना चाहिये।[34]

कलश के मुख में ब्रह्मा, ग्रीवा में महेश्वर, मूल में विष्णु तथा मध्य में मातृगण स्थित होते हैं। शेष सभी देवता चारों दिशाओं को वेष्टित करते हैं। पृथ्वी पर जो भी तीर्थ हैं, वे कलश में निवास करते हैं । ग्रह, शान्ति, पुष्टि, प्रीति, मति, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये सभी कलश में निवास करते हैं।

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत महर्षि याज्ञवल्क्य ने आर्ष, छन्द, दैवत्य एवं ब्राह्मण इत्यादि की परिभाषा देते हुए लिखा है -

येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता च येन वै।
मन्त्रेण तस्य तत् प्रोक्तमऋषेर्भावस्तदार्षकम्।।

छन्दसा छन्द उद्दिष्टं वाससी इव चाकृते।
आत्मा संच्छादितो देवैर्मृत्योर्भीतैस्तु वे पुरा।।

यस्य यस्य मन्त्रस्य उद्दिष्टा देवता तु या।
तदाकारं भवेत्तस्य देवत्वं देवतोच्यते ।।

पुराकल्पे समुत्पन्नाः मन्त्राः कर्मार्थ एव च।
अनेन चेदं कर्तव्यं विनियोगः स उच्यते।।

नैरुक्तं यच्च मन्त्रस्य विनियोग प्रयोजनम्।
प्रतिष्ठानं स्तुतिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।।[35]

यहाँ यह भी कहा गया है कि होम, अन्तर्जल (दान), योग, स्वाध्याय एवं यजन में इस पंचविध योग का ध्यान अवश्य रखना चाहिये-

एवं पंचविधं योगं जयार्थं गृह्यनुस्मरेत्।
होमे चान्तर्जले योगे स्वाध्याये याजने तथा ।।[35]

भविष्यपुराण में उपवास की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि सोपवास दानों में उपवास के पूर्व दिन एक समय भोजन कर संकल्प ग्रहण करना चाहिये तथा उपवास के दिन पवित्र मन्त्रों का जप करना चाहिये-

उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ।।[36]

यां तिथिं नियमं कर्तुं भक्त्या समनुगच्छति।
तस्यां तिथौ विधानं यत् तन्निबोधजनाधिप ।।

यदा तु प्रतिपद्यन्ते गृह्णीयान्नियमं नृप।
चतुर्दश्यां कृताहारः संकल्पं परिकल्पयेत् ।।[37]

अमावस्यां न भुंजीत् त्रिकालं स्नानमाचरेत्।
पवित्रो हि जपेन्नित्यं सावित्रीं शिरसा सह ।।[38]

दानसागर में उद्धृत देवल के अनुसार दिन में सोने, मैथुन इत्यादि से उपवास नष्ट हो जाता है, किन्तु आवश्यक होने पर जल पीने से उपवास नष्ट नहीं होता-

उपवासो विनश्येत् दिवास्वप्नाक्षमैथुनैः।
अत्यये जलपानेन नोपवासः प्रणश्यति ।।[39]

लघुहारीतस्मृति में जपयज्ञ की परिभाषा देते हुए कहा गया है -

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्वं निबोधत।
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधाकृतिः ।।

त्रयाणामपि यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ।।

यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ।।

शनैरुच्चारयन्मन्त्रं किंचिदोष्ठौ प्रचालयेत्।
किंचिच्छ्रवणयोग्यः स्यात् स उपांशुर्जपः स्मृतः ।।

धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णपदाक्षरम्।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यान्तु तदुक्तं मानसं स्मृतम्।।[40]

वृहत्पराशरस्मृति में भी कहा गया है -

द्विविधस्तु जपः प्रोक्तः उपांशुर्मानसस्तथा।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः।।[41]

महर्षि बाधूल के अनुसार असंख्यात जप निष्फल होते हैं-

असंख्यातं च यज्जप्तं तत् सर्वं निष्फलं भवेत्।।[42]

इसलिये योगियाज्ञवल्क्य के अनुसार अक्षमाला लेकर जप करना चाहिये, अक्षमाला के अभाव में कुशग्रन्थियुक्त हाथ से एकाग्रचित होकर जप करना चाहिये-

स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीव समुद्भवैः।
अक्षमाला तु कर्तव्या प्रशस्ता ह्युत्तरोत्तरा।।

अभावादक्षमालायाः कुशग्रन्थ्याऽथ पाणिना।
जप एव हि कर्तव्यं एकाग्रमनसा तथा।।[43]

कात्यायन ने आहुति देने का प्रकार और विधि बताते हुए कहा है कि हाथ से दी गई आहुति अंगुलियों के बारह पोरों से, रस आदि की आहुति स्रुवा (लकड़ी की चम्मच) से दैव तीर्थ (अंगुलियों के अग्रभाग) से अंगार युक्त व लपट युक्त अग्नि में देनी चाहिये। यथा-

पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूर्विका,
रसादिना च स्रुवमात्रपूर्विका।
दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः,
स्वाङ्गारिणि स्वर्चिषि तच्च पावके।।[44]

दानसागर में उद्धृत आदित्यपुराण में कहा गया है कि हवन की अग्नि स्वल्प, रुक्ष, स्फुल्लिंग से युक्त, वामावर्त, भयानक, गीली लकड़ियों से युक्त फूत्कार युक्त, धुंआयुक्त, दुर्गन्धयुक्त तथा पृथ्वी का स्पर्श करती हुई नहीं होनी चाहिये यथा-

स्वल्पे रुक्षे सस्फुल्लिंगे वामावर्ते भयानके।
आर्द्रकाष्ठैः सुसम्पूर्णे फुत्कारवति पावके।।

कृष्णार्चिषि सुदुर्गन्धे तथा लिहति मेदिनीम्।
आहुतीर्जुहुयाद् यस्तु तस्य नाशो भवेद् ध्रुवम्।।[45]

कात्यायनस्मृति में भी कात्यायन ने कहा है -

योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स उपजायते॥

तस्मात् समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ।
आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीम्पराम्॥

होतव्ये हुते चैव पाणि-सूर्प-स्फ्य-दारुभिः।
न कुर्यादग्निधमनं न कुर्याद् वा व्यजनादिना॥[46]

कात्यायन ने समितप्रमाण का निर्धारण करते हुए कहा है-

नाङ्गुष्ठादधिका ग्राह्या समित् स्थूलतया क्वचित्।
न विमुक्तत्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥

प्रादेशान्नाधिका नोन तथा न स्यात् विशाखिका,
न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु च विजानता॥[47]

आदि पुराण में समिधा के लिये उपयुक्त निम्न वृक्षों का निर्देश किया गया है -

पलाशाश्वत्थ-न्यग्रोध-प्लक्षवैकङ्कतोद्भवाः।
अश्वत्थौदुम्बरो बिल्वश्चन्दनः सरलस्तथा।
शालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति यज्ञियाः॥[48]

दान सागर में उद्धृत आदित्यपुराण में हवन करने में विशेष सावधानियों का निर्देश करते हुए कहा है -

क्षुत्तृट्क्रोधत्वरायुक्तो हीनमन्त्रैर्जुहोति यः।
अप्रवृद्धे सधूमे वा सोऽन्धः स्यादन्यजन्मनि॥[49]

आपस्तम्बधर्मसूत्र (1.5.15.12) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अग्नि में ईंधन का प्रयोग प्रोक्षण करके ही करना चाहिये-

नाप्रोक्षितमिन्धनमग्नावादध्यात्।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/287/12) में हवि प्रदान करने की विधि पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है -

मन्त्रेणोंकारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः।
स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम्॥

रात्रि में भोजनरूप ''नक्तव्रत'' के विषय में भविष्यपुराण में कहा गया है-

उपवासात् परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात् परमयाचितम्।
अयाचितात् परं नक्तं तस्मान्नक्तेन वर्तयेत्॥[50]

नक्षत्रदर्शनान्नक्तं केचिदिच्छन्ति मानवाः।
मुहूर्तोनं दिनं केचित् प्रवदन्ति मनीषिणः॥[51]

हविष्यभोजनं स्नानमाहारस्य च लाघवम्।
अग्निकार्यमधः शय्यां नक्तभोजी समाचरेत्॥[52]

उपर्युक्त प्रकार से धर्मशास्त्रकारों ने तत्तत् दान क्रियाओं में उपयोगी पदों का सूक्ष्म विवेचन कर त्रुटि अथवा किसी भी प्रकार की न्यूनता की आशंका को दूर करने का प्रयत्न किया है ।

: दक्षिणा प्रमाण :

भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने बिना दक्षिणा के किये गये दान, व्रत इत्यादि को निष्फल मानते हुए कहा है कि-

अदत्तदक्षिणं दानं व्रतं चैव नरोत्तम।
विफलं तद्विजानीयाद्भस्मनीव हुतं हविः॥[53]

इस प्रकार ''दान'' के साथ दक्षिणा देना आवश्यक है, किन्तु वह दक्षिणा कितनी और किस रूप में होनी चाहिये- इस विषय में धर्मशास्त्रकारों में मत वैभिन्न्य है। व्यास ने सभी दानों की दक्षिणा सुवर्ण को माना है -

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।
सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणेष्यते॥[54]

हेमाद्रि ने ''परेत्युक्तेः पुरुषाहारौपयिकं तण्डुलादिकमपि दक्षिणा''[55] कहकर सुवर्ण को श्रेष्ठ दक्षिणा मानते हुए भी तण्डुल इत्यादि की दक्षिणा का निषेध नहीं किया है।

दानमयूख में उद्धृत उद्धरण के अनुसार अन्य सभी दानों में दक्षिणा सुवर्ण की होती है, किन्तु सुवर्ण दान में रजत की दक्षिणा होती है –

अन्येषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृता।
सुवर्णे दीयमाने तु रजतं दक्षिणेष्यते।[56]

नीलकण्ठ के मतानुसार व्यास ने केवल सुवर्ण दान में दक्षिणा की अनिवार्यता बताई है। अर्थात् दक्षिणा की अनिवार्यता केवल सुवर्ण दान में है। मदनरत्न इत्यादि के मतानुसार सुवर्ण ब्रह्माण्डादिदान में सुवर्ण दक्षिणा की यह अनिवार्यता नहीं है।[57] सामान्य रूप से दक्षिणा का प्रमाण निम्न प्रकार से है–

देयद्रव्यतृतीयांशं दक्षिणां परिकल्पयेत्।
अनुक्तदक्षिणे दाने दशांशं वापि शक्तितः।[58]

अर्थात् देय द्रव्य का तृतीयांश दक्षिणा के रूप में देना चाहिये, जिस दान में दक्षिणा के विषय में नहीं कहा गया है, उसमें भी देय द्रव्य का दशमांश तो दक्षिणा में देना ही चाहिये। लिङ्गपुराण में तुलापुरुष दान आदि के विषय में बताया गया है –

दक्षिणां च शतं सार्द्धं तदर्धं वा प्रदापयेत्।
योगिनां चैव सर्वेषा पृथङ्निष्कं प्रदापयेत्।।[59]

अर्थात् योगियों को सौ, पचास, पच्चीस या पृथक् निष्कों की दक्षिणा देनी चाहिये।

दानमयूख में उद्धृत भविष्योत्तरपुराण में कहा गया है कि दानों में सौ निष्क की दक्षिणा उत्तम मानी गयी है, पचास निष्क की मध्यम व पच्चीस निष्क की अधम मानी गयी है। मेषी दान, काल पुरुष दान तथा अन्य महादानों में, कल्पपादप दान में, हिरण्याश्वरथदान में, हेमहस्तिरथ दान में, ब्रह्माण्ड दान में, सुवर्णकामधेनु दान में तथा कृष्णाजिन दान में अशक्त को भी पांच निष्क की दक्षिणा तो देनी ही चाहिये। इससे भी कम दक्षिणा से जो नराधम महादान देता है अथवा ग्रहण करता है, वह उसके लिये दुःख व शोक को लाने वाला होता है। यथा–

अतोऽप्यल्पेन यो दद्यान्महादानं नराधमः।
प्रतिग्रह्णाति वा तस्य दुःखशोकावहं भवेत्॥[60]

दानमयूख में उद्धृत लिङ्पुराण में कहा गया है कि गुरु को अड़सठ पल के बराबर दक्षिणा देनी चाहिये। सभी होताओं को तीस पल के बराबर दक्षिणा देनी चाहिये, अध्येताओं को पन्द्रह पल व द्वारपालों को उसकी आधी दक्षिणा देनी चाहिये-

अष्टषष्टिपलोन्मानं दद्याद्वै दक्षिणां गुरोः।
होतृणां चैव सर्वेषां त्रिंशत्पलमुदाहृतम्॥
अध्येतृणां तदर्द्धेन द्वारपालां तदर्द्धतः॥[61]

गृह्यपरिशिष्ट में कहा गया है कि दक्षिणा न होने पर मूल, फल और भक्ष्य पदार्थों की दक्षिणा देता है।[62]

ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृतिखण्ड में कहा गया है कि-

कर्ता कर्मणि पूर्णेऽपि तत्क्षणाद्यदि दक्षिणाम्।
न दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा॥

अर्थात् कर्ता कर्म के पूर्ण होने पर भाग्य या अज्ञान के कारण उसी समय दक्षिणा नहीं देता है, तो मुहूर्त व्यतीत होने पर वह दुगुनी हो जाती है, एक रात्रि व्यतीत होने पर सौ गुणी हो जाती है, तीन रात्रि व्यतीत होने पर हजार गुणी और सप्ताह भर में दो हजार गुणी हो जाती है। मास भर में लाख गुणी व वर्ष भर में तीन करोड़ गुणी हो जाती है एवं यजमान द्वारा किया गया सारा कार्य निष्फल हो जाता है। इसलिये दक्षिणा तत्काल देनी चाहिये।[63]

: द्रव्यमान, धान्यादिमान एवं भूमान :

पदार्थ अथवा वस्तु का मान निर्धारण चार प्रकार से किया जा सकता है, प्रथमतः उसका बाजार मूल्य निर्धारित कर, द्वितीय गणना द्वारा, तृतीय तौल द्वारा एवं चतुर्थ नाप द्वारा। वस्तु के बाजार मूल्य के निर्धारण, गणना, तौल एवं नाप के लिये विभिन्न समाजों, देशों अथवा प्रान्तों में भिन्न-भिन्न प्रकार के किन्तु निश्चित मानदण्ड अपनाये जाते रहे हैं। मूल्य निर्धारण के लिये सभी सभ्य समाजों में मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। भारतीय

धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में इसको ''द्रव्यमान'' की संज्ञा दी गई है। गणना कार्य के लिये संख्याओं का प्रयोग किया जाता है। यह कार्य भी ''द्रव्यमान'' के अन्तर्गत आता है। तौल के लिये तराजू और निश्चित भार वाले बाटों का प्रयोग होता आया है अथवा निश्चित माप वाले पात्रों का भी प्रयोग होता रहा है, भारतीय धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में इसको ''धान्यादि-मान'' की संज्ञा दी गई है। नाप के लिये निशान बने हुए फीते, दण्ड इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। भारतीय धर्मशास्त्र में इसको ''भूमान'' की संज्ञा दी गई है।

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत ब्रह्मपुराण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि धर्मशास्त्रों में मान के लिये ऋषियों के द्वारा जिन संज्ञाओं का निर्धारण किया गया है, वे सब सम्प्रदाय विशेष के अनुसार व्यवहार अर्थात् दैनन्दिन कार्य निष्पादन के सौकर्य के लिये समझनी चाहिये-

धर्मशास्त्रेषु मानार्थं या संज्ञा मुनिभिः स्मृताः।

ताः सर्वा व्यवहारार्थं बोद्धव्या सम्प्रदायतः ॥[64]

मनु ने लोक व्यवहार के लिये पृथ्वी पर प्रचलित तांबे, चाँदी और स्वर्ण की संज्ञाओं को पूर्ण रूप से कहने का प्रयत्न किया है -

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञा प्रथिता भुवि।

ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥[65]

मनुस्मृति के अनुसार गवाक्ष से आती हुई प्रातःकालीन सूर्य रश्मियों के मध्य जो धूलिकण दिखाई देते हैं, वे त्रसरेणु कहलाते हैं, आठ त्रसरेणुओं के बराबर एक लिक्षा होती है, तीन लिक्षा के बराबर एक राजसर्षप (राई) होता है, तीन राजसर्षप के बराबर एक गौरसर्षप होता है, छह गौरसर्षप के बराबर एक मध्यम आकार का यव होता है। तीन मध्यम यव के बराबर एक कृष्णल (रत्ती) होता है। पांच कृष्णल के बराबर एक माष होता है। सोलह माष का एक सुवर्ण होता है। चार सुवर्ण का एक पल होता है। रजत परिमाण में पूर्व में कही गयी दो कृष्णल का एक रूप्यमाष होता है, सोलह रूप्यमाष का एक धरण होता है, धरण को ही पुराण कहा जाता है।

दस धरण का एक शतमान या रूप्य पल होता है। पूर्व में कहे गये चार सुवर्णों का एक राजतनिष्क होता है । ताम्रपरिमाण में पल का चतुर्थांश एक कार्षापण होता है । यथा-

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
परमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणु प्रचक्ष्यते॥
त्रसरेण्वष्टकं ज्ञेया लिक्षैका परमाणुतः।
ता राजसर्षपतिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः॥
सर्षपाः षट् यवोमध्यस्त्रियवन्त्वेककृष्णलः।
पंचकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडशः॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः॥
ते षोडष स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः।
चतुः सौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः॥[66]

''द्रव्यमान'' संबंधी मनु के उपर्युक्त विचारों से याज्ञवल्क्य पूर्णतः समानता रखते हैं।[67]

नीलकण्ठ के मतानुसार भी धरण और पुराण पर्यायवाची हैं। इसी प्रकार शतमान और पल भी पर्यायवाची हैं। चार कौड़ियों का एक पण होता है और 5x4=20 कमलगट्टों (वराटक) की एक कौड़ी होती है। नीलकण्ठ का यह भी कथन है कि ''देशादिभेदेन पणादिव्यवहारो ज्ञेयः''।[68]

''द्रव्यमान'' के उपर्युक्त प्रकार को तालिका के माध्यम से निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है -

द्रव्यमान (सुवर्ण परिमाण) :

8	त्रसरेणु	=	1	लिक्षा
3	लिक्षा	=	1	राजसर्षप (राजिका = राई)
3	राजसर्षप	=	1	गौरसर्षप
6	गौरसर्षप	=	1	मध्ययव

3	मध्ययव	=	1	कृष्णल
5	कृष्णल	=	1	माष
16	माष	=	1	सुवर्ण
4	सुवर्ण	=	1	पल
10	पल	=	1	धरण

रजत परिमाण :

2	कृष्णल	=	1	रूप्यमाष
16	रूप्यमाष	=	1	धरण या पुराण
10	धरण	=	1	शतमान या रूप्य पल
4	सुवर्ण	=	1	राजत निष्क

ताम्र परिमाण :

	पल का चतुर्थांश	=	1	कर्ष या कार्षापण
4	कौड़ी	=	1	पण
20	कमलगट्टे	=	1	कौड़ी

विष्णु स्मृति में द्रव्यमान संबंधी उपर्युक्त विचारों में किंचित् भिन्नता प्राप्त होती है। अन्य सभी द्रव्यमानों में मनु और याज्ञवल्क्य से समानता रखते हुए विष्णु ने 12 माषे का एक अक्षार्द्ध एवं चार सुवर्ण का एक निष्क माना है।[69]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत कात्यायन ने कार्षापण का 20 वां भाग = माष, माष व पण का चौथा भाग = काकिणी माना है। चार कार्षापण का एक धानक, बारह धानक का एक सुवर्ण व तीन सुवर्ण का एक दीनार माना है। इन संज्ञाओं को ''पंचनद'' प्रदेश में व्यावहारिक मानते हुए कात्यायन ने कहा है –

> माषो विंशति भागश्च ज्ञेयः कार्षापणस्य तु।
> काकिणी तु चतुर्भागो माषस्य च पणस्य च ॥
> पंचनद्याः प्रदेशे तु संज्ञेयं व्यावहारिकी।

कार्षापणप्रमाणन्तु तन्निबद्धमिहैव या ॥

कार्षापणस्यैका ज्ञेया ताश्चतस्रस्तुधानकः ।

ते द्वादश सुवर्णस्तु दीनारस्तु त्रिकः स्मृत : ॥[70]

नारद के अनुसार -

कार्षापणो दक्षिणस्यां दिशि रौप्यः प्रवर्तते ।

पणैर्निबद्धः पूर्वस्यां षोडशैव पणस्य तु ॥[71]

अर्थात् दक्षिण दिशा में रौप्य कार्षापण का प्रचलन है, पूर्व दिशा में 16 पण के बराबर (एक रौप्य कार्षापण) होता है।

नन्द पण्डित द्वारा उद्धृत बृहस्पति के अनुसार ताम्र मुद्रा को कार्षापण कहते हैं ताम्र के उन्हीं चार कार्षापण का एक ''दानक'' होता है एवं बारह ''दानक'' का एक सुवर्ण होता है। यथा-

ताम्रकर्षकृता मुद्रा विज्ञेयः कार्षिकः पणः ।

स एव ताम्रिका प्रोक्ता ताश्चतस्रस्तु दानकः ॥

ते द्वादश सुवर्णस्तु दीनाराख्यः स एव तु ।[72]

''नन्द पण्डित'' ने अपनी केशव वैजयन्ती'' टीका में लिखा है -

''एवं च यद्यपि सुवर्ण-अक्ष-विस्त-कर्ष-पण-कार्षापण-शब्दाः समानार्थाः तथापि कर्षपणकार्षापणशब्दाः ताम्रविषया एव सुवर्णाक्षविस्तशब्दाः सुवर्णविषया एवेति व्यवस्था।''[71]

वृहत्पराशर के अनुसार पांच गुंजा का एक माष, सोलह माष का एक कर्ष व चार कर्ष का एक पल स्वर्ण के दान एवं मान में होता है। यथा-

पंचगुंजो भवेन्माषः कर्षः षोडशभिश्च तैः ।

तैश्चतुर्भि पलं प्रोक्तं दानेमाने च पुण्यदम् ॥[73]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समाज में व्यवहार के लिये ''द्रव्यमान'' निर्धारण

हेतु स्वर्ण, रजत व ताम्र धातुओं का प्रयोग होता था। स्थान और काल के अनुसार सूक्ष्म भेद होते हुए भी मनु और याज्ञवल्क्य द्वारा किया गया मान निर्धारण ही अधिक प्रचलित था । परवर्ती भारतीय समाज में तोला,माशा, रत्ती एवं मन, सेर, छटांक जैसी संज्ञाएं प्रचलित रहीं, रुपया, आना, पैसा इत्यादि संज्ञाएं प्रचलित रहीं। अब समस्त विश्व में मीट्रिक प्रणाली व्यवहार में लाई जाती हैं।

''हेमाद्रि''द्वारा उद्धृत आदित्यपुराण[73] के अनुसार संख्यागत द्रव्यमान को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है -

1. 1 एक
2. 10 दश (दस)
3. 100 शत (सौ)
4. 1000 सहस्र (हजार)
5. 1,000 x 10 = 10,000 अयुत (दस हजार)
6. 1,000 x 100 = 1,00,000 नियुत (एक लाख)
7. 1,000 x 100 x 10 = 10,00,000 प्रयुत (दस लाख)
8. 1,000 x 100 x 100 = 1,00,00,000 कोटि (एक करोड़)
9. 1,00,00,000 x10= 10,00,00,000 अर्बुद (दस करोड़)
10. 1,00,00,000 x100= 1,00,00,00,000 वृन्द (एक अरब)
11. 1,00,00,000 x1000= 10,00,00,00,000 खर्व (दस अरब)
12. 1,00,00,000 x 1000 x 10 = 1,00,00,00,00,000निखर्व (खरब)
13. 1,00,00,000 x 1000 x 100 = 10,00,00,00,00,000 शङ्कु(दस खरब)
14. 1,00,00,000 x 1000 x 1000 = 100,00,00,00,00,000 पद्म (नील)

15. 1,00,00,000 x 1,000 x 1,000 x 10 = 1,00,00,00,00,00,0000 समुद्र (दस नील)

धान्यादिमान :

द्रव और ठोस वस्तुओं को तोलने अथवा किसी विशिष्ट पात्र में लेकर (दूध की तरह) नापने की प्रक्रिया को ''धान्यादिमान'' कहा जाता है। धान्य इत्यादि को तोलने या मापने का कार्य आवश्यक है, अतः इसकी संज्ञा धान्यादिमान हुई। हेमाद्रि द्वारा उद्धृत विष्णुधर्मोत्तरपुराण में उपर्युक्त मानार्थ संज्ञाओं का उल्लेख करते हुए कहा गया है -

पलं च कुडवः प्रस्थ आढको द्रोण एव च।
धान्यमानेषु बोद्धव्या क्रमशोऽमी चतुर्गुणाः ॥

द्रोणैः शोडषभिः खारी विंशत्या कुम्भ उच्यते।
कुम्भैश्च दशभिर्बाधो धान्यसंख्या प्रकीर्तिताः ॥[74]

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत भविष्यपुराण में धान्यादिमान को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया गया है -

पलद्वयं तु प्रसृतं द्विगुणं कुडवं मतम्।
चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः ॥

आढकैश्चतुर्भिश्च द्रोणस्तु कथितो बुधैः।
कुम्भो द्रोणद्वयं सूर्पखारी द्रोणास्तु षोडश ॥[75]

दानमयूख में ही वराहपुराण के अनुसार-

पलद्वयन्तु प्रसृतम् मुष्टिरेकं पलं स्मृतम्।
अष्टमुष्टिभिर्भवेत् कुंचि कुंचयोष्टौ तु पुष्कलम् ॥

पुष्कलानि च चत्वारि आढकः परिकीर्तितः।
चतुराढको भवेत् द्रोण इत्येतन्मानलक्षणम् ॥

चतुर्भिः सेतिकाभिस्त प्रस्थ एकः प्रकीर्तितः।[76]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत गोपथ ब्राह्मण के अनसार-

पंचकृष्णलको माषस्तैश्चतुः षष्टिभिः पलम्।
पलैर्द्वात्रिंशद्भिः प्रस्थो मागधेषु प्रकीर्तितः ।।[77]

उपर्युक्त सभी मतों का समन्वय करते हुए धान्यादिमान को सारिणी द्वारा निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है -

1.	5	कृष्णल	=	1	माष
2.	64	माष (अथवा एक मुष्टि)	=	1	पल
3.	2	पल	=	1	प्रसृत
4.	4	पल या 2 प्रसृत	=	1	कुडव
5.	4	कुडव अथवा 32 पल	=	1	प्रस्थ
6.	4	प्रस्थ	=	1	आढक
7.	4	आढक	=	1	द्रोण
8.	2	द्रोण	=	1	कुम्भ
9.	16	द्रोण	=	1	सूर्पखारी

अथवा -

20	खारी	=	1	कुम्भ
10	कुम्भ	=	1	बाध

हेमाद्रि के अनुसार स्कन्द पुराण में ''द्रवमान'' निम्न प्रकार से बताया गया है-

पलद्वयेन प्रसृतम् द्विगुणं कुडवं मतम्।
चतुर्भिः कुडवै प्रस्थ आढकस्तैश्चतुर्गुणैः ।।
चतुर्गुणो भवेद्रोण इत्येतत्द्रवमानकम्।[78]

भूमानम् :

चतुर्वर्गचिन्तामणि में उद्धृत आदित्यपुराण के[79] अनुसार ''भूमान्'' को सारिणी द्वारा निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है -

1.	8	त्रसरेणु	=	1	रथ रेणु
2.	8	रथरेणु	=	1	बालाग्र
3.	8	बालाग्र	=	1	लिक्षा
4.	8	लिक्षा	=	1	यूका
5.	8	यूका	=	1	यव
6.	8	यव	=	1	अंङ्गुल
7.	12	अङ्गुल	=	1	वितस्ति
8.	21	अङ्गुल	=	1	रत्नि
9.	24	अङ्गुल	=	1	हस्त
10.	2	रत्नि	=	1	किष्कुः
11.	96	अङ्गुल	=	1	धनुर्दण्ड
12.	2	धनुर्दण्ड	=	1	नालि
13.	30	धनुष	=	1	नल्व
14.	2	सहस्त्रधनुष	=	1	गव्यूति
15.	8	सहस्त्रधनुष	=	1	योजन

इसी स्थल पर उद्धृत ''मार्कण्डेय पुराण'' [80] में उल्लिखित ''भूमान्'' उपर्युक्त विवरण से किंचित् भिन्न है। सारिणी द्वारा मार्कण्डेय पुराण के विचारों को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है –

1.	8	परमाणु	=	1	त्रसरेणु
2.	8	त्रसरेणु	=	1	रथरेणु
3.	8	रथरेणु	=	1	बालाग्र
4.	8	बालाग्र	=	1	लिक्षा

5.	8	लिक्षा	=	1	यूका
6.	8	यूका	=	1	यव
7.	8	यव	=	1	अङ्गुल
8.	6	अङ्गुल	=	1	पद
9.	12	अङ्गुल	=	1	वितस्ति
10.	2	वितस्ति	=	1	हस्त
11.	4	हाथ	=	1	धनुर्दण्ड
12.	2	धनुर्दण्ड	=	1	नालिका
13.	2	सहस्रधनुष	=	1	क्रोश
14.	8	सहस्रधनुष	=	1	गव्यूति
15.	16	सहस्रधनुष	=	1	योजन

दोनों तालिकाओं की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि मार्कण्डेय पुराण में 6 अङ्गुल = 1 पद बताया गया है, जिसका उल्लेख आदित्यपुराणोक्त तालिका में नहीं है। इसी प्रकार आदित्यपुराणोक्त तालिका में रत्नि, किष्कुः एवं नल्व नामक संज्ञाओं एवं मानों का प्रयोग है, किन्तु मार्कण्डेय पुराण में इनका उल्लेख नहीं है। आदित्यपुराण में 2 सहस्रधनुष का एक क्रोश है, किन्तु मार्कण्डेय पुराण में इस मान को गव्यूति की संज्ञा दी गई है। तुलना से ज्ञात होता है कि गव्यूति व योजन के मानों में भी अत्यधिक भिन्नता है। प्रचलित मान्यताओं के आधार पर मार्कण्डेयपुराण के ''भूमान'' अधिक प्रमाणिक प्रतीत होते हैं।

बौधायन ने मध्यमा अङ्गुली से लेकर कोहनी तक हाथ का मान माना है यथा-

''मध्याङगुलीकूर्परयोर्मध्ये प्रामाणिकः करः ॥''[81]

''महामहोपाध्याय श्री मधुसूदन शर्मा'' द्वारा प्रणीत यज्ञमधुसूदनः ग्रन्थ के स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्याय में तीन प्रकार का अङ्गुल मान बताया गया है। यथा-

''तदिदं मानाङ्गुलं त्रिविधम्। उत्तमं मध्यममधमं च । तदुत्तम्''

विन्यस्तैस्तिर्यगष्टाभिर्यवैर्मानांगुलिः स्मृता।
सा तूत्तमाङ्गुलिः सप्तयवा सैव तु मध्यमा॥
षड्यवा साऽधमा प्रोक्ता मानाङ्गुलितीरितम्।[82]

यह लोक साधारण अङ्गुल मान बताया गया है। यज्ञ, दान इत्यादि कार्यों में यजमान भेद से यह अङ्गुल मान भिन्नता रखता है। इस अङ्गुल मान के भी तीन भेद हैं- मात्राङ्गुल, मुष्ट्यङ्गुल एवं देहलब्धाङ्गुलमान। यजमान के दक्षिण हाथ की मध्यमाङ्गुलि के मध्य पर्व के मान को मात्राङ्गुल मान कहते हैं। बिना अंगूठे के शेष अङ्गुलियों की मुट्ठी बाँधकर, उसके चार भाग करने पर एक भाग मुष्ट्यंगुल मान कहलाता है तथा यजमान की लम्बाई को दस से भाग देकर, एक दसवें भाग को 12 भागों में विभाजित करने पर जो मान प्राप्त होता है, वह देहलब्धाङ्गुलमान होता है। पुरुष का मान 120 अङ्गुल माना गया है। उपर्युक्त ग्रन्थ में 22½ अङ्गुल को अरत्नि (कोहनी से कनिष्ठिका पर्यन्त) हस्त, 21 अङ्गुल को रत्नि (कोहनी से बंधी हुई मुट्ठी के अंत तक) हस्त व 24 अङ्गुल को महाहस्त माना है। 24 अङ्गुल हस्त के एक और अन्य प्रकार से तीन भेद होते हैं। यथा-

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां ये हस्ताः परिकीर्तिताः।
षट्-सप्ताष्टयवैर्मानाङ्गुलैस्तांस्तु प्रयोजयेत्॥[83]

प्रश्न यह उठता है कि अङ्गुल मानों में इतनी विधिवता होने पर प्रामाणिक किसको माना जाये । इस विषय में यह माना गया है कि यज्ञ के स्रुवा इत्यादि उपकरण अङ्गुल मान से, कुण्डमुष्ट्यङ्गुलमान से अथवा देहलब्धाङ्गुल मान से, प्रतिमा की ऊँचाई मात्राङ्गुल मान से व प्रतिमा के अंग मानाङ्गुल से बनाये जाने चाहिये। प्रासादादि निर्माण मात्राङ्गुल अथवा मानाङ्गुल से करना चाहिये । वेदी, स्थण्डिल, शिविका, रथ आदि मानाङ्गुल से एवं वेश्म, आराम, आदि विष्णु हस्त से बनने चाहिये। मान संकर नहीं करना चाहिये । उपर्युक्त ग्रन्थ में निर्दिष्ट[84] भूमान को तालिकानुसार निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है -

6 यव	= 1· अधममानाङ्गुल	24 अधमाङ्गुल	= 1 ब्रह्महस्त
7 यव	= 1 मध्यममानाङ्गुल	24 मध्यमाङ्गुल	= 1 विष्णुहस्त
8 यव	= 1 उत्तममानाङ्गुल	24 उत्तमाङ्गुल	= 1 शिवहस्त
21 अङ्गुंल	= 1 रत्नि हस्त	4 महाहस्त	= 1 व्याम
22½अङ्गुल	= 1 अरत्निहस्त	5 महाहस्त	= 1 पुरुष
24 अगुल	= 1 महाहस्त		
10½अङ्गुल	= 1 प्रादेश	6 अङ्गुल	= 1 प्रपद
2 प्रादेश	= 1 रत्नि	2 प्रपद	= 1 वितस्ति
2 रत्नी	= 1 किष्कुः	2 वितस्ती	= 1 हस्त

2 हस्त	= 1 ब्रह्मतीर्थ	= 48 अङ्गुल
2 ब्रह्मतीर्थ	= 1 धनुर्दण्ड	= 96 अङ्गुल
2 धनुर्दण्ड	= 1 नाली	= 192 अङ्गुल

30 धनुष	= 1 नल्व	2 क्रोश	= 1 गव्यूति	= 4000 धनुष
2000धनुष	= 1 क्रोश	2 गव्यूति	= 1 योजन	= 8000 धनुष

: दान मण्डप विवरण :

शुद्धि एवं सुरक्षा की दृष्टि से यज्ञ कार्य में मण्डप निर्माण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दान भी एक प्रकार का यज्ञ है। अतः हेमाद्रि, नीलकण्ठ, लक्ष्मीधर इत्यादि सभी ग्रन्थकारों ने मण्डप निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया है एवं पंचरात्र को उद्धृत करते हुए लिखा है -

कुर्याद्वैष्णवयागेषु चतुर्द्वारांश्च मण्डपान् ।''[85]

मण्डप निर्माण के लिये स्थान के विषय में श्री मधुसूदन शर्मा ने यज्ञमधुसूदन में लिखा है कि समुद्र के किनारे, नदी किनारे, संगम पर, शिवालय में, उद्यान में, विष्णुमन्दिर

में, देवखात (अथवा पुष्करिणी) के निकट अथवा घर के ईशान भाग में मण्डप निर्माण करना चाहिये। उपर्युक्त ग्रन्थ में विश्वम्भरशास्त्र को उद्धृत करते हुए लिखा गया है कि यदि घर के पास मण्डप बनाना हो अथवा दो मण्डप बनाने हों तो उस घर के नाप के बराबर दूरी छोड़कर अथवा पूर्व मण्डप के बराबर दूरी छोड़कर दूसरा मण्डप बनाना चाहिये। यथा -

समुद्रगा नदीतीरे संगमे वा शिवालये।
आरामे विष्णुगेहे वा देवखातादिसन्निधौ॥

गृहस्येशानभागे वा मण्डपं रचयेद् दृढम्॥[86]

धाम्नो धाम्नान्तरं त्यक्त्वा धामाग्रे यज्ञमण्डपः।
मण्डपान्तरमुत्सृत्य कर्तव्यं मण्डपद्वयम्॥[87]

मण्डपनिर्माण के लिये भूमि की आठ प्रकार से परीक्षा करने का विधान किया गया है - (1) विकार दृष्टि से, (2) प्रवणता, (झुकाव), (3) द्रव्यतः, (4) स्पर्शतः, (5) रूपतः, (6) रसतः, (7) गन्धतः, (8) शल्यतः।

मण्डप भूमि की विकार परीक्षा के संबंध में कहा गया है -

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीका रोहिणी तथा।

दूरतः परिवर्ज्या भूः कर्तुरायुर्धनापहा॥

स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी।

सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुभीतिदा॥[88]

भूमि की प्रवण परीक्षा से तात्पर्य है कि भूमि का झुकाव किस दिशा अथवा कोण की ओर है। कर्ता के लिये कुछ दिशाएं शुभ व कुछ अशुभ मानी गई हैं। तदनुसार भूमि की प्रवणता से लाभ अथवा हानि होती है। इस विषय में कहा गया है -

ईशकोणप्लवा सा च कर्तुः श्रीदा सुनिश्चितम्।
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी बलदा तूत्तरप्लवा॥

विद्वेषं मरणं व्याधिं कुर्यादग्निप्लवा मही।
धर्मराजप्लवा भूमिर्नित्यं मृत्युभयप्रदा॥

गृहक्षयकरी सा च भूमिर्या नैर्ऋतप्लवा।
धनहानिकरी पृथ्वी कीर्त्तिदा वरुणप्लवा॥

वातप्लवा तथा भूमिर्नित्यमुद्वेगकारिणी॥[89]

द्रव्य की दृष्टि से मण्डप भूमि की परीक्षा निम्न प्रकार से की जाती है-

ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छराकुला।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्व तृणाकुला॥

कुशैः शरैस्तथा काशैर्दूर्वाभिर्या च संभृता।
प्रशस्ता भूर्महाबाहो मण्डपादौ विशेषतः॥[90]

जो भूमि उष्णकाल में शीतस्पर्शवती व शीतकाल में उष्णस्पर्शवती होती है तथा वर्षाकाल में समशीतोष्ण होती है, वह शुभ कही जाती है। यथा-

शीतस्पर्शोष्णकाले च वह्निस्पर्शा हिमागमे।
वर्षासु चोभयस्पर्शा सा शुभा परिकीर्त्तिता॥[91]

यजमान के वर्णानुसार मण्डप के लिये ग्रहण की गई पृथ्वी की समीक्षा की जाती है। यथा-

श्वेता तु ब्राह्मणी पृथ्वी रक्ता वै क्षत्रिया स्मृता।
वैश्या पीता तु विज्ञेया कृष्णा शूद्रा प्रकीर्तिता॥

श्वेतारुणा पीतकृष्णा विप्रादीनां प्रशस्यते।
स्थिरोदका दृढा स्निग्धा भूमिः सर्वसुखावहा॥[92]

भूमि की रस परीक्षा निम्न प्रकार से की जाती है -

ब्राह्मणी घृतगन्धा स्यात् क्षत्रिया रसगन्धिनी।
वैश्या तिक्ता च विज्ञेया शूद्रा स्यात् कटुका च या॥

मधुरा च कषाया च अम्ला च कटुका च या।
विप्रादीनां प्रशस्ता भूर्मण्डपादौ विशेषतः॥[93]

मण्डप निर्माण में सभी वर्णों के लिये निम्न गन्ध वाली भूमि उपयुक्त मानी गई है-

काश्मीरचन्दनामोदा कर्पूरागुरुगन्धिनी।
कमलोत्पलगन्धा च'जातिचम्पक गन्धिनी॥

पाटलामल्लिकागन्धा नागकेसर गन्धिनी।
दधिक्षीराज्यगन्धा च मध्विक्षु रसगन्धिनी॥

सुगन्धि व्रीहिगन्धा च शुभगन्धयुता च या।
सर्वेषामेव वर्णानां भूमिः साधारणा मता॥[94]

मण्डपादि निर्माण से पूर्व भूमि से शल्योद्धरण अवश्य करना चाहिये, क्योंकि भूमि में अस्थि, कांस्य, कङ्काल, पाषाण, भस्म, अङ्गार, तुष, केश इत्यादि हो सकते हैं। भूमि से इन शल्यों को न निकालने पर विभिन्न प्रकार के रोग, शोक, भय इत्यादि हो सकते हैं, अतः धर्मशास्त्रकारों एवं वास्तुकारों का मत है कि पांच हाथ तक भूमि को खोदकर उसका शोधन करना चाहिये। यदि खोदने में जल निकल आये तो शल्यदोष नहीं होता।[95] पुनश्च यह भी उल्लेखनीय है कि ऊंची नीची अथवा विषम भूमि पर मण्डप का निर्माण नहीं किया जा सकता। अतः मण्डप निर्माण से पूर्व भूमि को समतल किया जाना आवश्यक है।

भूमि का समतलीकरण प्रमुखतः दो प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम विधि के अनुसार जलतुलायन्त्र से भूमि को समतल किया जाता है। एक ऊंचे प्राकार वाले बर्तुल पात्र में ऊपर तक जल भर कर भूतल पर चलाया जाता है। जहाँ जल गिरने लगे वहाँ भूमि को नीची समझकर मिट्टी डालनी चाहिये अथवा दूसरी ओर से मिट्टी निकालकर भूमि को समतल करना चाहिये। दूसरी विधि के अन्तर्गत तीन बराबर के डण्डों को परस्पर जोड़कर एक समत्रिभुज बना लिया जाता है। उसके शिरोधेय कोण में पिरोया गया, नीचे भार बँधा हुआ एक लम्ब सूत्र लटका दिया जाता है। नीचे के दण्ड के मध्य भाग में छिद्र बनाकर चिह्न बना दिया जाता है। यन्त्र को भूमि पर रखने पर यदि लम्ब सूत्र मध्य चिह्न पर होता है, तो भूमि को समतल समझना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता है, तो भूमि को समतल करना चाहिये।[96] ''दिक् साधन'' के लिये भी भूमि का समतल होना अत्यावश्यक है।

भूमि समतलीकरण हेतु प्रयुक्त दोनों यन्त्रों को चित्र में निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है।

चित्र संख्या एक –
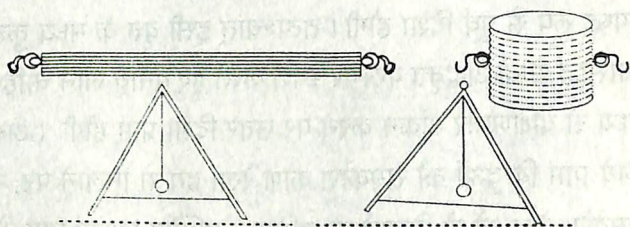
मण्डप निर्माण में दिशाओं के समुचित ज्ञान हेतु एक शङ्कु अग्र भाग में नुकीला, सीधा एवं मूल में पृथुल, बारह अंगुल का बनाया जाना चाहिये। यह इस प्रकार का होना चाहिये कि भूमि पर रखने पर स्थिर एवं सीधा रखा जा सके। इस शंकु का नीचे का कुछ भाग (बारह अंगुल से अधिक) ऐसा नुकीला भी बनाया जा सकता है, जो भूमि में गाड़ा जा सके।

तत्पश्चात् $11\frac{3}{4}$ अंगुल के व्यासार्द्ध से वृत्त बनाकर उसके मध्य उपर्युक्त शङ्कु को स्थापित कर उसकी चारों दिशाओं में $12\frac{1}{4}$ अंगुल प्रमाण ऊंची, मध्य शङ्कु के सिर की सीध में चार शङ्कु आरोपित करने चाहिये। यदि इनके सिरे मध्य शङ्कु की सीध में है तभी वह शङ्कु दिक् साधन के लिये उपयोगी होता है।

अथवा नौ अङ्गुल के व्यासार्द्ध से एक वृत्त बनाकर मध्य में बारह अङ्गुल का शङ्कु स्थापित कर दक्षिण-उत्तर की ओर अथवा वृत्त की रेखा के सहारे एक हाथ ऊंची बराबर की दो समीकरणयष्टि स्थापित करनी चाहिये। इन दोनों यष्टियों के ऊपर एक हाथ की लम्बपट्टिका बराबर रूप से रखी जानी चाहिये। इस लम्ब पट्टिका के दोनों किनारों पर अधोभार युक्त दो लम्ब सूत्र बराबर से लगाने चाहिये। लम्ब पट्टिका के मध्य भाग में भी एक छोटा लम्ब सूत्र होगा। यदि वह लम्ब सूत्र शंकु की सीध में है तो शंकु की स्थापना उचित प्रकार से की गई माननी चाहिये।

तत्पश्चात् वृत्त में मध्यम शंकु की छाया वृत्त रेखा के जिस स्थान पर पड़ती है अथवा जहाँ से बाहर निकलती है उन दोनों स्थानों पर चिह्न बना देना चाहिये। दूसरे दिन भी उपर्युक्त रीति से दो चिह्न बनाकर, दोनों दिन के चिह्न में प्राप्त अन्तर को तीन या चार भागों में बाँटकर उनको चिह्नित करना चाहिये। छाया आदि के द्वारा प्रवेश और निर्गमन की अन्तराल घटियाँ प्राप्त कर उन घटियों से गुणा कर वे अन्तराल भाग छह से भाग दिये जाने चाहिये। लब्धांशों से पूर्व दिन किया गया पूर्वभागस्थित पूर्वदिक् बिन्दु दक्षिणायन में दक्षिण से चालित किया जाता है और उत्तरायण में उत्तर से चालित किया जाता है। वह स्पष्ट रूप से पूर्व दिशा होगी। तत्पश्चात् इसी वृत्त के मध्य कुछ दूरी से $11\frac{3}{4}$ शंकु व्यासार्द्ध से दो अर्द्धवृत्त परस्पर स्पर्श करते हुए बनाये जाने चाहिये। इस मत्स्याकृति के मध्य से दक्षिणोत्तर अंकन करने पर उत्तर दिशा प्राप्त होगी । अब पूर्व व उत्तर दिशा के लिये प्राप्त बिन्दुओं को समकोण कोण रेखा द्वय से मिलाने पर, दूसरी ओर वैसी ही दो समकोण रेखाओं से मिलाने पर दक्षिण व पश्चिम दिशाएं प्राप्त होंगी । चित्र में उपर्युक्त

स्थिति को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में दिक् साधन की अन्य तारामूलक व शङ्कुमूलक विधियाँ भी प्राप्त हैं, किन्तु विस्तार भय से उनका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है।

चित्र संख्या – दो
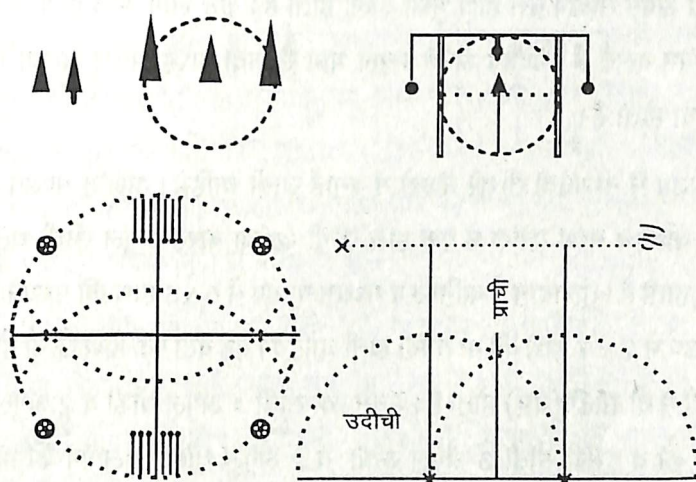
''कुण्डमण्डपसिद्धि'' के अनुसार दिशा ज्ञान के उपरान्त वृत्त पर से चतुरस्र क्षेत्र बनाने के लिये पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण दिशा को बताने के लिये जो- जो चिह्न हैं और चिह्नों पर जो शंकु गाड़े गये हैं, उनमें पूर्व और दक्षिण के शंकु में 16 हाथ की रस्सी से फंदा लगाकर अग्निकोण की तरफ खींचे, दक्षिण व पश्चिम के शंकु में फंदा लगाकर नैर्ऋत्य कोण की तरफ खींचे, पश्चिम व उत्तर के शंकु में फंदा लगाकर वायव्य कोण की तरफ तथा उत्तर व पूर्व के शंकु में फंदा लगाकर ईशान कोण की तरफ खींचे तो चतुरस्र क्षेत्र सिद्ध होता है।

''कुण्डमण्डपसिद्धि'' में पंचरात्र के आधार पर दस व बारह हाथ का मण्डप कनिष्ठ, बारह हाथ व चौदह हाथ का मण्डप मध्यम तथा सोलह हाथ एवं अठारह हाथ का मण्डप उत्तम बताया गया है। वहाँ तुलादान में उत्तम मण्डप बीस हाथ का माना गया है।[96] मण्डप का आकार चतुरस्र (वर्गाकार) कहा गया है। किन्तु ''भगवन्तभास्कर'' ने

पंचरात्र का ही उद्धरण देते हुए दस हाथ के मण्डप को कनिष्ठ, बारह हाथ के मण्डप को मध्यम व सोलह हाथ के मण्डप को उत्तम बताया है।[97]

''कुण्डनिर्माणस्वाहाकारपद्धति'' के अनुसार उत्तम मण्डप बत्तीस, चौबीस, बीस, अठारह अथवा सोलह हाथ भुजा वाला, मध्यम मण्डप चौदह अथवा बारह हाथ भुजा वाला तथा अवम मण्डप दस हाथ भुजा वाला होता है। कुछ लोग आठ हाथ के मण्डप को भी अवम कहते हैं। मण्डप अपने स्थल भाग से सदा बारह अंगुल अथवा चौबीस अंगुल ऊँचा होता है।

मण्डप में मध्यवेदी तीसरे हिस्से में बनाई जानी चाहिये। अर्थात् मण्डप को नौ कोष्ठों में बाँटकर मध्य कोष्ठ में एक हाथ ऊँची अथवा बारह अंगुल ऊँची चतुष्कोण मध्य वेदी होती है। तुलादान में कनिष्ठ व मध्यम मण्डप में 5 x5 हाथ की मध्यवेदी और उत्तम मण्डप में 7 x 7 हाथ की मध्यवेदी होनी चाहिये। यह वेदी एक हाथ ऊँची होती है। प्रधान वेदी में दो सीढी (वप्र) होती हैं। उनमें एक सीढी 1 अंगुल चौड़ी व 2 अंगुल ऊँची सफेद रंग की व दूसरी सीढी 3 अंगुल ऊँची व 2 अंगुल चौड़ी लाल रंग की होती है। मण्डप के ईशान भाग में ग्रहवेदी 1 x 1 x 1 हाथ की तीन सीढी वाली बनानी चाहिये। इसी प्रकार की अग्निकोण में योगिनी वेदी, नैर्ऋत्य कोण में वास्तुवेदी और वायव्य कोण में क्षेत्रपाल वेदी बनाई जानी चाहिये। इन सभी वेदियों में प्रथम सीढी 2 अंगुल चौड़ी व 2 अंगुल ऊँची सफेद रंग की मध्य सीढी 2 अंगुल चौड़ी 3 अंगुल ऊँची लाल रंग की एवं अन्तिम नीचे वाली सीढी 2 अंगुल चौड़ी व तीन अंगुल ऊंची काले रंग की बनाई जानी चाहिये।[98]

''कुण्डनिर्माणस्वाहाकारपद्धति'' के अनुसार यज्ञ मण्डप के स्तम्भ यज्ञिय वृक्ष के अथवा बांस के अथवा अन्य पवित्र वृक्ष के लगाने चाहिये। ''यज्ञमधुसूदनः'' के अनुसार यज्ञ मण्डप के स्तम्भ जामुन, मधूक, साल आदि की ठोस लकड़ी के सीधे , समान, बारह अंगुल मोटे चतुरस्त्र या वर्तुल होने चाहिये। सोलह स्तम्भों में से मध्य वेदी के कोणों पर लगने वाले चार स्तम्भ आठ हाथ ऊंचे होंगे अथवा मण्डप के विस्तार के आधे अर्थात् आठ हाथ या नौ हाथ ऊंचे होंगे। इन स्तम्भों को मण्डप के मध्य बिन्दु से

मण्डप के आधे परिमाण अर्थात् सोलह हाथ का मण्डप हो तो मध्य बिन्दु से आठ हाथ आगे चारों कोनों में गाड़ना चाहिये। मण्डप की बाह्य परिधि में स्तम्भ गाड़ने के लिये मण्डप के दक्षिण, उत्तर , पूर्व व पश्चिम के जो तीन-तीन भाग किये गये हैं, वहां-वहां अग्नि कोण से प्रारम्भ करके 12 स्तम्भों को गाड़ना चाहिये। ये स्तम्भ 5-5 हाथ के होंगे । सभी 16 स्तम्भों का पांचवाँ भाग भूमि में गाड़ा जायेगा। यह भाग उपर्युक्त बताये गये भाग से अधिक होगा। ये सभी स्तम्भ चूड़ायुक्त होंगे। चूड़ा भाग भी स्तम्भमान के अतिरिक्त होगा। स्तम्भों की चूड़ाओं पर दोनों ओर छिद्रयुक्त वलिका नाम तिरछी लकड़ियाँ स्थापित की जायेंगी।[99] प्रतिष्ठा महोदधिः के अनुसार पूर्व, पश्चिम, दक्षिण व उत्तर में दो-दो **बलिकाएं = 8 बलिकाएं** एवं चार कोनों पर चार बलिकाएं स्थापित की जायेंगी और इन सबको मूंज से बाँधा जायेगा।[100]

''कुण्डनिर्माणस्वाहाकारपद्धतिः'' के अनुसार यज्ञमण्डप के सोलह स्तम्भों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, गणेश, यम, नागराज, स्कन्द, वायु, सोम वरुण, अष्टवसु, धनद (कुबेर), बृहस्पति और विश्वकर्मा- इन सोलह देवताओं का स्थापन होता है।[101]

मण्डप की चारों दिशाओं में चार द्वार बनाये जाने चाहिये । इस विषय में धर्मशास्त्रकारों की मान्यता है कि कनिष्ठ मण्डप में 2 हाथ चौड़े व 4 हाथ ऊंचे द्वार, मध्यम मण्डप में दो हाथ 4 अंगुल चौड़े व पांच हाथ ऊँचे द्वार व उत्तम मण्डप में दो हाथ आठ अंगुल चौड़े व पांच हाथ ऊंचे द्वार बनाये जाने चाहिये।[102]

''प्रतिष्ठा-महोदधि के अनुसार द्वार निर्माण के लिये आठ लकड़ी पांच हाथ लम्बी व आठ लकड़ी द्वार के देहरी व उतरन के लिये दो हाथ आठ अंगुल लम्बी और आवश्यक होंगी। मण्डप के शिखर निर्माण के लिये लकड़ी के एक लट्टू या शिखर की भी आवश्यकता होगी। अब इस मण्डप पर कोमल बांस, चटाई या फूस इत्यादि से छाजन चारों द्वारों को छोड़कर बना देनी चाहिये। चारों द्वारों के लिये अलग से किवाड़ रूप में टाटी बनेगी।[103]

''कुण्डमण्डपसिद्धिः'' के अनुसार मण्डप के एक हाथ बाहर पूर्व आदि दिशाओं

में तोरणद्वार बनाये जायेंगे। कनिष्ठ मण्डप में पूर्व दिशा में वट या पीपल का 5 हाथ लम्बा 2 हाथ चौड़ा मध्यम मण्डप में 6 हाथ लम्बा-2 हाथ 6 अंगुल चौड़ा तोरण द्वार बनाना चाहिये। उपर्युक्त नाप से ही दक्षिण में गूलर का, पश्चिम में पीपल या पाकड़ का, उत्तर में पाकड़ या वट का तोरण द्वार बनाया जाना चाहिये। इनका भी पाँचवां भाग (अर्थात् एक हाथ कनिष्ठ में व एक हाथ चार अंगुल छह यव मध्यम में) जमीन में गाड़ना चाहिये। उत्तम मण्डप में सात हाथ लम्बा व साढे तीन हाथ चौड़ा तोरण द्वार बनेगा, जिसका एक हाथ चार अंगुल चार यव छह यूका भाग जमीन में गड़ेगा ।[104] यह व्यवस्था भी दी गई है कि चारों काष्ठ न मिलें, तो किसी भी लकड़ी का अथवा शमी अथवा जामुन अथवा खैर या ताल वृक्ष की लकड़ी का तोरण द्वार बनाना चाहिये।[105] तोरण के स्तम्भों पर स्तम्भों की लम्बाई का आधा काष्ठ फलक स्तम्भों की चूड़ा पर धारण करवाना चाहिये। यह फलक कनिष्ठ, मध्यम व उतम मण्डप के क्रम से क्रमशः $2\frac{1}{2}$ हाथ, 3 हाथ व $3\frac{1}{2}$ हाथ का होगा। इसके ऊपर मध्य भाग में शिव याग में त्रिशूल दिया जायेगा, जो कनिष्ठ मण्डप में 9 अंगुल लम्बा व $2\frac{1}{4}$ अंगुल चौड़ा होगा तथा 2 अंगुल तोरण में गाड़ा जायेगा। मध्यम मण्डप में 11 अंगुल लम्बा व $2\frac{3}{4}$ अंगुल चौड़ा होगा व 3 अंगुल गाड़ा जायेगा। उत्तम मण्डप में 13 अंगुल लम्बा व $3\frac{1}{4}$ अंगुल चौड़ा होगा व 4 अंगुल तोरण में गाड़ा जायेगा। विष्णु याग में चारों तोरण द्वारों के ऊपर क्रमशः पूर्व में शङ्ख, दक्षिण में चक्र, पश्चिम में गदा और उत्तर में पद्म लगाना चाहिये। शंख उत्तम मण्डप में 14 अंगुल लम्बा और $3\frac{1}{2}$ अंगुल चौड़ा; मध्यम मण्डप में 12 अंगुल लम्बा, 3 अंगुल चौड़ा; अधम मण्डप में 10 अंगुल लम्बा, $2\frac{1}{2}$ अंगुल चौड़ा होगा।[106]

कुण्डनिर्माणस्वाहाकारपद्धति के अनुसार यज्ञ मण्डप के सभी स्तम्भों पर अच्छे वस्त्र लपेटने चाहिये । सोलह स्तम्भों पर निम्न प्रकार के रंगीन वस्त्र लगाने चाहिये- मण्डप के भीतर वाले चार स्तम्भों में ईशान कोणस्थ में लाल अग्निकोणस्थ में सफेद, नैर्ऋत्य कोणस्थ में काला एवं वायव्य कोणस्थ स्तम्भ में पीला वस्त्र ही होना चाहिये।[107]

मण्डप के बाहरी बारह स्तम्भों पर निम्न रंगों के वस्त्र लपेटने चाहिये- ईशान

कोण का स्तम्भ- लाल वस्त्र, ईशान और पूर्व का मध्य स्तम्भ-सफेद वस्त्र, पूर्व और अग्निकोण का मध्य स्तम्भ काला वस्त्र, अग्निकोण का स्तम्भ काला वस्त्र, अग्निकोण और दक्षिण का मध्य स्तम्भ- सफेद वस्त्र, दक्षिण और नैर्ऋत्य कोण का मध्य स्तम्भ- धूम्रवस्त्र, नैर्ऋत्य कोण का स्तम्भ सफेद वस्त्र, नैर्ऋत्य व पश्चिम का मध्य स्तम्भ- सफेद वस्त्र, पश्चिम और वायव्य कोण का मध्य स्तम्भ- सफेद वस्त्र, वायव्य कोण का स्तम्भ-पीला वस्त्र, उत्तर और वायव्य कोण का मध्य स्तम्भ- पीला वस्त्र, उत्तर और ईशान कोण का मध्य स्तम्भ- लाल वस्त्र ।[108]

स्तम्भों को स्पर्श करते हुए कोमल पत्तों से युक्त कदली स्तम्भों को द्वारों पर लगाना चाहिये। आम के पत्तों की वन्दनवार बनाकर मण्डप को वेष्टित करना चाहिये। मण्डप में ऊपर की ओर पंचरंगा अथवा सफेद चन्दोवा लगाना चाहिये।[109]

पूर्व द्वार के तोरण में पीला वस्त्र, दक्षिण द्वार के तोरण में काला वस्त्र, पश्चिम द्वार के तोरण में सफेद वस्त्र एवं उत्तर द्वार के तोरण में पीला वस्त्र लगाना चाहिये।[110]

मण्डप की सभी दिशाओं में ध्वजा व पताका रोपण भी करना चाहिये। ध्वजा त्रिकोण, 2 हाथ चौड़ी व 5 हाथ लम्बी, दिशाओं के वाहन व रंग से युक्त तथा दस हाथ के बांस के सिर पर लगी हुई होनी चाहिये। पताका दिशाओं के आयुध एवं रंग से युक्त एक हाथ चौड़ी व 7 हाथ लम्बी, दस हाथ के बांस पर लगी होनी चाहिये। किसी-किसी के मत से ध्वजा एक हाथ लम्बी व एक बालिश्त चौड़ी व पताका भी उसी नाप की बनानी चाहिये। ध्वजा व पताकाओं के सभी बांसों को पंचमांश अर्थात् दो हाथ भूमि में गाड़ना चाहिये।[111]

ध्वज व पताका के निवेशन को सारिणी के माध्यम से निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है -

क्र.सं	दिशा	ध्वज व पताका वर्ण	देव	ध्वजांकित वाहन	वर्ण	पताकांकित आयुध	वर्ण
1.	पूर्व	पीत	इन्द्र	हस्ति	श्वेत	वज्र	रक्त

2. अग्निकोण	रक्त	अग्नि	मेष	श्वेत	शक्ति	पीत
3. दक्षिण	कृष्ण	यम	महिष	रक्त	दण्ड	रक्त
4. नैर्ऋत्य	नील	निर्ऋति	सिंह	श्वेत	खड्ग	रक्त
5. पश्चिम	श्वेत	वरुण	मत्स्य	धूम्र	पाश	धूम्र
6. वायव्य	धूम्र या हरित	वायु	मृग	कृष्ण	अंकुश	रक्त
7. उत्तर	श्वेत या हरित	सोम	अश्व	सुवर्ण तुल्य	गदा	पीत
8. ईशान	श्वेत	ईशान	वृषभ	रक्त	त्रिशूल	कृष्ण
9. ईशान पूर्व मध्य	रक्त	ब्रह्मा	हंस	श्वेत	कमण्डलु	रक्त या पीत
10. नैर्ऋत्य पश्चिम मध्य	श्वेत या कृष्ण	अनन्त	गरुड़	पीत	चक्र	चित्र विचित्र

मण्डप के मध्य अथवा ईशान कोण में एक पंचवर्ण ध्वज, दस हाथ लम्बा[1] तीन हाथ चौड़ा अथवा 5 x 3 माप वाला लगाना चाहिये। इसमें वृषभ चित्रित होना चाहिये। इसके कोने पर छोटी घंटियाँ या घुंघरू लगाने चाहिये। चंवर बाँधना चाहिये। इसका बांस 10,16,21 अथवा 32 हाथ का होना चाहिये।

यज्ञ मण्डप के बाहर दश पताकाओं व दश ध्वजों के साथ दश कलशों की स्थापना उपर्युक्त देवों अथवा दिक्पालों हेतु होती है। मण्डप के चारों द्वारों पर भी दो-दो कलश होते हैं, जिन्हें द्वारकलश कहते हैं। इस प्रकार यज्ञ मण्डप के अठारह कलश होते हैं।[112]

इस प्रकार उपर्युक्त मण्डप को चित्र में प्रदर्शित किया जा सकता है -

चित्र संख्या तीन :

पूर्व
तोरणद्वार
ग्रहवेदी
रुद्रकलश
योगिनीवेदी
वसोर्द्धारा
षोडशमातृ
वरुण कलश
हाथ गणेश
हवनकुंड
प्रधान वेदी
सर्वतो
लिङ्गतोबा
राज्याधिवाश
क्षेत्रपालवेदी
वास्तु कलश
जन्माधि-
वास
वास्तु वेदी
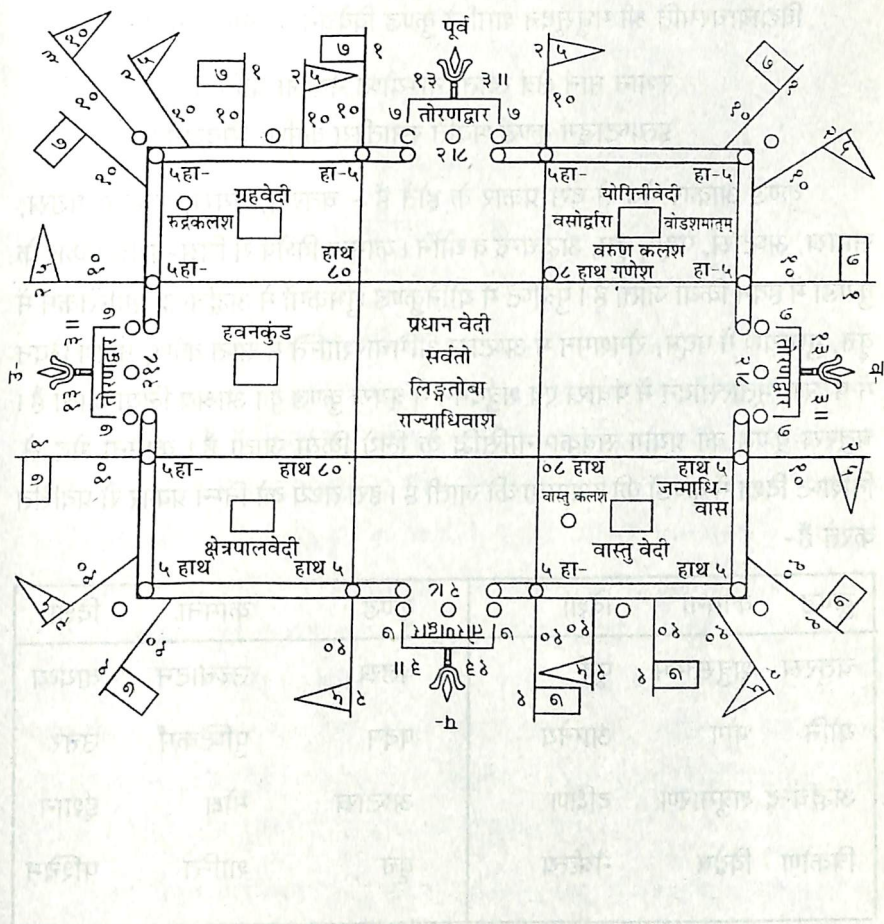
: दान-कुण्ड विवेचन :

विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन शर्मा ने कुण्ड विवेचन के आठ अंग माने हैं-

स्थानं मानं क्षेत्रं खातो नाभ्योष्ठ मेखला योनिः।
इत्यष्टाङ्गं कुण्डं भवति स्मार्तस्य कर्मणः सिद्धये ॥[113]

कुण्ड आकार भेद से दस प्रकार के होते हैं - चतुरस्र, त्र्यस्र, पंचास्र, षडस्र, सप्तास्र, अष्टास्र, पद्म, वृत्त, अर्द्धचन्द्र व योनि। कामना विशेष से भिन्न- भिन्न प्रकार के कुण्डों में हवन किया जाता है। पुत्रेष्टि में योनिकुण्ड शुभकर्मों में अर्द्धचन्द्र, शान्तिकर्म में वृत्त, पुष्ट्यर्थ में पद्म, रोगशमन में अष्टास्र अभिचारशान्ति में सप्त कोण, मारण छेदन में षडस्र, भूतोत्सादन में पंचास्र एवं शत्रुदमन में त्र्यस्र कुण्ड का आश्रय लिया जाता है। चतुरस्र कुण्ड का प्रयोग सर्वकामनासिद्धि के लिये किया जाता है। कामना भेद से विशिष्ट दिशा में कुण्डों की स्थापना की जाती है। इस तथ्य को निम्न प्रकार से प्रदर्शित करते हैं-

कुण्ड	कामना	दिशा	कुण्ड	कामना	दिशा
चतुरस्र	शत्रुस्तम्भ	पूर्व	षडस्र	उच्चाटन	वायव्य
योनि	भोग	आग्नेय	पद्म	पुष्टिकर्म	उत्तर
अर्द्धचन्द्र	शत्रुमारण	दक्षिण	अष्टास्र	मोक्ष	ईशान
त्रिकोण	विद्वेष	नैर्ऋत्य	वृत्त	शान्ति	पश्चिम

सर्व कामनाओं वाले को नवकुण्डी यज्ञ करना चाहिये एवं पूर्वादि क्रम से चतुरस्रादि कुण्डों की व्यवस्था करनी चाहिये। एक कुण्डी यज्ञ में सभी कामनाओं हेतु वेदी के पश्चिम में चतुरस्र या वृत्त कुण्ड, द्विकुण्डी में दक्षिण-पश्चिम में, त्रिकुण्डी में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम में, चतुष्कुण्डी में पूर्वादि क्रम से चारों दिशाओं में क्रमशः चतुरस्र अर्द्धचन्द्र, वृत्त व पद्म, पंचकुण्डी में पूर्वादि क्रम से पूर्ववत् एवं ईशान में चतुरस्र या वृत्त कुण्ड बनाया जाना चाहिये। नित्यनैमित्तिक कार्यो में वर्णभेद से भी कुण्डों की व्यवस्था की जाती है। ब्राह्मण के लिये चतुरस्र पूर्व में, क्षत्रिय के लिये वृत्त पश्चिम में, वैश्य के लिये अर्द्धचन्द्र दक्षिण में एवं सत्शूद्र के लिये त्रिकोणकुण्ड नैर्ऋत्य दिशा में बनाये जाते हैं।[114]

भगवन्त भास्कर में उद्धृत नारदीय संहिता के अनुसार कुण्ड और वेदी का अन्तर सवा हाथ का व कुण्ड और पीठ का अन्तर बीस अंगुल का होना चाहिये-

कुण्डवेद्यन्तरं चैव सपादकरसंमितम्।
विंशाङ्गुलं प्रकर्तव्यमन्तरं कुण्डपीठयोः ॥[115]

मतान्तर से यह अन्तर तेरह अङ्गुल का भी हो सकता है-

वेदिभित्तिं परित्यज्य त्रयोदशभिरंगुलैः।
हस्तमात्राणि कुण्डानि चतुरस्राणि सर्वतः ॥[116]

कुण्ड का मान आहुति दिये जाने वाले द्रव्य के परिमाण के अनुसार होता है। आहुति दिया जाने वाला द्रव्य दो प्रकार का होता है - स्थूल द्रव्य एवं सूक्ष्म द्रव्य। स्थूल द्रव्य की आहुति में ''स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्याय'' के अनुसार दस होम में पदमात्र (अर्थात् 12 अंगुल का), पचास आहुति में रत्निमात्र (अर्थात् 21 अंगुल का), सौ आहुति में अरत्निमात्र (अर्थात् 22 अंगुल 4 यव का), सहस्र आहुति में एक हाथ (अर्थात् 24 अंगुल)का अयुत आहुति में दो हाथ (34 अंगुल) का, पांच अयुत आहुति में तीन हाथ (अर्थात् 41 अंगुल 5 यव)का, लक्षाहुति में चार हाथ (अर्थात् 48 अंगुल) का, प्रयुताहुति में छह हाथ (अर्थात् 58 अंगुल 7 यव) का, पंचप्रयुताहुति में सात हाथ (अर्थात् 63 अंगुल 4 यव) का, कोट्याहुति में आठ हाथ (अर्थात् 67 अंगुल 6 यव) का कुण्ड बनाना चाहिये। इससे अधिक आहुति होने पर भी कुण्ड मान में वृद्धि नहीं की जाती । दश कोट्याहुति में आठ हाथ का ही कुण्ड बनेगा।[117]

कतिपय धर्मशास्त्रकारों के मत से एक लाख आहुति में एक हाथ, दो लाख में दो हाथ एवं इसी क्रम से दस लाख में दस हाथ तक का कुण्ड बनाया जा सकता है, किन्तु कोटि होम में भी दस हाथ का ही कुण्ड होगा। सूक्ष्म द्रव्य की आहुति में यह हस्त प्रमाण- मान्य होता है।[118]

कुण्डों का आकार प्रकार ही क्षेत्र होता है। कुण्ड अपने आकार से जितने क्षेत्र को आक्रान्त करता है, वही उसका क्षेत्र होता है। चतुरस्र कुण्ड सभी कामनाओं को देने वाला एवं अन्य सभी कुण्डों का प्रकृति स्वरूप होता है। कुण्ड के भुजमान के बराबर गज लेकर, चारों तरफ (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) एक सा नाप लेकर नापने से चतुरस्र कुण्ड तैयार होता है।[119]

योनिकुण्ड बनाने के लिये चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र में दक्षिणोत्तर आधे पर एक लम्बी रेखा देनी चाहिये। तत्पश्चात् पश्चिम भाग के आधे भाग के दो हिस्से पूर्व और पश्चिम की तरफ कर, फिर उसके आधे भाग में अर्थात् एक कोने में दूसरे कोने तक एक तिर्यक् रेखा देकर पुनः दूसरे कोने से भी इसी प्रकार रेखा खींचनी चाहिये। इस प्रकार दोनों आधों में चार तिर्यक् रेखाए होंगी । तदुपरान्त पूर्वनिर्मित चतुरस्र के ठीक पूर्व दिशा की तरफ से मध्य में पाँच अङ्गुल एक यव और दो यूका बढाकर, चतुरस्र के दक्षिण दिशा के मध्य बिन्दु से एक तिर्यक् रेखा बढ़ी हुई रेखा से मिलाकर, उसी प्रकार उत्तर की तरफ से भी एक तिर्यक् रेखा द्वारा बढ़ी हुई रेखा को मिला देना चाहिये। तत्पश्चात् परकार को दक्षिण की तरफ और उत्तर की तरफ बने हुए दोनों भागों के ठीक मध्य से अलग-अलग घुमाकर पश्चिम भाग के ठीक मध्य की तरफ मिला देना चाहिये। इसी प्रकार उत्तर की तरफ से परकार द्वारा पश्चिम दिशा के ठीक मध्य से मिलाने से योनिकुण्ड तैयार हो जाता है।

अर्द्धचन्द्र कुण्ड बनाने के लिये चौबीस अंगुल का चतुरस्र बनाकर, उस चतुरस्र से पूर्व दिशा से ढाई अंगुल हटाकर (पंचकुण्डी पक्ष में उत्तर दिशा के ठीक मध्य की तरफ से ढाई अंगुल हटाकर) दक्षिणोत्तर एक लम्बी रेखा देकर, उस रेखा के मध्य से साढे उन्नीस अंगुल परकार से नापकर तिर्यक् रेखा देने से अर्द्धचन्द्र कुण्ड बन जाता है।

त्रिकोण कुण्ड बनाने के लिये चौबीस अंगुल के चतुरस्र के बाहर पश्चिम की तरफ से वायव्य कोण और नैर्ऋत्य कोण की तरफ छह-छह अंगुल बढा देना चाहिये। तदनन्तर पूर्व निर्मित चतुरस्र के ठीक पूर्व दिशा के मध्य से आठ अंगुल लम्बी रेखा सीधी पूर्व दिशा की तरफ बढाकर, फिर वायव्य कोण में बढ़ी हुई रेखा के अन्तिम छोर से एक तिर्यक् रेखा देनी चाहिये, जो पूर्व दिशा में बढ़ी हुई रेखा में मिले। इसी प्रकार नैर्ऋत्य कोण से भी रेखा देने से त्रिकोण कुण्ड बनता है।

चौबीस अङ्गुल के चतुरस्र के ठीक मध्य से साढे तेरह अंगुल का परकार लेकर गोलाकार घुमाने पर वृत्तकुण्ड तैयार हो जाता है।

विषमषडस्र कुण्ड बनाने के लिये चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र के ऊपर अठारह अङ्गुल, दो यव का एक वृत्त बनाकर उस वृत्त में छः निशान बराबर - बराबर के लगा देने चाहिये। अर्थात् एक तिर्यक् रेखा उत्तर दिशा से पूर्व दिशा के समीप

दक्षांस में मिला दें, एक तिर्यक् रेखा उत्तर दिशा की पहली रेखा के समीप सटी हुई से पश्चिम दिशा के समीप पुच्छ से मिला दें, पुनः दक्षिण से एक तिर्यक् रेखा पूर्वदिशा के समीप मुख से मिला दें, तदनन्तर एक तिर्यक् रेखा दक्षिण दिशा से पश्चिम दिशा के समीप वाम श्रोणी में मिला दें व एक तिर्यक् रेखा उत्तर की ओर वाम श्रोणी से पूर्व की ओर मिला दें, तो विषम षडस्र कुण्ड तैयार हो जाता है।

समषडस्र कुण्ड बनाने के लिये चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर, उस चतुरस्र के ऊपर चौदह अङ्गुल, सात यव और दो यूका का एक वृत्त बना दें पुनः उस वृत्त में बराबर-बराबर के छः चिह्न कर देने एवं उन चिह्नों से परस्पर रेखाओं को मिला देने से समषडस्र कुण्ड बन जाता है।

पद्म कुण्ड बनाने के लिये चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर, उस चतुरस्र के ठीक मध्य से एक परकार द्वारा तीन अंङ्गुल का वृत्त बनायें, पुनः छः अङ्गुल का दूसरा वृत्त उसी के ऊपर बनायें, फिर नौ अङ्गुल का तीसरा और बारह अङ्गुल का चतुर्थ गोलाकार वृत्त उसी बिन्दु से बनायें। पुनः साढ़े चौदह अङ्गुल (चौदह अङ्गुल, सात यव और तीन यूका) का पांचवां वृत्त भी उसी बिन्दु से बनायें । तदनन्तर प्रारम्भ के दो वृत्त । (तीन और छह अङ्गुल) को छोडकर चारों दिशाओं में एक-एक चिह्न करें। पुनः चारों दिक् कोणों में एक-एक चिन्ह करें। इस प्रकार आठ चिह्न होंगे। तत्पश्चात् इन आठों चिह्नों के मध्य एक-एक चिह्न और करें । इस प्रकार बराबर-बराबर के सोलह चिह्न होंगे। फिर उत्तर दिशा में एक-एक चिह्न छोड़ते हुए पद्माकार रेखा देने से पद्म कुण्ड का निर्माण हो जाता है।

विषम अष्टास्र कुण्ड बनाने के लिये चौबीस अङ्गुल के चतुरस्र के ठीक मध्य से अठारह अङ्गुल, पांच यव और एक यूका अर्थात् साढे अठारह अङ्गुल का एक गोलाकार वृत्त बनाकर, उस वृत्त में पूर्व दिशा के समीप दक्षांस से एक रेखा सीधी पश्चिम की तरफ पुच्छ अंश से मिला दें। फिर पूर्व दिशा के समीप मुख अंश से एक रेखा पश्चिम दिशा के समीप वामश्रोणी से मिला दें, उत्तर के वामांस अंश से एक रेखा सीधी दक्षिण दिशा के दक्ष पार्श्व से मिला दें, फिर वामपार्श्व से एक रेखा सीधी दक्षिण दिशा के समीप दक्षश्रोणी से मिला दें, पूर्वस्थित दक्षांस से टेढ़ीरेखा वामपार्श्व से मिला दें, पुनः ईशान् और पूर्व के मध्य मुख से एक रेखा टेढ़ी दक्षश्रोणी से मिला दें, पश्चिम दिशा स्थित पुच्छ से एक रेखा टेढी वामांस अंश से मिला दें और वामश्रोणी से एक रेखा टेढी दक्षपार्श्व से मिला दें, तो विषम अष्टास्र कुण्ड तैयार हो जाता है।

सम अष्टास्र कुण्ड बनाने के लिये चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र पर चौदह अङ्गुल दो यव और तीन यूका का एक गोलाकार् वृत्त बनाकर उसमें एक रेखा मुख से प्रारम्भ कर वामांस से मिलावें, वामांस से सीधी रेखा प्रारम्भ कर वाम पार्श्व में मिलावें। वामपार्श्व से प्रारम्भ कर एक रेखा वामश्रोणी से मिलावें । वामश्रोणी से एक रेखा पुच्छ में मिलावें । पुच्छ से एक रेखा दक्षश्रोणी में मिलावें। दक्ष श्रोणी से एक रेखा दक्ष पार्श्व में मिलावें, दक्ष पार्श्व से एक रेखा दक्षांस से मिलावें तथा दक्षांस से एक रेखा सीधी मुख से मिलावें, तो सम-अष्टास्र कुण्ड तैयार हो जाता है।[120]

उपर्युक्त दस प्रकार के कुण्डों के पाँच अङ्ग होते हैं - खात, नाभि, कण्ठ, मेखला एवं योनि। कुण्डों के इन अङ्गों के निर्माण में अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि त्रुटि रहने पर अनेक प्रकार से हानि होने की सम्भावना रहती है। भगवन्तभास्कर ने विश्वकर्मा को उद्धृत करते हुए लिखा है -

खाताधिके भवेद्रोगी हीनधेनुधनक्षयः।
वक्रकुण्डे तु संतापो मरणं छिन्न मेखले॥

मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसङ्क्षयः।
भार्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डे योन्या विना कृते॥[121]

इसी प्रकार सिद्धान्तशेखर में भी कहा गया है -

मानहीने महाव्याधिरधिके शत्रुवर्द्धनम्।
योनिहीने त्वपस्मारो वाक्कुण्ठः कण्ठवर्जिते॥[122]

कुण्ड के लिये भूमि में खनित गहराई को खात कहते हैं। यह कुण्ड के आकार के अनुसार ही होती है, अर्थात् चतुरस्र में चतुरस्र, वृत्त में वृत्त आदि। कुण्ड की खात विस्तार के नाप वाली होती है। जैसे हस्त-प्रमाण कुण्ड में हस्त-प्रमाण खात होगी। कतिपय विद्वानों के मत से इस खात-प्रमाण में मेखला की ऊँचाई भी सम्मिलित होती है। जैसे मेखला नौ अङ्गुल ऊँची है तो खात पन्द्रह अङ्गुल की होगी। किन्तु अधिकांश विद्वान् मेखला को आभूषण स्वरूप मानते हैं। अतः खात (= गहराई) कुण्ड के भुजमान के बराबर ही आवश्यक मानते हैं। पुनश्च मेखलाओं की संख्या व ऊँचाई के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है । अतः यह आवश्यक है कि कुण्ड की खात कुण्ड के भुजमान के बराबर हो।[123]

कुण्ड निर्माण के विषय में कण्ठ और ओष्ठ का तात्पर्य एक ही है। यह कण्ठ अथवा ओष्ठ ''खात'' के बहिर्भाग में खात और मेखला के बीच में चारों ओर से समान होता है। कुण्ड व्यास का चौबीसवां या बारहवां भाग कण्ठ का होता है। साधारणतः चौबीसवां भाग ही कण्ठ के लिये लिया जाता है।[124]

कुण्ड के गर्भ में तत्तत्कुण्डाकार नाभि का निर्माण किया जाता है। इसकी ऊँचाई कुण्ड व्यास का बारहवां भाग व लम्बाई चौड़ाई छठा भाग होती है। इस प्रकार एक हाथ के कुण्ड में नाभि दो अङ्गुल ऊँची, चार अङ्गुल चौड़ी व चार अङ्गुल लम्बी होगी। अनेक विद्वानों का मत है कि योनि कुण्ड में योनि व पद्मकुण्ड में नाभि नहीं बनाई जाती।[125]

कण्ठ के बाह्य भाग में चारों ओर वृत्ताकार मेखला बनाई जाती है। मेखला की संख्या ऊँचाई , चौड़ाई इत्यादि के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। ''स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्याय'' के अनुसार बहुमत से मेखला तीन ही बनाई जाती हैं। उनमें कण्ठ के निकटतम पहली चार अङ्गुल की प्रथमा से बाहर दूसरी तीन अङगुल की व तीसरी दो अङ्गुल की बनाई जाती है। पारिभाषिक रूप से उपर्युक्त प्रमाण निम्न प्रकार से भी माना गया है।

कुण्डषड्भागिका त्वाद्या द्वितीयाऽष्टांशिका स्मृता।
तृतीया द्वादशांशा स्याद् इति कपिंजलपंचरात्रोक्ते।।[126]

यह भी माना गया है कि मेखला की ऊँचाई व चौड़ाई समान होगी। योन्यादि कुण्डों में मेखला योन्यादि आकार की होती है, ऐसी भी मान्यता है।

सामने की मेखला के मध्य भाग में अश्वत्थाकृति अथवा गजोष्ठाकृति की योनि बनाई जाती है। घी की रक्षा के लिये अन्दर छेद से युक्त यह योनि पीछे से ऊँची और आगे से नीची बनाई जाती है। यह कुण्डव्यासार्ध के बराबर लम्बी व व्यास के तीसरे भाग के बराबर चौड़ी होती है एवं एक अंगुल ऊँची होती है। यह एक कुण्ड में एक अङ्गुल प्रवेश करती हुई बनाई जाती है। योनि होता के बिलकुल सामने होती है। होता पूर्व की ओर मुख किये हुए अथवा उत्तर की ओर मुख किये हुए बैठता है । अतः योनि पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बनाई जाती है।

उपर्युक्त प्रकार के स्थान, मान, क्षेत्र, खात, नाभि, कण्ठ, मेखला रूप आठ

अङ्गों पर विचार करते हुए कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। विभिन्न प्रकार के कुण्डों और उनके अङ्गों को चित्र संख्या चार द्वारा इस प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है-

चित्र संख्या चार :
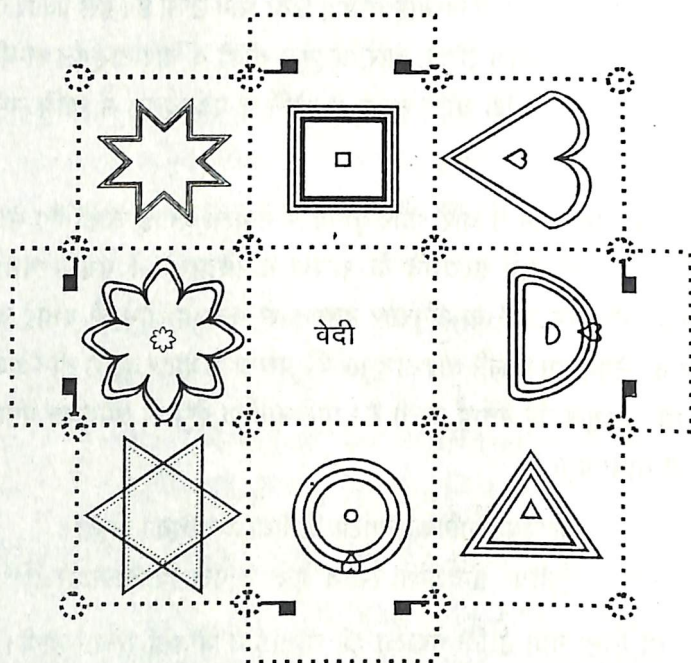
: ग्रह पूजा :

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत मत्स्य पुराण में नवग्रह निम्न प्रकार से बताये गये हैं -

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः।

शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहा नव॥[127]

इस स्थल पर ही उद्धृत स्कन्द पुराण में कहा गया है कि इनके जन्म, जन्मस्थान, गोत्र, वर्ण, रूप, स्थान इत्यादि बिना जाने जो ग्रह शान्ति करता है, मानो वह ग्रहों का अपमान करता है और इनको जानकर जो कार्य करता है, उसका सब कार्य सफल होता

है।[128] वृहत् पराशर स्मृति में ग्रहों के वर्ण और जन्म इस प्रकार बताये गये हैं -

रक्तः कश्यपजो भानुः शुक्लः ब्रह्मसुतो शशी।
पीतो ब्राह्मः सुराचार्यः शुक्लः शुक्रो भृगूद्वहः॥

कृष्णः शनिः रवेः पुत्रः कृ ष्णो राहुः प्रजापतेः।
कृष्णः केतू कृशानूत्थः कृष्णाः पापास्त्रयोऽप्यमी॥[129]

वृहत्पराशरस्मृति में ही जन्मस्थान निम्न प्रकार से बताये गये हैं -

कलिंगोऽर्को यामुनः सोम, आवन्त्यो भौम उच्यते॥

मागधो बुध इत्युक्तः सैन्धवस्तु वृहस्पतिः।
सैन्धवो दानवाचार्यः सौरिः सौराष्ट्रदेशजः॥

राहुः सिंघलदेशोत्थः मध्यदेशभवोऽग्निजः।
जन्म देशा इमे प्रोक्ता ग्रहजातक वेतृभिः॥[130]

दानमयूख में उद्धृत वृद्धपराशर के मत से ग्रहों के गोत्र निम्न प्रकार से हैं-

आदित्यः काश्यपो गोत्रादात्रेयश्चन्द्रमा भवेत्।
भारद्वाजो भवेद् भौमस्तथाऽऽत्रेयश्च सोमजः॥

शक्रपूज्योऽङ्गिरो गोत्रः शुक्रो वै भार्गवस्तथा।
शनिः काश्यप एवाथ राहु पैठीनसिस्तथा॥

केतवो जैमिनीयाश्च ग्रहा लोकहितावहाः।[131]

नीलकण्ठ ने दामोदरीय ग्रन्थ को उद्धृत करते हुए ग्रहों के रूप का वर्णन निम्न प्रकार से किया है -

भानुं तु मण्डलाकारमर्द्धचन्द्राकृतिं विधुम्।
अङ्गारकं त्रिकोणं च बुधं बाणाकृतिं विदुः॥

पद्माकारं गुरुं कुर्याच्चतुष्कोणं च भार्गवम्।
दण्डाकृतिं शनिं राहुं मकराकारमेव च॥

खड्गाकारॉंस्तथा केतून्स्थापयेदनुपूर्वशः।[132]

दानमयूख में उद्धृत वृद्धपाराशर ने ग्रहों के स्थान के विषय में निम्न प्रकार से बताया हैं -

मध्ये तु भास्करं विद्याच्छशिनं पूर्वदक्षिणे।
दक्षिणेन धरासूनुं बुधं पूर्वोत्तरेण तु॥

उत्तरेण गुरुं विद्यात्पूर्वेणैव तु भार्गवम्।
शनैश्चरं पश्चिमस्यां राहुं दक्षिणपश्चिमे॥

पश्चिमोत्तरतः केतून्स्थापयेदनुपूर्वशः।[133]

इसी स्थल पर उद्धृत मत्स्य पुराण में ग्रहों के मुखों के विषय में कहा गया है -

देवानां तत्र संस्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका।
आदित्याभिमुखाः सर्वे साधिप्रत्यधिदेवताः॥

शुक्रार्कौ प्राङ्मुखौ ज्ञेयौ गुरुसौम्यावुदङ्मुखौ।
प्रत्यङ्मुखः शनिः सोमः शेषा दक्षिणतो मुखाः॥[134]

मत्स्यपुराण में ही ग्रहों के अधिदेवता और प्रत्यधिदेवताओं का उल्लेख करते हुए कहा गया है -

भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा।
स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम्॥

ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम्।
शनैश्चरस्यापि यमं राहोः कालं तथैव च॥
केतोर्वै चित्रगुप्तं च सर्वेषामधिदेवताः।
अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्रश्चैन्द्री च देवता॥

प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः।[135]

दानमयूख में अधिदेवता और प्रत्यधिदेवता के स्थान के विषय में उल्लेख करते हुए कहा गया है -

ग्रहाणां दक्षिणे पार्श्वे स्थापयेदधिदेवताः।
ग्रहाणामुत्तरे पार्श्वे न्यसेत्प्रत्यधिदेवताः॥[136]

इस प्रकार ग्रह, अधिदेवता और प्रत्यधिदेवता मिलाकर 27 देवता होते हैं। पूर्व में कहा जा चुका है कि ग्रह पूजा में 32 देवताओं की स्थापना की जानी चाहिये। शेष पांच देवता विनायकादि देवता हैं। नीलकण्ठ ने गजानन, दुर्गा, समीरण (वायु) गगन और अश्विनौ की गणना इन पांच देवताओं में की है।[137]

इन 32 देवताओं की पूजा प्रकार मत्स्यपुराण में निम्न प्रकार से बताया है -

धूपामोदोऽत्रसुरभिरूपरिष्टाद्वितानकम्।
शोभनं स्थापयेत्प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम्॥[138]

नीलकण्ठ के अनुसार हेमाद्रि और स्कन्दपुराण ने विशिष्ट धूप बताते हुए लिखा है -

रवेः कुन्दुरुकं धूपं शशिनस्तु घृताक्षताः।
भौमे सर्जरसं चैव अगरुं च बुधे स्मृतम्॥

सिह्लकं गुरवे दद्याच्छुक्रे विल्वागुरु स्मृतम्।
गुग्गुलं मन्दवारे तु लाक्षा राहोश्च केतवे॥[139]

यहाँ कुन्दुरक का तात्पर्य सल्लकी निर्यास, सर्जरस का तात्पर्य शाल, सिह्लक का तात्पर्य सिलारस नामक (मध्य देश में प्रसिद्ध) गन्ध द्रव्य है।

नीलकण्ठ ने ग्रहों को प्रदान की जाने वाली विशेष गन्ध के विषय में बताते हुए लिखा है कि- सूर्य व मङ्गल को रक्त चन्दन, चन्द्रमा व शुक्र को श्वेत चन्दन, बृहस्पति व बुध को कुङ्कुम संयुक्त चन्दन तथा राहु, शनि एवं केतु को अगर व कस्तूरी की गन्ध देनी चाहिये।[140]

मत्स्यपुराण ने ग्रहों को दी जाने वाली बलि का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है-

गुडौदनं रवेर्दद्यात्सोमाय घृतपायसम्।
अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिके॥

दध्योदनं तु जीवाय शुक्राय च घृतोदनम्।
शनैश्चराय कृसरमजामांसं च राहवे॥

चित्रौदनं च केतुभ्यः सर्वभक्ष्यैरथार्चयेत्।[141]

धर्मशास्त्रियों ने संयाव का तात्पर्य गेंहू के आटे अथवा दलिये से बना घाट नामक विशेष पदार्थ तथा कृसर दूध में पके हुए तिल व चावल से माना है। ''संस्कृतशब्दार्थ कौस्तुभ के अनुसार संयाव- दूध, घी और आटे से बना हलवा, चित्रौदन-पीला भात, क्षीर-षष्टिक-दूध और साठी धान, कृसर तिल और चावल की खिचड़ी तथा अजामांस-मेंढे या बकरे का मांस अथवा फल का गूदा होता है।

नील कण्ठ द्वारा उद्धृत याज्ञवल्क्य ने पदार्थ संबंधी मतमतान्तर में न पड़ते हुए कहा है -

शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम्।
पूज्यन्तो ग्रहानेतान्लभन्ते सकलं फलम्॥

नीलकण्ठ ने कहा है कि इन सभी ग्रहों का व्यस्त व समस्त व्याहृतियों से अलग-अलग आवाहन करना चाहिये। यथा- ''ॐ भूरादित्यमावाह्यामि ॐ- भुवः आदित्यमावाहयामि, ॐ स्वः आदित्यमावाहयायामि। ॐ भूर्भुवः स्वरादित्यमावाह्यामि।'' इस प्रकार आह्वान कर तथा ग्रहों के पूर्वोक्त जन्म, जन्मस्थान, गोत्र, वर्ण, रूप, स्थान, अधिदेवता और प्रत्यधिदेवता का उल्लेख करते हुए ग्रहों की स्थापना कर यथोक्त विधि से पूजा करनी चाहिये। ग्रहपूजा के उपरान्त आचार्यों को यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये।[142]

: वास्तु पूजा :

भगवन्तभास्कर में प्रपंचसार को उद्धृत करते हुए कहा गया है -

कृत्वावनिं समतलां चतुरस्रसंख्या
मष्टादि कोष्ठकपदां च हि कोणसूत्राम्।

तस्यां चतुष्पदसमन्वितमध्यकोष्ठे।
ब्रह्मा तु साधकवरेण समर्चनीयः॥[143]

अर्थात् वर्गाकार पृथ्वी को समतल कर, उसमें चारों ओर से आठ-आठ कोष्ठक बनाकर, कोणों पर सूत्र से नापकर, उसके चार भाग युक्त मध्य कोष्ठ में साधकों को ब्रह्मा की अर्चना करनी चाहिये। यह स्थिति चित्रानुसार निम्न प्रकार से होगी-

चित्रसंख्या – पांच –
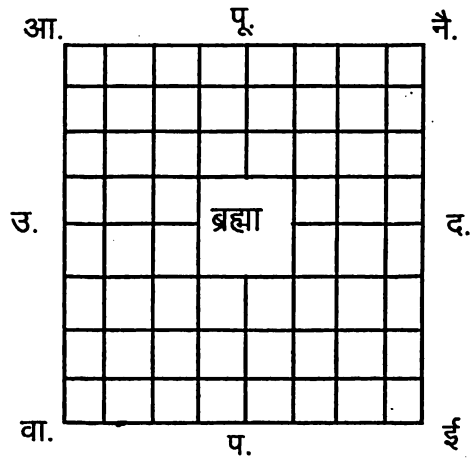
तत्पश्चात् मण्डप के दक्षिण-पश्चिम कोण वाले नैर्ऋत्य भाग में एक हाथ बराबर वेदी बनाकर उस पर स्थापित वस्त्र पर अथवा वेदी पर ही नौ रेखा पूर्व-पश्चिम में और नौ रेखा उत्तर - दक्षिण में अंकित कर मध्य में कोष्ठ चतुष्टय को एक कर प्रत्येक कोण के तीन-तीन पदों में सूत्रारोपण करना चाहिये। इस प्रकार से 24 अर्द्धपद हो जायेंगे। चित्रानुसार यह स्थिति निम्न प्रकार से होगी -

चित्र संख्या – छः
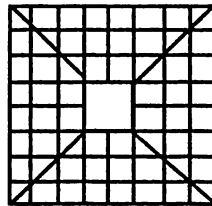
अब उपस्थित काल इत्यादि का सङ्कीर्तन कर "प्रारम्भ किये गये अमुक कर्म की साङ्गोपाङ्, सिद्धि के लिये वास्तुपूजा करूँगा" ऐसा सङ्कल्प करके वास्तुमण्डल के आग्नेय आदि चारों कोणों में चार शङ्कु निम्न मन्त्र बोलते हुए गाड़ने चाहिये-

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः।
मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा॥[144]

तदुपरान्त क्रमशः आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोण में निम्न मन्त्रों को बोलते हुए शङ्कु के पार्श्व में उड़द भात आदि की बलि देनी चाहिये-

अग्निभ्योप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तान् समाश्रिताः।
तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि पुण्यमोदन संयुतम्॥

नैर्ऋत्यादि पतिश्चैव नैर्ऋत्यां ये च राक्षसाः।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि सर्वे गृह्णन्तु मन्त्रितम्॥

ॐ नमो वायु रक्षेभ्यो ये चान्ये तान् समाश्रिताः।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम्॥

रुद्रेभ्यश्चैव सर्पेभ्यो ये चाऽन्ये तान् समाश्रिताः।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि गृह्णन्तु सततोत्सुकाः॥[145]

तत्पश्चात् पूर्व पश्चिम की ओर से शान्ति, यशोवती, कान्ति, विशाला, प्राणवाहिनी, सती, सुमना, नन्दा और सुभद्रा नामक रेखा देवियों तथा दक्षिणोत्तर में हिरण्या, सुप्रभा, लक्ष्मी, विभूति, विमला, प्रिया, जया, काला और विशोका नामक रेखा देवियों का पूजन कर, मध्य में समस्त व्याहृतियों से वास्तुपुरुष का आह्वान कर-

वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्।
स्वावेशो अनमीवो भवानः।।

(ऋ0 7.54.1)

मन्त्र से पूजा कर और बलि देकर, मध्य के चार पदों में वास्तु के हृदय ब्रह्मा को नमस्कार करते हुए, ब्रह्मा को आह्वान एवं पूजन करके ''ॐ ब्रह्मणे नमो बलिं समर्पयामि'' कहकर पायस आदि की बलि देनी चाहिये।

तत्पश्चात् वास्तु वेदी के विभिन्न दिशाओं वाले भिन्न-भिन्न कोष्ठकों में वास्तुपुरुष की कल्पना करते हुए उससे तत्तत् अङ्गों पर क्रमशः अर्यमा, विवस्वान्, मित्र, पृथ्वीधर सावित्र, सविता, विबुधाधिप, जयन्त, राजयक्ष्मा, रुद्र, अदस्, आपवत्स, शिखी, पर्जन्य, जयन्त, कुलिशायुध, सूर्य, सत्य, भृश, आकाश, वायु, उषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृंगराज, मृग, पितर, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शेष, पाप, रोग, आवह, मुख्य भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति, दिति एवं वास्तोष्पति को नमन करते

हुए, वास्तुमण्डल के बाहर ईशान इत्यादि दिशाओं में क्रमशः चरकि, विदारि, पूतना और पापराक्षसी को नमस्कार करते हुए, पूर्व इत्यादि दिशाओं में स्कन्द अर्यमा, जृम्भक और पिलिपिच्छ को नमस्कार कर पुनः पूर्व आदि दिशाओं में ही इन्द्र इत्यादि देवताओं का आह्वान कर, मण्डल की ईशान दिशा में कलश की स्थापना कर, वहाँ वरुण की मन्त्र से आह्वान कर, पूजा करनी चाहिये।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा यजमानो हवीर्भिः।
अहेलमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः॥

(ऋ 1.24.11)

यथा मेरु गिरेः श्रृंगं देवानामालयः सदा।
तथा ब्रह्मादि देवानां मम यज्ञे स्थिरो भवेत्॥[146]

कहते हुए प्रार्थना करनी चाहिये। वास्तु पुरुष के विभिन्न अङ्गों को अंग देवताओं सहित अग्रिम पृष्ठ पर चित्र संख्या 7 द्वारा समझा जा सकता है।

तदुपरान्त उदुम्बर आदि की समिधाओं तिल और घी से निकट की स्वतन्त्र वेदी पर प्रत्येक को 28 या 8 आहुतियाँ उसके नाम मन्त्रों से देनी चाहिये। वास्तोष्पति के लिये 4 आहुतियाँ देनी चाहिये।

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानान्।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा।।

(ऋ. 8.17.14)

मन्त्र का पाठ करते हुए पांच बिल्व फलों की आहुति देकर पूर्णाहुति करनी चाहिये। तदुपरान्त मण्डल देवताओं को पायस बलि देकर

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रुणानोऽस्तासि विध्यं रक्षसस्तपिष्ठैः॥

(ऋ. 4.4.1)

सूक्त से मण्डप को त्रिसूत्री से वेष्टित कर, वास्तुकलश के जल से यजमान का अभिषेक कर, पुनः पूजा कर, यथाशक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिये, ऐसा भगवन्तभास्कर का मत है।[147]

चित्र संख्या – सात :

चतु:षष्टिपद वास्तुमण्डलचक्र

चतु:षष्टिपद वास्तुमण्डल चक्र
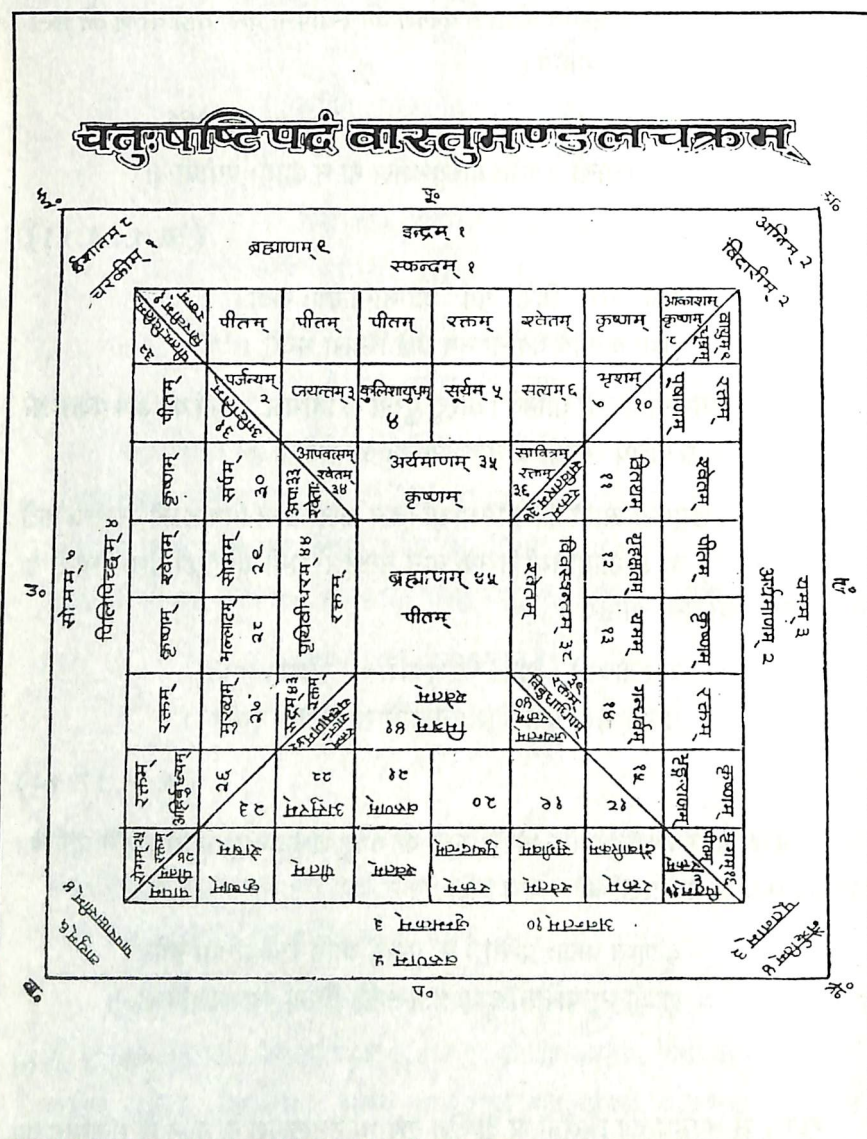
: द्वार - पूजा :

नीलकण्ठ ने भगवन्त भास्कर में ग्रह पूजा, वास्तु पूजा, द्वार पूजा इत्यादि विषयों का अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों को ध्यान में रखते हुए विस्तार से विवेचन किया है, जबकि चतुर्वर्गचिन्तामणि, कृत्यकल्पतरु, दानक्रियाकौमुदी इत्यादि ग्रन्थों में इनका उल्लेख मात्र प्राप्त होता है। अतः मुख्यतः भगवन्त भास्कर को आधार मानते हुए ''द्वार पूजा'' का विवेचन किया जायेगा। सर्वप्रथम मण्डप के चारों द्वारों के पूजा क्रम को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है -

द्वार	देहरी के ऊपर और नीचे नमस्कार	क्रमशः वाम व दक्षिण स्तम्भ पर नमस्कार	क्रमशः वाम और दक्षिण कलश द्वय में नमस्कार
पूर्व	द्वार श्री को	गणेश व स्कन्द को	गंगा व यमुना को
दक्षिण	द्वार श्री को	पुष्पदन्त व कपर्दी को	गोदा व कृष्णा को
पश्चिम	द्वार श्री को	नन्दी च चण्ड को	रेवा व ताप्ती को
उत्तर	द्वार श्री को	महाकाल व भृंगी को	वाणी व वेणी को

तोरण स्थापना :

दिशा	तोरण विशेषताएं	तोरण पर देवता न्यास व पूजा	मन्त्र	सन्दर्भ
पूर्व	1. पूर्व द्वार से हाथ भर बाहर 2. वट या अश्वत्थका 3. सुदृढ या सुशोभन नामक 4. शङ्खाङ्कित	राहु व बृहस्पति	अग्निमीडे	..ऋ0 1.1.1.

तोरण कलश स्थापना

दिशा	कलश संख्या		क्रिया विधि	मन्त्र	सन्दर्भ	आह्वान एवं पूजन	मंत्र
पूर्व	एक	1.	भूमि प्रार्थना	मही द्यौ	ऋ.1.22.13	ध्रुव का	नाम मंत्र से
		2.	यव प्रक्षेप	ओषधयः	ऋ. 10.97.22		
		3.	कलश निधानम्	आजिघ्रकलशं	यजु. 8.42		
		4.	जलपूरणम्	इमं मे गंगे	ऋ. 10.75.5		
		5.	गन्ध प्रक्षेपण	गन्धद्वाराम्	ऋ. खिलमन्त्र 2.6.9		
		6.	सर्वौषधिः प्रक्षेपण	या ओषधीः	यजु. 12.92 एवं 12.93		
		7.	दूर्वा प्रक्षेपण	काण्डात् काण्डात्	यजु. 13.20		
		8.	पंचपल्लव स्थापन	अश्वत्थ वः	ऋ. 10.97.5		
		9.	सप्तमृदः प्रक्षेपण	स्योना पृथ्वी	ऋ. 1.22.15		
		10.	फल स्थापन	याः फ लिनी	ऋ. 10.97.15		
		11.	रत्न प्रक्षेपण	स हि रत्नानि	ऋ. 5.82.3		
		12.	हिरण्यप्रक्षेपण	हिरण्यरूपः	ऋ. 2.35.10		
		13.	वस्त्रादि वेष्टनम्	युवाः सुवासाः	ऋ. 3.8.4		
		14.	धान्यपूर्णपात्रमुपरिनिधानम्	पूर्णा दर्वि	यजु. 3.49		

तोरण स्थापना :

दिशा	तोरण विशेषताएं	तोरण पर देवता न्यास व पूजा	मन्त्र	सन्दर्भ
दक्षिण	1. दक्षिण द्वार से हाथ भर बाहर 2. उदुम्बर या प्लक्ष का 3. सुभद्रा या विकट नामक 4. चक्राङ्कित	चन्दनादि से चर्चित कर सूर्य व मंगल की	इषेत्वोर्जे त्वा	यजु. 1.1.

तोरण कलश स्थापन :

दिशा	कलश संख्या	क्रियाविधि	मन्त्र एवं सन्दर्भ	आह्वान एवं पूजन	मंत्र
दक्षिण	एक	पूर्ववत्		धरा का	नाम मंत्र

तोरण स्थापना :

दिशा	तोरण विशेषताएं	तोरण पर देवता न्यास व पूजा	मन्त्र	सन्दर्भ
पश्चिम	1. दक्षिण द्वार से हाथ भर बाहर 2. प्लक्ष या उदुम्बर 3. सुकर्म या सुभीम नामक 4. गदाङ्कित	चन्दनादि चर्चित शुक्र या बुध	अग्नआयाहि	ऋ.8.60.1 6.16.10

तोरण कलश स्थापन :

दिशा	कलश संख्या	क्रियाविधि	मन्त्र एवं सन्दर्भ	आह्वान एवं पूजन	मंत्र
पश्चिम	एक	पूर्ववत्		वाक्यपति का नाम मंत्र	

तोरण स्थापना :

दिशा	तोरण विशेषताएं	तोरण पर देवता न्यास व पूजा	मन्त्र	सन्दर्भ
उत्तर	1. उत्तर द्वार से हाथ भर बाहर 2. न्यग्रोध या अवत्थ या पलाश का 3. सुहोत्र या सुप्रभव 4. पद्माङ्कित	सोम, केतु व शनि	शं नो देवी	ऋ. 10.9.4

तोरण कलश स्थापना :

दिशा	कलश संख्या	क्रियाविधि	मन्त्र एवं सन्दर्भ	आह्वान एवं पूजन	मंत्र
उत्तर	एक	पूर्ववत्		विघ्नेश का	नाम मंत्र

पूर्व दिक्, द्वार कलश स्थापन एवं ऋत्विक् वरण

कलश संख्या	विशेष	स्थापना विधि	कलश पर न्यास व अर्चना	ऋत्विक वरण दो या एक	प्रयोजन	वरण	वरणपद्य	प्रार्थना मंत्र व सन्दर्भ
दोनों द्वार शाखाओं पर	दध्यक्षतादि युक्त	पूर्ववत्	ऐरावत दिग्गज की	ऋग्वेदी	शान्ति सूक्त जप	त्वामहं वृणे कहकर	ऋग्वेदः पद्म-पत्राक्षो	अग्निमीडे ऋ.1.1.1

पूर्व दिक्, कलशाधिष्ठातृ देव स्थापन एवं पूजन

देव	आह्वान् पद्य	देवस्वरूप	पूजन मन्त्र व सन्दर्भ	ध्वज व पताका	ध्वजपताका समच्छ्रयण मंत्र व सन्दर्भ	ध्यान	नमनपद्य	बलि
इन्द्र	एह्येहि सर्वाऽमर	साङ्ग सपरिवार सायुध सशक्तिक	त्रातारमिन्द्रं ऋ. 6.47.11	पीत वर्ण	आशुः शिशानः ऋ. 10.103.1	एरावतस्थ पीतवर्ण सहस्राक्ष दक्षिणवाम हस्तस्थ वज्रोत्पल इन्द्र का	इन्द्रः सुरपतिः	उक्त स्वरूप इन्द्र को माषभक्त बलि

आग्नेय कोण कलश स्थापन एवं अधिष्ठातृ देव पूजन

कलश स्थापना	कलश पर न्यास व अर्चना	देव	आह्वान पद्य	पूजन मंत्र व सन्दर्भ	ध्वज वर्ण	ध्वजपताका समुच्छ्रयण मंत्र व सन्दर्भ	ध्यान	नमन पद्य	बलि
पूर्ववत् एक कलश	पुण्डरीक व अमृत.दिग्गज की	अग्नि	एह्येहि सर्वामर हव्यवाहः....	त्वं नो अग्ने ऋ. 1.31.12	रक्तवर्ण	अग्निं दूतम् ऋ. 1.12.1	रक्त छागस्थ दक्षिणवाम करधृत कमण्डलु यज्ञोपवीती अग्नि का	आग्नेयः पुरुषो रक्तः	माष भक्त बलि

दक्षिणदिक् द्वार कलश स्थापन एवं ऋत्विक् वरण

कलश संख्या	स्थापना विधि	कलश पर न्यास व अर्चना	ऋत्विक वरण	प्रयोजन	वरणपद्य	पूजन मंत्र एवं सन्दर्भ
दोनों द्वार शाखाओं पर दो	पूर्ववत्	वामन दिग्गज की	दो या एक यजुर्वेदी	शान्ति सूक्त जप	कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो	इषे त्वोर्जे त्वा.... यजु. 1.1.

दक्षिण दिक्, कलशाधिष्ठातृ देव स्थापन व पूजन

देव	आह्वान् पद्य	देवस्वरूप	पूजन मन्त्र व सन्दर्भ	ध्वज व पताका	ध्वजपताका समच्छ्रयण मंत्र व सन्दर्भ	ध्यान	नमनपद्य	बलि
यम	एह्येहि वैवस्वत	महिषारूढ, धृतदण्डपाश- दक्षिण वामकर, अंजन पर्वत तुल्य रूप, अग्नि सम लोचन	यमाय सोमम् ऋ. 10.14.13	कृष्ण वर्ण	आयं गौः...... ऋ. 10.189.1	उक्त स्वरूप यम का	महामहि- षमारूढं..	माष भक्त

नैर्ऋत्य कोण कलश स्थापन एवं अधिष्ठातृ देव पूजन

कलश स्थापन	कलश पर न्यास व अर्चना	देव	आह्वान पद्य	पूजन मंत्र व संदर्भ	ध्वज व पताका	ध्वजपताका समुच्छ्रयण मंत्र व संदर्भ	ध्यान	नमन पद्य	बलि
पूर्ववत् एक कलश	कुमुद गज व दुर्जय दिग्गज की	निर्ऋति	एह्येहि रक्षो- गणनायकस्त्वं	असुन्वन्तम् ऋ .1.176.4	नील वर्ण	मोषुणः.... ऋ. 10.59.4	नरारूढ खडगहस्त नीलवर्ण महाबली महाकाय बहुराक्षस युक्त निर्ऋतिकी	निर्ऋतिं खड्ग- हस्तं...	माष भक्त

पश्चिम दिक्-द्वारकलश स्थापन एवं ऋत्विक् वरण

कलश संख्या	स्थापन विधि	कलश पर न्यास व अर्चना	ऋत्विक् वरण	प्रयोजन	वरण पद्य	पूजन मंत्र एवं सन्दर्भ
दोनों द्वार शाखाओं पर दो	पूर्ववत्	अंजन दिग्गज की	सामगान करने वाले दो या एक	शान्ति सूक्त जप	सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो....	अग्न आयाहि ऋ. 8.60.1

पश्चिमदिक्, कलशाधिष्ठातृ देव स्थापन व पूजन

देव	आह्वान् पद्य	देवस्वरूप	पूजन मन्त्र व सन्दर्भ	ध्वज व पताका	ध्वज व पताका समुच्छ्रयण मंत्र व सन्दर्भ	ध्यान	नमनपद्य	बलि
वरुण	एह्येहि यादोगण	मकरस्थ पाशहस्त किरीटी श्वेत वर्ण	तत्वा यामि	श्वेत वर्ण	इमं मे वरुण ऋ. 1.25.19	उक्त स्वरूप वरुण का	पाशहस्तं च वरुणं	माष भक्त

वायव्य कोण-कलश स्थापन एवं अधिष्ठातृ देव पूजन

कलश स्थापन	कलश पर न्यास व अर्चना	देवआह्वान	पद्य	पूजन मंत्र व सन्दर्भ	ध्वज व पताका	ध्वजपताका समुच्छ्रयण मंत्र व सन्दर्भ	ध्यान	नमन पद्य	बलि
पूर्ववत् एक कलश	पुष्पदन्त व सिद्धार्थ की	वायु	एह्येहि यज्ञे मम..	त्वं वायवृतस्पते ऋ.8.26.21	धूम्र वर्ण	वायोः शतं.. ऋ. 4.48.5	मृगारूढ, चित्राम्बर-धर, युवा, वरध्वज-धर दक्षिण वाम हस्त वायु का	वायुमा काशगं... अनाकारो महौजाश्च	माष भक्त

विशेष :- उपर्युक्त वायव्य दिशा के सभी कार्य जलस्पर्श कर किये जायेंगे। अन्य दिशाओं की तरह आचमन कर नहीं ।

उत्तरदिक्-द्वार कलश स्थापन एवं ऋत्विक् वरण

कलश संख्या	स्थापना विधि	कलश पर न्यास व अर्चना	ऋत्विक वरण	प्रयोजन	वरणपद्य	पूजन मंत्र एवं सन्दर्भ
दोनों द्वार शाखाओं पर दो	पूर्ववत्	सार्वभौम नामक दिग्गज की	दो या एक अथर्ववेदी	शान्ति सूक्त जप	वृहन्नेत्रोऽथर्व	शं नो देवी .... ऋ. 10.9.4

उत्तरदिक्, कलशाधिष्ठातृ देव स्थापन एवं पूजन

देव	आह्वान्	पूजन मन्त्र व सन्दर्भ	ध्वज व पताका	ध्वजपताका न्यास, मंत्र व सन्दर्भ	देवस्वरूप	ध्यान	नमनपद्य	बलि
सोम	भो सोम इहागच्छ इह तिष्ठ	वयं सोम ऋ. 10.57.6	हरित् वर्ण	आप्यायस्व... ऋ.1.91.17	नरयुत पुष्पक विमानस्थ, कुण्डलकेयूरहार शोभित, वरद गदाधर दक्षिण वामहस्त,मुकुटी, महोदर, स्थूलकाय, हृस्व, पिंगलनेत्र, पीतविग्रह, शिव सखा	उक्तस्वरूप कुबेर का	सर्व नक्षत्र मध्ये तु...	माष भक्त सोम को

ईशान कोण - कलशस्थापन एवं अधिष्ठातृ देव पूजन

कलश स्थापन	कलश पर न्यास व अर्चना	देव	आह्वान पद्य	पूजन मन्त्र व सन्दर्भ	ध्वज व पताका	ध्वजपताका समुच्छ्रयण मंत्र व संदर्भ	ध्यान	नमन एवं आह्वान पद्य	बलि
पूर्ववत् एक कलशं	सुप्रतीक व मङ्गल की	ईशान	एह्येहि विश्वेश्वर	समीशानम् ऋ. 1.89.5	श्वेत या सर्व वर्ण की	अभि त्वा देव सवितः	वृषारूढ, वरद, त्रिशूल युक्त दक्षिण वामहस्त त्रिनेत्र, शुद्ध स्फटिकवर्ण ईशानदेव का	वृषस्कन्ध समारूढं सर्वाधिपो महादेव ..	माष भक्त

ईशान- पूर्व के मध्य देव पूजा एवं ध्वजारोपण

देव	आह्वान् पद्य	पूजन मन्त्र व सन्दर्भ	ध्वज व पताका	ध्वजपताका समुच्छ्रयण, मंत्र व सन्दर्भ	ध्यान	नमनपद्य	बलि
अनन्त	एह्येहि पातालः	आयं गौः... यजु. 3.6	मेघवर्ण पताका श्वेत ध्वज	आयं गौ... यजु. 3.6	शमनासीन, फणसप्तकमण्डित पद्मशङ्खधरोर्ध्वाऽधोदक्षिण करद्वय, नील वर्ण अनन्त का	योऽसावनन्त- रूपेण......	माष भक्त

नैर्ऋत्य पश्चिम के मध्य में देव पूजा एवं ध्वजारोपण

देव	आह्वान् पद्य	पूजन मन्त्र व सन्दर्भ	ध्वज व पताका	ध्वजपताका समुच्छ्रयण, मंत्र व सन्दर्भ	ध्यान	नमन,बलि एवं आह्वान पद्य	बलि
ब्रह्मा	एह्येहि सर्वाधि पते..........	ब्रह्मजज्ञानम् यजु. 13.3	रक्तवर्ण	ब्रह्मजज्ञानम् यजु. 13.3	चतुर्मुख, हंसारूढ, अक्षमाला-कुशमुष्टिधरोर्ध्वाधोदक्षिणकरद्वय, स्रुवकमण्डलुधरोर्ध्वाधोवामकर-द्वय,श्मश्रुल, जटिल, लम्बोदर, रक्तवर्ण ब्रह्मा का	पद्मयोनि श्चतुर्मूति...	माष भक्त

द्वार पूजा में प्रयुक्त ऋत्विक् वरण पद्यों एवं देवाह्वान नमन पद्यों को परिशिष्ट संख्या एक में देखा जा सकता है।

द्वारपूजा इत्यादि कार्यों के उपरान्त, आचमन कर मण्डप के मध्य में अत्यधिक ऊँचे दण्ड वाला 10 x 3 हाथ अथवा 5 x 1 हाथ का किंकिणियों से युक्त महाध्वज ''इन्द्रस्य वृष्णः.....(ऋ. 10.103.9) मन्त्र से स्थापित करना चाहिये। वहीं ब्रह्मपूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् मण्डप के सोलह स्तम्भों पर सभी देवों को, बांसों पर किन्नरों को एवं पीछे पन्नगों को नमन कर पूजा करनी चाहिये। इसके पश्चात् पूर्व भाग में लिपी हुई भूमि पर बैठकर-

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे॥

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षस पन्नगाः।
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च॥

सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विता।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपालो गणैः सह॥

रक्षन्तु मण्डपं सर्वे ध्नन्तु रक्षांसि सर्वतः।

पढ़कर क्रमशः स्थावर भूतों, चर भूतों, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवों, दानवों, गन्धर्वों, राक्षसों, पन्नगों, ऋषियों, मनुष्यों, गायों एवं देवमाताओं में से प्रत्येक को नमन एवं पूजा कर भूमि पर ही माष भक्तबलि प्रदान करनी चाहिये। तत्पश्चात् यजमान सभी ऋत्विजों के साथ हाथ पैर धोकर, पूर्व द्वार से मण्डप में प्रवेश करे तथा दक्षिण द्वार के पश्चिम भाग में बैठकर गुरु इत्यादि से यथा विधि कार्य प्रारम्भ करवाये। गुरु प्रत्येक कुण्ड के पास एक कलश स्थापित करे। ऋग्वेदादि के क्रम से मण्डप के पूर्व आदि कुण्डों में ऋत्विक् अग्नि की स्थापना करें।

ब्रह्मादि देव पूजा :

गुरु यजमान के साथ बैठकर ब्रह्मादि देव पूजा के लिये सर्वतोभद्रमण्डल में क्रमशः ब्रह्मा, आठ लोकपालों, आठ वसुओं, द्वादश आदित्यों, अश्विनौ, विश्वेदेवों, भूतनागों, स्कन्द, नन्दीश्वर, शूल एवं महाकाल, दक्ष आदि सप्त गणों, दुर्गा और विष्णु, स्वधा, मृत्यु और रोगों, गणपति, अप्, मरुतों, पृथ्वी, गंगादि नदियों एवं सप्त सागरों की स्थापना करे। मण्डल के ऊपर सुमेरु,मण्डल के बाहर गदा, त्रिशूल, वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग,

पाश और अंकुश की, उसके भी बाहर उत्तरादि दिशाओं में क्रमशः गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वसिष्ठ, अत्रि और अरुन्धती की, उसके बाहर ऐन्द्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, चामुण्डा, वैष्णवी, माहेश्वरी और विनायकी नामक आठ शक्तियों की स्थापना करनी चाहिये। इन सबकी स्थापना कर प्रत्येक की अलग-अलग या एक साथ पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार ब्रह्मादि देव पूजा सम्पन्न होती है । ब्रह्मादि देव पूजा में स्थाप्य देवों के स्थान, स्थापना मंत्र एवं मन्त्र संदर्भ परिशिष्ट संख्या 2 में देखे जा सकते हैं।

ग्रह पूजा के संबंध में पूर्व में विचार किया जा चुका है, तथापि यह कहना आवश्यक है कि बह्मादिदेव पूजा वेदी पर ही वस्त्र पर लिखित मण्डलों में मन्त्रों एवं व्याहृतियों पूर्वक ग्रह वर्ण के अक्षतों और पुष्पों से तत्तत् आकारों में ग्रह स्थापना एवं पूजा करनी चाहिये। ग्रहों के मुख, वर्ण, आकार, स्थापना मंत्र एवं मन्त्रों के संदर्भ परिशिष्ट संख्या 3 में देखे जा सकते हैं। ग्रहों के लिये ''ग्रहपूजा'' में निर्दिष्ट धूप, गन्ध एवं बलि भी प्रदान की जानी चाहिये। वस्त्र ग्रह वर्णों के होंगे, पुष्प भी ग्रहों के वर्ण के होंगे। गायत्री मन्त्र के ग्रहों को तत्तत् धूप देकर (उद्दीप्यस्व) कहते हुए दीपक प्रदान करना चाहिये एवं तदुपरान्त ग्रहों के लिये निर्दिष्ट बलि प्रदान की जानी चाहिये।

अधिदेव पूजा :

नव ग्रहों में से प्रत्येक के अधिदेव एवं प्रत्यधि देव होते हैं। इस प्रकार नौ अधिदेव एवं नौ ही प्रत्यधिदेव होते हैं। इनका नामोल्लेख ''ग्रह पूजा'' के अन्तर्गत किया जा चुका है। अधिदेवों की स्थापना उनके ग्रहों के दक्षिण में श्वेत पुष्प और अक्षतों से तथा प्रत्यधिदेवों की स्थापना उनके ग्रहों के बांयी ओर मन्त्रों और व्याहृतियों का उच्चारण कर श्वेत पुष्प और अक्षतों से ही करनी चाहिये। अधिदेवों को वस्त्र, गन्ध और पुष्प श्वेत, गुग्गुल धूप और नैवेद्य पायसादि प्रदान करना चाहिये।

तत्पश्चात् शुक्ल पुष्प और अक्षतों से विनायकादि पंच देवताओं की स्थापना करनी चाहिये। राहु के उत्तर में विनायक, शनि के उत्तर में दुर्गा, सूर्य के उत्तर में वायु, राहु के दक्षिण में आकाश एवं केतु के दक्षिण में अश्विनौ की स्थापना की जाती है। अधिदेवों, प्रत्यधिदेवों एवं पंच देवों के स्थापना मन्त्र व मन्त्र सन्दर्भ परिशिष्ट संख्या चार में देखे जा सकते हैं।

वस्वाद्येकादश देव :

वस्वाद्येकादश देवताओं के अन्तर्गत इन्द्र और अग्नि के मध्य आठ वसुओं (ध्रुव, अध्वर, सोम, अप, अनिल, अ़नल, प्रत्यूष और प्रभास) की, इन्द्र अेर ईशान के मध्य में द्वादश आदित्यों (धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा एवं विष्णु)की, अग्नि और यम के मध्य एकादश रुद्रों (अज, एकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हरण और ईश्वर) की, निर्ऋति और वरुण के मध्य (गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, माता, लोकमाता, धृति, शान्ति, पुष्टि एवं तुष्टि नामक) षोडश मातृकाओं की स्थापना करनी चाहिये। उसी स्थान पर गणपति की स्थापना करनी चाहिये। वायु और सोम के मध्य (आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, विवह, परावह, परिवह और अनिल नामक) सात मरुतों की स्थापना करनी चाहिये। वेदी पर ही यथावकाश ब्रह्मा, विष्णु, ईशान, अग्नि और वनस्पति की स्थापना करनी चाहिये। स्थापना कर षोडशोपचार से पूजा करनी चाहिये। उपर्युक्त सभी देवों के स्थापना मंत्र, सन्दर्भ सहित परिशिष्ट संख्या पांच में देखे जा सकते हैं।

तुदपरान्त ग्रहवेदी की ईशान दिशा में कलश स्थापित कर, वहां वरुण का आह्वान कर, पूजा कर अभिमन्त्रित करना चाहिये। यथा-

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः।।

कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः।।

अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः।
अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा।।

आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः।
देवदानवसंवादे मध्यमाने महोदधौ।।

उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्।
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः॥

त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः॥

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वे देवाः सपैतृकाः।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः॥

त्वत्प्रासादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव।
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा॥[148]

तत्पश्चात् फल, पुष्प और मालाओं से सुशोभित बृहस्पति देव का वितान ''सूर्यादिभ्य इदं न मम'' कहकर, ग्रहवेदी के ऊपर बाँधना चाहिये। तदुपरान्त पूर्वादि कुण्डों पर एक होता व एक ब्रह्मा के क्रम से चारों वेदों के आठ ज्ञाताओं द्वारा होम कार्य करना चाहिये। आचार्य कुण्ड ईशान पूर्व के मध्य वृत्त या चतुरस्त्र होता है। आचार्य कुण्ड प्रणयन योग्य अग्नि के संस्थापनार्थ होता है। ऋग्वेद के अनुसार ''चक्षुषी आज्येन'' कहकर प्रत्येक ग्रह को आठ हजार, अट्ठाईस या आठ आहुतियों समित्, चरु व आज्य में से प्रत्येक द्रव्य की देनी चाहिये। पुनः अधि देवताओं, प्रत्यधिदेवताओं, लोकपालों, दिक्पालों एवं वस्वादि एकादश देवों को, समित्, चरु एवं आज्य से यजन का संकल्प, आहुति संख्योल्लेखपूर्वक करना चाहिये। यजमान मण्डप के मध्य में दक्षिण की ओर बैठकर होम करे। वसुओं को, आदित्यों को, रुद्रों को, मरुतों को - इस प्रकार से एकत्र ही उल्लेख करे। गणपति के लिये होम नहीं होता। तदुपरान्त होता अपनी-अपनी शाखाओं के ओंकारादि एवं स्वाहान्त तत्तत् मन्त्रों से,ऋषि , देवता व छन्द का स्मरण करते हुए समित्, चरु व आज्य से होम करें। होमकाल में दो ऋग्वेदी द्वारपाल पूर्व द्वार पर उत्तराभिमुख होकर रात्रि, रौद्र पवमान, सुमगंल व शन्न इन्द्राग्नी सूक्त पढें । दो यजुर्वेदी दक्षिण में शुक्र, रौद्र, सौम्य कौष्माण्ड ऋचा एवं वाक् अध्याय पढें। दो सामवेदी पश्चिम में सुपर्ण, विराज, आग्नेय एवं रुद्रसंहिता (जयेष्ठ, सामर, बोधय कहते हुए) पढें। उत्तर में दो अथर्ववेदी सौरशाकुनक, पौष्टिकसुमहाराज व शन्न इन्द्राग्नी (इन तीन) ऋचाओं

को पढें । गुरु सभी·कार्यों का अध्यक्ष हो। वेदानुसार ग्रहहोममन्त्र परिशिष्ट संख्या छः में देखे जा सकते हैं। वहीं पौराणिक मन्त्र भी उपलब्ध हैं।

दान-मण्डप, यज्ञ कुण्ड, ग्रह पूजा, वास्तु पूजा , द्वार पूजा, ब्रह्मादि देव पूजा, अधिदेव पूजा, वस्वादि एकादश देव विवेचन, होम मन्त्र इत्यादि विषय भारतीय धर्मशास्त्र के कर्मकाण्ड अथवा प्रायोगिक पक्ष से संबंध रखने वाले विषय हैं एवं कर्मकाण्ड के विराट् स्वरूप को प्रकट करते हैं । विशेषज्ञ गुरु के साथ रहकर नित्य प्रति इनको व्यवहार में लेने से ही, इनके सूक्ष्म स्वरूप का वास्तविक ज्ञान सम्भव है। विभिन्न ग्रन्थों में इन विषयों पर विस्तार से लिखा गया होने पर भी यही कहा जा सकता है कि ये विषय केवल पुस्तकीय ज्ञान से आत्मसात् नहीं किये जा सकते। तथापि दान और उत्सर्ग प्रकरण में इनकी आवश्यकता को देखते हुए यथामति इन विषयों का विवेचन किया गया है।

परिशिष्ट संख्या (1)

ऋत्विक् वरण –

1. ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः।
अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु॥

2. कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः।
काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव॥

3. सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः।
भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु॥

4. वृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः।
वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु॥

देव पूजन पद्य :

इन्द्र :

एह्येहि सर्वाऽमरसिद्धसाध्यै इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो,
रभिष्टुतो वज्रधरामरेश। वज्रहस्तो महाबलः।
संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन, यतयज्ञाधिपो देव-,

रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥ स्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

अग्नि :

एह्येहि सर्वामरहव्यवाह, आग्नेयः पुरुषो रक्तः,
मुनिप्रवरैरभितोऽभिजुष्ट। सर्वदेवमयोऽव्ययः ॥

तेजोवता लोकगणेन सार्धं, धूमकेतूरगोऽध्यक्ष
ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते ॥ स्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥

यम :

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज, महामहिषमारूढं,
सर्वाऽमरैरर्चितधर्ममूर्ते। दण्डहस्तं महाबलम्।

शुभाशुभानन्दशुचामधीश, आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्,
शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥ पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

निर्ऋति :

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं, निर्ऋतिं खड्गहस्तं च,
विशालवेतालपिशाचसङ्घैः। सर्वलोकैकपावनम्।

ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ, आवाह्यामि यज्ञेऽस्मि,
लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते ॥ न्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

वरुण :

एह्येहि यादोगण वारिधीनां, पाशहस्तं च वरुणं,
गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभिः। यादसां पतिमीश्वरम्।

विद्याधरेन्द्रामरगीयमान, आवाह्यामि यज्ञेऽस्मिन्,
पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते ॥ वरुणाय नमोनमः ॥

वायु :

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणायं, वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवद्गतिम्
मृगाधिरुढः सह सिद्धसंङ्घैः आवाह्यामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

प्राणाधिपः कालकवेः सहाय,
गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

अनाकारो महौजाश्च यश्चादृष्टगतिर्दिवि,
तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि ते ॥

सोम :

एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां,
विधत्स्वनक्षत्रगणेन सार्धं ।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव,
गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

सर्वनक्षत्रमध्ये तु,
सोमो राजा व्यवस्थितः ।
तस्मै सोमाय देवाय,
नक्षत्रपतये नमः॥

ईशान :

एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूल,
कपालखट्वाङ्गधरेण सार्धम् ।
लोकेन यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै,
गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

वृषस्कन्ध समारूढं,
शूलहस्तं त्रिलोचनम् ।
आवाह्यामि यज्ञेऽस्मिन्,
पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥
सर्वाधिपो महादेव,
ईशानः शुक्लः ईश्वरः ।
शूलपाणिर्विरूपाक्षस्तस्मै,
नित्यं नमोनमः ॥

अनन्त :

एह्येहि पातालधरामरेन्द्र,
नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान ।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसङ्घै-
रनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥

योऽसावनन्तरूपेण,
ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।
पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि,
तस्मै नित्यं नमोनमः ॥

ब्रह्मा :

एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र,
लोकेन सार्धं पितृदेवताभिः ।
सर्वस्य धातास्यमितप्रभावो,
विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥

पद्मयोनिश्चतुर्मूर्ति,
वेदावासः पितामहः ।
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्र
स्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥

परिशिष्ट संख्या (2)

क्र.सं.	देव	स्थान	मंत्र	संदर्भ	ऋषि	छंद
1	2	3	4	5	6	7
1.	ब्रह्मा	मध्य	बह्मजज्ञानम्	यजु. 13.3	वामदेव गौतम	त्रिष्टुप्
2.	आठ लोकपाल	उत्तर से प्रारम्भ कर वायव्य पर्यन्त				
1.	कुबेर		आप्यायस्व	ऋ. 1.91.17	गौतम	गायत्री
2.	ईशान		अभित्वा देव सवितः	ऋ. 1.24.3	अजीगर्त्त शुनः शेप	गायत्री
3.	इन्द्र		इन्द्रं वो विश्वतः	ऋ.1.7.10	मधुच्छन्दा	गायत्री
4.	अग्नि		अग्निंदूतं वृणीमहे	ऋ.11.12.1	काण्व मेधातिथि	गायत्री
5.	यम		यमाय सोमम्	ऋ. 10.14.13	यम	अनुष्टुप्
6.	निर्ऋति		मोषुणः	ऋ. 1.38.6	घोरकाण्व	गायत्री
7.	वरुण		तत्वा यामि	ऋ .1.24.11	शुनः शेप	त्रिष्टुप्
8.	वायु		वायोः शतम्	ऋ. 4.48.5	वामदेव गौतम	अनुष्टुप्

1	2	3	4	5	6	7
3.	आठ वसु	वायु और सोम के मध्य	ज्मया अत्र	ऋ. 7.39.3	वसिष्ठ	त्रिष्टुप्
4.	एकादश रुद्र	सोम और ईशान के मध्य	आ रुद्रासः	ऋ. 5.57.1	श्वाश्व	जगती
5.	द्वादश आदित्य	इन्द्र और ईशान के मध्य	त्यान्नु क्षत्रियान्	ऋ. 8.67.1	सामदोमत्स्यः	गायत्री
6.	अश्विनौ	इन्द्र और अग्नि के मध्य	अश्विनावर्तिः	ऋ. 1.92.16	राहूगण गौतम	उष्णिक्
7.	विश्वेदेव	अग्नि और यम के मध्य	मासः		मधुच्छन्दा	गायत्री
8.	सात यक्ष	यम और निर्ऋति के मध्य	अभित्यं देवं[149]		वामदेव	प्रकृति
9.	भूत नाग	निर्ऋति और वरुण के मध्य	आयं गौः	10.189.1	सार्पराज्ञी	गायत्री
10.	गन्धर्व और अप्सराएं	वरुण और वायु के मध्य	अप्सरसांगन्धर्वाणां	ऋ.10.136.6	ऋष्यशृंग	अनुष्टुप्
11.	स्कन्द, नन्दीश्वर शूल एवं महाकाल	ब्रह्म और सोम के मध्य	1. कुमारं माता	ऋ. 5.2.1.	कुमार	त्रिष्टुप्
			2. ऋषभं मा	ऋ. 10.166.1	वैराज ऋषभ	अनुष्टुप्
			3. कद्रुद्राय (शूल व महाकाल)	ऋ.. 1.43.1	घोरकण्व	गायत्री
12.	दक्ष आदि सप्त गण	ब्रह्मा और ईशान के मध्य	अदितिर्ह्यजनिष्ट	ऋ. 10.72.5	दक्ष बृहस्पति	अनुष्टुप्

1- अभित्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवँरत्नधामभिप्रियं मति कविम्।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपास्वः ॥

1	2	3	4	5	6	7	
13.	दुर्गा		ब्रह्मा और इन्द्र के मध्य	तामग्निवर्णां		सौभरि	त्रिष्टुप्
14.	विष्णु		ब्रह्मा और इन्द्र के मध्य	इदं विष्णुः	ऋ. 1.22.17	मेधातिथि	गायत्री
15.	स्वधा		ब्रह्मा और अग्नि के मध्य	उदीरताम्	ऋ. 10.15.1	शङ्ख	त्रिष्टुप्
16.	मृत्यु और रोग		ब्रह्मा और यम के मध्य	परं मृत्यो अनुपरेहि	ऋ. 10.18.1	सङ्कुसुक	त्रिष्टुप्
17.	गणपति		ब्रह्मा और निर्ऋति के मध्य	गणानां त्वा	ऋ. 2.23.1	गृत्समद	जगती
18.	अप्		ब्रह्मा और वरुण के मध्य	शं नो देवी	ऋ. 10.9.4	सिन्धुद्वीप अम्बरीष	गायत्री
19.	मरुत्		ब्रह्मा और वायु के मध्य	मरुतो यस्य	ऋ 1.86.1	राहूगण गौतम	गायत्री
20.	पृथ्वी		ब्रह्मा के पादमूल में कर्णि के नीचे	स्योना पृथिवी	ऋ. 1.22.15	मेधातिथि	गायत्री
21.	गङ्गादि नदियाँ		ब्रह्मा के पादमूल में कर्णिका के नीचे	इमं में गङ्गे	ऋ. 10.75.5	सिन्धुक्षित्प्रैय मेधाः	जगती
22.	सप्त सागर		वहीं	धाम्नो धाम्नो राजन्नितो	अथर्व 7.8.83.2		

परिशिष्ट संख्या (3)

क्र.सं.	ग्रह	मुख	वर्ण	आकार	मन्त्र	सन्दर्भ	ऋषि	छन्द	स्थान
1.	सूर्य	प्राङ्मुख	रक्त	वर्तुल	आकृष्णेन रजसा	ऋ. 1.35.2	हिरण्यस्तूप	त्रिष्टुप्	मध्य
2.	सोम	प्रत्यङ्मुख	श्वेत	चतुरस्र	आप्यायस्व	ऋ. 1.91.16 1.91.17	गौतम	गायत्री	आग्नेय
3.	भौम	दक्षिणामुख	रक्त	त्रिकोण	अग्निर्मूर्धा	ऋ. 8.44.16	विरूप	गायत्री	दक्षिण
4.	बुध	उदङ्मुख	पीत	बाणाकार	उद्बुध्यध्वं	ऋ. 10.101.1	सौम्य	त्रिष्टुप्	ईशान
5.	बृहस्पति	उदङ्मुख	पीत	दीर्घचतुरस्र	बृहस्पते	ऋ. 2.23.15	गृत्समद	त्रिष्टुप्	उत्तर
6.	शुक्र	प्राङ्मुख	शुक्ल	पंचकोण	शुक्रःशुशु	ऋ. 1.69.1	पाराशर	द्विपदा विराट्	पूर्व
7.	शनि	प्रत्यङ्मुख	कृष्ण	धनुष	शमग्निः	ऋ. 8.18.9	रिरिंवटिः	उष्णिक्	पश्चिम
8.	राहु	दक्षिणामुख	कृष्ण	शूर्पाकार	कयानश्चित्र	ऋ. 4.31.1	पैठीनसि	गायत्री	नैर्ऋत्य
9.	केतु	दक्षिणामुख	धूम्र	ध्वजाकार	केतुंकृण्व	ऋ. 9.64.8	मधुच्छन्दा	गायत्री	वायव्य

परिशिष्ट संख्या (4)

क्र.सं.	देव	मंत्र	संदर्भ	ऋषि	छंन्द
1	2	3	4	5	6
1.	ईश्वर	त्र्यम्बकं	ऋ. 7.59.12	वसिष्ठ	अनुष्टुप्
2.	उमा	गौरीर्मियाय	ऋ. 1.161.41	दीर्घतमा	जगती
3.	स्कन्द	यदक्रन्दः	ऋ. 1.163. 1	दीर्घतमा	त्रिष्टुप्
4.	हरि	विष्णोर्नु कं	ऋ. 11.54.1	दीर्घतमा	त्रिष्टुप्
5.	ब्रह्मा	ब्रह्मजज्ञानं	यजु. 13.3	वामदेव गौतम	त्रिष्टुप्
6.	शचीपति	इन्द्रं वो	ऋ. 1.7.10	मधुच्छन्दा	गायत्री
7.	यम	यमाय सोमं	ऋ. 10.14.13	यम	अनुष्टुप्
8.	काल	मोषुणः परा	ऋ. 1.38.6	घोर काण्व	गायत्री
9.	चित्रगुप्त	उषो वाजं	ऋ. 1.48.11	स्कण्व	बृहती
10.	अग्नि	अग्निं दूतम्	ऋ. 1.12.1.	काण्व मेधातिथि	गायत्री

1	2	3	4	5	6
11.	आपः	अप्सु मे	ऋ. 1.23.20	मेधातिथि	अनुष्टुप्
12.	क्षिति	स्योना पृथ्वी	ऋ. 1.22.15	मेधातिथि	गायत्री
13.	विष्णु	इदं विष्णुः	ऋ. 1.22.17	मेधातिथि	गायत्री
14.	इन्द्र	इन्द्र श्रेष्ठानि	ऋ. 2.21.6	गृत्समद	त्रिष्टुप्
15.	ऐन्द्री	इन्द्राणीमासु	ऋ. 10.86.11	वृषाकपि	पंक्ति
16.	प्रजापति	प्रजापते	ऋ. 10.121.10	हिरण्यगर्भ	त्रिष्टुप्
17.	सर्पाः	आयं गौः	ऋ. 10.189.1	सर्पराज्ञी	गायत्री
18.	ब्रह्मा	ब्रह्मजज्ञानं	यजु. 13.3	वामदेव गौतम	त्रिष्टुप्

पंचदेव अनन्त व ब्रह्मा

देव	मन्त्र	सन्दर्भ	स्थान	ऋषि	छन्द
गणपति	गणानां त्वा	ऋ. 2.23.1	राहु के उत्तर में	गृत्समद	जगती
दुर्गा	जातवेदसे	ऋ. 1.99.1	शनि के उत्तर में	कश्यप	त्रिष्टुप्

1	2	3	4	5	6
समीरण	तव वायवृतस्पते	ऋ. 8.26.21	रवि के उत्तर में	अंगिरस	गायत्री
गगन	आदित्प्रत्नस्य	ऋ. 8.6.30	राहु के दक्षिण में	वत्स	गायत्री
अश्विनौ	एषो उषा	ऋ. 1.46.1	केतु के दक्षिण में	प्रस्कण्व	गायत्री
अनन्त	सहस्रशीर्षा	ऋ. 10.90.1	ईशानपूर्व के मध्य	नारायण	अनुष्टुप्
ब्रह्मा	ब्रह्मजज्ञानं	यजु. 13.3.	नैर्ऋत्य पश्चिम के मध्य	गौतम वामदेव	त्रिष्टुप्

परिशिष्ट संख्या (5)

क्र.सं.	देव	स्थान	मंत्र	संदर्भ	ऋषि	छन्द
1	2	3	4	5	6	7
1.	आठ वसु	इन्द्र और अग्नि के मध्य	ज्मयाअत्र	ऋ. 7.39.3	वसिष्ठ	त्रिष्टप्
2.	द्वादश आदित्य	इन्द्र और ईशान के मध्य	त्यान्नु क्षत्रियाँ	ऋ. 8.67.1	सामद मत्स्य	गायत्री
3.	एकादश रुद्र	अग्नि व यम के मध्य	आरुद्रासः	ऋ. 5.57.1	श्यावाश्व	जगती

1	2	3	4	5	6	7
4.	षोडश मातृका	निर्ऋति व वरुण के मध्य	गौरीर्मिमाय	ऋ. 1.164.41	दीर्घतमा	जगती
5.	गणपति	वहीं	गणानां त्वा	ऋ. 2.23.1	गृत्समद	जगती
6.	सप्त मरुत्	वायु और सोम के मध्य	मरुतो यस्य	ऋ. 1.86.1	राहूगण गौतम	गायत्री
7.	ब्रह्मा	वेदी पर यथावकाश	ब्रह्मजज्ञानं	13.3	वामदेव गौतम	त्रिष्टुप्
8.	अच्युत्	वेदी पर यथावकाश	इदं विष्णुः	ऋ. 1.22.17	मेधातिथि	गायत्री
9.	ईशान	वेदी पर यथावकाश	कद्रुद्राय	ऋ. 1.43.1	घोरकण्व	गायत्री
10.	अर्क	वेदी पर यथावकाश	अग्निरस्मि	ऋ. 3.26.7	विश्वामित्र	त्रिष्टुप्
11.	वनस्पति	वेदी पर यथावकाश	वनस्पते वीड्वङ्गो हि	ऋ. 6.47.26	गर्ग	त्रिष्टुप्

परिशिष्ट संख्या (6)
होम मंत्र– ऋग्वेदी

ऋग्वेदियों के स्थापना मंत्र ही ऋषि और देवताओं से युक्त होते हैं, अतः ग्रह-होम-मन्त्रों में तत्तत् देवता के सूक्तों का जप करना चाहिये । ये सूक्त निम्न प्रकार से हैं :-

क्र.सं.	ग्रह	सूक्त	सन्दर्भ	ऋषि	मन्त्र संख्या	देवता	छन्द
1	2	3	4	5	6	7	8
1.	सूर्य	ह्वयाम्यग्निं.......देवं	1.35	हिरण्यस्तूप	11	मन्त्र 1-मित्रावरुण रात्रि सविता 2-11	2,4,5,6,10,11 त्रिष्टुप् 7.,8 पङ्क्ति
2.	सोम	त्वं सोम........गविष्ठौ	1.91	गौतम	23	सोम	5-12 गायत्री 17 उष्णिक् शेष त्रिष्टुप्
3.	भौम	समिधाग्निं.....सोतिर	8.44	विरूप आङ्गिरस	30	अग्नि	गायत्री
4.	बुध	उद्बुध्यध्वं......पीतये	10.101	बुध	22	विश्वेदेवा	9,12,जगती 5 बृहती 4,6 गायत्री शेष त्रिष्टुप्
5.	बृहस्पति	यस्तस्तम्भ....मराती	4.50	वामदेव	11	1-9 बृहस्पति 10.-11 इन्द्राब्रहस्पति	त्रिष्टुप
6.	शुक्र	शुक्रं ते....संस्वंचम्	6.58	भारद्वाजो बार्हस्पत्य	4	पूषा	1,3,4 त्रिष्टुप् 2 जगती

1	2	3	4	5	6	7	8
7.	शनि	आपोह्ष्ठा....वर्चसा	10.9	सिन्धुद्वीप वाम्बरीष	9	आपः	1-7 गायत्री 8-9 अनुष्टुप्
8.	राहु	कया नश्चित्र....मिवोपरि	5.31	वामदेव	15	इन्द्र	गायत्री
9.	केतु	युंजन्ति ब्रध्नं रजसः......	1.6	मधुच्छन्दा	10	1-3 इन्द्र 4,6,8,9, मरुत् 5,7 मरुत् व इन्द्र	गायत्री

क्र.सं.	अधिदेव	सूक्त	सन्दर्भ	ऋषि	मन्त्र संख्या	देवता	छन्द
1.	ईश्वर	इमा रुद्राय...तद्यौः	1.114	कुत्स	11	रुद्र	4,5,10,11 त्रिष्टुप् शेष जगती
2.	उमा	आपोहिष्ठा......	10.9	वाम्बरीष	09	आपः	1-7 गायत्री 8-9 अनुष्टुप्
3.	स्कन्द	प्रातर्युजा.....पदम्	1.21	मेधातिथि	21	1-4 अश्विनौ 5-8 सविता 9-10 अग्नि	गायत्री

						11 देव्यः 12 इन्द्राणी 13-14 वरुणानी 15 पृथ्वी 16-21 विष्णु
4.	हरि	अतो देवा......पदम्	1.21	मेधातिथि	16-21 विष्णु (5)	गायत्री
5.	ब्रह्मा	अग्न आयाह्य.....स्विनः	8.60	भर्ग प्रगाथ	20 अग्नि	1,3,5,7,11,13,15,17,19 बृहती 2,4,6,8,10,12,14,16, 18,20 पंक्ति
6.	इन्द्र	इन्द्रं विश्वा....यसीः	1.11	माधुच्छन्दस्	08	अनुष्टुप्
7.	यम	आयं गौ.....शुभिः	10.189	सार्पराज्ञ	03	गायत्री
8.	काल	परं मृत्यो......तेन	10.18	मृत्यु	04	त्रिष्टुप्
9.	चित्रगुप्त	सचित्र.....युवस्व	6.6.7	भरद्वाज	01	त्रिष्टुप्

प्रत्यधिदेव :

1.	अग्नि	अग्नि दूतं....स्वनः	1.12	मेधातिथि	12		गायत्री
2.	आपः	कस्य नूनं.....स्याम	1.24	आजीर्गत शुनः शेप	15	1. प्रजापति 2. अग्नि 3-5 सविता 6-15 वरुण	1,2,6-15 त्रिष्टुप् 3-5 गायत्री
3.	क्षिति	स्योना पृथ्वी...प्रथः	1.22.15	मेधातिथि		पृथिवी	गायत्री
4.	विष्णु	सहस्रशीर्षा....देवाः	10.90	नारायण	16	पुरुष	16-त्रिष्टुप् शेष अनुष्टुप्
5.	इन्द्र	इन्द्रायेन्दो..सदम्	9.64.22	काश्यप	01	पवमान सोम	गायत्री
6.	ऐन्द्री	इमां खनामि...धावतु	10.145	इन्द्राणी	06	उपनिषत्सपत्नी बाधनम्	6 पङ्क्ति 1-5 अनुष्टुप्
7.	प्रजापति	प्राजापते...रयीणाम्	10.121.10	हिरण्यगर्भ प्राजापत्य	01	कः	त्रिष्टुप्
8.	सर्प	कालिको नाम...हनः	खिल सूक्त3	वसिष्ठ	01	सर्प	अनुष्टुप्
9.	ब्रह्मा	ब्रह्मा...रेभन्	9.96.6	दैवोदासि प्रतर्दनः	01	पवमान सोम	त्रिष्टुप्

विनायकादिपंच देव :

1.	विनायक	8.8.1	कुसीदी काण्व	01	इन्द्र	गायत्री
2.	दुर्गा	1.99.1	कश्यप	01	जातवेदा अग्नि	त्रिष्टुप्
3.	समीरण	9.102.1	त्रित	01	पवमान सोम	उष्णिक्
4.	आकाश	8.6.30	वत्स	01	इन्द्र	गायत्री
5.	अश्विनौ	1.46.1	प्रस्कण्व	01	अश्विनौ	गायत्री

लोकपाल :

1.	इन्द्र	इन्द्रं विश्वा...यसी	1.11	माधुच्छन्दस	08	इन्द्र	अनुष्टुप्
2.	अग्नि	अग्निः सप्तिः...जस्व	10.80	सौचीक वैश्वानर	07	अग्नि यम	त्रिष्टुप्
3.	यम	परेयिवांसं...आहिता	10.14	यम	16	यम	1-14त्रिष्टुप् 15 वृहती 16 जगती
4.	निर्ऋति	वेत्था हि...मिव	8.24.24	विश्वमना वैयस्य	01	इन्द्र	उष्णिक्
5.	वरुण	मोषु...वरुण रीरिषः	7.89	वसिष्ठ	05	वरुण	1-4 गायत्री 5 जगती

6.	वायु	वात आवातु...जीवसे	10.186	उलो वातायन	03	वायु	गायत्री
7.	सोम	त्वा सोम....परिष्कृतम्	9.86.24	पृश्नयोऽजा	01	पवमान सोम	जगती
8.	ईशान	इमा रुद्राय...नातुरम्	1.114.1	अङ्गिरस कुत्स	01	रुद्र	जगती
9.	अनन्त	सहस्रशीर्षा...गुलम्	10.90.1	नारायण	01	पुरुष	अनुष्टुप्
10.	ब्रह्मा	त्वमित्सप्रथा..वेधसः	8.60.5	भर्ग प्रागाथ	01	अग्नि	बृहती

वस्वादि देव :

1.	वसु	ज्मया अत्र ...अस्य	7.39.3	वसिष्ठ	01	विश्वेदेवा	त्रिष्टुप्
2.	आदित्य	इमा गिरः...वीराः	7.45	गृत्समद	17	आदित्य	7,9,10 पङ्क्ति शेष त्रिष्टुप्
3.	रुद्र	आते पित....वीराः	2.33	गृत्समद	15	रुद्र	2,7,12 पङ्क्ति शेष त्रिष्टुप्
4.	मरुत्	मरुतो यस्य...श्मसि	1.86	राहूगण गौतम	10	मरुत्	गायत्री
5.	ब्रह्म	हिरण्यगर्भः...रयीणाम्	10.121	हिरण्यगर्भ	10	कः	त्रिष्टुप्
6.	अच्युत	सहस्रशीर्षा...गुलम्	10.90.1	नारायण	01	पुरुष	अनुष्टुप्
7.	ईश	आते पितः...प्रजाभिः	2.33.1	गृत्समद	01	रुद्र	त्रिष्टुप्
8.	अर्क	चित्रं देवानाम्...उत द्यौ	1.115	अङ्गिरस कुत्स	06	सूर्य	त्रिष्टुप्
9.	वनस्पति	वनस्पते वीड्वङ्गो...गृभाय	6.47	26-28 गर्ग	03	रथ	त्रिष्टुप्

आह्वान किये जाने पर भी षोडश मातृकाओं व गणपति के होम एवं सूक्त जप नहीं होते।

1. दानसागर पृष्ठ - 67.
2. विष्णुधर्मोत्तरपुराण- 1/61/33.
3. दानमयूख, पृष्ठ - 21.
4. वही,
5. वही,
6. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 140.
7. वही, पृ. - 139.
8. दानखण्ड (चतुर्वर्ग चिन्तामणि) पृष्ठ - 139.
9. 197/17.
10. दानमयूख, पृष्ठ - 21.
11. वही,
12. वही, पृष्ठ - 22.
13. दानमयूख, पृष्ठ -22.
14. भविष्यपुराण, 163/37 (ब्राह्म पर्व).
15. वही, 210/78 (ब्राह्म पर्व).
16. चतुर्वर्गचिन्तामणि - दानखण्ड, पृष्ठ - 109-110.
17. दानमयूख, पृष्ठ -23.
18. दानमयूख, पृष्ठ -23.
19. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दान खण्ड, पृष्ठ -119.
20. दानसागर, पृष्ठ - 65.
21. दानमयूख, पृष्ठ -26.
22. दानमयूख, पृष्ठ -22.
23. वीरमित्रोदय-परिभाषाप्रकाश, पृष्ठ - 114/प्र. चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी।
24. स्कन्दपुराण - 7/1/338/44
25. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 109.

26. वही, पृष्ठ- 110.

27. वही, पृष्ठ- 111.

28. दानसागर, पृष्ठ -65.

29. वही, पृष्ठ - 65.

30. वही, पृष्ठ - 66.

31. प्रतिष्ठामहोदधिः, लेखक- पण्डित श्री वायुनन्दन मिश्र।

32. पृष्ठ , 64.

33. वीरमित्रोदय-परिभाषा प्रकाश, पृष्ठ 101-102.

34. दानमयूख - पृष्ठ - 23.

35. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 114.

36. भगवन्तभास्कर, दानमयूख, पृष्ठ - 26.

37. भगवन्तभास्कर, दानमयूख, पृष्ठ - 26.

38. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 104.

39. वही, पृष्ठ- 105.

40. भविष्यपुराण 1/64/4.

41. वही, 1/16/47-48.

42. वही, 1/6/49.

43. दानसागर- पृष्ठ - 59.

44. लघुहारीतस्मृति-4/40-44, स्मृतिसन्दर्भ- भाग-2, पृष्ठ - 984-85.

45. वृहत्पराशरस्मृति-4/57, वही, पृष्ठ - 719.

46. बाधूलस्मृति- 141 स्मृतिसन्दर्भ भाग-5, पृष्ठ 2636.

47. बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति- 7/137,139 स्मृतिसन्दर्भ, भाग-4, पृष्ठ 2296-97.

48. कात्यायनस्मृति-9/11, वही भाग-3, पृष्ठ 1349.

49. दानसागर, पृष्ठ - 60.

50. कात्यायनस्मृति-9/12-14.

51. वही, 8/17-18.

52. दानसागर में उद्धृत-पृष्ठ- 61.

53. दानसागर, पृष्ठ -60.

54. भविष्य पुराण 4/96/4.

55. 1/82/14 वही.

56. वही 1/164/83.

57. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड में उद्धृत-भविष्यपुराण, पृष्ठ - 111.

58. वही, पृष्ठ - 112.

59. वही,

60. दानमयूख, पृष्ठ - 27.

61. वही,

62. वही,

63. लिङ्गपुराण 2/28/83.

64. दानमयूख- पृष्ठ - 27.

65. वही, पृष्ठ - 27-28.

66. वही, पृष्ठ - 28.

67. ब्रह्मवैवर्तपुराण 2/42/54-58.

68. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड पृष्ठ - 114.

69. मनुस्मृति 8/131/स्मृतिसन्दर्भ भाग प्रथम, पृष्ठ - 143.

70. मनुस्मृति 8/132-137.

71. याज्ञवल्क्यस्मृति- 1/362-365.

72. दानमयूख- पृष्ठ - 28.

73. विष्णुस्मृति- चतुर्थ अध्याय, स्मृतिसन्दर्भ-भाग प्रथम, पृष्ठ - 412.

74. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 116.

75. नारदीयमनुस्मृति- 18/116/वही, पृष्ठ - 330.

76. विष्णुस्मृति- टीकाकार-नन्द पण्डित-पृष्ठ-75 भाग प्रथम, प्रकाशक अड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, सन् 1964.

77. वही, पृष्ठ - 77.

78. वृहत्पराशरस्मृति- 10/307 स्मृतिसन्दर्भ भाग द्वितीय, पृष्ठ- 895.

79. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 118.

80. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 119-120.

81. दानमयूख (भगवन्तभास्कर) पृष्ठ - 28.

82. वही, पृष्ठ- 29.

83. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखोण्ड, पृष्ठ - 120.

84. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 120.

85. वही, पृष्ठ - 120-121.

86. वही, पृष्ठ - 121-122.

87. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ -122.

88. वही

89. यज्ञमधुसूदनः स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्यायः, पृष्ठ-2, प्रकाशक-वैदिक प्रेस मुद्रणालय, अजमेर।

90. वही, पृष्ठ -4.

91. दानमयूख- नीलकण्ठ, पृष्ठ-32.

92. पृष्ठ- 8.

93. पृष्ठ- 8.

94. यज्ञमधुसूदन- स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्याय, पृष्ठ-8.

95. वही, पृष्ठ-9.

96. वही,

97. वही,

98. वही,

99. वही, पृष्ठ-9-10.

100. वही, पृष्ठ - 10.

101. वही, पृष्ठ - 10.

102. यज्ञमधुसूदन- स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्याय, पृष्ठ-5.

103. कुण्डमण्डपसिद्धिः- श्री विट्ठलदीक्षित, पृष्ठ -6, प्रकाशक संस्कृत पुस्तकालय, कचौडी

गली, वाराणसी-1.

104. वही, पृष्ठ -7.

105. दानमयूख- पृष्ठ - 31.

106. कुण्डनिर्माणस्वाहाकारपद्धति-दौलतराम गौड, पृष्ठ- 198.
प्रकाशक- ठाकुरप्रसाद पुस्तक भण्डार, कचौडी गली, वाराणसी- 1982.

107. वही, पृष्ठ- 198-99.

108. वही, पृष्ठ - 199.

109. यज्ञमधुसूदन- स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्यायः, पृष्ठ- 12.

110. प्रतिष्ठामहोदधिः- प्रतिष्ठामहोदधिसम्भाराः पृष्ठ - 9-10,.
प्रकाशक- चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन

111. पृष्ठ - 199-200.

112. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ- 123-124.

113. प्रतिष्ठामहोदधिसम्भारः- पृष्ठ - 9-10.

114. वही, पृष्ठ - 9-10.

115. वही, पृष्ठ - 10.

116. दानमयूख, पृष्ठ - 33-34.

117. पृष्ठ, - 200.

118. कुण्डनिर्माणस्वाहाकारपद्धति-पृष्ठ - 200.

119. कुण्डमण्डपसिद्धिः - पृष्ठ- 11-12,

120. कुण्डनिर्माणस्वाहाकारपद्धति-पृष्ठ - 203.

121. वही, पृष्ठ - 201-202.

122. कुण्डनिर्माणस्वाहाकारपद्धति-पृष्ठ - 204.

123. यज्ञमधुसूदन- स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्यायः - पृष्ठ - 16.

124. कुण्डमण्डपसिद्धिः- पृष्ठ 15-17, कुण्डनिर्माणस्वाहाकार पद्धति पृष्ठ - 189-190.

125. दानमयूख, पृष्ठ - 36.

126. वही, पृष्ठ - 37.

127. स्मार्तकुण्ड समीक्षाध्याय, पृष्ठ- 18.

128. वही, पृष्ठ - 19.

129. कुण्डनिर्माणस्वाहाकारपद्धति, पृष्ठ - 23.

130. सभी प्रकार के कुण्ड निर्माण विधि हेतु द्रष्टव्य- कुण्ड निर्माणस्वाहाकारपद्धति- पृष्ठ 23-58, कुण्ड मण्डपसिद्धि- पृष्ठ - 15-29 तथा दानमयूख, पृष्ठ - 37-44.

131. दानमयूख- पृष्ठ - 48.

132. वही,

133. स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्यायः, पृष्ठ - 46.

134. वही, पृष्ठ - 48.

135. वही, पृष्ठ - 49.

136. वही, पृष्ठ - 49.

137. वही, पृष्ठ - 50.

138. दानमयूख, पृष्ठ - 51.

139. वही,

140. 11/38-40, स्मृति सन्दर्भ भाग द्वितीय, पृष्ठ - 907.

141. 11/40-42, वही,

142. दानमयूख, पृष्ठ - 51-52.

143. वही, पृष्ठ - 52.

144. वही, पृष्ठ- 53.

145. दानमयूख, पृष्ठ - 53.

146. मत्स्यपुराण- 93/15-16, प्रकाशक- मेहरचन्द लक्ष्मणदास, न्यू देहली।

147. दानमयूख, पृष्ठ -55.

148. दानमयूख, पृष्ठ -55.

149. मत्स्यपुराण - 93/18.

150. दानमयूख, पृष्ठ - 56.

151. वही, पृष्ठ - 56.

152. मत्स्यपुराण- 93/19-20.

153. दानमयूख, पृष्ठ - 57.

154. दानमयूख, पृष्ठ - 58.

155. दानमयूख, पृष्ठ - 64.

156. दानमयूख, पृष्ठ - 64.

157. दानमयूख, पृष्ठ - 64.

158. दानमयूख, पृष्ठ - 66.

159. दानमयूख, पृष्ठ - 66.

160. दानमयूख, पृष्ठ - 78.

तृतीय अध्याय

: षोडश महादान :

मत्स्यपुराण में षोडश महादानों की गणना निम्न प्रकार से की गई है-

आद्यन्तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञितम्।
हिरण्यगर्भदानंच ब्रह्माण्डं तदनन्तरम्॥

कल्पपादपदानं च गोसहस्त्रं च पंचमम्।
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च॥

हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा ।
पंचलाङ्गलकं तद्वद्धरादानन्तथैव च॥

द्वादशं विश्वचक्रं च ततः कल्पलतात्मकम्।
सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च ॥
महाभूतघटस्तद्वत् षोडशं परिकीर्तितम्।[1]

महादान शब्द से ही स्पष्ट है कि इन दानों में प्रचुर धन एवं विशद सम्भार की आवश्यकता होती थी, अतः इन दानों का आयोजन करना साधारण गृहस्थ के वश की बात नहीं थी। मुख्यतः राजाओं अथवा अन्य प्रभूत धनसम्पन्न वर्ग द्वारा ही ये महादान किये जाने सम्भव थे। मत्स्य पुराण में भी इन्द्र, वासुदेव श्रीकृष्ण, राजा अम्बरीष, कार्तवीर्यार्जुन प्रह्लाद पृथु भरतादि अन्य राजाओं द्वारा इन दानों को किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

मत्स्यपुराण को आधार मानते हुए सभी धर्मशास्त्रकारों का मत है कि विप्रों से अनुमोदन प्राप्त कर एवं गोविन्द, उमापति तथा विनायक की आराधना कर महादानयज्ञ करना चाहिये-

तस्मादाराध्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ।
महादानमखं कुर्याद् विप्रैश्चैवानुमोदितः ॥[3]

गोविन्द, उमापति और विनायक की आराधना के संबंध में भगवन्त भास्करकार नीलकण्ठ का मत है कि एक प्रतिमा में गोविन्द की एवं एक अन्य प्रतिमा में उमापति व विनायक की पूजा करनी चाहिये, अर्थात् दो प्रतिमाएं होनी चाहिये।[4] चतुर्वर्ग चिन्तामणि व दानसागर में दो प्रतिमाओं का विधान न होकर बहुवचन का प्रयोग किया गया है, अतः प्रतिमाओं का पृथक्-पृथक् होना सूचित होता है।[5]

महादान हेतु सर्वप्रथम उचित काल एवं देश का निर्णय करना आवश्यक है। (अध्याय एक में इस विषय पर विस्तार से विचार किया जा चुका है।) अतः पवित्र काल और देश का निर्णय कर जब कोई पवित्र तिथि निकट हो तो महादान करने का निश्चय करना चाहिये। निश्चय के उपरान्त अधिवासन (= देव प्रतिष्ठा) के पूर्व दिन सर्वप्रथम पुण्याह, स्वस्ति, वृद्धि रूप ब्राह्मण- वाचन करवा कर, मण्डप, कुण्ड, वेदी इत्यादि का निर्माण करवाना चाहिये। मण्डप, कुण्ड, वेदी इत्यादि के निर्माण एवं अलङ्करण के विषय में अध्याय दो में विस्तार से विचार किया जा चुका है।

: (1) तुलापुरुष महादान :

तुलापुरुषदान का तात्पर्य है - तुला में स्वयं (यजमान) के बराबर द्रव्य तोलकर, वह द्रव्य उचित पात्र को दान में देना। कृत्यकल्पतरु के अनुसार तुलापुरुषदान में मण्डप सोलह अरत्नि (16 x 21 अङ्गुल), बारह हाथ (12× 24 अङ्गुल) अथवा दस हाथ (10 × 24 अङ्गुल) प्रमाण का होगा। मध्य वेदी सात अथवा पांच हाथ की होगी।[6]

भगवन्त भास्कर के अनुसार यह वेदी सोलह अरत्नि मण्डप में सात हाथ की व बारह एवं दस हाथ के मण्डप में पांच हाथ की होगी।[7] इस वेदी पर ही यजमान को द्रव्य से तोलने हेतु तुला निर्माण का विधान है। नीलकण्ठ, हेमाद्रि, वल्लालसेन आदि ने अपने ग्रन्थों में तुला निर्माण की विधि का अत्यन्त सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन किया है।

कृत्यकल्पतरु के अनुसार यह तुला, सुवर्णपत्र, आभरण, रत्नमाला एवं माल्यविलेपनादि से सुशोभित होनी चाहिये। तुला के नीचे (वेदी पर) पद्मगर्भयुक्त चक्र

का पंचवर्ण रज से अङ्कन करना चाहिये। इस चक्र पर अनेक प्रकार के पुष्प बिखरे हुए हों । तुला पर पंचवर्ण वितान (चंदोवा) बांधना चाहिये।[8] प्रस्तुत प्रबन्ध के अध्याय दो में वर्णित रीति से चारों दिशाओं में चार कुण्ड, तोरण, कलश, ध्वजाएं, पताकाएं इत्यादि स्थापित करनी चाहियें। कुण्डों के निकट आम्रपल्लव से ढके मुख वाले एक-एक जल पूर्ण कुम्भ, होता व ब्रह्मा हेतु दो-दो आसन, दो-दो ताम्रपात्र, प्रत्येक स्रुक् व स्रुव से युक्त यज्ञ पात्र, (अग्रभाग तोड़े हुए 25 कुशाओं से बने) विष्टर नामक आसन, पुष्प उपहार आदि सामग्री एकत्र करनी चाहिये। निकट ही हवन हेतु तिल, घी, धूप, कुश पुष्प, समिधाएं ईंधन इत्यादि की व्यवस्था भी होनी चाहिये। पूर्व वर्णित रीति से ग्रह, अधिदेव, प्रत्यधिदेव विनायकादि पंच देव पूजन के लिये वेदी बनानी चाहिये। तत्पश्चात् पूर्वोक्त रीति से ऋत्विग्वरण व गुरुवरण करना चाहिये। ऋत्विज् व गुरु का स्वरूप निम्न प्रकार से वर्णित है-

अथर्त्विजो वेदविदश्च कार्याः।
स्वरूपवेषान्वयशीलयुक्ताः ॥

विधानदक्षाः पटवोऽनुकूलाः।
ये चाऽऽर्यदेशप्रभवा द्विजेन्द्राः ॥

गुरुश्च वेदान्तविदार्यदेश-।
समुद्भवः शीलकुलाभिरूपः ॥

कार्यः पुराणाभिरतोऽतिदक्षः।
प्रसन्नगम्भीरसरस्वतीकः ॥

सिताम्बरः कुण्डलहेमसूत्रः।
केयूरकण्ठाभरणाभिरामः ॥[9]

मण्डप की पूर्व दिशा में ऋग्वेदी, दक्षिण में यजुर्वेदी, पश्चिम में सामवेदी एवं उत्तर में अथर्ववेदी ऋत्विजों का स्थान होगा। ये ऋत्विज विनायकादि पंचदेवों, ग्रहों, लोकपालों, आठ वसुओं, मरुत्गणों, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, आदित्य व वनस्पतियों के लिये तत्तत् होम मन्त्रों से चार-चार आहुतियां दें। इन देवों के सूक्तों का जप करें। होम समाप्ति पर गुरु तूर्यनाद कर, बलि, पुष्प और धूप लेकर यजमान के साथ इन्द्र, अग्नि,यम आदि लोकपालों

का आह्वान अध्याय द्वितीय परिशिष्ट संख्या 01 में निर्दिष्ट पद्यों द्वारा करें। अध्याय दो पृष्ठ 176 पर निर्दिष्ट रीति से देव, दानव, गन्धर्व इत्यादि का रक्षार्थ आह्वान कर ऋत्विजों को स्वर्णाभूषण (यथा कुण्डल, हार,कड़े, अंगूठी आदि) वस्त्र, शय्या इत्यादि प्रदान किये जायें । यहाँ गुरु को ऋत्विजों से दुगुने आभूषण वस्त्र इत्यादि प्रदान किये जाने चाहियें। इस समय आठ जापक शान्तिकाध्याय (शं न इन्द्राग्नी भवताम्.....) का पाठ करें। इस दिन व पूरी रात यजमान, गुरु, ऋत्विज् और जापक मण्डप में ही रहें। इस प्रकार अधिवासन (=देवप्रतिष्ठा) करें। भगवन्त भास्कर के अनुसार अधिवासन के पूर्व दिन यजमान एक समय भोजन ग्रहण करे। अधिवासन के दिन यजमान अपनी कामना का उच्चारण करते हुए अगले दिन तुलापुरुषदान करने का संकल्प करे।[10] अधिवासन के दिन ही गोविन्द,उमापति और विनायक की पूजा कर, ब्राह्मणाज्ञा प्राप्त कर षोडश मातृकाओं की सात वसुधाराओं[11] से पूजा करे। नान्दी श्राद्ध[12] पुण्याह वाचन, ऋत्विग्द्वारपालवरण, उनका मधुपर्क से पूजन इत्यादि पूर्वाह्ण में कर अपराह्ण में गुरु सहित मण्डप पूजा करें।[13] अधिवासन के दिन यजमान, गुरु, ऋत्विज् व द्वारपाल उपवास करें । अशक्त होने पर नक्त व्रत करें एवं नृत्यगीतादि सहित रात्रि जागरण करें।[14] दिन में क्रियाओं के प्रारम्भ, मध्य व अन्त में ब्राह्मण स्वस्ति, वृद्धि, पुष्टि इत्यादि का वाचन करें।

अधिवासन के दूसरे दिन मंगलशब्दपूर्वक स्नान करवाया हुआ यजमान श्वेत वस्त्र धारण कर, पुष्पांजलि लेकर, तुला की प्रदक्षिणा कर, निम्न प्रकार से तुला की स्तुति करे-

नमस्ते सर्व देवानां शक्तिस्त्वं सत्यमास्थिता।
साक्षीभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना॥

एकतः सर्वसत्वानि सत्यानृतशतानि च।
धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापिताऽसि जगद्धिते॥

त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्त्तिता।
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते॥

योऽसौ तत्वाधिपो देवः पुरुषः पंचविंशकः।
स एषोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नमः॥

नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक।
त्वं हरे तारयस्वाऽस्मानस्मात् संसारसागरात्॥[15]

तदुपरान्त पवित्र समय निकट जानकर, पुनः प्रदक्षिणा कर तुलारोहण करे। उस समय यजमान खड्ग, चर्ममय कवच, ढाल धारण किये हुए एवं समस्त आभूषणों से युक्त हो। उसके हाथों में स्वर्ण यज्ञोपवीत धारण किये हुए धर्मराज व सूर्य की मूर्ति हो। दोनों हाथ बंधी मुट्ठी वाले हों। यजमान तुला मध्य में लटकी हुई, स्वर्ण पत्र निर्मित विष्णु की मूर्ति की ओर मुख किये हुए हो। इस समय श्रेष्ठ ब्राह्मण तुला के दूसरे भाग में यजमान के बराबर से कुछ अधिक स्वर्ण रखें। पुष्टि की कामना करने वाला राजा उपर्युक्त तुला भाग में तुला, भूमि पर टिक जाये, इतना स्वर्ण रखवाये। क्षणभर के लिये तुला पर बैठकर पुनः निम्न प्रकार से बोले-

नमस्ते सर्व भूतानां शक्तिभूते सनातनि।
पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना॥

त्वया धृतं जगत्सर्वं बहिः स्थावरजङ्गमम्।
सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि॥

तत्पश्चात् तुला से उतरकर सर्वप्रथम उदकपूर्वक गुरु को आधा स्वर्ण प्रदान करे, दूसरा आधा भाग ऋत्विजों को प्रदान करे। गुरु और ऋत्विजों को दक्षिणास्वरूप ग्राम और रत्न भी प्रदान करे। हेमाद्रि का कथन है कि कुछ विद्वानों के अनुसार ग्राम और रत्न के स्थान पर ''ग्रामरत्न'' (श्रेष्ठ ग्राम) अर्थ है।[16] पुनश्च ''ग्राम और रत्न की दक्षिणा क्षत्रियकर्तृक दान में ही होगी। अन्यकर्तृक दान में तो सुवर्ण ही दक्षिणा में देय होगा'' ऐसा हेमाद्रि का मत है।[17] गुरु और ऋत्विजों की आज्ञा प्राप्त कर यजमान अन्य दीन, अनाथ और विशिष्टों[18] को भी दान दे तथा ब्राह्मणों के साथ इनकी पूजा करे। बुद्धिमान मनुष्य दान किये हुए द्रव्य को घर में अधिक समय तक न रखे। इससे शोक और व्याधि की आशंका रहती है।

तोले गये स्वर्ण के गुरु ऋत्विज् इत्यादि को देय अंश एवं दक्षिणा के विषय में धर्मशास्त्रकारों में मतभेद है।[19] एक मत के अनुसार तोले गये स्वर्ण में से आधा गुरु को और आधा ऋत्विजों को दान देना चाहिये। तदुपरान्त जापकों को अन्य द्रव्य दान करना चाहिये। द्वितीय मत (कृत्यकल्पतरु पृष्ठ 62 आदि) के अनुसार तुला द्रव्य के तीन भाग कर एक भाग गुरु, एक ऋत्विजों व एक अन्यों को दें। तृतीय मत के अनुसार गुरु व ऋत्विजों की अनुज्ञा से जापकों व अन्यों को भी उसी तोले गये स्वर्ण में से दान दे। एक

मत यह भी है कि उपस्थित दीनों और अनाथों को चावल और वस्त्र देकर संतुष्ट करें। मण्डपादि सामग्री गुरु को प्रदान कर दें।

भगवन्तभास्कर के अनुसार दान के पश्चात् सहस्र ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिये अथवा संकल्प करना चाहिये। अन्त में पुण्याहवाचन कर स्थापित देवों की पूजा करनी चाहिये। गुरु पूजा के उपरान्त पुनरागमन हेतु देवविसर्जन करे। दान की कामना से ही दान का प्रयोजन परिलक्षित होता है। भगवन्तभास्कर (दान मयूख)[20] के अनुसार उपर्युक्त तुलादान ब्रह्महत्यादि सर्वपापनाश, विष्णुलोकप्राप्ति व चक्रवर्तित्व की कामना से किये जाने का विधान प्राप्त होता है।

नीलकण्ठ के द्वारा उद्धृत भविष्योत्तर पुराण के अनुसार यह तुला पुरुष दान कुछ लोग चांदी व कुछ लोग कर्पूर से भी करते हैं। उसका विधान मुख्य तुलापुरुष दान के समान ही है।[21] यहीं उद्धृत गोपथ ब्राह्मण में उपर्युक्त दान पाप विशेष के क्षय एवं सूर्य लोक की प्राप्ति हेतु किया जाना बताया गया है।[22]

शुक्लपक्ष की तृतीया को स्त्रियां कुङ्कुम, लवण अथवा गुड़ का तुलादान करती थीं, किन्तु उसमें मन्त्र-पाठ या होम करने का विधान नहीं है। सूर्यग्रहण पर सुवर्ण से, चन्द्रग्रहण पर रजत से, पितरों की प्रीति के लिये कांस्य से, पितामह के लिये ताम्र से, लक्ष्मी की प्रीति के लिये सैन्धव नमक से, पार्वती की प्रीति के लिये गुड़ से, विश्वधात्री की प्रीति के लिये मुख्यतः सैन्धव नमक से व गौण रूप से गन्ध, गुड़ या वस्त्रों से भी तुलादान करने का विधान किया गया है।[23]

नीलकण्ठ, हेमाद्रि आदि द्वारा उद्धृत गरुड पुराण [24] के अनुसार विभिन्न रोगों के नाश के लिये भी भिन्न-भिन्न द्रव्यों से तुलापुरुषदान किया जाता है। इन द्रव्यों, दान फलों व दान के अधिष्ठातृ देवों को निम्न प्रकार से संक्षेप में बताया जा सकता है-

क्र सं.	द्रव्य	रोग शान्ति/फल	अधिदेव
1.	लौह	सर्वरोग	महाभैरव
2.	कांस्य	यक्ष्मा	अश्विनौ व पूषा
3.	जस्ता	अर्श विकार	विष्णु
4.	सीसा	अपस्मार	वायु

1	2	3	4
5.	ताम्र	दारुण कुष्ठ	सूर्य
6.	पीतल	रक्तपित्त	मंगल
7.	रूप्य	प्रदर एवं मेह	पितर
8.	सुवर्ण	सर्व रोग/ मृत्युनिवारण	सर्व देव
9.	फल	दारुण संग्रहणी	सोम
10.	गुड़	भस्मक रोग, सर्वरोग नाश/ सौभाग्य प्राप्ति	आपः
11.	काष्ठज	अग्निमान्द्य	अग्नि एवं वनस्पति
12.	सुपारी	गण्डमाला	विनायक अथवा सोम
13.	पुष्प	रोमोत्पात	गन्धर्व
14.	मधु	कास,श्वास,जलोदर/ सौभाग्य प्राप्ति	यक्ष
15.	घृत	छाजन	मृत्युंजय
16.	दूध	पित्त (हृदय संताप राहित्य)	तारागण
17.	दधि	भगन्दर नाश	सर्प
18.	लवण	कम्पन/लावण्य व सौभाग्य प्राप्ति	विश्वधात्री
19.	पिष्ट	दद्रु	प्रजापति
20.	अन्न	सर्वरोग नाश	सर्व देवता
21.	रत्न	सर्वरोग नाश	विष्णु
22.	वस्त्र	सौभाग्य व दिव्य वस्त्र प्राप्ति	बृहस्पति
23.	तैल	सन्तानप्राप्ति	विष्णु
24.	शर्करा	शत्रुराहित्य	सूर्य
25.	चन्दन व गन्ध	सौन्दर्य, सौभाग्य	गन्धर्व
26.	कुड्कुम	पति से अवियोग /सौभाग्य	गौरी

1	2	3	4
27.	एकत्र सभी तुलादान	गौरी सदन की प्राप्ति	गौरी
28.	ताम्बूल	मुख सुगन्ध	विनायक
29.	तिल	विष्णु	

उपर्युक्त तुलादानों के लिये तुला निर्माण के पश्चात् कर्ता मास पक्ष तिथि आदि का उल्लेख कर ''अमुक-अमुक रोग निवृत्ति की कामना वाला, गौरी सदन सुपुण्य प्राप्ति, शोक दुर्गति निर्वृत्ति की कामना वाला, मैं अमुक तुलादान करूंगा'' यह सङ्कल्प कर, गणेश पूजा, आचार्यवरण, उनकी पूजा इत्यादि कार्य करे। कतिपय धर्मशास्त्रकारों के मतानुसार मुख्य तुलापुरुषदान के समान स्वस्ति वाचन, मातृकापूजन, नान्दी श्राद्ध इत्यादि कार्य भी किये जाने चाहिये। जिस द्रव्य का जो अधिदेवता है, उसका एवं गोविन्द, सूर्य व धर्मराज की प्रतिमा का भी इन दानों में पूजन करना चाहिये। शेष सभी कार्य मुख्य तुलापुरुषदानवत् होंगे। तोला गया द्रव्य आचार्य व ब्राह्मणों को प्रदान करते समय द्रव्यानुसार मन्त्रों का पाठ करना चाहिये एवं तत्तत् देवों के लिये सङ्कल्प करना चाहिये।

उपर्युक्त दानों में मुख्य तुलापुरुष दानवत् मण्डप निर्माण, वास्तुपूजा, ग्रहपूजा, ऋत्विग्वरण, प्रभूतदक्षिणा इत्यादि विशाल सम्भार की बाध्यता का निरूपण धर्मशास्त्रकारों ने नहीं किया है। ये दान सामान्य जन की सामर्थ्य सीमा से बाहर नहीं थे, ऐसा प्रतीत होता है । यहाँ एक सामान्य प्रश्न यह उठता है कि घृत, मधु, क्षीर जैसे तुलादानों में द्रव्य को तुला पर रख कर कैसे तोला जाता था ? नीलकण्ठोद्धृत विष्णुधर्मोत्तर पुराण में घृतादितुलाविधि के माध्यम से इस प्रश्न का समाधान किया गया है। तदनुसार पवित्र दिन निकट जानकर अथवा तृतीया तिथि को गोमयलिप्त भूमि पर शुभ्र वृक्ष के काष्ठ का एक चार हाथ प्रमाण का शुभ घट स्थापित करना चाहिये। उस घट पर अपनी शक्ति के अनुसार स्वर्ण बाँधकर उस घट के पास स्वर्ण-पत्र निर्मित विष्णु प्रतिमा की स्थापना करनी चाहिये। तुला में दो छींके बाँधकर, उनमें दो टोकरी रखनी चाहिये। एक टोकरी में यजमान वस्त्र, अस्त्र व पुष्पालङ्कारों से भूषित होकर, अभीष्ट देव को घी आदि से स्नान करवाकर हाथ में लेकर बैठें व दूसरी टोकरी में वह घड़ा रखें। इस घड़े में भी तत्तत् तरल द्रव्य को भरें। इस प्रकार उस छींके में बैठकर, क्षण भर पार्वती का ध्यान

कर, तुला से उतर कर गुरु को अर्घ्य प्रदान कर, विधिवत् सभी अलङ्कारों एवं आभूषणों से पूजा कर, भोजन करवायें एवं प्रस्थान करवायें। शेष द्रव्य ब्राह्मणों, स्त्रियों व अन्यों को देना चाहिये। इष्ट बन्धुओं, विशिष्टों व आश्रितों को देना चाहिये। केले के पत्ते पर स्थित पंचपिण्डा पार्वती को देना चाहिये।

:(2) हिरण्यगर्भदान :

मत्स्यपुराण के अध्याय 275 को मुख्य आधार मानते हुए सभी धर्मशास्त्रीय निबन्धकारों ने हिरण्यगर्भमहादान का विवेचन किया है। हिरण्यगर्भ महादान में ऋत्विज्, मण्डप, आभूषण, वस्त्र, लोकेशआह्वान, अधिवासन, उपवास पुण्याहवाचन इत्यादि सभी कार्य तुलापुरुषदानवत् ही होंगे। हिरण्यगर्भमहादान सम्पादनार्थ निम्नलिखित सामग्री आवश्यक होगी- ब्राह्मणों द्वारा दान स्थल पर लाया गया 72 अङ्गुल ऊँचा व 48 अङ्गुल चौड़ा मुरजाकृति स्वर्णकुण्ड, कुण्ड के तल भाग में स्थापित करने के लिये (नाभिवाच्य) स्वर्ण कमल, कुण्ड के बाहर स्थापित करने के लिये, खड्ग, चक्र, शक्ति, दण्ड, पाश, ध्वज, गदा, शूल, परशु एवं कुलिश नामक दस अस्त्र [25] पंचरत्न, नाल छेदन के लिये दरांत, कर्णवेध के लिये सूची, (सुई) स्वर्ण नाल सहित सूर्य प्रतिमा युक्त मंजूषा, नाभि के आवरणार्थ वस्त्राकार (वर्करूप) स्वर्ण, यज्ञोपवीत, निकट स्थापनार्थ स्वर्ण दण्ड व कमण्डलु, कुण्ड को आवृत्त करने के लिये पद्माकार, चारों ओर से एक अङ्गुल अधिक ढक्कन, जो मोतियों की माला व पद्मरागमणि से युक्त हो एवं कुण्ड के नीचे रखने के लिये एक द्रोण तिल की आवश्यकता होगी। हेमाद्रि के अनुसार नाल यज्ञोपवीत एवं दण्ड ही स्वर्ण के होंगे, अन्य वस्तुएं यथास्वरूप होंगी। दानसागर के अनुसार कुण्ड में भरने के लिये घी और दूध भी आवश्यक होंगे।[26] हेमाद्रि के अनुसार यजमान के प्रवेश करने पर बाहर न छलके, इतना घी-दूध आवश्यक होगा।[27] क्रमशः दाएं व बांये हाथ में लेने के लिये धर्मराज व चतुर्मुख ब्रह्मा की प्रतिमाएँ, यजमान के अभिषेक के लिये तीर्थ जल व सर्वौषधि, गुरुदक्षिणा के लिये खडाऊ, जूते का जोड़ा, छत्र, चँवर, आसन एवं पात्र भी आवश्यक होंगे। इस महादान में तुला पुरुषदानोल्लिखित- खड्ग, ढाल, विष्णु प्रतिमा तुला एवं सूर्य प्रतिमा के अतिरिक्त सभी सम्भार एकत्रित करने होंगे।

समस्त सामग्री एकत्र होने के उपरान्त दान के दो दिन पूर्व यजमान, गुरु, ऋत्विज्

और जापक तुलापुरुषदान के समान ही हविष्य भोजन कर हिरण्यगर्भदान का निवेदन और संकल्प करें। दूसरे दिन यजमान गोविन्दादि आराधन, ब्राह्मणों से निवेदन, दान सङ्कल्प, पुण्याह्वाचन, गुरुऋत्विज जापक वरण इत्यादि कार्य करे। इस दिन यजमान गुरु ऋित्वजादि उपवास करें। पुनः दूसरे दिन नित्य कार्य कर मुख्य तुलापुरुषदान के समान अग्निस्थापन, ब्राह्मणवाचन (पुण्याहवाचन) होम इत्यादि कार्य करें। इसके पश्चात् ऋत्विज् ढक्कन सहित स्वर्णकुण्ड को लाकर, प्रधान वेदी पर लिखे गये चक्र के ऊपर तिल-द्रोण पर स्थापित करें। कुण्ड के मध्य स्वर्ण-कमल रखकर यजमान के बैठने योग्य स्थिति तक कुण्ड को घी और दूध से भर दें।[28] कुण्ड के पास स्वर्ण-निर्मित-रत्न-युक्त दरांत, सुई, नाल, मंजूषा, कुश, आदित्य-प्रतिमा, यज्ञोपवीत, दण्ड व कमण्डलु रख दिये जायें। यजमान को सर्वौषधि मिश्रित तीर्थ जल से स्नान करवाया जाये, इस समय मङ्गल वाद्य बजाये जायें।

स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत वस्त्र, माला तथा समस्त आभूषण धारण कर, निम्न मन्त्र बोलते हुए, पुष्पांजलि से हिरण्यगर्भ की अर्चना करे-

नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च।
सप्तलोकसुराध्यक्ष जगद्धात्रे नमो नमः॥

भूर्लोकप्रमुखा लोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः।
ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते विश्वधारिणे॥

नमस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनाश्रय।
नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः॥

यतस्त्वमेव भूतात्मा भूते भव्ये व्यवस्थितः।
तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥[29]

तत्पश्चात् यजमान दोनों हाथों में धर्मराज व चतुर्मुख ब्रह्मा की स्वर्णप्रतिमाएं लेकर, हिरण्यगर्भ में प्रविष्ट होकर,उत्तर की ओर मुख कर, घुटनों के मध्य सिर कर पांच उच्छ्वास पर्यन्त बैठे। ब्राह्मण ढक्कन से कुण्ड को ढककर हिरण्यगर्भ के गर्भाधान, पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन संस्कारों का ध्यान कर यजमान की गृह्य विधि में कहे गये तत्तत् संस्कारों के प्रधान मंत्रों का पाठ करें। तत्पश्चात् गुरु तूर्य-नाद, मङ्गल गीत और वन्दिघोष के मध्य हिरण्यगर्भस्थ यजमान को हाथ पकड़कर उठाये । इस समय

ऋत्विगण हिरण्यगर्भ से निकले हुए यजमान के संस्कार के लिये अपने-अपने गृह्य-सूत्रों में कहे गये जातकर्मादि सोलह संस्कारों का ध्यान कर, उन उन संस्कारों के प्रधान मन्त्रों का पाठ करें। ये सोलह संस्कार हैं - जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन (प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय एवं सौम्य नामक) चार वेद व्रत, समावर्तन, विवाह एवं पंचमहायज्ञ। इनमें से ऋग्वेदियों में तीन ही वेद व्रत प्राप्त होते हैं। सामवेदियों में अन्नप्राशन नहीं होता, यजुर्वेदियों में नामकरण नहीं होता व अथर्ववेदियों में जातकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, गोदान, उपनयन, सावित्रीव्रत, वेदव्रत, सावित्रीव्रतविसर्जन, वेदव्रतविसर्जन, समावर्तन, विवाह एवं पंचमहायज्ञ होते हैं। तदुपरान्त यजमान पूर्वोक्त दरांत इत्यादि गुरु को प्रदान कर दे तथा निम्नलिखित मन्त्रों का जप करे-

नमो हिरण्यगर्भाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः।
चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः॥
मात्राहं जनितः पूर्वं मर्त्यधर्मामरोत्तम।
त्वद्गर्भसम्भवाद्देव दिव्यदेहो भवाम्यहम्॥[30]

इसके पश्चात् आठों ऋत्विज् वरणादि में प्राप्त अलङ्कारों से विभूषित होकर स्वर्णमय आसन पर बैठे हुए यजमान को देवस्य त्वा...मन्त्रों एवं

अद्य जातस्य तेऽङ्गानि अभिषेक्ष्यामहे वयम्।
दिव्येनानेन वपुषा चिरंजीव सुखी भव॥

पद्य को बोलते हुए कुण्ड के समीप स्थित चारों कुम्भों के जल से स्नान करवायें। यजमान स्नान कर, श्वेत वस्त्र और माला तथा समस्त आभूषण धारण कर गुरु और ऋत्विजों के नाम एवं गोत्र का उच्चारण करते हउ हिरण्यगर्भदान दे। प्रतिग्रहीता स्वस्ति बोलकर, सावित्री पढ़कर, विष्णु देव का स्मरण करते हुए शाखानुसार कामस्तुति का पाठ करें। यजमान गुरु को पादुका, उपानह, छत्र, चँवर, आसन, पात्र, ग्राम आदि दक्षिणा में दे। ऋत्विजों को दक्षिणा में उपजाऊ भूमि व रत्न दे। पुनः गुरु और ऋत्विजों को उनके भाग का सुवर्ण प्रदान करे। गुरु को हिरण्यगर्भ का आधा व आधा ऋत्विजों को प्रदान करे। ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन करवा कर शीघ्रातिशीघ्र दान सम्पन्न करें। स्त्रियों के जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म एवं विवाह नामक छः संस्कार ही

होते हैं। विवाह संस्कार समन्त्रक व अन्य संस्कार अमन्त्रक होते हैं। शूद्रों के उपर्युक्त छः संस्कार (अमन्त्रक) एवं पंचमहायज्ञ होते हैं। दान में जापकों को तुलापुरुष के समान दक्षिणा एवं दीनानाथों को अन्न वस्त्र आदि दिये जाते हैं। भगवन्तभास्कर से ज्ञात होता है कि यह दान कलिकलुषनिवृत्ति, नरकनिमग्न पित्रादि,विविध बन्धु, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि के उद्धार इत्यादि की कामना से किया जाता था।[31]

: (3) ब्रह्माण्डमहादान :

ब्रह्माण्ड महादान के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में कही गयी खड्ग, चर्ममय ढाल, अस्त्र, विष्णु प्रतिमा, अलङ्कृत तुला एवं हाथ में ग्रहण की जाने वाली प्रतिमा को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं के साथ जिन वस्तुओं की आवश्यकता होगी, वे हैं - 20 पल से लेकर एक हजार पल पर्यन्त स्वर्ण से निर्मित 12 अङ्गुल से लेकर 100 अङ्गुल पर्यन्त लम्बा चौड़ा मिलाकर रखने योग्य दो खण्ड वाला (अर्थात् स्वर्णनिर्मित अण्डाकार) ब्रह्माण्ड- जिसके अन्तः भाग में चतुर्मुख ब्रह्मा, आठ वसु, सात मरुद्गण व द्वादश आदित्य प्रतिमाएं उत्खाटित हों, जिसके बाहर की ओर अपने-अपने दिशा क्रम से ऐरावतादि दिग्गज एवं इन्द्रादि लोकपाल प्रतिमाएं उत्खाटित हों एवं जो उत्कृष्ट एवं अभीष्ट रत्न खचित हों, जिसके ऊपर के खण्ड के ऊर्ध्व भाग पर शिव, अच्युत, अर्क, उमा एवं लक्ष्मी की प्रतिमाएं उत्खाटित हों एवं जो उत्कृष्ट तथा अभीष्ट रत्न खचित हो। इस ब्रह्माण्ड के पूर्वादि दिशाओं में स्थापित करने के लिये दूसरे अधिक स्वर्ण से विरचित, स्वर्ण पत्र पर उत्खाटित जलशायि-विष्णु, प्रद्युम्न प्रकृति, सङ्कर्षण, वेद चतुष्टय, अनिरुद्ध, अग्नि एवं वासुदेव की प्रतिमाएं, इन सभी प्रतिमाओं को स्थापित करने के लिये आठ गुड़-पिण्ड, ब्रह्माण्ड को ढकने के लिये रेशमी वस्त्र, ब्रह्माण्ड की स्थापना के लिये तिल-द्रोण, ब्रह्माण्ड के निकट स्थापित करने के लिये दस गाय, गायों के अलङ्करण हेतु दस स्वर्णनिर्मित सींगों के जोड़े, वस्त्र, गायों को दुहने के लिये दस कांस्य-पात्र, ब्रह्माण्ड के पास स्थापित करने के लिये खड़ाऊ जोड़ा, जूता जोड़ा, छत्र चँवर, आसन, दर्पण, पीठी की सामग्री, अन्नसामग्री, गन्ने की जड़, मालाएं एवं अनुलेपन सामग्री। ब्रह्माण्ड महादान में अंकन की जाने वाली देव प्रतिमाओं का स्वरूप परिशिष्ट संख्या 07 में देखा जा सकता है।

ब्रह्माण्ड महादान करने का इच्छुक यजमान किसी पवित्र तिथि के दो दिन पहले यजमान गुरु, ऋत्विज् और जापक हविष्य भोजन कर ब्रह्माण्डमहादान का निवेदन और

सङ्कल्प करें। दूसरे दिन यजमान तुलापुरुषमहादान के समान गोविन्दादि अर्चन, ब्राह्मण निवेदन, दान सङ्कल्प, पुण्याहादि वाचन, ऋत्विग्वरण, मधुपर्कदान इत्यादि कार्य करें। तदुपरान्त गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक उपवास करें। अगले दिन सब लोग नित्य कर्म करके तुलापुरुषदान के समान अग्नि-स्थापना से लेकर मध्यब्राह्मणवाचन पर्यन्त कार्य यथा विधि करें। इसके पश्चात् ऋत्विग्गण पूर्वनिर्मित ब्रह्माण्ड को लाकर प्रधान वेदी पर लिखित चक्र पर, तिलद्रोण के ऊपर स्थापित करें। स्थापित ब्रह्माण्ड को कौषेय वस्त्र से आच्छादित कर उसके सभी पार्श्वों में अष्टादशधान्य आरोपित करें। तदुपरान्त ब्रह्माण्ड के पूर्व में अनन्तशायिविष्णु, पूर्वदक्षिण में प्रद्युम्न दक्षिण पार्श्व में प्रकृति, इसके पश्चात् सङ्कर्षण पश्चिम में चारों वेद, इसके पश्चात् अनिरुद्ध एवं उत्तर में वासुदेव की प्रतिमाओं को गुड़-पिण्ड़ों के ऊपर स्थापित करें। गुरु उन सब प्रतिमाओं की अपने -अपने नाम मन्त्रों से पूजा करें। इसके पश्चात् ऋत्विज् ब्रह्माण्ड के निकट वस्त्र से लपेटी हुई ग्रीवा वाले दस जलपूर्ण कलशों को स्वर्णश्रृंगी, वस्त्र से आच्छादित, दुहने के कांस्य पात्रों से युक्त दस गायों को एवं पादुका आदि उपकरणों को स्थापित करे। तत्पश्चात् मङ्गल गीत, वाद्य एवं वन्दिघोष के मध्य, कुण्ड के समीप स्थित चार कुम्भों के जल से यजमान को स्नान करवाया जाये, स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत वस्त्र और माला एवं समस्त आभूषण धारण कर, पुष्पांजलि लेकर, ब्रह्माण्ड की तीन प्रदक्षिणा कर निम्न मन्त्रों का पाठ करे-

नमोऽस्तु विश्वेश्वर विश्वधाम।
जगत्सवित्रे भगवन्नमस्ते॥

सप्तर्षिलोकामर भूत लेश।
गर्भेण सार्धं वितराभिरक्षाम्॥

ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु।
प्रयान्तु पापानि चराचराणां॥

त्वद्दानशस्त्राहतपातकानां ।
ब्रह्माण्डदोषाः प्रलयं व्रजन्तु॥[32]

तत्पश्चात् पुष्पांजलि से अर्चना कर एवं प्रणाम कर गुरु और ऋत्विजों को दान दे। प्रतिग्रहीता स्वस्ति कहकर, सावित्री पढकर, दान ग्रहण कर, कामस्तुति का पाठ

करें। अन्त में यजमान दान प्रतिष्ठा हेतु गुरु और ऋत्विजों को उपजाऊ भूमि एवं रत्न दक्षिणा में दे। प्रतिग्रहीता स्वस्ति कहकर ब्रह्माण्ड का स्पर्श करें। जापकों को दक्षिणा दान, दीन और अनाथों को अन्न और वस्त्र प्रदान किये जायें। पुण्याह-वाचन करवाकर तथा ब्रह्माण्ड को दस भागों में विभक्त कर दो भाग गुरु को व आठ भाग आठों ऋत्विजों को देय होंगे। स्वल्प ब्रह्माण्ड दान में गुरु अकेला ही पश्चिम दिशा में, वृत्त कुण्ड में हवन करे, त्रिऋत्वग्वरण न किया जाये।[33] जापक पूर्ववत् नियुक्त किये जायें। कुशमय ब्रह्मा बनाया जाये। यजमान सारा महादान गुरु को ही प्रदान करे। मत्स्यपुराण में ब्रह्माण्ड महादान से प्राप्त होने वाले फल के विषय में कहा गया है -

इत्थं य एतदखिलं पुरुषोऽत्रकुर्या-
द्ब्रह्माण्डदानमधिगम्य महद्विमानम्।
निर्धूतकल्मष विशुद्धतनुर्मुरारे-
रानन्द कृत्पदमुपैति सहाप्सरोभिः॥

सन्तारयेत्पितृपितामहपुत्रपौत्र-
बन्धुप्रियातिथिकलत्रशताष्टकं यः।
ब्रह्माण्डदानशकलीकृतपातकोऽय-
मानन्दयोच्चजननीकुलमप्यशेषम्॥[34]

:(4) कल्पपादपमहादान:

कल्पपादप महादान के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में लिखित खड्ग, चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र, तुला पर स्थाप्य विष्णुप्रतिमा, अलङ्कृत तुला हाथों में ली जाने वाली दो प्रतिमा, चार ऋत्विज्, चारों ऋत्विजों के लिये वरण और दक्षिणा सामग्री को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं के साथ-साथ निम्नलिखित सामग्री और एकत्रित करनी होगी -

तीन पल से लेकर सहस्र पल तक यथेष्ट स्वर्ण लेकर उसके आधे भाग से ब्रह्मादि प्रतिमा सहित कल्पपादप और दूसरे आधे भाग में से समान भाग लेकर सन्तान, मन्दार, पारिभद्र एवं हरिचन्दन नामक पांच-पांच शाखाओं वाले पांच वृक्ष, वस्त्राकार स्वर्ण पत्र पर निर्मित, अनेक प्रकार के फल और पक्षी, केयूर कुण्डल आदि इच्छित आभूषण, इनको ढकने के लिये श्वेत वस्त्रों के पांच जोड़े, वृक्षों के नीचे स्थापित करने के लिये दो

प्रस्थ गुड़, पात्रों में रखे हुए एक-एक प्रस्थ घी, जीरा और तिल, कल्पवृक्ष के नीचे स्थापित करने के लिये दूसरे इच्छित स्वर्ण-पत्र पर उत्खाटित (उभार कर बनाये गये) ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य की प्रतिमाएं चारों वृक्षों के नीचे स्थापित करने के लिए दूसरे यथेष्ट स्वर्ण निर्मित पत्र पर उभार कर बनायी गयी क्रमशः रति सहित कामदेव, लक्ष्मी, सावित्री और सुरभि नामक गाय की प्रतिमाएं, कल्पतरु के निकट स्थापित करने के लिये आठ घड़े, कल्पतरु के नीचे स्थापित करने के लिये कुश आदि से निर्मित आठ आसन, कुम्भों को आच्छादित करने के लिय आठ रेशमी वस्त्र, कुम्भों के पास स्थापित करने के लिये आठ इक्षु दण्ड, आठ मालाएं, आठ इच्छित फल, आठ पादुका जोड़े, आठ कांस्य-पात्र, कल्पतरु के पास अर्पित करने हेतु एक छोटा दीपक, जूता, जोड़ा, छत्र चँवर और अष्टादश धान्य।

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त पूर्वोक्त पवित्र तिथि में से किसी तिथि के दो दिन पहले यजमान, गुरु, ऋत्विज् और जापक तुलापुरुषमहादान के समान हविष्य भोजन आदि कर कल्पपादपमहादान का निवेदन और सङ्कल्प करें।

इसके दूसरे दिन यजमान तुलापुरुषमहादान के समान गोविन्दादि आराधन, ब्राह्मण अनुज्ञापन, दान संकल्प पुण्याहादि वाचन ऋत्विग्वरण, मण्डपपूजन इत्यादि कार्य करे। इस दिन गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक उपवास करें। रात्रि जागरण करें।

इसके दूसरे दिन गुरु ऋत्विज्, यजमान और जापक तुलापुरुषमहादान के समान अग्नि स्थापना से लेकर मध्य ब्राह्मणवाचन तक कार्य यथाविधि करें। इसके पश्चात् ऋत्विज् कल्पतरु को लाकर प्रधानवेदी के ऊपर लिखित चक्र के मध्य एक प्रस्थ गुड़ रख कर, उसके ऊपर स्थापित करें। उसके नीचे गुड़ प्रस्थ पर पंक्ति क्रम से स्वर्णपत्र पर उभार कर बनाई गई ब्रह्मा विष्णु, शिव और भास्कर प्रतिमाएं स्थापित करें। तदुपरान्त कल्पतरु के पूर्व में गुड़प्रस्थ पर संतान वृक्ष के नीचे रति सहित कामदेव की प्रतिमा को स्थापित करें, कल्पतरु के दक्षिण में घृतप्रस्थ पर मन्दार वृक्ष को नीचे आरोपित लक्ष्मी प्रतिमा सहित स्थापित करें, कल्पतरु के पश्चिम में जीरक प्रस्थ पर पारिभद्र वृक्ष को नीचे आरोपित सावित्री प्रतिमा सहित स्थापित करें एवं कल्पतरु के उत्तर में हरिचन्दन नामक वृक्ष को नीचे आरोपित सुरभि प्रतिमा सहित स्थपित करें। सभी वृक्षों को अलग - अलग वस्त्रों के जोड़ों से ढकें। आठों दिशाओं में अलग-अलग रेशमी वस्त्रों से आच्छादित इक्षुदण्ड और फल से युक्त, मालाओं से अलङ्कृत आठ भरे हुए कुम्भों को निकट

आरोपित पादुका जोड़ा, कांस्य पात्र और आसनों के बीच आरोपित करें। कल्पतरु के निकट पूर्व में कहे गये दीपक, जूते का जोड़ा, छत्र, चँवर और अष्टादश धान्य स्थापित करें। तदुपरान्त मंगल गीत, तूर्यनाद एवं वन्दीघोषों के मध्य ऋत्विज् कुण्ड के समीप स्थित चारों कुम्भों के जल से यजमान को स्नान करवायें। स्नान करने के उपरान्त यजमान श्वेत माला, वस्त्र एवं समस्त आभूषण धारण कर, पुष्पांजलि लेकर कल्पवृक्ष की तीन प्रदक्षिणा निम्नलिखित मन्त्र बोलते हुए करे-

नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितार्थप्रदायिने।
विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये॥

यस्मात् त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मा स्थाणुर्दिवाकरः।
मूर्तामूर्तम् परमबीजमतः पाहि सनातन॥

त्वमेवामृतसर्वस्वमनन्त पुरुषोऽव्ययः।
सन्तानाद्यैरुपेतः सन् पाहि संसारसागरात्॥[35]

मन्त्रों को पढ़कर, पुष्पांजलि से अर्चना कर, गोत्र, शाखा, नाम और देय वस्तुओं का नामोच्चारण करते हुए, गुरु और ऋत्विजों को यथायोग्य दान दें। प्रतिग्रहीता स्वस्ति पाठ कर, सावित्री पढ़कर विष्णुदैवतपादपदान कहकर अपनी-अपनी शाखा के अनुसार कामस्तुति का पाठ करें। तदुपरान्त यजमान दक्षिणास्वरूप उपजाऊ भूमि एवं रत्न प्रदान करे। प्रतिगृहीता स्वस्ति कहकर प्रत्येक वृक्ष को जड़ पर स्पर्श करें। तत्पश्चात् यजमान तुलापुरुषदान के समान जापकों को दक्षिणा दान, दीनों और अनाथों को अन्न और वस्त्र दान कर ब्राह्मणवाचन करवाये। कल्पपादप गुरु को एवं सन्तानादि चार वृक्ष ऋग्वेदादि के क्रम से चारों ऋत्विजों को प्रदान करे। स्वल्प कल्पपादपदान में गुरु एकाग्नि स्थापित कर दानकर्म सम्पन्न करवाये। उपर्युक्त दान में बनाई जाने वाली ब्रह्मा विष्णु, शिव, भास्कर, कामदेव, लक्ष्मी, सावित्री, सुरभि इत्यादि प्रतिमाओं के लक्षण परिशिष्ट संख्या 07 में देखे जा सकते हैं। भगवन्त भास्कर के अनुसार अष्टादशधांन्य प्रत्येक द्रोण परिमित होंगे तथा कांस्य-पात्र भोज्य सामग्री से पूरित होंगे।

कल्पपादपमहादान का फल क्रमशः सर्वपापविनिर्मुक्ति, अश्वमेघफलप्राप्ति, भूत और भव्य रोम संख्यक मनुष्यों का संतारण, विष्णुलोकप्राप्ति एवं इस लोक में राजराजत्व प्राप्ति बताया गया है।[36]

: (5) गोसहस्रमहादान :

गोसहस्रमहादान करने के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र, तुला पर स्थापित की जाने वाली विष्णु प्रतिमा, अलंकृत तुला, हाथ में ग्रहण की जाने वाली दो प्रतिमाओं को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं के साथ निम्नलिखित वस्तुओं की आवश्यकता होगी-

एक हजार दस गायें, परिशिष्ट संख्या सात में बताये गये लक्षणों से युक्त एक वृष, दस गाय और एक वृष के पूजन हेतु ग्यारह वस्त्र, पूजा के उपकरण, सौ पल से लेकर तीन हजार पल पर्यन्त यथेष्ट स्वर्ण से बनाया गया इच्छानुरूप अनेक प्रकार के रत्नों से अलङ्कृत नन्दिकेश्वर, दस गायों के अलंकरण के लिये स्वर्ण निर्मित घण्टा, तिलक, ललाटपट्ट, इच्छानुरूप रत्नों से जड़ित दस जोडे सींग, ताम्र-दोहन-पात्र, रेशमी वस्त्र से बने हुए दस चंवर, निकट स्थापित करने के लिये दस जोड़े खडाऊ, दस जोड़े जूते, दस छत्र, दस कांस्य पात्र और दस आसन, एक हजार गायों के अलङ्करण के लिये सींग के जोड़े और अभीष्ट तिलक आदि एक हजार अलङ्कार, एक हजार वस्त्रों के जोड़े, इच्छित परिमाण से बनाये गये चाँदी के चार हजार खुर, एक हजार दस गायों, एक वृषभ और नन्दिकेश्वर की पूजा और अलंकरण के लिये बहुत अधिक संख्या में माला और गन्ध सामग्री, नन्दिकेश्वर के अलंकरण के लिये रेशमी वस्त्र, नन्दिकेश्वर को स्थापित करने के लिये द्रोण परिमित लवण, नन्दिकेश्वर के पास स्थापित करने के लिये इक्षु दण्ड, यथेष्ट फल एवं यजमान के स्नान के लिये सर्वौषधि।

किसी पवित्र तिथि के चार दिन पूर्व प्रातःकाल नित्य-कर्म कर, पवित्र होकर, जल से भरे हुए ताम्र पात्र को हाथ में लेकर, यजमान उत्तर की ओर मुख कर दान का सङ्कल्प करे। यथा- ''ॐ मत्स्यपुराणोक्तगोसहस्रमहादानकर्मकर्तुम् अद्यादि दिनचतुष्टयं गोसहस्रमहादानप्राच्योदीच्याङ्गभूतं दुग्धमात्राहारमहं करिष्ये।'' अशक्त होने पर महादान के एक दिन पूर्व से ही दुग्धमात्राहारी बने और पहिले दिन ही प्रातः सङ्कल्प करे। सङ्कल्पवाक्य में दिनचतुष्टय के स्थान पर दिनद्वय का ही निवेश करे। गुरु, ऋत्विज् और जापक दान दिवस के दो दिन पहिले तुलापुरुषदान के समान हविष्य भोजनादि कर दान का निवेदन और सङ्कल्प करें। अगले दिन यजमान तुलापुरुषदान के समान गोविन्दादि आराधन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान सङ्कल्प, पुण्याहवाचन

ऋत्विग्वरण इत्यादि कार्य करे। गुरु, ऋत्विज् और जापक इस दिन उपवास करें। यजमान केवल दूध पीकर रहे। दूसरे दिन नित्य कर्म करके यजमान, गुरु ऋत्विजादि अग्नि स्थापना से लेकर मध्य ब्राह्मण वाचन पर्यन्त कर्म विधिपूर्वक करें।

तदुपरान्त ऋत्विज् पूर्वोक्त नन्दिकेश्वर को लाकर वेदी पर लिखित चक्र के ऊपर द्रोण परिमित लवण राशि पर स्थपित करें। नन्दिकेश्वर को रेश्मी वस्त्र से आच्छादित कर, उसके पास माला और इक्षुदण्ड इच्छानुसार आरोपित करें। एक हजार दस गायें और एक वृष मंगवाकर, उनमें से दस उत्कृष्ट गायें छांटकर, वृक्ष और दस गायों को मण्डप में प्रवेश करवायें। इनको नन्दिकेश्वर के चारों ओर खड़ा करें। एक हजार गायें मण्डप के बाहर रहें। इन गायों को वस्त्र माला, सोने के सींग, तिलक आदि इच्छित आभूषणों एवं चादी के खुरों से अलङ्कृत करें। मण्डप के अन्दर भी गायों को पूर्वोक्त अलङ्कारों से अलङ्कृत करें। इनके पास खडाऊ इंत्यादि उपकरण स्थापित करें। तत्पश्चात् यजमान इन दस गायों की अभीष्ट वस्त्र और मालाओं से पूजा करे। तदुपरान्त मङ्गलगीत तूर्यनाद एवं वन्दिघोष के मध्य ऋत्विज् मध्य कुण्ड के समीप स्थित चार कुण्डों के जल से सर्वौषधि मिलाकर, उस जल से यजमान को स्नान करवायें।

स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत माला, वस्त्र एवं सभी आभूषण धारण कर पुष्पांजलि लेकर निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करें-

नमो वै विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च।
लोकाधिवासिनीभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमो नमः॥

गवामंगेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः।
ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः॥

गावो ममाग्रतः सन्तु गावः पृष्ठत एव च।
गावः शिरसि मे नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

यस्मात्त्वं वृषरूपेण धर्म एव सनातन।
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन॥[37]

उपर्युक्त मन्त्रों का पाठ कर, दस गायों की प्रदक्षिणा कर, पुष्पांजलि से अर्चना करे। हजार गायों वृष और नन्दिकेश्वर की गन्ध, माला, आदि से अर्चना करे। तदुपरान्त,

गोत्र, नाम, दान का नाम, दान-फल, देय वस्तुओं आदि का उच्चारण कर, गुरु, ऋत्विज्, जापकों एवं प्रमुख ब्राह्मणों को दान प्रदान करे। प्रतिग्रहीता स्वस्ति कह कर, सावित्री पढ कर ''गाव एता रुद्रदेवताः'' कह कर अपनी-अपनी शाखा के अनुसार काम स्तुति का पाठ करें। तत्पश्चात् यजमान उपजाऊ भूमि एवं रत्न दक्षिणा में दे। ब्राह्मण स्वस्ति कहकर गायों को पूंछ से ग्रहण करें। गुरु को उपकरण सहित नन्दिकेश्वर, दस में से दो एवं एक हजार में से दो सौ गायें देवें। कुछ धर्मशास्त्रकारों के अनुसार शेष गायों में से ऋत्विजों को समान भाग कर (अर्थात् प्रत्येक को एक-एक अथवा एक-एक सौ) गाय प्रदान करे। कृत्यकल्पतरु एवं भगवन्तभास्कर के अनुसार ऋत्विजों को एक हजार गायों में सौ, पचास, बीस, दस अथवा पांच गायें भी दी जा सकती हैं।[38] किन्तु प्रत्येक स्थिति में गुरु को ऋत्विजों से दुगुना दान दिया जाये यह सभी धर्मशास्त्रकारों का मत है। महादान सम्पन्न होने के उपरान्त यजमान दीन और अनाथों को अन्न और वस्त्र एवं जापकों को दक्षिणा दे। पुनः पुण्याहवाचन करवाये। उस दिन यजमान महादान विधि ग्रन्थ को सुनकर केवल दुग्ध आहार पर रहे। विपुल श्री की कामना वाला उस दिन ब्रह्मचर्य का आचरण करे। कृत्यकल्पतरु के अनुसार नन्दिकेश्वर सहित सौ गायों के दान में, दस गायों के स्थान पर एक गाय पूर्वोक्त दसवें भाग पर्यन्त (अर्थात् दस पल से लेकर तीस पल पर्यन्त) सुवर्ण से नन्दिकेश्वर और आभूषणों का निर्माण किया जाये।[39] यहाँ मण्डप के अन्दर प्रविष्ट एक गाय व वृष का विभाग असम्भव होने के कारण एक मात्र गुरु ही समस्त दान-कर्म सम्पन्न करवाये। उपर्युक्त दान का फल सर्वपापमुक्ति, लोकपालों के लोक में देवों से आदर प्राप्ति, पुत्रपौत्र प्राप्ति, शिवपुर प्राप्ति, एक सौ एक पितृकुल व एक सौ एक मातृकुल के पितरों का संतारण इत्यादि बताया गया है।

भगवन्तभास्कर के अनुसार गायों की प्रत्येक स्वर्णघंटिकाएं अस्सी गुंजा परिमित स्वर्ण की व सींग दस सुवर्ण परिमाण के होने चाहियें। खुर पांच पल परिमाण रजत के व दोहनपात्र पचास पल परिमाण के होने चाहियें।[40] प्रकृत दान में नन्दिकेश्वर के स्वरूप का निर्धारण करते हुए नीलकण्ठ ने कहा है -

ऊर्ध्वस्त्रिनेत्रो द्विभुजः सौम्यास्यो नन्दिकेश्वरः।
वामे त्रिशूलभृद्दक्षे चाक्षमाला समन्वितः ॥[41]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत आदित्यपुराण के अनुसार दान में दी जाने वाली गायों का स्वरूप निम्न प्रकार का होना चाहिये-

सर्वा कनकशृंगास्ताः सर्वा रौप्यखुरार्चिताः।
हीनांगा न ददेत् गावः कृशा वृद्धातुरास्तथा ॥[42]

मत्स्यपुराण में वृष का लक्षण निम्न प्रकार से है -

उन्नतस्कन्धककुदमृजुलांगूलकम्बलम्।
महाकटितटस्कन्धं वैदूर्यमणिलोचनम् ॥

प्रवालगर्भशृंगाग्रं सुदीर्घपृथुवालधिम्।
नवाष्टादशसंख्यैर्वातीक्ष्णाग्रैर्दशनैः शुभैः ॥[43]

:(6) हिरण्यकामधेनुमहादान :

हिरण्यकामधेनुमहादान करने के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र, तुला पर स्थापित करने योग्य विष्णुप्रतिमा अलङ्कृत तुला एवं हाथों में ग्रहण की जाने वाली प्रतिमाओं को छोड़कर अन्य सभी सामग्री के साथ निम्नलिखित सामग्री और अधिक एकत्रित करनी होगी- हजार पल सुवर्ण से निर्मित (उत्तम), 500 पल सुवर्ण से निर्मित (मध्यम), 250 पल सुवर्ण से निर्मित (कनिष्ठ) अथवा अशक्ति की अवस्था में तीन पल से लेकर यथाशक्ति प्राप्त सुवर्ण से बनाई गई, उत्कृष्ट रत्नों से अलङ्कृत बछड़े सहित धेनु, कृष्णाजिन और गुड़प्रस्थ, धेनु के अलङ्करण के लिये यथेष्ट सुवर्ण से बने हुए चन्द्रतिलक, ललाट पट्टिका, कुण्डलजोड़ा, घण्टा, चाँदी के चार खुर, स्फटिक की गणत्रिका (=अक्षमाला) अथवा कण्ठभूषण या गलन्तिका पाठ पढ़ा जाये तो जल पूर्ण करक,[43] चँवर, धेनु को आच्छादित करने के लिये दो रेशमी वस्त्र, धेनु के पास स्थापित करने के लिये आठ कुम्भ, प्रचुर मात्रा में अनेक प्रकार के फल, अष्टादशधान्य, आठ इक्षुदण्ड, कांस्य पात्र, आसन, ताम्रनिर्मित दोहनपात्र, दीपक सामग्री, छत्र, खडाऊ, जोड़ा, धेनु के आगे स्थापित करने हेतु मधुर आदि षट्रस, हल्दी, अनेक प्रकार की पुष्प सामग्री, जीरा, धनिया और शक्कर। हेमाद्रि के अनुसार यद्यपि पुराणों में स्पष्ट रूप से प्रकृत महादान में वत्सपरिमाण का उल्लेख नहीं किया गया है, तथापि तत्तत् धेनुदानों में चतुर्थांश से वत्स निर्माण के विधान के अनुसार प्रकृत महादान में भी धेनु के चतुर्थांश स्वर्ण से वत्स निर्माण करना चाहिये।[44]

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त किसी पवित्र तिथि के दो दिन पहिले गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक तुलापुरुषमहादान के समान हविष्य भोजनादि कर दान का निवेदन और सङ्कल्प करें। दूसरे दिन यजमान तुलापुरुषमहादान के समान गोविन्दादि अर्चन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान संकल्प, पुण्याहादि वाचन, ऋत्विग्वरण इत्यादि कार्य करे। गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक इस दिन उपवास करें। दूसरे दिन अग्निस्थापना से लेकर मध्यब्राह्मणवाचन तक का कार्य यथाविधि करें। तदुपरान्त ऋत्विज् सवत्सा धेनु को प्रधान वेदी के मध्य लिखित चक्र के ऊपर कृष्णमृगचर्म बिछाकर प्रस्थपरिमित गुड़ के ऊपर स्थापित करें। पूर्व में कहे गये अलङ्कारों से अलङ्कृत कर रेशमी वस्त्र के जोड़े से धेनु को आच्छादित करें । पार्श्व में भरे हुए आठ कुम्भ अनेक प्रकार के फल, अष्टादश धान्य, आठ इक्षुदण्ड, कांस्य पात्र, पिट्ठी, ताम्रनिर्मित दोहन पात्र, दीप, छत्र, पादुका स्थापित करें। धेनु के आगे मधुरादि षट्रस हल्दी, अनेक प्रकार के पुष्प, फल, जीरा, धनिया और शक्कर स्थापित करें।

उपर्युक्त कार्य के उपरान्त मङ्गल गीत, वाद्य एवं वन्दिघोष के मध्य ऋत्विग्गण कुण्डों के समीप स्थित चार कुम्भों के जल से अपने-अपने वेदों में कहे गये अभिषेक मन्त्रों का पाठ करते हुए यजमान को स्नान करवायें। स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत माला, वस्त्र एवं सभी अलङ्कार धारण कर, कुश हाथ में लेकर, पुष्पांजलि लेकर निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करते हुए कामधेनु की प्रदक्षिणा करें-

त्वं सर्वदेवगणमन्दिरमंगभूता,
विश्वेश्वरि त्रिपथगोदधिपर्वतानाम्।

त्वद्दानशस्त्रशकलीकृतपातकौघः,
प्राप्तोऽस्मि निर्वृतिमतीव परां नमामि॥

लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वा
मासाद्य को हि दुःखमुपैति मर्त्यः।
संसारदुःखशमनाय यतस्व कामं,
त्वां कामधेनुमिति वेदविदो वदन्ति॥[45]

तदुपरान्त पुष्पांजलि से कामधेनु की अर्चना कर, गुरु के गोत्र, वेद-शाखा, नाम, दान में देय सामग्री का विस्तार से नामोच्चारण करते हुए दान प्रदान करे। गुरु स्वस्ति

कहकर, सावित्री पाठ कर, ''हिरण्यकामधेनुरियं विष्णुदैवत'' कहकर अपनी शाखा के अनुसार कामस्तुति का पाठ करे। दान देकर यजमान गुरु और ऋत्विजों को दक्षिणा में उपजाऊ भूमि और रत्न प्रदान करें। गुरु स्वस्तिवाचन के उपरान्त धेनु को पूंछ से पकड़े। यजमान तुलापुरुषदान के समान जापकों को दक्षिणा देकर दीन और अनाथों को अन्न-वस्त्र से संतुष्ट करे। ब्राह्मणवाचन एवं स्वस्तिवाचन करवाकर गुरु को हिरण्यकामधेनु प्रदान करे। दो पल से अधिक स्वर्ण निर्मित महादान में गुरु अकेला ही अपनी गृह्योक्त विधि से उपर्युक्त दानकर्म सम्पन्न करवाये।

नीलकण्ठ के मतानुसार अशक्त को भी तीन पल स्वर्ण से लेकर अधिकाधिक स्वर्ण लेकर हिरण्य कामधेनु का दान करना चाहिये। यथा-

शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमशक्तोऽपि हि कारयेत्।[46]

यहीं ताम्रनिर्मित दोहनपात्र के साथ-साथ भोजनपात्र रखने का भी विधान किया गया है। मत्स्यपुराण में हिरण्यकामधेनु का स्वरूप निम्न प्रकार से बताया गया है -

कौशेयवस्त्रद्वयसंवृताङ्गीं,
दीपातपत्राभरणाभिरामाम्।

सचामरां कुण्डलिनीं सघण्टां
गणित्रिकापादुकरौप्यपादाम्॥

रसैश्च सर्वैः पुरतोऽभिजुष्टां,
हरिद्रया पुष्पफलैरनेकैः।

अजाजिकुस्तुम्बरुशर्कराभि,
र्वितानकंचोपरि पंचवर्णम्॥[47]

यहाँ कुण्डलिनी का अर्थ है- कानों में कुण्डल युक्त। नीलकण्ठ के मतानुसार कतिपय धर्मशास्त्रकारों के अनुसार गणित्रिका पैरों में धारण की जाने वाली छोटी-छोटी घण्टियां हैं।[48] उपर्युक्त दान में वत्स गाय के स्तनाभिमुख दक्षिण दिक्षा में स्थापित किया जाना चाहिये। दान कर्म की साङ्गोपाङ्ग सिद्धि के लिये ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिये। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में उपर्युक्त दान का फल- सर्वपापक्षय, शिवपदप्राप्ति, स्वर्गप्राप्ति ईश्वरप्राप्ति आदि बताया गया है।

: (7) हिरण्याश्वमहादान :

हिरण्याश्वमहादान के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र, तुलास्थापीय विष्णुप्रतिमा, अलङ्कृत तुला, हाथों में ग्रहण की जाने वाली प्रतिमाओं, ऋत्विजों को दी जाने वाली दक्षिणा के अतिरिक्त अन्य सब सामग्री एकत्रित करनी होगी । इसके अतिरिक्त इस दान में निम्नलिखित वस्तुएं और अधिक आवश्यक होंगी- तीन पल सुवर्ण से अधिक एवं हजार पल सुवर्ण तक यथेष्ठ सुवर्ण से बना हुआ अश्व, उसके नीचे स्थापित करने के लिये कृष्णमृगचर्म एवं एक द्रोण तिल, अश्व को आच्छादित करने के लिये रेशमी वस्त्र, अश्व के निकट स्थापित करने के लिये पादुका जोड़ा, उपानह जोड़ा, छत्र चँवर, आसन कांस्य- भोजन पात्र, आठ कुम्भ, इक्षु दण्ड, बिछे हुए कम्बल, रुई के गद्दे, तकिये, मच्छरदानी, छोटे दीपक, पादपीठ, पादुका एवं पंखे सहित इच्छानुरूप काष्ठ से बनी हुई खाट, अश्व पर स्थापित करने हेतु अभीष्ट स्वर्ण पत्र पर उत्खाटित सूर्य प्रतिमा, प्रचुर मात्रा में मालाएं और पूजा की सामग्री, ऋत्विजों को दक्षिणा में देने के लिये अभीष्ट संख्या में गायें, यजमान को स्नान करवाने के लिये सर्वौषधि इत्यादि।

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त किसी पवित्र तिथि के दो दिन पहले गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक हविष्यभोजनादि कर दान का निवेदन और संकल्प करें। दूसरे दिन यजमान गोविन्दादि अर्चन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान संकल्प, पुण्याहादिवाचन, ऋत्विग्वरण इत्यादि कार्य करें। इस दिन गुरु ऋत्विज्, यजमान और जापक उपवास करें। दूसरे दिन तुलापुरुषमहादान के समान अग्निस्थापना से लेकर मध्यब्राह्मणवाचन तक का कार्य यथाविधि करें।

उपर्युक्त कार्य के उपरान्त ऋत्विज् हिरण्याश्व को प्रधान वेदी के ऊपर लिखित चक्र पर कृष्णमृगचर्म बिछा कर, तिलों के ऊपर स्थापित करें एवं रेशमी वस्त्र से आच्छादित करें। अश्व के निकट पादुका जोड़ा, उपानह जोड़ा, छत्र, चँवर, आसन कांस्यपात्र, जल से भरे हुए आठ कुम्भ, इक्षुदण्ड, इच्छित फल और मालाएं, पूर्वोक्त उपकरणों से युक्त शय्या पर स्वर्ण की बनी हुई प्रतिमा को स्थापित करें। तदुपरान्त ऋत्विग्गण कुण्ड के समीप स्थित चार कुम्भों के जल में सर्वौषधि मिलाकर उस जल से तूर्यनाद, मंगलगीत

और वन्दिघोष के मध्य यजमान को स्नान करवायें। स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत माला, श्वेत वस्त्र एवं सभी आभूषणों को धारण कर पुष्पांजलि लेकर निम्न मन्त्र बोलते हुए अश्व की प्रदक्षिणा करे-

नमस्ते सर्वदेवेश वेदाहरणलम्पट।
वाजिरूपेण मामस्मात् पाहि संसारसागरात्।।

त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्करम्।
यस्माद् भ्रामयसे लोकानतः पाहि सनातन।।[49]

तदुपरान्त अश्व की पुष्पांजलि से अर्चना कर, गुरु के गोत्र, शाखा, नाम, देय सामग्री इत्यादि का उच्चारण करते हुए गुरु को दान प्रदान कर दे। गुरु स्वस्ति कर सावित्री पढ़कर ''हिरण्याश्वोऽयंसूर्यदैवत'' कहकर अपनी शाखा के अनुसार कामस्तुति का पाठ करे। तदुपरान्त यजमान गुरु को दक्षिणा में उपजाऊ भूमि एवं रत्न प्रदान करे। ऋत्विजों को गोत्र, वेद, शाखा, नाम इत्यादि उच्चारण करते हुए दक्षिणा में गायें देवे। प्रत्येक ऋत्विज् स्वस्ति कहे। पुनः यजमान तुलापुरुषमहादान के समान जापकों को दक्षिणा एवं दीन और अनाथों को अन्न तथा वस्त्र प्रदान करे। पुनः ब्राह्मणवाचन करवाकर हिरण्याश्व शीघ्रातिशीघ्र प्रदान कर दे। इसके पश्चात् पुराण श्रवण कर यथेष्ट संख्या में ब्राह्मणों को भोजन करवाकर वस्त्रादि से सम्मान कर, स्वयं तैलरहित भोजन करे। स्वल्पमहादान में एक मात्र गुरु ही समस्त दान कार्य सम्पन्न करवाये, किन्तु जापकों की नियुक्ति आवश्यक है।

नीलकण्ठ के मतानुसार तीन पल स्वर्ण से लेकर दो सहस्र पल पर्यन्त स्वर्ण घटित सूर्यप्रतिमा युक्त स्वर्णनिर्मित अश्व को रेशमी वस्त्र से आच्छादित कर पूर्व की ओर मुख किये हुए स्थापित करना चाहिये। दानसागर में सूर्य प्रतिमा को शय्या पर रखने का विधान बताया गया है, किन्तु यहाँ सूर्य प्रतिमा को अश्व पर स्थापित करना बताया गया है। दानसागर में अष्टादश धान्य स्थापित करने के विषय में कुछ नहीं कहा गया है, जबकि भगवन्तभास्कर में अष्टादशधान्य की स्थापना आवश्यक बताई गई है। भगवन्त भास्कर में शय्या पर रुई का गद्दा तकिया, चादर, फल, पुष्प, कुमकुम, कर्पूर, अगरू, चन्दन, ताम्बूल, दर्पण, कंघा, जूते, ताम्बे की घण्टी, जलपात्र, वितान, आदि को रखना विहित है, किन्तु कतिपय धर्मशास्त्रकारों ने ऐसा उल्लेख नहीं किया है। दानसागर में गुरु को उपजाऊ भूमि व रत्न दक्षिणा में देने का उल्लेख है, किन्तु भगवन्त भास्कर में गुरु को दक्षिणा में स्वर्ण देने का उल्लेख है।[50]

उपर्युक्त दान का फल विष्णुलोक प्राप्ति, सूर्यलोकप्राप्ति, कालुष्यमुक्ति आदि बताया गया है।

: (४) हिरण्याश्वरथमहादान :

हिरण्याश्वरथमहादान करने के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में उल्लिखित, खड्ग चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र तुला पर स्थाप्य विष्णुप्रतिमा, अलङ्कृत तुला, हाथ में ग्रहण की जाने वाली प्रतिमा एवं पूर्व में कहे वितान के अतिरिक्त अन्य सब सामग्री के साथ निम्न सामग्री की विशेष रूप से आवश्यकता होगी- तीन पल स्वर्ण से लेकर दो हजार पल स्वर्ण तक अभीष्ट परिमाण वाले स्वर्ण से बनाये गये सात या चार अश्व, रथ के चार चक्र, सुन्दर जुआ (युग) रथ के एक ओर लगाया जाने वाला, इन्द्रनीलमणि लगे हुए स्वर्ण कुम्भ से युक्त अग्रध्वज, दूसरी ओर लगाया जाने वाला स्वर्ण सिंह से युक्त अग्रध्वज, अपने-अपने दिशा क्रम से उत्खाटित आठ लोकपाल प्रतिमाओं वाला रथ, रथ के आगे के दो चक्रों के निकट स्थापित करने के लिये स्वर्ण-पत्र पर उत्खाटित अश्विनीकुमारों की अश्वारूढ़ दो प्रतिमाएं, रथ के मध्य आरोपित करने के लिये अभीष्ट स्वर्ण से बनाई गई इष्टदेव की प्रतिमा, रथ को स्थापित करने के लिये कृष्णमृगचर्म और तिल, रथ के पास स्थापित करने के लिये चार कलश, अष्टादश धान्य अनेक प्रकार की माला इत्यादि सामग्री, इक्षु दण्ड, फल, छत्र चँवर, रेशमी वस्त्र, जूते और खड़ाऊ के जोड़े, इच्छानुसार निर्मित शय्या, आसन, यथाशक्ति गाएं, रथ के ऊपर बाँधने के लिये रेशमी वस्त्र का चँदोवा इत्यादि । कुछ धर्मशास्त्रकारों के अनुसार यथाशक्ति आठ, चार या दो रूपवान् अश्व भी दान हेतु आवश्यक होंगे।[51]

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त दान की पवित्र तिथि के दो दिन पहले यजमान, गुरु, ऋत्विज् और जापक तुलापुरुषमहादान के समान हविष्य भोजनादि करके दान का निवेदन व संकल्प करें। दूसरे दिन यजमान तुलापुरुषदान के समान गोविन्दादि आराधन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान संकल्प, पुण्याहवाचन, ऋत्विग्वरण इत्यादि कार्य करे। इस दिन गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक उपवास करें, दूसरे दिन नित्य कर्म कर, तुलापुरुषमहादान के समान ही अग्नि स्थापना से लेकर मध्य ब्राह्मण वाचन तक का कार्य यथा विधि करें।

तदुपरान्त ऋत्विग्गण प्रधानवेदी के ऊपर लिखित चक्र पर कृष्णमृगचर्म बिछाकर,

उसके ऊपर तिल रखकर तिलों के ऊपर रथ को स्थापित करें। रथ के मध्य भाग में पूर्वनिर्मित इष्टदेव की प्रतिमा को स्थापित करें। आगे के दो चक्रों के निकट अश्विनीकुमारों की प्रतिमाओं को स्थापित कर, ऊपर छत्र लगायें। रथ के पार्श्व भाग में खड़ाऊ जोड़ा, जूता जोड़ा रखकर चँवर को स्थांपित करें। रेशमी वस्त्र और मालाएं, जल से भरे हुए चार कुम्भ, अष्टादश धान्य, फल, इक्षुदण्ड, शय्या, आसन, गाएँ आदि रथ के निकट स्थापित करें। तत्पश्चात् मंगलगीत, वाद्य और वन्दिघोष के मध्य कुण्डों के समीप स्थित चार कुम्भों के जल से यजमान को स्नान करवाया जाये। स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत वस्त्र, श्वेत मालाएं एवं समस्त आभूषण धारण कर पुष्पांजलि लेकर निम्नलिखित मन्त्र बोलते हुए रथ की तीन बार प्रदक्षिणा करे एवं अर्चना करे-

नमो नमः पाप विनाशनाय,
विश्वात्मने वेदतुरङ्गमाय।
धाम्नामधीशाय भवाऽभयाय,
पापौघदावानल देहि शान्तिम्॥

वस्वष्टकादित्यमरुद्गणानां,
त्वमेव धाता परमं निधानम्।
यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु,
धर्मैकतानत्वमघौघनाशात्॥[52]

दानकर्ता अर्चना के उपरान्त गुरु ऋत्विज् आदि को एवं प्रमुख ब्राह्मणों को गोत्र, नाम एवं देय पदार्थों का नामोच्चारण करते हुए उपर्युक्त हिरण्याश्वरथ प्रदान कर दे। गुरु और ऋत्विज् स्वस्ति कहकर, सावित्री पढ़कर ''हिरण्याश्वरथोऽयं विष्णुदैवत'' कहकर अपनी-अपनी शाखा के अनुसार काम स्तुति का पाठ करें। गुरु और ऋत्विजों को यजमान उपजाऊ भूमि और रत्न दक्षिणा में दे। गुरु और ऋत्विज् स्वस्ति कहकर अपने अपने स्वर्ण भाग का स्पर्श करें। इसके पश्चात् जापकों को दक्षिणा, दीन और अनाथों को इच्छित वस्तु के दान से संतुष्ट करें। शीघ्रातिशीघ्र ब्राह्मणवाचन करवा कर दान कर्म को सम्पन्न करें। देवता विसर्जन कर ब्राह्मणभोजन करवाये।

उपर्युक्त विषय में ध्यातव्य है कि हेमाद्रि एवं नीलकण्ठ के मतानुसार आठ या चार अश्वों वाले हिरण्याश्वरथदान में पताका इन्द्रनीलमणि में अङ्कित स्वर्ण कुम्भ वाली होगी, किन्तु दो अश्वों वाले हिरण्याश्वरथ महादान में स्वर्णनिर्मित सिंह से अङ्कित

पताका होगी।[53] किन्तु दानसागर रथ को दोनों ही प्रकार की पताकाओं से युक्त होना बताता है। दान सागर के अनुसार लोकपालों की प्रतिमाएँ पद्मरागमणियों से युक्त होंगी किन्तु नीलकण्ठ इष्टदेव की प्रतिमा का पद्मरागमणियों से युक्त होना बताता है।[54] दान सागर में आठ, चार या दो स्वरूपवान् अश्वों का भी दान देने हेतु उल्लेख है,[55] किन्तु मत्स्यपुराण, भगवन्तभास्कर, चतुर्वर्गचिन्तामणि, कृत्यकल्पतरु आदि ग्रन्थों में ऐसा कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

उपर्युक्त दान का फल भव भयनाश, कालुष्यमुक्ति एवं शिवमार्ग से ब्रह्मलोक प्राप्ति बताया गया है।

: (९) हेमहस्तिरथमहादान :

हेमहस्तिरथमहादान के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र, तुला पर स्थाप्य विष्णु प्रतिमा, अलङ्कृत तुला एवं हाथ में ली जाने वाली प्रतिमाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित सामग्री की विशेष रूप से आवश्यकता होगी- पांच पल परिमाण स्वर्ण से लेकर दो सहस्र पल परिमाण तक अभीष्ट स्वर्ण से निर्मित, चार चक्र वाले, अभीष्ट रत्नों से जड़े हुए, ध्वजा के अग्रभाग में स्थापित, स्वर्ण गरुड़ वाले, जुए के अग्रभाग में स्थापित स्वर्णनिर्मित विनायक प्रतिमा वाले, किनारों पर अनेक प्रकार की स्वर्णपत्रावलियों से मण्डित, ऊपर की ओर दो खण्ड़ों में शीर्षाकृति झरोखों से वेष्टित, अग्रभाग में चार स्वर्णनिर्मित हाथियों से युक्त, अपने–अपने दिशाक्रम से उत्खाटित इंद्रादि आठ लोकपालों की प्रतिमाओं से युक्त, पंक्ति रूप में उत्खाटित ब्रह्मा, सूर्य और शिव की प्रतिमाओं से युक्त पुष्परथ, रथ के मध्य स्थापित करने के लिये पूर्वोक्त स्वर्ण से अतिरिक्त स्वर्ण पत्र पर उत्खाटित लक्ष्मी, पुष्टि सहित नारायण प्रतिमा, रथ को स्थापित करने के लिये कृष्णमृगचर्म एवं द्रोणपरिमित तिल, दो स्वाभाविक हाथी, रथ के पार्श्व भाग में स्थापित करने के लिये अष्टादश धान्य, कांसे के भोजन-पात्र, आसन, चन्दन, दीपक की सामग्री, छत्र, दर्पण, पादुका जोड़ा, उपानह जोड़ा, चार कुम्भ, आठ गाएं, रथ के ऊपर बाँधने के लिये रेशमी वस्त्र का पंचवर्ण चँदोवा, उसको अलङ्कृत करने के लिये ताजे फूल, माला इत्यादि। हेमाद्रि ने पुष्परथ का तात्पर्य ''क्रीड़ार्थी रथः'' बताया है।[56]

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त दान की तिथि के दो दिन पहले, पूर्व दानों में

उल्लिखित विधि से हविष्य भोजन, दान का निवेदन एवं संकल्प, एक दिन पहले उपवास अधिवासन इत्यादि कार्य करें। दान के दिन नित्य कर्म कर अग्नि स्थापना से लेकर ब्राह्मण वाचन तक का कार्य सम्पन्न करें।

तत्पश्चात् ऋत्विग्गण प्रधानवेदी के ऊपर लिखित चक्र पर कृष्णमृगचर्म बिछाकर, उसके ऊपर द्रोण परिमित तिल रखकर, रथ को आरोपित करें। रथ को मोतियों के हार से अलङ्कृत कर, उसके मध्य भाग में लक्ष्मी और पुष्टि सहित नारायण प्रतिमा को स्थापित करें। रथ के आगे स्वर्णनिर्मित चार हाथियों को पंक्तिबद्ध स्थापित करें, रथ के निकट अष्टादश धान्य, कांसे के भोजन-पात्र आदि पूर्वोक्त सामग्री सुन्दर प्रकार से स्थापित करें। तदुपरान्त मङ्गलगीत, वाद्य एवं वन्दिघोष के मध्य कुण्डों के समीप स्थित चारों कुम्भों के जल से यजमान को स्नान करवाया जाये। स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत वस्त्र, श्वेत माला एवं समस्त आभूषण धारण कर पुष्पांजलि लेकर रथ की तीन बार प्रदक्षिणा निम्न लिखित मन्त्र बोलते हुए करे-

> नमो नमः शंकरपद्मजार्क लोकेश विद्याधरवासुदेवैः।
> त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञतेजोमयस्यन्दन पाहि तस्मात्॥
>
> यत्तत् पदं परमगुह्यतमं मुरारेरानन्दहेतु गुणरूप विमुक्तमन्त्रः।
> योगैकमान सदृशो मुनयः समाधौ पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथेऽधिरूढः।
>
> यस्मात्वमेव भवसागरसम्प्लुतानामानन्दभाण्डभूतमध्वरपानपात्रम्।
> तस्मादघौघशमनेन कुरु प्रसादं चामीकरेभ रथ माधवसम्प्रदानात्॥[57]

तदुपरान्त पुष्पांजलि से अर्चना कर गुरु ऋत्विज् और प्रमुख ब्राह्मणों को यथाविधि दान प्रदान करे। गुरु और ऋत्विजादि भी यथाविधि दान स्वीकार करें। दक्षिणा में गुरु और ऋत्विजों को उपजाऊ भूमि एवं रत्न प्रदान किये जायें। जापकों को भी दक्षिणा एवं दीन और अनाथों को अन्न वस्त्र इत्यादि दिये जायें। ब्राह्मणवाचन करवाकर दान सम्पन्न किया जाये।

दान में उल्लिखित नारायण, गरुड एवं विष्णु विनायक प्रतिमाओं के स्वरूप को परिशिष्ट संख्या 07 में देखा जा सकता है। नीलकण्ठ के मतानुसार मण्डप में हेमहस्तिरथ को ही स्थापित करना चाहिये, प्राकृतिक हाथियों को तो मण्डप के बाहर ही रखना चाहिये।[58] किन्तु दानसागर इन हाथियों को मण्डप के भीतर ही रथ के सामने खड़ा करने का विधान करता है।[59] इस विषय में नीलकण्ठ का मत व्यावहारिक दृष्टि से

उचित प्रतीत होता है। नीलकण्ठ ने प्रत्येक महादान के पश्चात् ब्राह्मण-भोजन की विशेष व्यवस्था दी है।[60] यह व्यवस्था भी उपयुक्त प्रतीत होती है। उपयुक्त दान का फल पाप मुक्ति,शिवपद प्राप्ति, विष्णु-लोक प्राप्ति इत्यादि बताया गया है।

:(10) पंचलाङ्गलक महादान :

पंचालाङ्गलक महादान करने के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र, तुला पर स्थाप्य विष्णु प्रतिमा, अलङ्कृत तुला और हाथ में ली जाने वाली प्रतिमाओं को छोड़कर, कुण्ड, मण्डप वेदी आदि अन्य सभी सामग्री के साथ निम्नलिखित वस्तुओं की और अधिक आवश्यकता होगी- दो सौ गावों में प्रधान गिना जाने वाला खर्वट नामक ग्राम अथवा एक कोस के विस्तार रूप खेट नामक ग्राम अथवा पचास या सौ निवर्तन[61] माप वाली हरी भरी भूमि में से कोई एक भूमि, उत्तम काष्ठ से बने हुए ईशा, युग, योक्तृ, दण्ड आदि उपकरणों से युक्त पांच हल, पांच स्वर्ण निर्मित हल, उत्तम गुणों से युक्त दस वृषभ,[62] वृषभों को अलङ्कृत करने के लिये स्वर्णशृंङ्ग के दस जोड़े, दस स्वर्णहार, दस स्वर्णललाटपट्ट, दस मुक्ताहार, चार-चार के क्रम से दस चाँदी के खुरों के जोड़े, दस तिलक, पुष्प और माला सामग्री, चन्दन, वृषभों को आच्छादित करने के लिये लाल रंग के दस रेशमी वस्त्र, पांच हलों के निकट स्थापित करने के लिये इच्छानुरूप खाट पर बिछे हुए कम्बल, गद्दे, चादर, तकिया और मच्छरदानी सहित शय्या, बहुत दूध देने वाली गाय, अष्टादश धान्य, गुरु की सपत्नीक पूजा हेतु स्वर्णनिर्मित यज्ञोपवीत, अंगूठी, कड़े, मोतियों के हार और रेशमी वस्त्र, होम के लिये पायश्चरु निर्माणार्थ धान, ऊखल, मूसल, सूप, चरु पकाने की बटलोई, दूध इत्यादि सामग्री, लोहे की जन्त्री, पलाश की समिधाएं, काले तिल और घी।

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त किसी पवित्र तिथि के दो दिन पहले गुरु, यजमान और जापक हविष्य भोजनादि कर, पंचलाङ्गलक महादान का निवेदन और सङ्कल्प करें। दूसरे दिन यजमान अन्य सभी दानों के समान गोविन्दादि आराधन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान संङ्कल्प, पुण्याहवाचन, ऋत्विग्वरण, मधुपर्कदान इत्यादि कार्य यथा विधि करें। इस दिन गुरु, यजमान और जापक उपवास एवं रात्रि जागरण करें। दूसरे दिन नित्य कर्म कर ऋत्विग्गण अपने-अपने कुण्डों में अग्नि स्थापना करें। गुरु जिस को आदेश दे वह ऋत्विज् अपने कुण्ड में अपनी गृह्योक्त विधि से पायश्चरु का सम्पादन करे। तत्पश्चात्

गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक ग्रह-होम, अधिदेव-होम, प्रत्यधिदेव-होम, वस्वादिदेव-होम एवं वनस्पति-होम तक का कार्य यथा विधि करें। चरुसम्पादन करने वाला ऋत्विज् पर्जन्य, आदित्य और रुद्रों के लिये अपनी गृह्योक्त विधि से अट्ठाईस, एक सौ आठ या एक हजार आंठ पायश्चरुहोम करे। तदुपरान्त पलाश की समिधाओं, आज्य एवं कृष्ण तिल के अट्ठाईस होम करें।[63] होम के उपरान्त गुरु, यजमान, ऋत्विज् और जापक मध्यब्राह्मणवाचन तक का कार्य यथाविधि करें। अब ऋत्विग्गण काष्ठ के बने हुए पांच एवं स्वर्ण के बने हुए पांच हलों को प्रधान वेदी के ऊपर लिखे हुए चक्र पर स्थापित करें। नील कण्ठ के अनुसार यह कार्य गुरु करे।[64] वेदी के निकट पूर्वोक्त शय्या, धेनु एवं चारों ओर अष्टादशधान्य स्थापित करें। दानसागर के अनुसार पूर्वोक्त अलङ्कारों से अलङ्कृत वृषभों को भी वेदी के निकट ही स्थापित किया जाये।[65] किन्तु नीलकण्ठ ने व्यवहारिक दृष्टिकोण रखते हुए वृषभों को मण्डप से बाहर गौशाला में निवास करवाने का विधान किया है।[66] वेदी के ऊपर वितान बाँधा जाये।

तदुपरान्त ऋत्विग्गण मंगलगीत, वाद्य और वन्दिघोष के मध्य, कुण्डों के समीप स्थित चार कुम्भों के जल से यजमान को स्नान करवायें । स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत माला, श्वेत वस्त्र और समस्त आभूषणों को धारण कर, गुरु को सपत्नीक आह्वान कर, उनको पूर्व में कहे गये आभूषणों से अलङ्कृत कर हाथ में पुष्पांजलि लेकर निम्नलिखित मन्त्र बोलते हुए हलों की प्रदक्षिणा करें-

यस्माद्देवगणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च
धुरन्धराङ्गे तिष्ठन्ति तस्माद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे॥

यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्म एव दृढा भवेत्॥[67]

तदुपरान्त पुष्पांजलि से अर्चना कर पूर्व में कहे गये उपकरणों सहित भूमि गुरु को विधिपूर्वक दान करे। गुरु भी ''भूमिर्विष्णुदैवत'' कहकर यथाविधि दान स्वीकार करे। दान की साङ्गोपाङ्ग सिद्धि हेतु यजमान गुरु और ऋत्विजों को उपजाऊ भूमि एवं रत्न दक्षिणा में दे। अन्त में जापकों को दक्षिणा, दीन और अनाथों को अन्न, वस्त्र इत्यादि प्रदान करे एवं ब्राह्मण वाचन करवाये, देव पूजन एवं पुनरागमन हेतु देव विसर्जन कार्य सम्पन्न करवाया जाये।

मत्स्यपुराण के अनुसार स्वर्णहल पांच पल से लेकर सहस्रपल पर्यन्त स्वर्ण के बने होंगे।[68] भगवन्तभास्कर के अनुसार वेदी के ऊपर चंदोवा बाँधकर, 'हलेभ्यो नमः' कह कर, कुण्डों के निकट कलश स्थापना से लेकर, वनस्पतिहोम पर्यन्त क्रिया का सम्पादन करने के उपरान्त उपर्युक्त विधि से पकाई गई चरु की चारों वेदों के मन्त्रों से आहुति दी जायेगी। आहुति मन्त्र निम्नलिखित होंगे- ऋग्वेद- अच्छा वद (5.83.1), यजुर्वेद- शन्नोवातः (36.10), सामवेद-पर्जन्यः पिता महिषस्य (5.2.13.2) एवं अथर्ववेद- अभिक्रन्दस्तन याद्रथोदधि (4.3.15.6)। दान के अन्त में ब्राह्मण भोजन का भी विधान किया गया है। पंचलाङ्गलक महादान का फल निम्न प्रकार से बताया गया है-

दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डानिवर्त्तनम्।
त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः॥

मानेनानेन यो दद्यान्निवर्तनशतं बुधः।
विधिनाऽनेन तस्याशु क्षीयते पापसंहतिः॥

तदर्द्धमपि यो दद्यादपि गोचर्ममात्रकम्।
भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते॥[69]

चतुर्वर्गचिन्तामणि में हेमान्द्रि ने भविष्ययोत्तरपुराण के आधार पर हलपंक्तिदान का भी विवेचन किया है। इसमें दस हल, दस अलङ्कृत वृषभ एवं खेट या खर्वट नामक ग्राम या सौ निवर्तन भूमि दान में देने का विधान किया गया है। दान का फल सब पापों का नाश एवं सब सुखों की प्राप्ति कहा गया है।[70]

:(11) धरामहादान:

धरामहादान करने के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषदान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र, तुला पर स्थाप्य विष्णु प्रतिमा, हाथ में ग्रहण की जाने वाली प्रतिमाएं, अलङ्कृत तुला, यजमान के लिये स्वर्णालङ्कार एवं यथोक्त वितान को छोड़कर अन्य सब सामग्री के साथ निम्न सामग्री की विशेष रूप से आवश्यकता होगी-

पांच पल स्वर्ण से अधिक एवं सौ पल, दो सौ पल, तीन सौ पल, पांच सौ पल या एक हजार पल में से यथाशक्ति किसी भी मात्रा वाले स्वर्ण से निर्मित मण्डलाकार धरा, जो बाहर

की ओर अन्तराल पूर्वक उत्खाटित कर बनाये गये, सप्तसागर के आकार वाले, सात वलयों से घिरी हुई हो, मध्य में पूर्व से लेकर पश्चिम दिशा तक छह रेखाओं से सात बराबर आयत भागों में विभक्त की गई हो, जिसमें दक्षिणोत्तर फैली हुई दो रेखाओं से तीन समान भागकर, मध्य भाग में अपने-अपने दिशा क्रम से उत्खाटित इन्द्रादि आठ लोकपालों के द्वारा ढके हुए शिरो भाग वाला, यथेच्छ स्थान पर प्रत्युत्खाटित आठ वसु, एकादश रूद्र, द्वादश आदित्य वाला पद्मकपर्दिका आकृति का उन्नत मेरु पर्वत बनाया गया हो, मेरु की पूर्व और पश्चिम रेखाओं पर मेरु से कुछ छोटे माल्यवान् और गन्धमादन पर्वत की आकृति बनाई गई हो, मेरु की दक्षिणोत्तर दोनों रेखाओं पर मेरु के समान ऊँचाई वाले क्रमशः नील और निषध पर्वतों की आकृति बनाई गई हो। नील पर्वत की दक्षिण की दोनों रेखाओं पर नील से कुछ नीचे क्रमशः हेमकूट और हिमवान् पर्वत बनाये गये हों, निषध पर्वत की उत्तर की दोनों रेखाओं पर निषध पर्वत से कुछ नीचे क्रमशः श्वेत और शृंगी पर्वतों के आकार बनाये गये हों। मेरु पर्वत के चारों ओर स्थित इन पर्वतों को मर्यादापर्वत नाम दिया गया है। उपर्युक्त मत दानसागर का है।[71] पर्वतों के संबंध में नीलकण्ठ का मत इससे किंचित् भिन्न है। तदनुसार मेरु के पूर्व में मन्दर, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में सुपार्श्व नामक पर्वत बनाये जाने चाहिये। इसके अतिरिक्त पूर्व में जाठर और देवकूट दक्षिणोत्तर में नील और निषध, दक्षिण में कैलास व हिमवान् पूर्व पश्चिम तक फैले हुए, उत्तर में त्रिशृंग व जारधि पूर्व पश्चिम तक फैले हुए, पश्चिम में निषध व पारिजात दक्षिणोत्तर तक फैले हुए बनाये जाने चाहिये।[72] पर्वतों के बीच-बीच के नौ अन्तरालों में पृथ्वी के नव वर्ष (स्थान) बनाये जाने चाहिये। जैसे मेरु के पूर्व में भ्रदाश्व वर्ष, मेरु के पश्चिम में केतुमाल वर्ष, मेरु के दक्षिण में हरिवर्ष, हरिवर्ष के दक्षिण में किंपुरुषवर्ष, किंपुरुष के दक्षिण में भारतवर्ष, मेरु के उत्तर में रम्यक वर्ष, रम्यक के उत्तर में हिरण्यमयवर्ष, हिरण्मय के उत्तर में उत्तरकुरुवर्ष तथा भद्राश्व व केतुमाल के मध्य इलावृत्त वर्ष । जम्बूद्वीप का अनुकरण करने वाली इस धरा आकृति पर तत्तत् स्थानों पर रेखाओं द्वारा अनेक सरिताओं और नदीयों के आकार उकेरे जाने चाहिये। यह अनेक उत्कृष्ट रत्नों से खचित होनी चाहिये। इस पृथ्वी अथवा धरा को स्थापित करने के लिये कृष्णमृगचर्म और तिल, पृथ्वीमण्डल के ऊपर बाँधने के लिये, रेशमी वस्त्र निर्मित पंचवर्ण चँदोवा, पृथ्वी के निकट स्थापित करने के लिये अष्टादशधान्य, लवणादि षट्रस, आठ भरे हुए कुम्भ, अनेक प्रकार के फल, अनेक प्रकार के उत्कृष्ट वस्त्र, चन्दन के यथेष्ट टुकड़े एवं यजमान के लिये यथेष्ट मोती, चांदी और कपूर के बने हुए आभूषणों की भी आवश्यकता होगी।

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त किसी पवित्र तिथि के दो दिन पहले गुरु ऋत्विज् यजमान और जापक हविष्य भोजनादि कर धरामहादान का निवेदन और सङ्कल्प करें। दूसरे दिन यजमान गोविन्दादि आराधन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान-सङ्कल्प, पुण्याहवाचन ऋत्विग्वरण इत्यादि कार्य करे। इस दिन सभी उपवास और रात्रि जागरण करें। दूसरे दिन नित्य क्रिया कर अग्नि स्थापना से लेकर मध्यब्राह्मणवाचन तक का कार्य यथाविधि करें। इसके पश्चात् ऋत्विग्गण मध्यवेदी के ऊपर लिखित चक्र पर कृष्णमृगचर्म बिछाकर, उस पर तिल रखकर उपर्युक्त प्रकार से बनाई गई जम्बूद्वीपानुकारिणी धरा को स्थापित करें। धरा के निकट पूर्वोल्लिखित सभी वस्तुएं स्थापित करें। तत्पश्चात् मंगलगीत और वाद्य तथा वन्दिघोष के मध्य ऋत्विग्गण कुण्डों के समीप स्थित चार कुम्भों के जल से यजमान को स्नान करवायें। स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत वस्त्र, श्वेत माला एवं श्वेत आभूषण धारण कर, पुष्पांजलि लेकर निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करते हुए ''धरा'' की प्रदक्षिणा करें-

नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः।
धात्री च सर्वभूतानामतः पाहि वसुन्धरे॥

वसुं धारयसे यस्माद्वसु चातीव निर्मलम्।
वसुन्धरा ततो जाता तस्मात् पाहि भयादलम्॥

चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद् यस्मादन्तं तवाचले।
अनन्तायै नमस्तस्मात् पाहि संसारसागरात्॥

त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता।
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्सना चन्द्रे रवौ प्रभा॥

बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता।
विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात्ततो विश्वम्भरा मता॥

धृतिः स्थिति क्षमा क्षोणी पृथ्वी वसुमती रसा।
एताभिर्मूर्त्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात्॥[73]

तत्पश्चात् पुष्पांजलि से अर्चना कर गुरु और ऋत्विजों को पूर्वोक्त शास्त्रीय विधि से दान प्रदान करे। प्रतिग्रहीता भी ''धरेयं विष्णुर्दैवता'' कहकर शास्त्रोक्त विधान

से दान स्वीकार करें। तदुपरान्त यजमान दान की प्रतिष्ठा के लिये उपजाऊ भूमि एवं रत्न दक्षिणा में दे। सभी ब्राह्मण अलग-अलग स्वस्ति कहते हुए धरा की प्रदक्षिणा करें। इसके पश्चात् यजमान जापकों को दक्षिणा प्रदान करे। दीन और अनाथों को अभीष्ट वस्तु प्रदान कर संतुष्ट करे, पुण्याहवाचन करवाये एवं ब्राह्मणभोजन करवाये। नीलकण्ठ के मतानुसार स्वल्पधरामहादान में एकाग्नि विधान हो एवं गुरु ही समस्त कार्य सपन्न करवाये।[74] कृत्यकल्पतरु के अनुसार उपर्युक्त प्रकार से स्वर्णनिर्मित धरा का आधा या चतुर्थांश गुरु को प्रदान किया जाये एवं शेष भाग ऋत्विजों को प्रदान किया जाये।[75] हेमाद्रि ने स्वर्णनिर्मित धरादान में धरानिर्माण हेतु मान एक हजार योजन के बराबर आधा अङ्गुल माना है।[76]

दान का फल विष्णु पद प्राप्ति, नारायण पुरनिवास व इक्कीस पीढी तक पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रों का तारण माना गया है। हेमाद्रि ने प्रकृत धरादान के साथ ही लिङ्गपुराण के आधार पर ''सुवर्णमेदिनी दान'' का भी विवेचन किया है। इसमें देय धरा एकहस्तप्रमाण, चतुरस्र, सात द्वीप समुद्र व पर्वतों तथा नौ खण्डों से युक्त मानी गयी है, जो एक हजार पल स्वर्ण से निर्मित हो। यहाँ शिवभक्त ब्राह्मणों को दान देने का विधान किया गया है।[77] वहीं लिङ्ग पुराण के आधार पर सुवर्णपृथ्वीदान का विवेचन करते हुए कहा गया है कि ''पांच हजार पल स्वर्ण से निर्मित उत्तमा, दो हजार पल स्वर्ण से मध्यमा या एक हजार पल स्वर्ण से निर्मित कनिष्ठा क्रमशः पचास हजार करोड़ योजन विस्तार वाली, सप्तद्वीपा या जम्बूद्वीपा मात्र पृथ्वी का दान शिव भक्तों को प्रदान करना चाहिये।[78]

हेमाद्रि ने ब्रह्माण्डपुराण के आधार पर चार प्रकार के पृथ्वी दान और बताये हैं -

1. जम्बूद्वीपापृथ्वी दान :

इसमें आठ द्रोण लवण से निर्मित समुद्र, अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त स्वर्ण कल्पवृक्षवाला तीन भार धान्य से निर्मित मेरु, शुक्ल, पीत एवं कर्बुर वस्त्रों से निर्मित मेघ, स्वर्ण से ब्रह्मा, रजत से दिग्पाल, पक्षि, मृग आदि, जौ, चावल, तिल, मूंग और माष से अलग-अलग पर्वत एवं घी, दूध, दही से सरोवर आदि बनवाकर दान करने का विधान किया गया है। साथ ही नववर्ष, मर्यादा पर्वत, विष्णु, लक्ष्मी, शिव, गौरी, भद्राश्व, कूर्मावतार, वराहावतार, मत्स्यावतार आदि बनाकर दान देने का विधान है।

2. सप्तद्वीप दान :

इसमें लवण, इक्षु, सुरा, घी, दधि, दुग्ध व जल से बने सात सागरों के मध्य जम्बू व प्लक्ष द्वीप (सोलह-सोलह द्रोण धान्य से) एवं शाल्मल, कुश, क्रोंच, शाक, पुष्कर नामक द्वीप (उत्तरोत्तर चौथाई अधिक धान्य से) बनवाकर, द्वीपों में सात-सात वर्ष, पर्वत व नदियाँ सफेद चावल से बनाकर, स्वर्ण निर्मित सोम, वायु, विष्णु रुद्र, सूर्य, ब्रह्मा एवं शिव को द्वीपों पर स्थापित कर दान में देने का विधान है।

3. पृथ्वीपद्मदान :

इस दान में सात सागर से घिरे सातद्वीप ''सप्तद्वीपदान'' के समान बनाकर, चावल से सभी पर्वत बनाकर, मेरु पर स्वर्णमय कल्प, मन्दार, पारिजात, सन्तान व हरिचन्दन वृक्ष स्थापित कर, मध्य में कल्पवृक्ष के निकट स्वर्णमय, कमलासन द्विभुज, पूर्वमुख ब्रह्मा की स्थापना कर, मेरु पर चार रजत की चोटियाँ, मन्दर पर कामदेव, गन्धमादन पर गरुड, विपुल पर हंसरूप अश्वत्थ, सुपार्श्व पर सुरभि व न्यग्रोध एवं अन्य वर्ष पर्वतों पर चाँदी के मृग, पक्षी, वृक्ष, ईख, चन्दन खण्ड आदि स्थापित कर दान देने का विधान है। दान का फल आयु प्राप्ति, सर्वरोग मुक्ति, ऐश्वर्य प्राप्ति, दुःख ग्रहभयनाश आदि कहे गये हैं -

4. पाण्डुरोगहरपृथ्वीदान :

इसमें तीन या डेढ पल रजत से निर्मित, पर्वत व वनों से युक्त एवं समुद्र से परिवेष्टित वसुन्धरा मन्त्रपूर्वक आचार्य को दान देने का विधान है। यह भी कहा गया है कि इस वसुन्धरा को नवरत्न सहित आठ पल भार वाले कांस्य पात्र में रखकर एवं कपड़े से ढक कर दान दिया जाये।[79]

: (12) विश्वचक्र महादान :

विश्वचक्रमहादान के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र, अलङ्कृत तुला, तुला पर स्थाप्य हरि प्रतिमा एवं हाथों में ग्रहण की जाने वाली प्रतिमाओं को छोड़कर अन्य सब सामग्री के साथ निम्नलिखित सामग्री की और अधिक आवश्यकता होगी-

विषुवादि में हजार पल स्वर्ण मान से निर्मित उत्तम, पांच सौ पल स्वर्ण मान से निर्मित मध्यम, ढाई सौ पल स्वर्णमान से निर्मित कनिष्ठ अथवा बीस पल स्वर्ण मान से लेकर यथाशक्ति ग्रहण किये गये स्वर्ण से निर्मित विश्वचक्र जो कि सोलह अरों व आठ घूमती हुई नेमियों से युक्त हो। चक्र कीं पद्माकार नाभि के मध्य में योगारूढ चतुर्भुज विष्णु की प्रतिमा हो। विष्णु-प्रतिमा के पार्श्व में शङ्ख व चक्र हों तथा पूर्वादि क्रम से वह अष्ट शक्तियों से घिरी हुई हो। ये आठ शक्तियाँ हैं- विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रज्ञा, सत्या और ईशाना। नाभि-पद्म के द्वितीय आवरण पर उसी प्रकार पूर्वादि क्रम से अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, ब्रह्मा, कश्यप एवं मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि अवतारों की प्रतिमायें स्थित हों। तृतीय आवरण पर गौरी आदि अष्टमातृकाओं एवं अष्ट वसुओं की प्रतिमायें स्थित हों। चतुर्थ आवरण पर द्वादश आदित्य एवं चारों वेद प्रतिमायें स्थित हों। पंचम आवरण पर पंचमहाभूत एवं एकादश रुद्र स्थित हों। षष्ठ आवरण पर आठ लोकपाल एवं आठ दिग्गज स्थित हों। सप्तम आवरण पर आठ अस्त्र एवं आठ माङ्गलिक चिह्न स्थित हों एवं आठवें आवरण पर विनायक, नवग्रह, स्कन्द, अश्विनी कुमार, सागर, लक्ष्मी, गङ्गा व यमुना स्थित हों। (चक्र पर स्थाप्य सभी देवों,देवियों, शक्तियों आदि के स्वरूप एवं नाम परिशिष्ट संख्या 7 में देखे जा सकते हैं।)। चक्र को स्थापित करने के लिये कृष्णमृगचर्म एवं तिल, चक्र को अलङ्कृत करने के लिये मालाएं यथेष्ट रत्न, अनेक प्रकार के तीन-तीन वस्त्र, चक्र के पास स्थापित करने के लिये अष्टादश धान्य, लवणादि षट्रस, आठ पूर्ण कुम्भ, इक्षुदण्ड, ऊपर बाँधने हेतु चँदोवा इत्यादि की भी आवश्यकता होगी।

सामग्री एकत्र करने के पश्चात् किसी पवित्र दिन के दो दिन पहिले गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक हविष्यादि भोजन कर विश्वचक्र महादान का निवेदन और सङ्कल्प करें। दूसरे दिन यजमान गोविन्दादि आराधन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान सङ्कल्प, पुण्याहवाचन, ऋत्विग्वरण इत्यादि कार्य करे। इस दिन गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक उपवास एवं रात्रि जागरण करें। दूसरे दिन अग्नि स्थापना से लेकर मध्यब्राह्मण वाचन तक का कार्य करें। तदुपरान्त ऋत्विग्गण प्रधान वेदी के मध्य पंच वर्ण रज से अङ्कित चक्र पर कृष्णमृगचर्म बिछाकर, उस पर तिल रख कर, तिलों पर विश्वचक्र को स्थापित करें। चक्र को वस्त्र और मालाओं से अलङ्कृत कर, चक्र के समीप पूर्व वर्णित सामग्री स्थापित करें । तत्पश्चात् कुण्डों के समीप स्थित चार कुम्भों के जल से यजमान

को स्नान करवायें। स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत माला, श्वेत वस्त्र एवं समस्त आभूषण धारण कर, पुष्पांजलि लेकर निम्न मंत्रों का पाठ करते हुए चक्र की तीन बार प्रदक्षिणा करे-

नमो विश्वमयायेति विश्वचक्रात्मने नमः।
परमानन्दरूपी त्वं पाहि नः पापकर्दमात्॥

तेजोमयमिदं यस्मात् सदा पश्यन्ति योगिनः।
हृदि तत्त्वं गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम्॥

वासुदेवे स्थितं चक्रं चक्रमध्ये तु माधवः।
अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह॥

विश्वचक्रमिदं यस्मात्सर्वपापहरं परम्।
आयुधं चापि वासश्च भवादुद्धर मामतः॥[80]

मन्त्रपाठ एवं पुष्पांजलि से अर्चना के उपरान्त गुरु, ऋत्विज् एवं प्रमुख ब्राह्मणों को यजमान विधिपूर्वक दान समर्पित करे। गुरु और ऋत्विज् भी ''विश्वचक्रमिदं विष्णुदैवतं कहकर यथाविधि दान स्वीकार करें। यजमान गुरु और ऋत्विजों को उपजाऊ भूमि एवं रत्न दक्षिणा में दे। अन्त में जापकों को दक्षिणा प्रदान करे। दीन और अनाथों को उनकी अभीष्ट वस्तु प्रदान कर सन्तुष्ट करे। ब्राह्मणवाचन, देवपूजन एवं विसर्जन के उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन करवाये। दान का फल सर्वपाप-मुक्ति, विष्णुलोकप्राप्ति, आयुवृद्धि एवं लक्ष्मी -वृद्धि बताया गया है।

नीलकण्ठ के मतानुसार सभी महादानों में राजा ही दक्षिणा में भूमि प्रदान करेगा, अन्य सभी दानदाता दक्षिणा में स्वर्ण प्रदान करेंगे।[81] व्यावहारिक दृष्टि से भी यह मत समीचीन प्रतीत होता है।

:(13) कल्पलता महादान:

कल्पलतामहादान के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममयढाल अन्य अस्त्र, तुला पर स्थाप्य विष्णु प्रतिमा, अलङ्कृत तुला एवं हाथ में ली जाने वाली प्रतिमाओं को छोड़कर अन्य सभी सामग्री के साथ निम्नलिखित सामग्री की और अधिक आवश्यकता होगी-

पांच पल से अधिक एवं सहस्र पल स्वर्ण तक इच्छित स्वर्ण से निर्मित स्थान स्थान पर विद्याधर और किन्नरों के जोड़ों से युक्त, पत्तों के अग्रभाग में यथेच्छ आकृति में पुष्प और फल ग्रहण करने वाले पक्षियों से युक्त, यथेच्छ संख्या में हाथ में मुक्ताहार लिये हुए सिद्धों से युक्त, अनेक प्रकार से आलता आदि से चित्र-विचित्र वस्त्रों से सुशोभित दस लताएं। लताओं के नीचे स्थापित करने के लिये यथेच्छ स्वर्ण-पत्र पर उत्खाटित ब्राह्मी, अनन्तशक्ति, कुलिशायुधा, आग्नेयी, गदिनी, नैऋती, वारुणी, पताकिनी, सौम्या और माहेश्वरी देवियों की दस प्रतिमाएं (इन प्रतिमाओं का स्वरूप परिशिष्ट संख्या 07 में देखा जा सकता है ।) इन प्रतिमाओं को स्थापित करने के लिये क्रमशः लवण, गुड़, हरिद्रा, तण्डुल, घृत, क्षीर, शर्करा, तिल और नवनीत। लताओं के निकट स्थापित करने के लिये दस धेनु, दस कुम्भ और दस वस्त्रों के जोड़े । इन सबके ऊपर बाँधने के लिये पंचवर्ण वितान।

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त किसी पवित्र तिथि अथवा दिन के दो दिन पहिले गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक हविष्यादि भोजन कर दान का निवेदन और सङ्कल्प करें। दूसरे दिन यजमान गोविन्दादि आराधन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान सङ्कल्प, ऋत्विग्वरण, मधुपर्क आदि तक का कार्य करे। इस दिन गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक उपवास एवं रात्रि जागरण करे। दूसरे दिन सभी नित्य कर्म कर तुलापुरुष दान के समान अग्नि स्थापना से लेकर मध्य ब्राह्मणवाचन तक का कार्य यथाविधि करें। तत्पश्चात् ऋत्विग्गण प्रधान वेदी के ऊपर लिखित चक्र पर पूर्वादि दिशा क्रम से आठ लताएं आरोपित करें एवं मध्य में दो लताएं आरोपित करें। इन दो लताओं के नीचे लवण के ऊपर क्रमशः पद्म व शङ्खहस्ता ब्राह्मी एवं अनन्तशक्ति की स्थापना करें। तत्पश्चात् पूर्व में गुड़ पर चतुर्दन्त हाथी पर आसीन कुलिशायुधा की, आग्नेय कोण में हरिद्रा पर अजारूढा आग्नेयी की, दक्षिण में तण्डुलों पर महिषारूढा गदिनी की, नैर्ऋत्य में घी पर सखड्गा प्रेतवाहना नैर्ऋती की, पश्चिम में क्षीर में मकरारूढा नागपाशिनी वारुणी की, वायव्य में शर्करा पर मृगस्था पताकिनी की , उत्तर दिशा में तिलों पर निधि (कलश) संस्थित सौम्या की एवं ईशान में नवनीत पर वृषारूढा त्रिशूलिनी माहेश्वरी की प्रतिमाओं की स्थापना करनी चाहिये। लताओं के निकट पूर्वोक्त धेनु आदि सभी वस्तुओं की स्थापना की जानी चाहिये। इसके पश्चात् ऋत्विग्गण मंगलगीत, वाद्य एवं वन्दिघोष के मध्य कुण्डों के समीप स्थित चार कुम्भों के जल से यजमान को स्नान करवायें। स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत वस्त्र, श्वेत माला एवं समस्त आभूषणों को धारण कर पुष्पांजलि

लेकर निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करता हुआ लताओं की तीन बार प्रदक्षिणा करे-

नमो नमः पाप विनाशिनीभ्यो,
ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालिनीभ्यः।

आशंसिताधिक्यफलप्रदाभ्यः,
दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः॥[81]

प्रदक्षिणा के उपरान्त लताओं और शक्तियों की पुष्पांजलि से अर्चना करे तत्पश्चात् विधिपूर्वक गुरु और ऋत्विजों को कल्पलतामहादान प्रदान करे। प्रतिग्रहीता भी ''कल्पलतेयं विष्णुदैवता'' कहते हुए यथाविधि दान स्वीकार करें। दान की प्रतिष्ठा हेतु यजमान गुरु और ऋत्विजों को उपजाऊ भूमि एवं रत्न अथवा स्वर्ण दक्षिणा में दे । ब्राह्मण स्वस्ति कहकर अपनी-अपनी कल्पलता का स्पर्श करें। अन्त में जापकों को दक्षिणा दी जाये। दीन और अनाथों को इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट किया जाये। ब्राह्मण-वाचन के उपरान्त देवता-पूजन, विसर्जन, मण्डपादि प्रतिपादन ब्राह्मण-भोजन इत्यादि कार्य करवाया जाये।

भगवन्तभास्कर एवं चतुर्वर्गचिन्तामणि के अनुसार उपर्युक्त स्वर्णलताओं में पुष्प और फल तो स्वर्ण के ही होंगे, क्योंकि स्वाभाविक फलों को स्थापित नहीं किया जा सकता, किन्तु वस्त्र, कपास इत्यादि के ही होंगे ।[82] नीलकण्ठ के अनुसार सिद्धगण पक्षी मुख वाले किन्नर होते हैं। प्रकृत दान का फल भवभयनाश, पाप समूह का नाश, तीस पीढी तक पितृ पितामह कुल का तारण एवं नागलोक की प्राप्ति बताया गया है।

:(14) सप्तसागरमहादान:

सप्तसागर महादान करने के इच्छुक यजमान को तुलापुरुष महादान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र, तुला पर स्थापित की जाने वाली विष्णु प्रतिमा, अलंकृत तुला एवं हाथ में ली जाने वाली प्रतिमाओं को छोड़कर अन्य सभी सामग्री के साथ निम्नलिखित वस्तुएं और अधिक एकत्रित करनी होंगी-

सात पल से लेकर सहस्र पल तक यथेच्छ स्वर्ण से निर्मित प्रदेश मात्र[84] मान वाले सात कुण्डाकार सागर,[85] कुण्डों को स्थापित करने के लिये कृष्णमृगचर्म, सात कुण्डों में भरने के लिये क्रमशः लवण, क्षीर, घृत, गुड़, दधि, शर्करा एवं तीर्थोदक,

कुण्डों के बीच स्थापित करने के लिये स्वर्णपत्र पर उत्खाटित, ब्रह्मा, केशव, महेश्वर, आदित्य, इन्द्र, लक्ष्मी एवं पार्वती की प्रतिमाएं, सभी कुण्डों में स्थापित करने हेतु सर्वरत्न एवं कुण्डों के चारों ओर स्थापित करने के लिये अष्टादश धान्य।

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त किसी पवित्र तिथि अथवा समय के दो दिन पहिले गुरु, यजमान, ऋत्विज् और जापक हविष्यादि भोजन कर, सप्तसागरदान का निवेदन और सङ्कल्प करें। दूसरे दिन यजमान गोविन्दादि आराधन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान सङ्कल्प, पुण्याहादिवाचन, ऋत्विग्वरण मधुपर्कदान इत्यादि कार्य यथाविधि करें। इस दिन गुरु ऋत्विज्, यजमान और जापक उपवास, रात्रि जागरण आदि करें। दूसरे दिन यजमान सहित सभी ब्राह्मण नित्य कर्म कर, अग्नि स्थापना से लेकर वनस्पतिदेव होमान्त तक का कार्य यथाविधि करें। इस दान के अन्तर्गत होम कार्य में सभी हवन कुण्डों में एक-एक आहुति वरुण देव के लिये अधिक दी जायेगी। हेमाद्रि ने इस दान में सहस्रसंख्यक वारुण होम का विधान किया है।[86]

होम के उपरान्त ऋत्विग्गण प्रधान वेदी पर लिखित चक्र के ऊपर कृष्णमृगचर्म बिछाकर, उस पर तिल आरोपित कर, कुण्डों को क्रमशः लवणादि से पूरित कर, उनमें सभी प्रकार के रत्नों एवं ब्रह्मा और केशवादि की प्रतिमाओं को आरोपित करें। कुण्डों के पास में अष्टादश धान्य स्थापित करें। तत्पश्चात् मंगलगीत वाद्य और वन्दिघोष के मध्य, हवन कुण्डों के समीप स्थित चार कुम्भों के जल से ऋत्विग्गण यजमान को स्नान करवायें। स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत माला, श्वेतवस्त्र एवं सभी अलंकार धारण कर, पुष्पांजलि लेकर, निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करते हुए सप्तसागरों (कुण्डों) की तीन बार प्रदिक्षणा करें-

नमो वः सर्वभूतानामाधारेभ्यः सनातनाः।
जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमो नमः॥

क्षीरोदकाज्यदधिमाधुरलावणेक्षुसारामृतेन भुवनत्रयजीवसङ्घान्।
आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्तस्तस्मान्मामप्यघविघातममलंदिशन्तु॥

यस्मात्समस्तभुवनेषु भवन्त एव तीर्थमरासुरसुबद्धमणिप्रदानम्।
पापक्षयामृतविलेपनभूषणाय लोकस्य बिभ्रती तदस्तु ममापि लक्ष्मीः॥[87]

प्रदक्षिणा के उपरान्त पुष्पांजलि से सप्त सागरों की अर्चना कर यजमान विधिपूर्वक

गुरु, ऋत्विज् व प्रमुख ब्राह्मणों को यह दान प्रदान कर दे। गुरु और ऋत्विज् भी ''सप्तसागरा एते विष्णुदैवता'' कह कर यथाविधि दान स्वीकार करें। यजमान गुरु और ऋत्विजों को उत्पत्ति योग्य भूमि एवं रत्न दक्षिणा में दे। तदुपरान्त जापकों को दक्षिणा दे। दीन और अनाथों को यथेष्ट दान देकर सन्तुष्ट करे। अन्त में ब्राह्मण वाचन, ग्रहादि पूजा, देवविसर्जन, ब्राह्मण भोजन आदि कार्य किया जाये। नीलकण्ठ के मतानुसार प्रकृत दान में किये जाने वाले होम में 28, 108 या 1008 आहुतियाँ तिलों की भी दी जायेंगी ।[88] दान का फल विष्णुपद प्राप्ति, पापों का नाश इत्यादि बताया गया है।

:(15) रत्नधेनुमहादान:

रत्नधेनुमहादान करने के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममय ढाल, अन्य अस्त्र तुला पर स्थाप्य विष्णु प्रतिमा एवं हाथ में ग्रहण की जाने वाली प्रतिमाओं को छोड़कर अन्य सभी सामग्री के साथ निम्नलिखित सामग्री और एकत्रित करनी होगी-

धेनु के मुखनिर्माण हेतु 81 पद्मरागरत्न, नासाग्र निर्माण के लिये सौ पुष्पराग नामक रत्न, ललाट के लिये यथेच्छ स्वर्ण से निर्मित तिलक, दोनों नेत्र निर्माण के लिये सौ बड़े मोती, भ्रू युग के लिये सौ विद्रुम, दोनों कानों के लिये दो ब़ड़ी सीपियाँ, दोनों सींगों के लिये यथेच्छ स्वर्ण से बने हुए दो बड़े सींग, सिर के लिये सौ हीरे, ग्रीवा के लिये दो बड़े नेत्रपुटक और सौ गोमेद, पीठ के लिये सौ इन्द्रनीलमणियाँ, दोनों पार्श्वों के लिये सौ वैदूर्य मणियाँ, उदर के लिये सौ स्फटिक खण्ड, कटि के लिये सौ सौगन्धिक रत्न, खुर के लिये यथेच्छ स्वर्ण से बने हुए चार खुर, पूंछ के लिये यथेच्छ मोतियों से बनी हुई लड़, दक्षिण नासापुट के लिये यथेच्छ कर्पूर के सहित सूर्यकान्त मणि, वाम नासापुट के लिये यथेच्छ चन्दन के सहित विशुद्ध स्फटिक खण्ड, धेनु के रोमों के लिये यथेच्छ कुंकुम, नाभि के लिये यथेच्छ चाँदी की चक्रिका, अपान के लिये सौ मरकत मणियाँ एवं धेनु के शरीर की सन्धियों के लिये उपर्युक्त रत्नों के अतिरिक्त, इच्छानुसार अन्य रत्न। धेनु की जीभ के लिये शक्कर, गोबर के लिये गुड़, मूत्र के लिये घी। एक बड़ा व एक छोटा- दो दही के पात्र । दूध दुहने की सामग्री। धेनु के पुच्छाग्र हेतु यथेच्छ चँवर । ताम्रनिर्मित (एक बड़ा व एक छोटा) दोहन पात्र। धेनु के अलंकरण के लिये यथेच्छ स्वर्ण

निर्मित दो कुण्डल, गले का हार, ललाट पट्टिका और घण्टिका। धेनु के पैरों के लिये चार बड़े इक्षुदण्ड। वत्स निर्माण एवं अलंकरण हेतु पूर्वोक्त सामग्री की चतुर्थांश सामग्री। धेनु और वत्स को स्थापित करने के लिये बड़े और छोटे दो कृष्णमृगचर्म। द्रोणपरिमित लवण व आढक परिमित लवण। धेनु के निकट मतानुसार दही एवं दूध भी स्वरूपतः स्थापित किये जाने चाहियें।[८९]

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त किसी पवित्र तिथि को दो दिन पहिले गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक हविष्य भोजनादि कर रत्नधेनुमहादान का निवेदन और सङ्कल्प करें। दूसरे दिन यजमान गोविन्दादि अर्चन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान सङ्कल्प, पुण्याहवाचन, ऋत्विग्वरण, मधुपर्कदान इत्यादि कार्य विधिपूर्वक करें। इस दिन गुरु ऋत्विज्, यजमान और जापक उपवास करें एवं मण्डप में ही रात्रि जागरण करें। दूसरे दिन नित्य कर्म कर अग्नि-स्थापन से लेकर मध्य ब्राह्मण वाचन तक का कार्य विधिपूर्वक करें।

तत्पश्चात् ऋत्विगण प्रधान वेदी के मध्य लिखित चक्र पर बड़े कृष्णमृगचर्म को बिछाकर, उसके ऊपर द्रोण भर नमक बिछाकर, उस पर पूर्व की ओर मुख तथा उत्तर की ओर पैर किये हुए धेनु के आकार को रेखा के माध्यम से बनायें एवं पूर्व में कही गयी तत्तत् सामग्री से उसके अङ्गों का विन्यास और अलंकरण करें। धेनु के निकट अष्टादश धान्य और अनेक प्रकार के फल स्थापित करें। धेनु के पार्श्व में बिछे हुए छोटे कृष्णमृगचर्म पर रखे हुए आढ़क परिमाण लवण पर धेनु निर्माण के क्रम से, सभी द्रव्यों का चतुर्थांश लेकर पूर्व की ओर मुख किये हुए एवं उत्तर की ओर पैर किये हुए वत्स को कल्पित करें।

उपर्युक्त प्रकार से धेनु निर्माण के पश्चात् मङ्गल गीत, वाद्य और वन्दिघोष के मध्य कुण्डों के समीप स्थित चार कुम्भों के जल से ऋत्विगण यजमान को स्नान करवायें। स्नान के उपरान्त यजमान श्वेत वस्त्र, श्वेत माला एवं सभी अलङ्कार धारण कर, पुष्पांजलि लेकर रत्नधेनु को निम्नलिखित मन्त्रों से अभिमन्त्रित करें-

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु॥

देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य तु या प्रिया।

धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः।
चन्द्रार्कशक्रशुक्राणां या धेनुः साऽस्तु मे श्रिये॥
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च।
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे॥

स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञ-भुजां च या।
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥

त्वं सर्वदेवगणधाम यतः पठन्ति,
रुद्रेन्द्रचन्द्रकमलासनवासुदेवाः।

तस्मात् समस्तभुवनत्रयदेहयुक्ता,
मां पाहि देवि भवसागरपीड्यमानम्॥[९०]

तत्पश्चात् पुष्पांजलि से धेनु की अर्चना कर, विधिपूर्वक गुरु को दान अर्पित करे। गुरु भी यथा विधि ''रत्नधेनुरियं विष्णुदैवता'' कहकर दान स्वीकार करे। दानसागर के अनुसार दान की प्रतिष्ठा हेतु गुरु और ऋत्विजों को यजमान दक्षिणा में उपजाऊ भूमि एवं रत्न प्रदान करे[९१] किन्तु भगवन्तभास्कर के मत से स्वर्ण ही दक्षिणा में दिया जाये। वहीं यह भी मत प्रकट किया गया है कि एक कुण्डीय दान यज्ञ की स्थिति में तो गुरु को ही यह समस्त दान प्रदान किया जाये, किन्तु पंचकुण्डीय यज्ञ में गुरु को दुगुना भाग एवं ऋत्विजों को एक-एक भाग दान द्रव्य प्रदान किया जाये। दान के अन्त में ब्राह्मण-भोजन इत्यादि कार्य किये जायें।[९२]

(16) महाभूतघटदान

महाभूतघटदान के इच्छुक यजमान को तुलापुरुषमहादान में उल्लिखित खड्ग, चर्ममयढाल, अन्य अस्त्र, तुला पर स्थाप्य विष्णु प्रतिमा, अलङ्कृत तुला एवं हाथों पर ग्रहण की जाने वाली प्रतिमाओं को छोड़कर अन्य सब सामग्री के साथ निम्नलिखित सामग्री और एकत्रित करनी होगी-

प्रादेश मान से अधिक एवं सौ अङ्गुल तक अभिमत परिमाण के स्वर्ण से निर्मित, यथेष्ट उत्कृष्ट रत्नों से जड़ा हुआ कुम्भ, कुम्भ के मध्य स्थापित करने के लिये कल्पपादपमहादान में

बताई गई आकृति वाला अभीष्ट परिमाण में स्वर्ण निर्मित कल्पवृक्ष, अभीष्ट स्वर्ण पत्र पर उत्खाटित परिशिष्ट सात में बताये गये आकारों वाली ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, पृथ्वी, वरुण, अग्नि, वायु, विनायक, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद एवं पुराणों की प्रतिमाएं कुम्भ में भरने के लिये समान मात्रा में गाय के घी व दूध, दोहन सामग्री एवं घट के निकट स्थापित करने के लिये अष्टादश धान्य, चँवर, आसन, दर्पण, खड़ाऊ जोड़ा, जूता जोड़ा, छत्र, छोटा दीपक, शय्या और भरे हुए आठ कुम्भ, महाभूतघट को अलङ्कृत करने के लिये यथेच्छ स्वर्ण हार आदि अलङ्कार, पंचवर्ण वितान।

सामग्री एकत्र करने के उपरान्त किसी पवित्र तिथि अथवा दिन के दो दिन पहिले गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक हविष्यादि भोजन कर दान का निवेदन और सङ्कल्प करें। दूसरे दिन यजमान गोविन्दादि अर्चन, ब्राह्मणानुज्ञापन, दान सङ्कल्प, पुण्याहादिवाचन, ऋत्विज् और जापक वरण, मधुपर्कदान इत्यादि कार्य यथाविधि करें। इस दिन गुरु, ऋत्विज्, यजमान और जापक उपवास करें। दूसरे दिन सभी नित्यकार्य कर अग्नि-स्थापना से लेकर मध्यब्राह्मणवाचन तक का कार्य विधिपूर्वक करें। तदुपरान्त ऋत्विग्गण प्रधान वेदी के मध्य लिखित चक्र के ऊपर महाभूतघट को स्थापित कर, घी और दूध से भर कर उसके बीच में कल्पवृक्ष तथा पूर्वोक्त देवप्रतिमाओं को स्थापित कर कुम्भ के निकट स्थाप्य अष्टादशधान्यादि सभी सामग्रियों को स्थापित करें। इसके पश्चात् मङ्गलगीत, वाद्य और वन्दिघोष के मध्य ऋत्विग्गण कुण्डों के समीप स्थित चार कुम्भों के जल से यजमान को स्नान करवायें। स्नान के उपरान्त यजमान, श्वेत वस्त्र, श्वेत माला एवं समस्त अलंकारों को धारण कर, पुष्पांजलि लेकर, निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करते हुए कुम्भ की तीन बार प्रदक्षिणा करें-

नमो वः सर्वदेवानामाधारेभ्यश्चराचरः।
महाभूताधिदेवेभ्यः शान्तिरस्तु शिवं मम॥

यस्मान्न किंचिदप्यस्ति महाभूतैर्विनाकृतम्।
ब्रह्माण्डे सर्वभूतेषु तस्माच्छ्रीरक्षाऽस्तु मे॥[93]

प्रदक्षिणा के उपरान्त पुष्पांजलि से अर्चना कर गुरु, ऋत्विज् और ब्राह्मणों को ''महाभूतघटदान'' विधिपूर्वक प्रदान करें। गुरु और ऋत्विज् यथा विधि दान स्वीकार करें। दान की पूर्ण सिद्धि हेतु गुरु और ऋत्विजों को दक्षिणास्वरूप उपजाऊ भूमि एवं

रत्न प्रदान किये जायें। कुछ धर्मशास्त्रकारों के मतानुसार स्वर्ण ही दक्षिणा में प्रदान किया जाये। इसके पश्चात् जापकों को दक्षिणा तथा दीन और अनाथों को दान देकर सन्तुष्ट करें। ब्राह्मण वाचन, ब्राह्मण भोजन आशीर्वाद ग्रहण, मङ्गलाचरण पुनरागमन हेतु देवविसर्जन इत्यादि कार्य भी करवाये जायें।

चतुर्वर्गचिन्तामणि के दान खण्ड में हेमाद्रि ने अन्य-अन्य पुराणों को उद्धृत करते हुए भी षोडश महादान संबंधी विचारों को प्रस्तुत किया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के आधार पर हेमाद्रि ने जिस हिरण्यगर्भदान का विवेचन किया है, वह अधिकांशतः मत्स्यपुराणोक्त हिरण्यगर्भदान के समान ही है। इसी प्रकार पद्मपुराण के आधार पर प्रस्तुत किये गये ब्रह्माण्डदान का स्वरूप मत्स्यपुराणोक्त ब्रह्माण्डदान से किंचित् ही भिन्न है। हेमाद्रि ने लिङ्गपुराण, कालिका पुराण, स्कन्दपुराण एवं आदित्य पुराण के आधार पर भी गोसहस्र महादान का निरूपण किया है, किन्तु मत्स्यपुराणोक्त गोसहस्रदान से अत्यल्प भेद होने तथा सभी में सहस्र से अधिक गायें देय होने के कारण यहाँ उनका वर्णन अनपेक्षित है। इसी प्रकार अग्नि पुराण व लिङ्ग पुराण को उद्धृत करते हुए हिरण्यकामधेनु दान का जो विवरण दिया गया है, उसमें और मूल हिरण्यकामधेनु दान की मूल भावना में कोई भेद प्रतीत नहीं होता। लिङ्ग पुराण में प्रस्तुत हिरण्याश्वमहादान में हिरण्याश्व के चार पैर व मुख रजत निर्मित रखने का विधान है। लिङ्ग पुराण में शिव को लक्ष्य कर दान कर्म करने की विधि है, किन्तु मत्स्य पुराण में सभी महादान विष्णुदैवत हैं। लिङ्ग पुराण में हिरण्याश्वमहादान को विजयावह बताया गया है। हेमाद्रि ने अथर्ववेदीय गोपथ ब्राह्मण को उद्धृत करते हुए हिरण्याश्वरथ एवं हस्तिरथदान का भी निरूपण किया है, किन्तु उनमें कोई उल्लेखनीय विशेषता प्राप्त नहीं होती।

षोडश महादानों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादान का कार्य अत्यन्त विराट स्तर पर किया जाता था। इसमें प्रभूत धन, समय एवं सम्भार की आवश्यकता होती थी। अतः इन दानों को सम्पन्न करने का कार्य सामान्य मनुष्य के वश में नहीं था। राजा, महाराजा, बड़े श्रेष्ठी एवं धन सम्पन्न वर्ग ही ये दान सम्पन्न करवा सकते थे। इन दानों में प्राप्त द्रव्य से ब्राह्मण वर्ग अपना स्वाध्याय,अध्यापन, यजन इत्यादि कार्य निश्चिन्त होकर कर सकता था। भारतीय समाज व्यवस्था की दान के रूप में आदान-प्रदान की यह एक शोभन एवं सम्मानजनक शैली थी, जिससे समाज के सभी कार्य सुचारु रूप से चलते रहते थे एवं दायित्व बोध भी जागृत रहता था।

इन दानों में की जाने वाली सामग्री, सजावट इत्यादि से भारतीय धर्मशास्त्रकारों का सौन्दर्य बोध भी स्पष्ट होता है। किसी भी दान की साङ्गोपाङ्ग कल्पना से उसके भव्य एवं रम्य स्वरूप और वातावरण का चित्र अनायास ही सामने आ जाता है। इन दान कार्यों में दिये गये विधानों से धर्मशास्त्रकारों का व्यावहारिक दृष्टिकोण भी उभर कर सामने आता है। उदाहरण के लिये अशक्ति की अवस्था में किया जाने वाला नक्त व्रत, स्वल्प सामग्री होने पर एकाग्नि विधान, सामग्री का न्यूनतम एवं अधिकतम विधान को प्रस्तुत किया जा सकता है।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि दान-रूपी दायित्व का निर्वहण केवल सम्पन्न वर्ग ही नहीं करता था, मध्यम वर्ग के लिये भी सामर्थ्यानुसार दान कार्य का निर्देश भारतीय धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में किया गया है। अग्रिम अध्यायों में किये जाने वाले दान-स्वरूपों के विवेचन से यह तथ्य और अधिक बल प्राप्त करेगा।

---

1. मत्स्यपुराण 274/ 6-10.
2. वही, 274/11-12.
3. मत्स्यपुराण 274/15.
4. भगवन्तभास्कर-दानमयूख पृष्ठ-97.
5. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दान खण्ड पृष्ठ 167, एवं दानसागर भाग प्रथम पृष्ठ- 82.
6. कृत्यकल्पतरु- दानकाण्ड, पृष्ठ-51.
7. भगवन्तभास्कर- दानमयूख-पृष्ठ-95, पंक्ति 9.
8. कृत्यकल्पतरु- दानकाण्ड, पृष्ठ-55.
9. मत्स्यपुराण 274/36-38.
10. भगवन्त भास्कर दानमयूख, पृष्ठ- 96.
11. घी की न बहुत ऊँची और न बहुत नीची सात धाराएं।
12. पिता, पितामह और प्रपितामह एवं माता, मातामह व प्रमातामह का ब्राह्मणों को जोड़े से भोजन, वस्त्र आदि प्रदान कर श्राद्ध।
13. भगवन्त भास्कर- दानमयूख, पृष्ठ- 97.

14. वही, पृष्ठ - 100.

15. मत्स्यपुराण 274/69-70.

16. चतुर्वर्गचिन्तामणि - दानखण्ड, पृष्ठ - 86.
("केचित्तु गुरवे ग्रामरत्नानीत्यत्रापि श्रेष्ठतावचनो रत्नशब्द इति व्याचक्षते")

17. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दान खण्ड, पृष्ठ -86.

18. कृत्यकल्पतरु-दानकाण्ड पृष्ठ 62 एवं हेमाद्रि-दानखण्ड पृष्ठ 186 में पिता माता की सेवा आदि गुणों से युक्त ब्राह्मणेतरों को "विशिष्ट" संज्ञा दी गई है।

19. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दान खण्ड, पृष्ठ -186 एवं भगवन्तभास्कर दान मयूख पृष्ठ- 102.

20. भगवन्तभास्कर-दानमयूख, पृष्ठ - 103-104.

21. दानमयूख, पृष्ठ -103.

22. वही।

23. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड, पृष्ठ 214 एवं दानमयूख, पृष्ठ- 104.

24. दानमयूख, पृष्ठ 104-105 एवं दान खण्ड पृष्ठ 215-216.

25. हेमाद्रि- दान खण्ड, पृष्ठ 219 के अनुसार दश अस्त्र के स्थान पर दस अभ्राकार सुवर्ण खण्ड रखे जाने चाहिये।

26. दानसागर-प्रथम खण्ड, पृष्ठ -99.

27. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ- 219.

28. दानसागर-प्रथम खण्ड, पृष्ठ-100.

29. मत्स्यपुराण 275/11-14.

30. मत्स्यपुराण 275/19-20.

31. भगवन्तभास्कर- दानमयूख, पृष्ठ-118.

32. मत्स्यपुराण 275/13-14.

33. कृत्यकल्पतरु- दानकाण्ड, पृष्ठ 70 एवं भगवन्तभास्कर दानमयूख, पृ0. 120.

34. मत्स्यपुराण 276/17-18.

35. मत्स्यपुराण 277/13-15.

36. मत्स्यपुराण 277/18-22.

37. मत्स्यपुराण 277/13-17.

38. कृत्यकल्पतरु-दानखण्ड, पृ. 77 एवं दानमयखू, पृ. - 132.

39. वही, दान काण्ड, पृष्ठ- 76.

40. दानमयूख- पृष्ठ- 132.

41. वही।

42. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दान खण्ड पृष्ठ- 263.

43. मत्स्यपुराण 207/13-15.

44. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ- 267.

45. वही, पृष्ठ- 266 एवं दान मयूख पृष्ठ- 135.

46. मत्स्यपुराण 279/11-12.

47. दानमयूख- पृष्ठ, 135.

48. वही।

49. मत्स्यपुराण 279/9-10.

50. दान मयूख- पृष्ठ- 136.

51. मत्स्यपुराण 279/8-9.

52. दानमयूख, पृष्ठ- 138-139, एवं दानसागर पृष्ठ- 132- 133.

53. दानसागर, पृष्ठ-138.

54. मत्स्यपुराण 281/12-13.

55. दानमयूख-पृष्ठ- 140 एवं दानखण्ड- पृष्ठ - 280.

56. दानसागर, पृष्ठ - 138.

57. वही।

58. दानखण्ड, पृष्ठ - 284.

59. मत्स्यपुराण 282/12-14.

60. दानमयूख- पृष्ठ, 144.

61. दानसागर, पृष्ठ - 142-143.

62. दानमयख- पृष्ठ- 144.

63. निवर्तन का लक्षण परिभाषा प्रकरण में दिया गया है।

64. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड, पृष्ठ- 288 में उत्तम वृषभ का लक्षण ''सुशीलत्वं तरुणत्वम् इन्द्रियत्वं अरोगित्वम् क्लेशसहत्वम्।''

65. दानमयूख- पृष्ठ- 146.

66. दानमयूख- पृष्ठ- 146.

67. दानसागर- पृष्ठ- 146.

68. दानमयूख- पृष्ठ- 146.

69. मत्स्यपुराण- 284/12-13.

70. मत्स्यपुराण- 284/4-6.

71. वही, 283/14-16.

72. दानखण्ड, पृष्ठ - 291-292.

73. दानसागर, पृष्ठ - 155-156.

74. दानमयूख- पृष्ठ- 149.

75. मत्स्यपुराण, 284/11-17.

76. दानमयूख- पृष्ठ- 150.

77. कृत्यकल्पतरु, दानकाण्ड, पृष्ठ-95.

78. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ - 297.

79. वही, पृष्ठ- 301-302.

80. वही, पृष्ठ- 302-304.

81. चतुर्वर्गचिन्तामणि- पृष्ठ 304-326.

82. मत्स्यपुराण- 385/14-18.

83. दानमयूख, पृष्ठ-155.

84. मत्स्यपुराण- 286/14.

85. दानमयूख- पृष्ठ- 156.

86. हेमाद्रि के अनुसार अङ्गूठे के इक्कीस पर्व का अरत्नि एवं अरत्नि का आधा प्रादेश मान होगा। दान खण्ड-पृष्ठ- 338.

87. मत्स्यपुराण के अनुसार ये सागर अरत्नि प्रमाण के भी हो सकते हैं। द्र. 288/4.

88. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ- 339.

89. मत्स्यपुराण- 288/11-13.

90. दानमयूख- पृष्ठ-158.

91. दानमयूख- पृष्ठ- 160.

92. दृष्टव्य गुड़ धेनु दान में पठित मन्त्र।

93. दानसागर, पृष्ठ 180.

94. दानमयूख- पृष्ठ- 159.

95. मत्स्यपुराण- 289/12-13.

चतुर्थ अध्याय

: दश महादान :

पूर्व अध्याय में वैभवसम्पन्न षोडश महादानों का विवेचन किया गया। भारतीय मनीषा के अनुसार समाज के मध्य वर्ग में भी ''तेन त्यक्तेन भुंजीथा'' की भावना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत अध्याय में वर्ण्य दश महादानों के स्वरूप विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा कि , मुख्य रूप से समाज के मध्यमवर्ग के प्रयोजन से धर्मशास्त्रकारों ने इन महादानों की कल्पना की है। पूर्व-वर्णित दानों से अत्यल्प धन की आवश्यकता होने पर भी भाव प्रधानता के कारण ये दान भी महादान कहे गये हैं। धर्मशास्त्रकारों ने कूर्म-पुराण को उद्धृत करते हुए दश महादानों का नामोल्लेख निम्न प्रकार से किया है -

कनकाश्वतिलानागादासीरथमहीगृहाः।
कन्या च कपिला धेनु महादानानि वै दश॥

(1) सुवर्ण महादान

उपर्युक्त प्रकार से शास्त्र में कनक अर्थात् सुवर्ण अथवा स्वर्णदान को दश महादानों में प्रथम स्थान दिया गया है। महर्षि वेदव्यास ने सुवर्ण को अत्यन्त पवित्र बताते हुए कहा है -

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।
सुवर्णं पावनं शक्र पावनानां परं स्मृतम्॥[1]

पवित्राणां पवित्रं हि कनकं द्विजसत्तमाः।
अग्नीषोमात्मकं चैव जातरूपमुदाहृतम्॥[2]

हेमाद्रि ने अग्नि पुराण के आधार पर सुवर्ण की उत्पत्ति के प्रसंग में कहा है कि ''यह शम्भु का बीज एवं अग्नि की सन्तति है और पवित्र होने के कारण सभी देवों के द्वारा

मुकुट इत्यादि में धारण किया जाता है।[3] यहीं ब्रह्माण्डपुराण को आधार मानते हुए सुवर्ण की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि – ''हिमालय की पुत्री गौरी का विवाह पिनाकी शिव से किया गया। पितामह ने वैवाहिक विधि से अग्नि में हवन किया। होम करते समय देवी पार्वती के रूप को देखकर पितामह में काम विकार उत्पन्न हो गया और उनका वीर्य स्खलित हो गया । पितामह ने उस वीर्य को पैरों से रौंद डाला, उससे बालखिल्यऋषि उत्पन्न हुए । शेष वीर्य अग्नि में गिर गया, उस वीर्य से सुवर्ण उत्पन्न हुआ। अग्नि के मध्य चमकते हुए उस सुवर्ण को देवगणों ने अग्नि का पुत्र माना और उसको अपने आभूषणों एवं मुकुटों में धारण किया। इस प्रकार ब्रह्मा और अग्नि से स्वर्ण उत्पन्न हुआ।[4] महाभारत के अनुशासन पर्व के अध्याय पिच्यासी में भी सुवर्णोत्पत्ति संबंधी उपर्युक्त दोनों कथायें किंचित् अन्तर के साथ उपस्थित हैं।

पवित्र सुवर्ण के दान की महत्ता को धर्मशास्त्रीय साहित्य में बहुशः प्रतिपादित किया गया है। जमदग्नि पुत्र परशुराम ने क्रोधाविष्ट होकर इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियरहित कर दिया । इस पाप से मुक्त होने के लिये उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया, किन्तु फिर भी उनके हृदय पर भार बना रहा।ऋषियों से मार्गदर्शन प्राप्त कर स्वर्ण के दान से ही परशुराम पाप मुक्त हो सके। यथा–

रामः सुवर्णं दत्वा हि विमुक्तः सर्वकिल्विषैः।
त्रिविष्टपे महत् स्थानमवापासुलभं नरैः॥[5]

बृहस्पति ने सुवर्ण दान की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है–

सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं च वासव।
एतत् प्रयच्छमानो हि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः।
लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ताः यः कांचनं गां च महीं च दद्यात्॥

महर्षि सम्वर्त ने स्वर्ण, भूमि एवं गाय के दान को सात जन्मों तक फल देने वाला बताया है –

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम्।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम्॥[6]

महाभारत के अनुशासन पर्व में स्वर्णदान की महत्ता निम्न प्रकार से कही गई है-

सर्वान् कामान् प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छन्ति कांचनं ।
एतद्धि भगवानत्रिः पितामहसुतोऽब्रवीत्।।

पवित्रमथ चायुष्यं पितृणामक्षयं च तत्।
सुवर्णं मनुजेन्द्रेण हरिश्चन्द्रेण कीर्तितं।।[7]

मनुस्मृति व वृद्धगौतमस्मृति में स्वर्ण दान से दीर्घ आयु की प्राप्ति, विष्णु स्मृति में विष्णुसालोक्य प्राप्ति, सम्वर्तस्मृति में दीर्घायु व तेज प्राप्ति शातातप स्मृति में प्रायश्चित्त स्वरूप स्वर्ण दान से पाप मुक्ति आदि फलों का विधान है। याज्ञवल्क्यादि सभी ऋषियों ने स्वर्णदान को महत्त्व प्रदान किया है । यथा-

''दीर्घमायुर्हिरण्यदः''[8] ''सुवर्णदानेनाग्निसालोक्यम्''[9] हिरण्यदो ''महच्चायुर्लभेत्तेजश्च मानवः''[10] ''सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान्। निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात् सत्यवर्तिनाम्।।''[11] आदि उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य हैं। दानसागर में उद्धृत शिवपुराण में स्वर्णदान का महत्त्व निम्न प्रकार से निर्दिष्ट है -

सुवर्णदानं यो दद्यात् ब्राह्मणेषु विशेषतः।
रूपवान् शीलसम्पन्नो विद्याभागी भवेन्नरः।।[12]

सुवर्णमान के विषय में विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहा गया है -

सकृतकृष्णलदानेन स्वर्गे वर्ष सुखी भवेत्।
तथा च पंचवर्षाणि स्वर्गे दत्त्वैव माषकम्।।[13]

हेमाद्रि एवं वल्लालसेन द्वारा उद्धृत स्कन्दपुराण में देय स्वर्ण का मान निम्न प्रकार से निर्दिष्ट है-

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णं यः प्रयच्छति।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते।।

सुवर्णद्वितयं दत्त्वा अक्षयां गतिमाप्नुयात्।
दत्त्वा सुवर्णस्य शतं द्विजेभ्यः श्रद्धयान्वितः।।

ब्रह्मलोकमनुप्राप्य ब्रह्मणा सह मोदते।[14]

ब्राह्मणस्य विशुद्धस्य सुवर्णं यः प्रयच्छति।
सुवर्णानां शतं तेन दत्तं भवति निश्चयः॥

सुवर्णं यः प्रयच्छेत्तु दरिद्राय द्विजातये।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥[15]

दान सागर में उद्धृत यम के अनुसार "रुक्म स्वर्ण दान करने वाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है।"[16] कूर्मपुराण के अनुसार सुवर्ण दान में सुवर्ण का मान यथा सम्भव अपनी शक्ति के अनुसार होना चाहिये-

पलैकं द्विगुणं वापि त्रिगुणं शक्त्यनुक्रमात्।
कनकं स्यात् सुवर्णेन द्वाभ्यां त्रिभि सदक्षिणम्॥

पलादधो वा तत् कुर्याद्दक्षिणा स्याद्यथारुचि।
वित्ताधिक्यात्पलाधिक्यमिति न्यायनिदर्शनात्॥[17]

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत नन्दिपुराण का भी मत कूर्मपुराण के समान है -

तस्मात्स्वशक्त्या दातव्यं कांचनं मानवैर्भुवि।
नातः परतरं लोके सद्यः पापविमोचनम्॥[18]

दान नित्य व नैमित्तिक रूप से दो प्रकार का हो सकता है। महाभारत में प्रतिदिन-दिन के विभिन्न काल खण्डों में किये जाने वाले स्वर्ण दान एवं उससे प्राप्त फल के विषय में कहा गया है -

आदित्योदयसम्प्राप्तेविधिमन्त्रपुरस्कृतं।
ददाति कांचनं यो वै दुःस्वप्नं प्रतिहन्ति सः॥

ददात्युदितमात्रे यस्तस्य पापं विलीयते।
मध्याह्ने ददते रुक्मं हन्ति पापमनागतं॥

ददाति पश्चिमां सन्ध्यां यः सुवर्णं यतव्रतः।
ब्रह्मवाय्वग्निसोमानां सालोक्यमुपयाति सः॥

सेन्द्रेषु चैव लोकेषु प्रतिष्ठां विन्दते शुभाम्।
इह लोके यशः प्राप्य शान्तपाप्मा च मोदते॥

ततः सम्पाद्यतेऽन्येषु लोकेष्वप्रतिमः सदा।
अनावृत्तगतिश्चैव कामचारी भवत्यतः॥

नं च क्षरति तेभ्यश्च यशश्चैवाप्नुयान्महत्।
सुवर्णमक्षयं दत्त्वा लोकानाप्नोति पुष्कलान्॥[19]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में नित्य व नैमित्तिक सुवर्ण दान एवं उससे प्राप्त फल का विवेचन करते हुए कहा गया है -

दत्त्वा कृष्णलमात्रन्तु नरः पापात् प्रमुच्यते।
दत्त्वा तु माषकं तस्य पुण्यफलमुपाश्नुते॥

सुवर्णमाषकं दत्त्वा सूर्यस्योदयनं प्रति।
हुत्वाग्निं सर्वपापेभ्यो मोक्षमाप्नोत्यसंशयम्॥

दिनमध्यगते सूर्ये हुत्वाग्निं यः प्रयच्छति।
तस्यापि नित्यदानेन महत्फलमुदाहृतम्॥

सूर्यास्तसमये वह्निं हुत्वा तद्धि प्रयच्छति।
न लिप्यते स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

यः सुवर्णं सुवर्णस्य ब्राह्मणाय प्रयच्छति।
निर्दोषस्य स नाके तु मोदत्यब्दशतं नरः॥
आत्मतुल्यं सुवर्णन्तु यः प्रयच्छति वै द्विजाः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यथेष्टां गतिमाप्नुयात्॥

ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा स्तेनो वा गुरुतल्पगः।
सर्वपातकयुक्तोऽपि तेन दानेन मुच्यते॥

व्रतानामुत्तमं ह्येतद्दानानामपि चोत्तमम्॥[20]

दानसागर में उद्धृत आदित्यपुराण स्वर्ण दान से प्राप्त लौकिक एवं अलौकिक फल प्राप्ति का निदर्शन करता हुआ कहता है -

सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति यथाशक्त्या न संशयः।
जन्मप्रभृति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा॥

सुवर्णदानाद्दारिद्रयं न पश्यन्ति कदाचन।
मणिमुक्ताप्रवालेन वैदूर्येण स्वलंकृतः ॥

गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च स्तूयमानः समन्ततः।
गच्छते रुद्रलोकन्तु विष्णुलोकं तथैव च ॥

यद्देवमर्चयेत्तेन यस्य चैव प्रयच्छति।
तस्य लोके निवसति नित्यं चैव ददाति यः ॥[21]

उपर्युक्त प्रकार से स्वर्ण की उत्पत्ति, स्वर्णदान की महिमा एवं सामान्य प्रकार से स्वर्ण दान के पश्चात् हम धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में देखते हैं कि प्राचीन काल में नैमित्तिक रूप से स्वर्ण दान की कुछ विशेष विधियाँ भी प्रचलित थीं । इनमें हम हेमदान, शतमान दान, भद्रनिधि दान एवं आनन्दनिधि दान की गणना कर सकते हैं।

(1) हेम दान विधि :

हेमदान विधि के संबंध में हेमाद्रि द्वारा उद्धृत वायु पुराण में कहा गया है कि आढक परिमाण तण्डुलों से भरे पात्र के ऊपर अर्द्धाढक तिल से भरे दूसरे पात्र को रखकर उसके ऊपर $\frac{1}{4}$ आढक परिमाण घृत से भरे तृतीय पात्र को रखना चाहिये। गाय के गोबर से लिपी भूमि पर इन तीनों पात्रों को यथा क्रम एक दूसरे के ऊपर रख कर देय (1, $\frac{1}{2}$ या $\frac{1}{4}$ निष्क) सुवर्ण को घी में डाल देना चाहिये। ब्राह्मण और उस सुवर्ण की पूजा शम्भु का स्मरण कर करनी चाहिये। अपनी छाया उस घृत में देख कर चावल, तिल, सुवर्ण, घी आदि शिव की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मण को देना चाहिये । यह दान शक्ति व श्रद्धानुसार प्रतिदिन, पूर्णिमा को, अयन काल में, सम्वत्सर में अथवा अमावस्या में देना चाहिये। दान का फल आयु और आरोग्य वृद्धि तथा शिव सायुज्य प्राप्ति बताया गया है।[22]

(2) शतमान दान विधि :

ब्रह्माण्डपुराण को उद्धृत करते हुए नीलकण्ठ ने "शतमान दान" का निरूपण करते हुए कहा है कि - शतमान दान सभी पापों का नाश करने वाला, आयु, श्री, पुण्य, आरोग्य, सन्तति, भुक्ति, मुक्ति एवं सभी मङ्गल प्रदान करने वाला है। यह दान सभी पवित्र कालों, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, जन्म-नक्षत्र इत्यादि में, पवित्र स्थलों, घरों अथवा देवालयों

में सम्पन्न करना चाहिये अथवा जहाँ साधन और सम्पत्ति हो, वहीं दान करना चाहिये । भूमि को गाय के गोबर और जल से लीप कर, बीच में सफेद चावलों से केसर व कर्णिकाओं से युक्त अष्ट दल कमल बनाना चाहिये , उस पर शतमान-मात्र हिरण्य रखकर उसमें कमलासन ब्रह्म देव की कल्पना करनी चाहिये। कल्पित ब्रह्मा की गन्धादि से पूजा कर, वेद के विद्वान् ब्राह्मण को ब्रह्मा समझते हुए अर्चना करनी चाहिये। उसको वह शतमान स्वर्ण स्वयम्भू ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिये देना चाहिये।[23]

हेमाद्रि ने बौधायन के मत को ''शतमान दान'' के विषय में उद्धृत करते हुए कहा है कि शतमान परिमाण का शुद्ध स्वर्ण लेकर आढक परिमाण तिल से भरे हुए कांस्य पात्र में रखना चाहिये। इस कांस्य पात्र का परिमाण आठ पल होगा। तिलों के ऊपर सूर्य का आह्वान कर, अक्षत एवं शुभ्र शालिधान्य रखने चाहिये। तत्पश्चात् लाल रंग की मालाओं से और षोडशोपचार से सूर्य की अर्चना करनी चाहिये। सविता देव के अष्टाक्षर मन्त्र से अथवा सविता देव के अन्य मन्त्र से भक्तिपूर्वक प्रणाम कर शुभ गन्ध और अक्षत से एवं कुटुम्ब की अनुमति लेकर अन्य विविध पदार्थों से ब्राह्मण की पूजा करनी चाहिये। उस संयमी और अपने आचार को जानने वाले, पूर्व की ओर मुख किये हुए ब्राह्मण को उत्तर की ओर मुख कर, निम्न मन्त्रों से पाप और रोग से मुक्ति के लिये संकल्प कर दान देना चाहिये-

पद्मोद्भवः पद्मकरः सप्ताश्वरथवाहनः।
शतमानेन दत्तेन तुष्टः सर्वजगद्गुरुः॥

इह जन्मनि यत्पापं अन्यजन्मनि यत् कृतम्।
तत् प्रत्ययाप्रत्ययाभ्यां तत्सर्वं क्षपयत्यसौ॥[24]

(3) भद्रनिधि दान :

हेमाद्रि ने अग्नि पुराण का उदाहरण देते हुए विष्णु को आनन्द प्रदान करने वाले ''भद्रनिधिदान'' का विवेचन किया है। वहाँ कहा गया है कि पूर्णिमा की पवित्र तिथि में, सूर्यग्रहण या चन्द्र ग्रहण में, चारों युगादि तिथियों में, दक्षिणायन अथवा उत्तरायण में, देवशयनी एकादशी अथवा देवोत्थान तिथि में अपनी शक्ति के अनुसार तांबे का स्वर्ण कोणों से युक्त कुम्भ बनवाना चाहिये। उस कुम्भ में सौ, पचास, पच्चीस अथवा तीन पल तक स्वर्ण रखना चाहिये। इसी प्रकार एक पात्र रजत का बनवाना चाहिये, वह पात्र

वज्र, नीलमणि, पद्मरागमणि, मुक्ता, वैदूर्य व मूंगे से युक्त होगा एवं ताम्रपात्र पर अधोमुख रखा जायेगा। इस भद्रनिधि दान को ओढने योग्य आसन पर रखकर, कुश, दर्पण, चँवर, पादुका, उपानह, छत्र, उत्तम रेशमी वस्त्र के जोड़े इत्यादि के साथ रखकर, सर्वप्रथम विष्णु को पंचामृत से स्नान करवा कर शिव की पूजा कर, अग्नि में आहुति देकर, श्रीखण्ड, कर्पूर व कुङ्कुम से लक्ष्मी का पंचाक्षर नाम तथा ॐ नमः पात्र पर लिख कर उस रजत पात्र की भी इसी प्रकार पूजा करनी चाहिये। पूजा के समय निम्न मन्त्रों का पाठ करना चाहिये-

त्वया समस्तामरसिद्धयश्च विद्याधरेन्द्रोरगकिंनरेन्द्रैः।
गन्धर्वविद्याधरदानवेन्द्रैर्युतं वृतं विश्वमिदं नमस्ते॥

समस्तसंसारकरी त्वमेव विभोः सदानन्दमयी च माया।
समस्तकल्याणनिधिः समाधिः हरिप्रिये भद्रनिधिर्नमस्ते॥

इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा कर, ब्राह्मण को किरीट, अङ्गद, निष्काग्र, कुण्डल, अंगुलीयक, पीताम्बर इत्यादि से विष्णु के समान अलङ्कृत कर निम्न मन्त्र से भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये-

भूदेवोसीत्यतो नित्यं नित्यानन्दमयो हरे।
हर मे दुष्कृतं कृष्ण कृपाकर नमोऽस्तु ते॥

भूदेव भगवद्धर्म भवभङ्गकरेश्वर।
भवभूतिकरो जिष्णो प्रभविष्णुर्नमोऽस्तु ते॥

इस प्रकार पूजा कर, हृदय में ध्यान कर, उस विष्णु रूपी ब्राह्मण को वह भद्रनिधि दान देना चाहिये। दान देते समय अपने नाम व गोत्र का उच्चारण कर जौ, कुश और तिल के साथ जल छोड़ना चाहिये। हृदय में ध्यान निम्न प्रकार से करना चाहिये- पितरों को तारने के लिये, नित्य आनन्द की वृद्धि के लिये, सभी पाप समूह के नाश के लिये मेरे द्वारा यह विष्णुदान किया गया है। इस रत्न युक्त, तीन धातु युक्त, रेशमी वस्त्र, दर्पण, पादुका आसन, छत्र, चँवर व जूतों से युक्त सदा आनन्द विधान के द्वारा विष्णु प्रसन्न हों। इस दान में स्वर्ण की संख्या गुप्त होनी चाहिये।[25]

(4) आनन्दनिधि दान :

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत अग्निपुराणांश में गरुड़, श्री विष्णु से प्रश्न करते हैं कि मनुष्य

सदा उत्सववान, विजयी, सुखी, सम्पत्तियुक्त, अजर, अमर एवं निरोगी कैसे रह सकता है ? इसके उत्तर में श्री विष्णु ने दान कर्म की महत्ता स्थापित करते हुए आनन्दनिधि दान के विषय में बताया है। तदनुसार कार्तिक के अन्त में, माघ या वसन्त मास में अयन अथवा विषुव काल में, मन्वादि या युगादि में, चन्द्र ग्रहण में ताम्बे का घड़ा बनवाना चाहिये। उसका ढक्कन चाँदी का व मध्य में स्वर्ण का बना होना चाहिये। वह घट शक्त्यनुसार अनेक प्रकार की स्वर्ण, रजत व ताम्र मुद्राओं से भरा होना चाहिये। वस्त्र से आवृत्त उस घट को अनेक प्रकार के धान्यों के ऊपरं स्थापित करना चाहिये। कल्पोक्त पदों से उसकी अर्चना कर पौराणिक ब्राह्मण द्वारा अथवा उसकी आज्ञा से स्वयं अग्नि में विष्णु या शिव के लिये होम कर निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करना चाहिये-

ॐ नमः सर्वदानन्द सर्वसम्पत्तिवर्द्धन।
वर्द्धयास्मान् समृद्धयेह आयुषा यशसाश्रिया॥
नमस्तेऽनन्तसन्तान सदानन्द सदोदय।
सदोदितं कुरुष्वेह सन्तत्या मां धनायुषा॥

तदुपरान्त सभी देवों, समुद्र, सूर्य, चन्द्र, पद्म, स्वस्तिक, शङ्ख, नन्दी इत्यादि को नमन कर आनन्दनिधि दान की सरसों, दूर्वा, कुश, अक्षत, चन्दन, खील इत्यादि से पूजा कर भूमि पर जल छोडें एवं समान रूप से विभाजित कर ब्राह्मणों को दान दें, किसी का भी निरादर न करें।[26]

हेमाद्रि ने स्वर्ण दान में दान मन्त्र निम्नलिखित रूप से निर्देश किया है -

हिरण्यगर्भगर्भस्य हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥[27]

उपर्युक्त प्रकार से धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में सुवर्ण महादान के विभिन्न प्रकार बताये गये हैं। मनुष्य सामर्थ्य व श्रद्धानुसार इन दानों का सम्पादन कर सकता है।

(5) रजत-दान :

सुवर्णदान के साथ ही रजत दान का भी प्रतिपादन किया गया है। बृहत्पराशरस्मृति में रजत दान के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है -

यो रूप्यमुत्तमं दद्यादर्थिने ब्राह्मणाय च।
सोऽतीव धनसंयुक्तो रूपयुक्तश्च जायते ॥[28]

हेमाद्रि ने मत्स्यपुराण के आधार पर रजत को शिव के नेत्र से उत्पन्न माना है, अतः वह पितरों को प्रिय है। पितृ-कार्यों में रजत दक्षिणा ही उचित मानी गई है-

पितृणां राजतं पात्रं अथवा रजतान्वितं।
शिवनेत्रोद्भवं यस्मात्तस्मात्तत्पितृवल्लभं ॥

अमङ्गलं च यज्ञेषु देवकार्ये च वर्जिते।
रजतं दक्षिणामाहुः पितृकार्येषु सर्वदा ॥[29]

तथैव स्कन्दपुराण के आधार पर रजतदान की महिमा निम्न प्रकार से कही गई है-

यः प्रयच्छति विप्राय रजतं वापि निर्मलम्।
स विधूयाशु पापानि स्वर्गलोके महीयते ॥

रूपवान् सुभगः श्रीमानिह लोके च जायते।[30]

ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता में रजत दान का संकल्प निम्न प्रकार से वर्णित है-

शिवनेत्रसमुत्पन्नं रौप्यं पितृगणप्रियम्।
तस्माद्रौप्यप्रदानेन प्रीयतां रुक्मिणीपतिः ॥

(2) अश्वमहादान

महामहोपाध्याय श्री पी. वी. काणे के अनुसार "ऋग्वेद में तीन स्थानों पर आया है-...............जो अश्व दान करता है, वह सूर्य लोक में निवास करता है। .... क्रमशः अश्व के दान की महत्ता में अन्तर पड़ता चला गया । .... तैत्तिरीय संहिता (2/3/12/1) का कहना है - "जो अश्व दान लेता है, उसे वरुण पकड़ता है, अर्थात् वह जलोदर या शोथ से ग्रस्त हो जाता है ।"[31]

इस प्रकार सम्भवतः एक समय अश्व दान लेना ठीक नहीं समझा जाता था, किन्तु स्मृतियों एवं अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में अश्व दान की महत्ता बहुशः बताई गई है। मनुस्मृति में अश्व दान का महत्त्व बताते हुए कहा गया है-

अश्विसालोक्यमश्वदः[32]

बृहत्पराशरस्मृति में भी यही तथ्य प्रकारान्तर से प्रकट किया गया है-

एकं वापि हयं दत्त्वा सर्वालङ्कारभूषितम्।
सुलक्षणं युवानं च सोऽश्विसालोक्यमवाप्नुयात्।।[33]

याज्ञवल्क्य ने भी अश्व दान में स्वर्ग प्राप्ति की बात कही है।[34] विष्णुधर्मोत्तरपुराण में अश्व दान से सूर्य लोक प्राप्ति कही गई है और शुक्ल अश्व के दान को दस गुना फल देने वाला कहा गया है -

दानानामुत्तमं दानं प्रदानं तुरगस्य तु।
बडवायाः प्रदानं च तथा बहुफलं स्मृतम्।।

तुरगं ये प्रयच्छन्ति सूर्यलोकं व्रजन्ति ते।
यावन्ति तस्य रोमाणि तावद्वर्षशतानि च।।

शुक्लं तुरङ्गमं दत्वा फलं दशगुणं भवेत्।
गौर्यथा कपिला श्रेष्ठा तथैव तुरगः स तु।।[35]

भगवन्तभास्कर में उद्धृत स्कन्द पुराण में अश्व दान से गन्धर्व लोक की प्राप्ति एवं महाभारत में स्वर्ग लोक की प्राप्ति कही गई है।[36] चतुर्वर्गचिन्तामणि में उद्धृत कालिकापुराण में अश्व रथ व पादुका दान की महत्ता निम्न प्रकार से गाई गई है-

अश्वं यदि वा युग्यं शोभने वाऽथ पादुके।
ददाति यः प्रधानं वै ब्राह्मणेभ्यः सुसंयतः।।
तस्य दिव्यानि यानानि रथध्वजपताकिनः।
दुष्टः पन्था न चैवेह भविष्यति कदाचन।।[37]

भगवन्तभास्कर में उद्धृत कूर्म पुराण के अनुसार अश्व के स्थान पर उसका मूल्य कनीय, मध्यम या उत्तम भेद से दिया जा सकता है। अश्व दान भी दक्षिणा युक्त होना चाहिये-

अश्वं तन्मूल्यमथवा कनीयोमध्यमोत्तमम्।
दद्याद्वित्तानुसारेण सतारागणपरिच्छदम्।।

शफैः पंचपलैः रोप्यैः सुवर्णालङ्कृतं क्रमात्।
सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणायाग्निहोत्रिणे ॥[38]

मत्स्यपुराण में अश्व-दान का मन्त्र निम्नलिखित है-

उच्चैः श्रवास्त्वमश्वानां राज्ञां विजयकारकः।
सूर्यवाहं नमस्तुभ्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥[39]

श्वेताश्वदान :

चतुर्वर्गचिन्तामणि में उद्धृत गरुड़पुराण के अनुसार कलियुग में अश्वमेध यज्ञ करने में असमर्थ राजा श्वेताश्वदान करे। यहाँ श्वेताश्वदान की विधि का विस्तार से वर्णन किया गया है । यथा-

अश्वमेधमखं यस्तु कलौ कर्तुमनीश्वरः
अश्वदानन्तु तेनेह कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥

विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
श्वेतमश्वं शुभं स्नातं हेमपर्याणभूषितम् ॥

रौप्यैस्तु कटकैः शुद्धैः करिदन्तोपशोभितं।
वज्रनेत्रं खुरैस्ताम्रैः क्षौमपुच्छं सवाससम् ॥

शुभ्रेण पटकेनैव संवृतं स्वायुधान्वितं।
धान्यरत्नोपरिस्थन्तु बद्धकक्षं सुपट्टकं ॥

एवं सुतेजसं चाश्वं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
सुरूपाय सुवृत्ताय विदुषे च सुबुद्धये ॥

दातव्यो मन्त्रमुख्याय दातव्यो भास्कराय च।[40]

देय अश्व की पूजा निम्न मन्त्र से करनी चाहिये-

मार्तण्डाय सुवेगाय काश्यपाय त्रिमूर्तये।
जगद्बीजाय सूर्याय त्रिदेवाय नमोऽस्तु ते ॥[41]

उपर्युक्त प्रकार से मन्त्र का उच्चारण कर, अश्व के कान पर तिलोदक प्रदान कर, अश्व के आगे 77 कदम चल कर, सूर्य का मन में ध्यान कर, सूर्य दर्शन कर दाता

अपने घर जाये। इस दान से दान-दाता सूर्य लोक में जाता है। उसके तीस पहले की, तीस पश्चात् की व तीस परावर पीढ़ियों के पितृगण नरक से उद्धार प्राप्त करते हैं।

महर्षि पराशर ने अश्व दान व प्रतिग्रह की विधि का वर्णन निम्न प्रकार से किया है-

गृह्णीत योऽश्वं विधिवद्द्विजेन्द्रः,
कुर्यादसौ पंचदिनानि पूर्वम्।

पंचोपचारैरुत विष्णुपूजां,
कूष्माण्डमन्त्रैर्धृत-दुग्ध-होमम्॥

यद्ग्राम इत्यादि मरुत्वतीयं,
सोङ्कारभूरादिभिरन्वितं च।

प्रत्येकमष्टौ जुहुयाद्द्विजाग्र्यः,
सौर्येण मन्त्रेण च तद्वदष्टौ॥

षष्ठ्या प्रयुक्तं त्रिशतं जुहोति,
कुर्याच्च गायत्रिजपं सहस्रम्।

पश्चात्स ग्रह्णन् तुरंगं द्विजाग्र्य-
स्तथा स्वमात्मानमजं नयेत्॥

दाताऽपि च तद् व्रतमाविदध्याद्,
द्विजाग्र्यवत्प्राक्तनपापशुद्ध्यै।

द्वावप्यमू सूर्यजनं लभेते,
सर्वत्र पूज्यौ द्विजवृन्दमध्ये॥[42]

(3) तिलमहादान

महाभारत में तिल दान की महत्ता का बहुशः प्रतिपादन किया गया है। यथा-

पौष्टिका रूपदाश्चैव तथा पाप विनाशना:।
तस्मात् सर्वप्रदानेभ्यस्तिलदानं विशिष्यते॥

सर्वेषामिति दानानां तिलदानं विशिष्यते।
अक्षयं सर्वदानानां तिलदानमिहोच्यते॥

तिलाश्च सम्प्रदातव्या यथाशक्ति द्विजर्षभ।
नित्यदानात् सर्वकामांस्तिला निवर्तयन्त्युत॥ [44]

मनु ने ''तिलप्रदः प्रजामिष्टां''[45] कह कर तिल दान का महत्त्व प्रतिपादित किया है। महर्षि सम्वर्त ने तिल दान से प्रजा, पशु एवं धन लाभ होना बताया है। यथा-

नित्ये नैमित्तिके काम्ये, तिलान् दत्वा तु शक्तितः।
प्रजावान् पशुमांश्चैव धनवान् जायते नरः॥[46]

वृद्धगौतम स्मृति में तिल और गुड़ के दान का महत्त्व निम्न प्रकार से बताया गया है-

वैवस्वतं समुद्दिश्य परां भक्तिपुमागताः।
अभ्यर्च्य विधिवद्विप्रांस्तिलान् गुड़समायुतान्॥

ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यस्तेषां पुण्यफलं श्रृणु।
गोप्रदानेन यत्पुण्यं विधिवत्पाण्डुनन्दन॥

तत्पुण्यं समनुप्राप्तो यमलोके महीयते।
ततश्चापि च्युतः कालादिह राजा भविष्यति॥[47]

दानसागरकार ने यम को उद्धृत करते हुए विशेष तिथियों में तिल दान के विषय में कहा है -

तिलप्रदः प्रजामिष्टां पुरुषः खलु विन्दति।
माघे मासि विशेषेण शुक्ले विशेषतः॥[48]

दानसागरकार ने तिल-दान को प्रजापति दैवत माना है तथा तिल दान से सोत्कर्ष स्वर्ण प्राप्ति एवं अभिमत प्रजाप्राप्ति फल माना है।[49] महाभारत में भी माघ मास में तिल दान के महत्त्व को स्वीकार किया गया है-

माघमासे तिलान् यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।
सर्वसत्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति॥[50]

दान सागर में उद्धृत महाभारत के अनुसार श्वेत वस्त्र से आच्छादित कर तिलपूर्ण

पात्र का दान करना चाहिये।[51] वसिष्ठ के अनुसार नित्यप्रति तिलों का दान करने वाला स्वर्ग लोक में महत्त्व पाता है- ''नित्यदाता तिलानां यो नरः स्वर्गे महीयते ।''[52]

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत कूर्मपुराण के अनुसार तिल दान की विधि बताते हुए कहा गया है -

कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा सुवर्णं मधुसर्पिषी।
द्रोणैकं वाससा छन्नं त्रिधा तद्वत्सदक्षिणम्॥

आहिताग्नौ द्विजे दत्वा सर्वं तरति दुष्कृतम्।[53]

अर्थात् कृष्णमृगचर्म पर सुवर्ण, मधु और घी के साथ एक द्रोण अथवा दो द्रोण अथवा तीन द्रोण तिल क्रमशः एक दो या तीन सुवर्ण दक्षिणा के साथ आहिताग्नि विप्र को देने से सब पापों से तर जाता है।

उपर्युक्त प्रकार से धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में अनेक प्रकार से तिल-दान के महत्त्व को प्रकट किया गया है। यह तिल-दान का सामान्य स्वरूप है। धर्म शास्त्र में तिलराशि दान, तिल पात्र दान, महातिलपात्रदान, तिल पूर्ण कांस्य पात्रदान, तिल कुम्भ-दान, तिलकरक दान, तिलमृग दान, तिलपद्म दान आदि कुछ विशेष विधियों का भी प्रतिपादन किया गया है, जिनका विवेचन यहाँ किया जायेगा।

(1) तिल राशि दान :

दानसागर के अनुसार बत्तीस अंगुल ऊंची कृष्ण और श्वेत तिलों की राशि बनाकर, वैभव सम्पन्न होने पर दाता की आठ अंगुल ऊंची स्वर्ण प्रतिमा अन्यथा अन्य किसी तैजस् द्रव्य की प्रतिमा स्थापित कर, चार शहद, घी, दूध एवं दही से भरे घड़ों के साथ दान करनी चाहिये। इस दान का फल स्वर्ग प्राप्ति एवं अभीष्ट संतान प्राप्ति माना गया है।[54] चतुर्वर्ग चिन्तामणि के अनुसार यह प्रतिमा माधव की होनी चाहिये।[55]

(2) तिलपात्र दान :

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में तिलपात्र दान का वर्णन अनेक प्रकार से प्राप्त होता है। हेमाद्रि द्वारा उद्धृत स्कन्द पुराण में तिलपात्र दान के महत्त्व को निम्न प्रकार से बताया गया है -

तिलपात्राणि यो दद्याद्विप्रेभ्यः श्रद्धयान्वितः।
अमावस्यां समासाद्य नियतः सुसमाहितः।।

स पितृंस्तारयित्वाशु नरकान्नरपुङ्गव।
पितृलोकं समाप्नोति स चिरं सुखमश्नुते।।[56]

अत्रि संहिता में भी तिल पात्र दान के महत्त्व को प्रकट करते हुए कहा गया है -

तिलपात्रं तु यो दद्यात् सम्पूर्णं तु समाहितः।
स गच्छति ध्रुवं स्वर्गे नरो नास्त्यत्र संशयः।।[57]

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत यम के अनुसार तिलपात्रदान से त्रिविध पापों का नाश सम्भव है-

तिलपात्रं तु यो दद्यात्प्रत्यहं वाऽथ पर्वणि।
सदक्षिणं सत्वभावाद्हृदि कृत्वा जनार्दनम्।।

नाशयेत् त्रिविधं पापं धर्मस्य वचनं यथा।[58]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत ब्रह्मपुराणांश में तिलपात्र दान की विधि बताते हुए कहा गया है-

ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रैर्द्विजाय तु।
सहिरण्यं च यो दद्याच्छ्रद्धावित्तानुसारतः।।
सर्वपाप-विशुद्धात्मा लभते परमां गतिम्।[59]

(3) महातिलपात्रदान :

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत ब्रह्मपुराणांश में ''महातिलपात्रदान'' की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सोलह पल मान से निर्मित ताम्र पात्र में अपनी शक्ति के अनुसार स्वर्ण और तिल रखकर विप्र को देने से वाणी, मन और काया से होने वाले त्रिविध पापों का नाश हो जाता है।[60]

यहीं उद्धृत कूर्मपुराणांश में ''महातिलपात्र दान'' की विधि भिन्न प्रकार से बताई गई है। तदनुसार स्वर्ण सहित तिल से भरा हुआ पात्र प्रातःकाल ब्राह्मण को देने से दुःस्वप्न का नाश होता है । कनिष्ठ, उत्तम और मध्यम के भेद से यह तिल-पात्र तीन

प्रकार का होता है- दश पल से निर्मित पात्र मध्यम एवं 30 पल ताम्र से निर्मित पात्र उत्तम होता है । इनके साथ क्रमशः एक, दो व तीन सुवर्ण दक्षिणा देने से सभी पापों का क्षय होता है।[61] ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्य संहिता में एक अन्य प्रकार के तिल-पात्र दान का निरूपण निम्न प्रकार से किया गया है-

षष्टिप्रस्थं तिलानां च स्वर्णं पलचतुष्टयम्।
रौप्यं चाष्टपलं प्रोक्तं ताम्रं षष्टिशतं पलम्।
तिलं द्विगुणकं प्रोक्तं तिलपात्रं विधीयते।।
देवाशनं तिलाः प्रोक्ताः पितृणां सर्वकर्मसु।
स्वर्णरौप्यतिलान् दत्त्वा सर्वे देवाः प्रसीदन्तु।।[62]

(4) तिलपूर्ण कांस्य पात्र दान :

आदित्य पुराण को उद्धृत करते हुए नीलकण्ठ ने मातृ-ऋण को दूर करने हेतु तिल पूर्ण कांस्य-पात्र दान विधि का उल्लेख किया है। तदनुसार मातृ-ऋण से उर्ऋण होने के लिये यदि सौत्रामणि यज्ञ करने की शक्ति नहीं है, यदि व्यक्ति विशाल तालाब, बावड़ी या कुँआ आदि भी नहीं बनवा सकता है तो तिलपूर्ण कांस्य पात्र के दान से वह मातृ ऋण से मुक्त हो सकता है। तदनुसार नदी आदि में स्नान कर सर्वप्रथम पितृदेवों का तर्पण करे। तत्पश्चात् शङ्कर अथवा विष्णु की पूजा करे। पूजा करने के उपरान्त यजमान घर के मध्य भाग को गोबर से लीपे एवं उस पर कुङ्कुम और चन्दन से द्वादशार पद्म अंकित करे। अग्नि की स्थापना कर जौ और तिल से होम करे एवं कांस्य पात्र की स्थापना कर भक्ति भाव से पूजा करे। यह कांस्य पात्र शुद्ध कांसे का बना होगा एवं इसका मान 25 पल का होगा। इसमें सात प्रस्थ तिल भरकर, पात्र पर चार माष सुवर्ण स्थापित करना होगा। पात्र को उत्तम वस्त्र से ढका जायेगा। पात्र की पूजा गन्ध, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप आदि से भली प्रकार से कर अनेक भृत्यों से युक्त नियमपरायण ब्राह्मण को बुलाकर, उसके पैरों को धोकर विधिपूर्वक माता का श्राद्ध करना चाहिये। यदि माता जीवित हो तो माता को वस्त्र, मालाओं व अलङ्कारों से विभूषित करना चाहिये। आहूत ब्राह्मण को तिलपूर्ण कांस्य-पात्र प्रदान कर विष्णु अथवा शिव के मन्त्रों से एक सौ आठ आहुतियाँ दी जानी चाहिये। यह दान कार्य माघी (मघा नक्षत्र-युक्त) पूर्णिमा,

मृत्यु तिथि, सूर्य-चन्द्र ग्रहण, संक्रान्ति अथवा युगादि तिथियों में किया जाने का विधान है। दान देते समय दाता निम्न मन्त्रों का पाठ करे-

कांस्यपात्रं मया दत्तं मातुरानृण्यकांक्षया।
भगवन्वचनात्तुभ्यं यथाशक्ति तथा वद॥

दशमासांश्च उदरे जनन्या संस्थितस्य मे।
क्लेशिता बालभावेन स्तनपानद्द्विजोत्तम॥

पूयमूत्रादिमल्लेपलिप्ता या च कृता मया।
भवतो वचनादद्य मम मुक्तिर्भवेद्‌णात्॥

कांस्यपात्रं सुवर्णं च तिलान्वस्त्रादिदक्षिणाम्।
सप्तधान्यं मया दत्तमृणान्मुक्तिर्भवेन्मम॥

कांस्यपात्रप्रदानेन तत्वज्ञानं शरीरकम्।
तथा हेमप्रदानेन परमात्मानमव्ययम्॥

आच्छादनं तु ब्रह्माण्डं गृह्यमेतत्सदक्षिणम्।
विप्राऽऽच्छादनदानेन परमात्मा सुपूजितः॥

तिलसंख्याकृतं दुःखं जनन्या मम सेवितम्।
तिलपात्रदानेन कृतमुक्तो भवाम्यहम्॥

उपर्युक्त दान में यथाशक्ति स्वर्ण दक्षिणा में देना चाहिये। व्याहृति होम से ताम्बूल,वस्त्र इत्यादि देकर ब्राह्मण को भेजकर अन्य ब्राह्मणों को भी भोजन करवाना चाहिये।[63]

(5) तिलकुम्भदान :

भगवन्त भास्कर में ही वायु पुराण के आधार पर तिल कुम्भ दान का विवेचन किया गया है । इस दान में अर्द्धचन्द्राकार वारुण मण्डल पर वरुणाकर वरुण देव की तिल कुम्भ पर स्थापना कर श्वेत पुष्प, फल, गन्ध और कर्पूर से पूजा करनी चाहिये । वरुण का स्वरूप परिशिष्ट संख्या 7 में देखा जा सकता है। कुम्भ के चारों ओर षड्रस रखकर इस मन्त्र का जाप करना चाहिये-

नमो वरुणरूपाय रसाम्बुपतये नमः।
रसवारिनिमित्तानि यान्तु नाशमघानि मे।।

तिलकुम्भप्रदानेन प्रसीद परमेश्वर।

इस दान को देने से स्नान, पान और अवगाहन में जलचरों के प्रति होने वाले पापों का नाश होता है । अभक्ष्य और अपेय पदार्थों के रस एवं सभी औषध आदि यज्ञ स्वरूप हो जाते हैं और दाता अनेक कल्पों तक शिवलोक में निवास करता है।[64]

(6) तिलकरकदान :

नीलकण्ठ द्वारा उद्‌धृत वायुपुराण में तिलकरकदान का भी विवेचन किया गया है। इस दान में वह्निदैवत त्रिकोण मण्डप पर तिल से भरा हुआ करक (= करवा) रखकर वह्नि स्वरूप शिव की रक्त चन्दन, गन्ध सर्जरस आदि से पूजा कर दान देने का विधान है। तिलकरक के साथ दर्पण व चार दीपक भी दिये जाने चाहिये। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

वह्निरूपपतिः शम्भुर्वह्निरूपी तिलाश्रयः।
तेजोरूप कृतं पापं चाक्षुषं मे व्यपोहतु।।

इस प्रकार से तिलकरकदान करने से पाकहोम में काष्ठ में अग्नि से जिनकी हिंसा होती है, उससे, वन दाह आदि से जो हिंसा होती है, उससे, विरुद्ध कार्यों को करने से, विभिन्न रूपों के मिश्रण आदि से, परस्त्री, परद्रव्य व परपुत्र को देखने से, शवादि को देखने से एवं नेत्र दोष से उत्पन्न पापों का नाश होता है। इस प्रकार से जो व्यक्ति संयमपूर्वक शिव-भक्ति से दान करता है, वह तीन कल्प तक शिवलोक में निवास करता है।[65]

(7) तिलारंजक दान :

हेमाद्रि द्वारा उद्‌धृत वायुपुराण में तिलारंजक दान-विधि का वर्णन किया गया है। यह दान पृथिवी तत्व से संबंधित पापों का नाश करने वाला कहा गया है। भोजन, खुजाने, वमन, शव, मद्य आदि की गन्ध में जो स्थावर व चर तत्वों के प्रति हिंसा होती है, तत्कृत पाप इस दान से दूर होते हैं। अपने जन्म नक्षत्र में चतुर्दशी या अमावस्या में शिव की सन्निधि में पंचवर्ण रज से निर्मित चक्राकर द्वादशार कमल बनाकर उसमें रंगविहीन अव्रण तिल से पूर्ण स्वर्ण निर्मित चन्द्राकार शिव की चतुष्कोण शक्रमण्डल में स्थापना

करें। दाता उसकी गंध, नैवेद्य, दीप, फल से पूजा कर, धूप व रोली से अर्चना कर शिव योगी को प्रदान कर दे। दान देते समय निम्न मन्त्र का पाठ करें-

भूगन्धपतिरीशानः शक्ररूपी तिलाशयः।
न्यासोत्थं पृथिवीजातं स ममपापं व्यपोहतु ॥[66]

(8) तिलपीठदान :

तिलपीठ महादान से अप्रासंगिक कथाओं को कहने, परनिन्दा, झूंठी व कूट साक्षी, चुगलखोरी, वेदनिन्दा, गुरु निन्दा-श्रवण इत्यादि से उत्पन्न पापों का शमन होता है। इस दान में उत्तम काष्ठ से निर्मित भित्तिमय दो रत्नि लम्बे व इतने ही चौड़े तिलमय पीठ पर गणेश की पूजा की जाती है। पूजा में श्वेत गन्ध, धूप, कर्पूर, रेशमी वस्त्र लिये जाते हैं। वहाँ पुस्तक भी रखी जाती है । दान मन्त्र निम्न प्रकार से है-

व्योमध्वनिपतिः शुभ्रो गणनाथ तिलाश्रयः।
व्योमशब्दश्रुतिप्राप्तं पापमीश व्यपोहतु॥

इस दान से दाता के पन्द्रह कल्पों तक शिव लोक में प्रसन्नता प्राप्त करने की बात भी कही गयी है। दान में गणेश का स्वरूप निम्न प्रकार से वर्णित है-

चतुर्भुजोगजमुखो मूषकस्थश्च तुण्डिलः,
विषाणं चाक्षसूत्रं च परशुं मातुलाङ्गकं।
दधानो विघ्नराजः स्यादिति॥[67]

(9) तिलादर्शदान :

तिलादर्श दान से दाता के मानस व किये गये पाप, पर द्रोह, काम, क्रोध, लोभ से उत्पन्न पाप, अवाच्यवाचन, मदनोत्सव, अध्येय के ध्यान से उत्पन्न पापों की शांति होती है। उपर्युक्त दान में तिलपीठ दानोक्त पीठ को चार कुम्भों से परिष्कृत कर, पीठ पर स्वच्छ दर्पण रख वहाँ मनोमय, विष्णुरूपधारी शिव का न्यास कर, पीले वस्त्र का जोड़ा, दिशाओं में चक्र आदि आयुधों व पांच लोक प्रतिष्ठाओं की तुलसी से अर्चना करें। अर्चना मन्त्र निम्न प्रकार से है-

मनोमय नमस्तेऽस्तु सौम्यरूप वृषध्वज।
मनस्कृत्यानि पापानि सर्वाण्याशु विनाशय॥[68]

(10) अहङ्कार दान :

इस दान को करने से अभिमान अथवा अहङ्कार से उत्पन्न सभी दोष एवं गृह, क्षेत्र आदि अनात्म पदार्थों में आत्म बुद्धि से उत्पन्न सभी दोषों का शमन होता है। अहङ्कार दान में तिलपीठ दान के समान निर्मित पीठ के तिलों पर आठ अंगुल का शुद्ध चाँदी का मण्डल रखे। उस मण्डल पर वज्र व शक्ति धारण किये हुए, पुरुषाकृति, द्विभुज अहङ्कार की स्थापना करें। चारों ओर रजतनिर्मित, शक्तिधारी, द्विबाहु, विकृत आनन वाले, नैगमेश विशाख, कुमार एवं गुह नामक कुमारों की स्थापना करें। गेरुए रंग के वस्त्र प्रदान करें तथा कुङ्कुम, गन्ध व कनेर पुष्प से पूजा करें। पूजन मन्त्र निम्न प्रकार से है-

अहङ्कारपते देव गुहरूप दुरन्तक।
अभिमानकृताद्दोषात् सर्वस्मात्पाहि मां प्रभो ।।[69]

(11) रुद्रैकादशतिलदान :

धर्मशास्त्रकारों ने इस दान को ब्रह्म लोक की प्राप्ति करवाने वाला, आयु, आरोग्य एवं पुण्य प्रदान करने वाला, सब पापों को नष्ट करने वाला, पुत्र वृद्धि करने वाला एवं शिवप्रीतिकर माना है। इस दान में दानदाता ग्यारह ब्राह्मणों को ग्यारह रुद्र मानकर, पूर्व की ओर मुख कर, उन ब्राह्मणों की अर्चना करे। प्रत्येक के लिये अलग-अलग पात्रों में दो-दो प्रस्थ तिल रखे व एक-एक स्वर्ण मण्डल रखे। रुद्रों के एकादश नाम-मन्त्रों से अर्चना कर उदकपूर्वक दान दे।[70]

(12) तिलगर्भ दान :

तिलगर्भदान से मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है। अपमृत्यु से त्राण एवं व्याधि से मोक्ष प्राप्त करता है। जब जन्म नक्षत्र पर भयंकर ग्रह संकट हो, व्याधियाँ उठ खड़ी हों, अति उत्पात हों, तो तिलगर्भदान करना चाहिये, ऐसा धर्मशास्त्रकारों का मत है। तदनुसार गोबर से लिपी हुई भूमि पर वस्त्र बिछाकर एक आढक शालि-धान्य मध्य में रखे। शालि-धान्य के मध्य आधा आढक चावल रखकर, उस पर सुन्दर कर्णिकायुक्त अष्टदल कमल बिछाकर, उसके मध्य यथाशक्ति स्वर्ण निर्मित कमल स्थापित करें, उस स्वर्ण कमल पर प्रयत्नपूर्वक नवरत्न रखें। तदुपरान्त इस सबके बाहर चारों ओर तिल राशि स्थापित कर उन पर धीरे से वस्त्र बिछायें। इस गर्भस्वरूप दान की योनि मन्त्र (यस्यै

यज्ञियोगर्भो यस्यै योनिर्हिरण्मयी) से विधिपूर्वक आराधना कर वहाँ रोगी पुरुष को बैठाकर उसके अंगों में मृत्युंजय मन्त्र का न्यास करें। तदुपरान्त पांच ब्राह्मणों के द्वारा उस पुरुष में विरूपाक्ष, अर्द्धचन्द्र, विभूषण देव मृत्युंजय की कल्पना कर मन्त्रपूर्वक अर्चना की जाये।

पुनः वस्त्र में वह स्वर्ण कमल रखकर रोगी की मूर्द्धा पर रखे एवं उस वस्त्र को तिलों से भर दें। तदुपरान्त मृत्युंजय शिव का ध्यान करते हुए नाम मन्त्र बोलें। पुनश्च सौ बार मृत्युंजय मन्त्र का जाप कर रोगी को गर्भ स्थान से सावधानीपूर्वक उठायें । दाता वारुणी छिड़ककर व पावमानी छिड़ककर वह दान ज्ञानी विनीत एवं अक्रोधी ब्राह्मण को देवे। दान देते समय निम्न वाक्य का उच्चारण अवश्य करें- प्रीयतां भगवान् शम्भुश्चन्द्रमौलि। इस दान में यह ध्यातव्य है कि यजमान केवल तिलादि का दान करता है। अन्य सब धार्मिक विधियाँ आचार्य करता है। इस दान से अपमृत्यु और व्याधियों से मोक्ष के अतिरिक्त ग्रह दोषों का नाश होता है, ग्रह पुनः प्रसन्न होते हैं। तथा भौतिक, अन्तरिक्ष एवं दिव्य उत्पातों की शान्ति होती है।[71]

(13) तिलपद्मदान :

हेमाद्रि ने चतुर्वर्गचिन्तामणि में अनेक प्रकार की तिलपद्मदान विधियों का विवेचन किया है । इसके लिये उन्होंने अनेक ग्रन्थों का आश्रय लिया है। तिलपद्मदान की इतनी विधियों एवं तिल-दान के विविध स्वरूपों को देखकर दान-कर्म में तिल के महत्त्व को प्रत्यक्ष स्वीकार किया गया है।

महाभारत के आधार पर विवेचित प्रमुख तिलपद्मदान विधि के अनुसार माघ मास के शुक्ल पक्ष में पृथिवी पर गोबर से चतुरस्र मण्डल बनाकर, उस पर कृष्णमृगचर्म सहित नया वस्त्र बिछाकर, उस वस्त्र पर द्रोण परिमित तिल रखे जाने चाहियें। तदुपरान्त अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका पर तीन निष्क स्वर्ण की स्थापना करनी चाहिये। उस स्वर्ण के ऊपर श्रीनिवास, जगन्नाथ, भुक्तिमुक्तिप्रदाता, भक्तों के कष्ट दूर करने वाले चतुर्भुज श्री हरि का ध्यान करना चाहिये । ध्यान करते हुए श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार इन्द्र नील, महानील, मणियों, मोतियों, फलों, गन्ध, पुष्प, दीप, नैवेद्य दूध, अन्न, घृत, पक्वान्न, गीत और नृत्यादि से श्री हरि की अर्चना कर, उनको पंच सुगन्ध

युक्त ताम्बूल अर्पित करना चाहिये। इसके पश्चात् निकट ही एक प्रस्थ तैल, एक प्रस्थ घृत, एक आढक दही और षोडश धान्य-पात्र स्थापित करने चाहियें। इस प्रकार उस तिलद्रोणमय शुभ पद्म की आराधना कर एक, दो यां तीन रात्रि तक तिलाहारी रहना चाहिये अथवा उपवास करना चाहिये, इस कार्य से दान कार्य की शुद्धि मानी गई है।

तत्पश्चात् वासुदेव का स्मरण करते हुए यह दान उत्तम वैष्णव ब्राह्मण को प्रदान करना चाहिये। वह ब्राह्मण विज्ञात कुल शील का, कुटुम्बी, जितेन्द्रिय, शान्त, आत्मज्ञानी एवं राग-द्वेष विहीन होना चाहिये। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये।

हिरण्यगर्भ देवेश पद्मनाभ जनार्दन।
हिरण्याक्ष गुणाधार सर्वाधारधरेश्वर॥

धनधान्यसमृद्धं च सर्वसम्पत्समन्वितम्।
पुत्रपौत्रादिसंयुक्तम् दासीदाससमन्वितम्॥

आरोग्यं च सुमन्त्रं च सर्वदुःखविवर्जितम्।
कुरु मां परमोदार भक्तायमिति चिन्तयन्॥

इस विधि से तिल दान करने से धर्मार्थी धर्म प्राप्त करता है, धनार्थी धन प्राप्त करता है, मोक्षार्थी मोक्ष प्राप्त करता है। पितृहन्ता, गुरुशय्यागामी व अन्य पापों का कर्ता भी सब पापों से छूट जाता है। स्वयं अपना, पितृ एवं पितामहों का कल्याण होता है।[72]

एक अन्य प्रकार के तिलपद्मदान में दान के लिये देश और काल का विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं होती। यह दान सर्वत्र व सभी कालों में किया जा सकता है। इस दान के अन्तर्गत गोबर से लिपे प्रदेश पर वस्त्र बिछाकर उस पर तीन भार तिल रखें। उन तिलों के मध्य दस, पांच या ढाई निष्क स्वर्ण से निर्मित कमल रखें, कमल के मध्य भगवान महेश्वर की स्थापना करें। भगवान महेश्वर की विधिपूर्वक आराधना कर तीन-तीन निष्क स्वर्ण से वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काला, विकरणी, बाला, प्रमथनी एवं दमनी नामक शक्ति रूपों का निर्माण करवाये एवं उनकी पूजा करें। ये शक्तियां द्विभुजा, बाल-भास्कर वर्ण वाली पद्म और शङ्ख धारण करने वाली, शान्त स्वरूपा एवं लाल माला और वस्त्र से सुशोभित होंगी। इन शक्तियों के सम्मुख तीन-तीन निष्क स्वर्ण से ही अनन्त, सूक्ष्म, शिव, एकनेत्रक, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डिक नामक

विद्येशों का निर्माण करवाकर उनकी गन्ध पुष्पादि से अर्चना करनी चाहिये। हेमाद्रि के मतानुसार कमल के मध्य महेश्वर का निर्माण सहस्र या शतनिष्क स्वर्ण से करना चाहिये और पांच सौ या पचास निष्क स्वर्ण से मनोन्मनी देवी का निर्माण कर शिव के वाम भाग में स्थापित करनी चाहिये।[73] महेश का स्वरूप परिशिष्ट संख्या सात में देखा जा सकता है। विद्येश अष्ट भुज, एक या पंचवक्त्र, त्रिनेत्र, जटा व चन्द्रधारी होंगे। इनकी स्थापना का क्रम निम्न प्रकार से होगा- पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः अनन्त (रक्त वर्ण)ए सूक्ष्म (नील वर्ण), शिव (श्वेत वर्ण), एकनेत्रक (अरुण वर्ण) एवं कोणों में क्रमशः एक रुद्र (श्वेत वर्ण), त्रिमूर्ति (चर्मधारी), श्रीकण्ठ (नील वर्ण) और शिखण्डिक (लोहित वर्ण) होंगे। इनकी दक्षिण भुजाओं में शक्ति वज्र, अक्षमाला, असि व चक्र होंगे एवं वाम भुजाओं में पाश, अङ्कुश घण्टा व शूल होंगे। ये सभी गजचर्मधर, अश्वस्थ एवं नागयज्ञोपवीतधारी होंगे।

तृतीय प्रकार के तिलपद्मदान में वायुपुराण को उद्धृत करते हुए हेमाद्रि ने लिखा है कि पवित्र देश व काल में नवीन व सुन्दर वस्त्र पर द्रोण परिमाण तिल से अष्टदलकमल बनाकर, उसकी कर्णिका पर एक पल सुवर्ण से निर्मित कमल स्थापित करें। इस स्वर्ण कमल पर आधा या चौथाई पल स्वर्ण से निर्मित शिव की प्रतिमा स्थापित करें। इस शिव प्रतिमा की श्वेत कमलों अथवा शतदल कमलों से अर्चना करें। भगवान को घी से भीगे धूप व गुग्गुल प्रदान करें। इस प्रकार भगवान शङ्कर की व उसी प्रकार से ब्राह्मण की भी मूल मन्त्र से अर्चना कर दान प्रदान करें । दान देते समय निम्नलिखत मन्त्र का पाठ करें-

यथासौ भगवान्देवः सर्वभूतान्तरस्थितः।
तेन सत्येन मे पापं विलयं यातु सर्वतः।।

इस दान को करने से मन, वचन और कर्म से जो भी पाप किये गये हैं, उनका क्षय होता है।[74]

चतुर्वर्गचिन्तामणि में उपर्युक्त तिलपद्मदान स्वरूपों के अतिरिक्त विभिन्न रोगों को दूर करने वाले तिलपद्मदानों पर भी विचार किया गया है । हेमाद्रि ने इस वर्ग के दानों के अन्तर्गत सर्वप्रथम मूत्रकृच्छ्र रोगहर तिलपद्मदान विधि का वर्णन, बोधायन को उद्धृत करते हुए किया है। इस दान विधि के अन्तर्गत दाता अपनी शक्ति व सामर्थ्य के

अनुसार पल या अर्द्ध पल सुवर्ण का अष्टदलकमल बनवाकर उसको कुंकुम युक्त करे। इस कमल को द्रोण भर या उससे अधिक तिलों पर रखे, जल से भरे ताम्र-पात्र में रखे एवं दरिद्र, वेदज्ञ, अग्निहोत्री ब्राह्मण को दान कर दे। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करे-

खगः पूषा पतङ्गोऽसौ द्वादशात्मा त्रयीतनुः।
पद्मेनानेन दत्तेन प्रीतस्त्तरणिरस्तु मे॥

दान के नामानुसार दाता उपर्युक्त विधि से मूत्रकृच्छ्ररोग से त्राण पाता है।[75]

क्षयरोगहरतिलपद्मदान विधि के अन्तर्गत क्षय रोग से ग्रस्त होने पर दाता एक पल या आधा पल रजत से पद्म बनाकर उस पद्म को एक आढक तिल के ऊपर रखे कांस्यमय जल-पात्र में रखे एवं निम्न मन्त्र बोलते हुए ब्राह्मण को दान दे -

पद्मेन राजतेनेह प्रदानादत्रिनेत्रज।
जातं कर्मविपाकेन क्षयं नाशय मेऽनघ॥

इस विधि से दाता क्षयरोग से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है, ऐसा धर्मशास्त्रकार का मत है।[76]

रक्तशूलघ्नतिलपद्मदान विधि के अन्तर्गत एक आधा या चौथाई सुवर्ण मान से अष्ट दल कमल बनवाकर, मध्य में कर्णिका व नाल, रजत की बनवाकर, इस पद्म को एक द्रोण तिल पर रखें। तिल व पद्म को श्वेत वस्त्र से ढक कर,उत्तम ब्राह्मण को रविवार के दिन बुलाकर, ब्राह्मण की वस्त्रपूर्वक पूजाकर, पद्म से ग्रहनायक सूर्यदेव का आह्वान करें। इस दान में घी व तिल से एक सौ आठ होम करें। सूर्य की पूजा रक्त चन्दन, रक्त पुष्प, कुङ्कुम व अगर से करें। नैवेद्य में खीर प्रदान करें। खीर न हो तो दूध ही अर्पण करें। विनयपूर्वक ब्राह्मण की प्रदक्षिणा कर गुड़मिश्रित खीर भोजन के लिये दें। स्त्री स्वयं स्नान कर पति को देववत् मानकर,पुण्याहवाचन से भक्तिपूर्वक घृतपायस का भोजन करे। इससे रक्तशूल पीड़ित स्त्री का रोग दूर होता है। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये।

भगवन् सूय्र्य भूतेश द्युमणे लोकनायक।
रक्तवर्णः प्रतापेन्द्र रक्तस्त्रैलोक्यपावनः॥

सत्पात्राय मया दत्तं मम जन्मनि चैव हि।
औषधादि तु तत्सर्वं नाशमायातु दानतः॥

सूर्य के आह्वान का मन्त्र निम्नलिखित है-

एह्येहि भगवन् देव पद्मेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।
त्रयीतनो द्वादशात्मन् सर्वप्राणिहिताय च॥[77]

दद्रुरोगनाशहर तिलपद्मदान के विषय में कहा गया है कि जो मनुष्य गायों को रोधन व बन्धन से पीड़ित करता है, वह दाद रोग से पीड़ित व खुजली युक्त हो जाता है। इस रोग से मुक्ति पाने के लिये एक व्यावहारिक निष्क से पद्म बनवाकर उसकी नाल रजत से व आधे निष्क से कण्ठ बनवाना चाहिये। मध्य में रत्न व रत्न न होने पर मोती लगाना चाहिये। इस पद्म को धोकर श्रीगन्ध व कुङ्कुम का लेप करना चाहिये। तत्पश्चात् वस्त्र युक्त पद्म की तीन द्रोण, दो द्रोण अथवा सामर्थ्यानुसार चावलों या तिलों पर स्थापित कर षोडशोपचार विधि से मूलमन्त्रपूर्वक अर्चना करनी चाहिये। निम्नलिखित मन्त्र बोलते हुए सूर्य का सूर्यमण्डल से पद्म में आह्वान करना चाहिये-

देव देव जगन्नाथ द्युमणे लोकपावन।
लोकानां चक्षुः सूर्य त्वं पद्मेऽस्मिन् सन्निधिंकुरु॥

इस दान में सर्वशास्त्रवित् आचार्य आग्नेय दिशा में ''सूर्यन्ते चक्षुः'' मन्त्र से अट्ठाईस या एक सौ आठ समिधा होम, ''हंसः शुचि सत्'' मन्त्र से अट्ठाईस या एक सौ आठ आज्य होम एवं व्याहृतिपूर्वक तिलों से अयुत होम करे। आहुतिसम्पात पात्र में करे। उस जल से दद्रु रोग ग्रस्त के अंगों पर मालिश करें। इस दान में नैवेद्य पायस हो। तत्पश्चात् रोगी निम्नलिखित मन्त्र से उस पद्म को ब्राह्मण को दान दे-

जगतां परमानन्दकारक द्युमणे प्रभो।
प्रभाकर सुसप्ताश्व देवेशारुणसारथे॥

रोधनैर्बन्धनैश्चैवं वैरूप्यं यच्छरीरके।
पूर्वकर्म्मविपाकेन दद्रुकल्कादिकश्मलं॥

पद्मदानेन तुष्टस्त्वं नाशयाशु शरीरके।

दान के अन्तर ब्राह्मणों को भी पायस प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार तिलपद्मदान करने से, दाद, खुजली, कुष्ठ आदि चर्म रोगों से मुक्त होकर मनुष्य रूपवान व धन-धान्य युक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है।[78]

मूकत्वहरतिलपद्मदान के अन्तर्गत एक आधे या चौथाई पल स्वर्ण से शक्ति अनुसार स्वर्ण पद्म का निर्माण करवाना चाहिये। इस पद्म को लाल वस्त्र में लपेटकर आठ पल ताम्र से निर्मित पात्र में रखना चाहिये। इस पात्र और पद्म को एक आढक तिल पर रखकर पीले वस्त्र से ढकना चाहिये। इसकी रक्त चन्दन से पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् सर्वशास्त्र ज्ञाता, धर्मज्ञ, विनीत दयालु, सत्यवादी एवं पवित्र आचार्य निम्नलिखित मन्त्रपूर्वक षोडशोपचार विधि से इस दान-वस्तु की पूजा करे-

ब्रह्मणः सदनं त्वं हि विष्णोरभिजनाभिजः।
अभिप्रीतिकरं भानोरग्नेः रुद्रस्य चैव हि॥

गृहाण पूजामेतां त्वं सर्वक्लेशविनाशक।

इस समय आचार्य का मुख पूर्व दिशा की ओर हो । तत्पश्चात् आग्नेय दिशा में समिधा, घी व तिलों से होम करे । सावित्री के अष्टाक्षरों से सब रोगों की शान्ति हेतु समिधा होम करें। चित्रम्.....(1.115.1) ऋचा से आज्य होम करें एवं आयातु इन्द्र....(4.21.3) अथवा व्याहृतियों से तिल होम करें। अग्नि के उत्तर भाग में कलशस्थापना करनी चाहिये। पूर्वोक्त विधान से अभिषेकादि कार्य करने चाहिये । तदुपरान्त स्नान एवं पवित्र श्वेत वस्त्रों से भूषित होकर, रोगी, ब्रह्मा का स्मरण करते हुए निम्न मन्त्र बोलकर वह पद्म आचार्य को प्रदान करे-

देवानामथ सर्वेषां पद्म त्वं प्रीतिकारणं।
विशेषतो ब्रह्मणश्च सरस्वत्या हरेरपि॥

यत् प्राग्वाचान्निरोधेन वैरूप्यं मम देहजं।
अघभेदभवन्तीव्रन्दुःखरोगाकरन्तथा॥

तत्सर्वं नाशयन्त्वत्र ब्रह्मसूर्यशिवाग्नयः।
त्रिदशादयो ये च देवा हविष्मन्तस्तथा भुवि॥

उपर्युक्त विधि से दान करने से मूकत्व दोष का प्रतीकार होने की बात कही गयी है।[79]

अन्त में हेमाद्रि ने त्रिपद्मदानविधि का वर्णन ब्रह्माण्डपुराण को उद्धृत करते हुए किया है। यह दान व्याधिग्रस्त होने पर, दुःस्वप्न व अद्भुत दर्शन पर करना चाहिये। यह दान आयुष्यकर, श्रीकर, आरोग्यकर, पुण्यकर व पापनाशक है। माघ मास में या अपने जन्म नक्षत्र में त्रिपद्मदान करना चाहिये। तदनुसार गोबर से लिपी हुई भूमि पर आढक परिमाण तिलों से केसर व कर्णिकायुक्त अष्टदल कमल बनाकर, उस पर स्वर्णनिर्मित कमल रखकर, वस्त्र से ढककर, गन्धादि से परमेष्ठी ब्रह्मा की अर्चना करनी चाहिये। तत्पश्चात् धर्मशास्त्रज्ञ शान्तमना, वैतानिक ब्राह्मण की अर्चना कर उपर्युक्त दान प्रदान करना चाहिये एवं निम्न मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

सम्प्रीयतां मे भगवन् आत्मभूश्चतुराननः।
दानेनानेन सर्वात्मा जगत्स्रष्टा जगत्पतिः॥

इसी प्रकार से विष्णु को चावल का व शङ्कर को लवण का पद्म प्रदान करना चाहिये। इनमें स्वर्ण की ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रतिमाओं का भी निर्माण करवाना चाहिये। इन पद्मों का पृथक्-पृथक् दान करना चाहिये। विष्णु और शङ्कर के निमित्तदान करते समय क्रमशः निम्न मन्त्रों का पाठ करना चाहिये-

सम्प्रीयतां मे भगवान् परमात्मा जगन्मयः।
दानेनानेन विश्वात्मा परमः पुरुषोत्तमः॥

सम्प्रीयतां मे भगवान् शङ्करः शङ्करोतु मे।
दानेनानेन विश्वात्मा चन्द्रार्द्धकृतशेखरः॥

यहाँ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का स्वरूप धान्यपर्वतदान में निर्दिष्ट स्वरूपानुसार होगा।[80]

तिलमहादान के उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि धर्मशास्त्रानुसार तिलदान का अत्यधिक महत्त्व है। अतः चतुर्वर्गचिन्तामणि में उद्धृत आदित्य पुराण तिल दान के लाभों का विस्तृत वर्णन करते हुए अन्त में सार रूप में कहता है-

सर्वेषामेव दानानां तिलदानं परं स्मृतम्।
अक्षयं सर्वदानानां तिलदानमिहोच्यते॥[81]

(4) गज (नाग) दान

धर्मशास्त्रकारों ने दशमहादानों के अन्तर्गत चतुर्थ महादान में गजदान की गणना की है। कूर्मपुराण को उद्धृत कर भगवन्तभास्कर, मदनरत्नप्रदीप, चतुर्वर्गचिन्तामणि आदि ग्रन्थों में कहा गया है कि गज-दान तीन प्रकार का होता है- उत्तम, मध्यम व अधम। उत्तम गजदान में दक्षिणा सहित स्वरूपतः गज का दान किया जाता है। मध्यम गज दान में पांच सौ स्वर्ण माष व अधम गज दान में दो सौ स्वर्ण माष हस्ति मूल्य रूप में दान किये जाते हैं। साथ ही चांदी की स्थूणा एवं मोतियों के जाल से बना हाथी का अलंकार विशेष भी दान में दिया जाता है । स्थूणा से तात्पर्य किसी ग्रन्थ में रज्जु एवं किसी ग्रन्थ में हाथी को बाँधने के स्तम्भ से है। नीलकण्ठ के अनुसार यदि मनुष्य यथाशक्ति भी गज दान करता है तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है एवं कर्म-क्षय के कारण जन्मान्तर में राजा बनता है। वहाँ उल्लिखित दान वाक्य के अनुसार कक्षा, रज्जु, आसन (हौदा) सहित, स्वर्ण मालाओं से सुशोभित, चँवर, गन्ध एवं पुष्पों से अलंकृत प्रजापति दैवत गज का दान सूंड पकड़कर करना चाहिये। दक्षिणा में स्वर्ण देना चाहिये।[82]

लिंग पुराण के अनुसार अन्य गज दान विधि के अन्तर्गत सहस्त्र, पांच सौ अथवा दो सौ पचास निष्क स्वर्ण का अथवा रजत का सर्वलक्षणसम्पन्न हाथी बनवाकर अष्टमी तिथि में परमेष्ठी शिव को, दरिद्र ब्राह्मण को या आहिताग्नि श्रोत्रिय को शिव की पूजा कर दान देने से स्वर्ग सुख भोग कर राज्य प्राप्ति होती है।[83]

हेमाद्रि ने बौधायन को उद्धृत करते हुए मुखरोगनाशक गज दान विधि का वर्णन किया है। तदनुसार गुरु का वाग्विरोध करने पर मनुष्य मुख रोगी हो जाता है। उसके प्रतिकार के लिये विहित गजदान में पल या आधे पल स्वर्ण, रजत या ताम्र का हाथी बनवाकर, उसके दोनों दाँत रजत से, पूँछ मोतियों से एवं आँखें रत्नों से बनाकर, आठ द्रोण धान्य पर इस हाथी को रखकर, पीले वस्त्र से ढककर, गन्ध, पुष्प एवं अक्षतादि से इस गज की पूजा करनी चाहिये । वस्त्र, अलंकार एवं आभूषण प्रदान करते हुए उत्तम ब्राह्मण को बुलाकर अग्निनाग्नि.... (1.12.6) मन्त्र से समिधा, घी व तिल का होम करवाना चाहिये । इस होम में इध्म अश्वत्थ का होगा। तदुपरान्त प्रणाम कर गजार्चन करना चाहिये। गजार्चन के उपरान्त आचमन, पवित्रीकरण एवं मोक्षण के पश्चात् दाता

श्वेत वस्त्र, श्वेत माला एवं श्वेत अनुलेपन धारण कर निम्न मन्त्र से दक्षिणा सहित दान प्रदान करे-

सुप्रतीक गजेन्द्र त्वं सरस्वत्याभिषेचनं॥
इन्द्रस्य वाहनं शश्वत्सर्वदेवैश्च पूजितं।
दानेनानेन दत्तेन मुखरोगं विनाशय॥

दान के पश्चात् दाता, ब्राह्मणों को भोजन करवाये एवं बन्धु-बान्धवों के साथ स्वयं भी भोजन करे।[84]

हेमाद्रि ने वृद्धगौतम को उद्धृत करते हुए व्रणघ्न गजदान विधि का भी वर्णन किया है। इस दान-विधि के अन्तर्गत एक पल या आधा पल स्वर्ण का वाहन स्वरूप चतुर्दन्त गज बनवाना चाहिये। इस गज के दांत स्वर्ण के व अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त होने चाहियें। यह गज समस्त आभूषणों से युक्त होना चाहिये। दाता इस गज की गन्ध, पुष्प इत्यादि से षोडशोपचारपूर्वक पूजा करे। तदुपरान्त उत्तम ब्राह्मण को बुलाकर, वस्त्रादि से उसका सत्कार करे। पौराणिक व वैदिक मन्त्रों से उस से होम करवाये। दिग्गजों इत्यादि के लिये भी समिधा, घी व तिल से आहुति दे। सूर्य की प्रसन्नता के लिये उक्त दान निम्न मन्त्र से दे-

ऐरावतश्चतुर्दन्तो गजानां नायकस्तु यः।
दिग्दन्तिनां पूज्यतमो व्रणं क्षपयतु प्रभुः॥

दान के उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन करवाकर स्वयं भोजन करे।[85]

आदित्यपुराणोक्त सूर्यगजदानविधि के अन्तर्गत जो मनुष्य पर्व-दिवस पर स्वर्ण आदि से अलंकृत हस्ति को भक्तिपूर्वक दान करता है, वह सुन्दर ऐरावत के समान अनेक हाथियों से युक्त होकर सैकड़ों यानों का स्वामी होता है, सात द्वीप व सात समुद्रों वाली पृथिवी का राजा होता है, अनेक भोगों को भोगकर प्रलय काल में सूर्य योग प्राप्त कर वहीं लीन हो जाता है।[86]

हेमाद्रि ने अपने ग्रन्थ में उपर्युक्त प्रकार से अनेक ग्रन्थों को उद्धृत करते हुए, शिव, विष्णु, समस्त देवताओं इत्यादि की प्रसन्नता एवं पुण्य प्राप्ति हेतु गज-दान देने का विधान किया है।

(5) दासीदान

नीलकण्ठ ने वह्नि पुराण को उद्धृत करते हुए दासी दान के संबंध में लिखा है कि स्थिर नक्षत्र में, सौम्य ग्रह से युक्त सौम्य ग्रह में ही अथवा पर्व में वस्त्र और आभूषण से यथा-शक्ति अलङ्कृत कर भक्तिपूर्वक निम्न मन्त्र बोलते हुए ब्राह्मण को दासी प्रदान करनी चाहिये-

इयं दासी मया तुभ्यं श्रीवत्स प्रतिपादिता।
सदा कर्मकरी भोग्या यथेष्टं भद्रमस्तु ते ॥

दक्षिणा में स्वर्ण देना चाहिये। यह दासी पाँच वर्ष की आयु से लेकर चालीस वर्ष तक की हो सकती है। दास दान में भी दासी दान के समान ही विधि अपनानी चाहिये। दान के उपरान्त सीमा पर्यन्त पीछे जाकर ब्राह्मण को विसर्जित करना चाहिये।[86] हेमाद्रि ने दान फल के अन्तर्गत कहा है कि- गृहकार्य करने वाली, तरुणी, रूपवती, बहुत अधिक द्रव्य से संयुक्त ग्राम एवं गृह से युक्त दासी को जो दाता कुलशीलवान् ब्राह्मण को दान देता है, वह स्वजनों के साथ विष्णुलोक को जाता है। कूर्मपुराण के अनुसार यह ब्राह्मण गृहयज्ञ करने वाला होना चाहिये।[88]

अन्य दासी दान के विषय में हेमाद्रि का मत है कि जो उत्तम स्त्री को अलंकृत कर शिव को प्रदान करता है, वह सौ अश्वमेध का फल प्राप्त करता है।[89]

(6) रथमहादान

धर्मशास्त्रकारों ने रथ दान के अन्तर्गत प्रसंगानुसार गन्त्री (लोक भाषा में बहली) एवं शिविका दान को भी सम्मिलित किया है। हेमाद्रि द्वारा उद्धृत कूर्मपुराण के अनुसार चार बैलों द्वारा वाहित, अठारह धान्यों से युक्त, उत्तम, मध्यम और अधम भेद से क्रमशः तीन, दो या एक सुवर्ण दक्षिणा युक्त, जुआ, जूड़ा, चाबुक, लगाम इत्यादि रथोपकरणों से युक्त रथ को दानकर, दानदाता शिवपुर को जाता है। दान मन्त्र के अनुसार यह दान विश्वकर्मदैवत है। दान मन्त्र निम्नलिखित है-

रथाय रथनाथाय नमस्ते विश्वकर्मणे।
विश्वभूताय नाथाय अरुणाय नमो नमः ॥[90]

नीलकण्ठ ने रथ दान के प्रसंग में ही दो या चार घोड़े, बैल अथवा गजों से युक्त, सचक्रा नामक यात्रा योग्य रथ विशेष जो कि झरोखों से युक्त हो एवं पत्तों के बिछौने इत्यादि से भी युक्त हो, का दान करने का विधान गरुड पुराण के आधार पर किया है। इस दान का फल स्वर्ग प्राप्ति व इस लोक में राज्य-पद प्राप्ति बताया गया है। दान मन्त्र का उल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है-

गन्त्रीमिमां प्रयच्छामि विश्वकर्माधिदैवतां।
दानेनानेन भगवान् प्रीयतां मे परः पुमान्॥[91]

महाभारत में शकट दान के महत्त्व का निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है-

प्रदानं सर्वदानानां शकटस्य विशिष्यते।
एवमाह महाभागः शाण्डिल्यो भगवान् ऋषिः॥

शकटं दम्यसंयुक्तं यो दद्यात्तु द्विजातये।
तस्य स्वर्गे विमानन्तु सर्वहेममयं शुभं॥

दिव्याङ्गनाभिराकीर्णं सर्वरत्नविभूषितं।
उपतिष्ठति विप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदं॥[92]

हेमाद्रि ने वह्नि पुराण को उद्धृत कर शिविका दान विधि का वर्णन करते हुए कहा है कि-

मार्गशीर्ष के शुभ पक्ष में, अथवा माघ, फाल्गुन, वैशाख मास अथवा शरद् ऋतु की शुक्ल द्वादशी में विष्णु की अर्चना कर, कलश के ऊपर स्थित यथाशक्ति स्वर्ण निर्मित शङ्ख, चक्र, गदा और धनुष से युक्त शिविका (पालकी) का दान करना चाहिये। यह पालकी वक्र बांस से उठाई जाने वाली सीधे काष्ठ से बनी एवं शुभ छत्र से युक्त होनी चाहिये। दान के दिन से पहले दिन पालकी को विष्णु के निकट लाकर, माला आदि से उसको विभूषित कर रात्रि जागरण करवाना चाहिये। प्रातःकाल विद्या और कुलशील सम्पन्न ब्राह्मण की अर्चना वस्त्र और कर्णाभूषण से कर, जूता, छुरी, खड्ग, पट्ट, कंचुक, वेणिका, दर्पण, पानदान, जलपात्र, कांस्य-पात्र चार वृषभ एवं सुलक्षणा गायों सहित शिविका दान करना चाहिये। शिविका वाहकों व छत्रधारी की वर्ष भर की वृत्ति व

अन्न एवं ब्राह्मण को प्रतिवर्ष अन्न दान निम्न मन्त्र से करना चाहिये-

इहामुत्रातपत्राणं कुरु केशव मे प्रभो।
छत्रन्त्वत्प्रीतये दत्तं ब्राह्मणाय मया शुभं॥

देव देव जगन्नाथ विश्वात्मन् दत्तयानया।
प्रभो शिविकया देव प्रीतो भव जनार्दन॥

इस दान को करने से सुरापायी, चोर, व्यभिचारी ब्रह्महन्ता एवं गुरु शय्या का उपभोग करने वाला भी पाप से मुक्त हो जाता है। इस दान को करने से दाता के पितृपक्ष, मातृपक्ष, स्त्रीपक्ष व बन्धुपक्ष के लोग एवं स्वयं भी नरक से उद्धार पाते हैं। दाता, पिता व पत्नी सहित विविध भोगों को भोगकर विष्णुलोक की प्राप्ति करता है।[९२]

(7) महीदान

धर्मशास्त्र के प्रायः सभी आचार्यों ने मही अथवा भूमि महादान के महत्त्व को स्वीकार किया है। भूमि ही मनुष्य को वस्त्र, अन्न, जल एवं धन-धान्य प्रदान करती है, अतः भूमि दान के महत्त्व को स्वीकार किया जाना स्वाभाविक भी है। महाभारतकार ने इस विषय में कहा है-

दोग्ध्री वासांसि रत्नानि पशून् व्रीहियवांस्तथा।
भूमिदः सर्वभूतेषु शाश्वतीरेधते समाः॥

यावद् भूमेरायुरिह तावद् भूमिद एधते।
न भूमिदानादस्तीह परं किचिद् युधिष्ठिर॥

अतिदानानि सर्वाणि पृथिवीदानमुच्यते।
अचला ह्यक्षया भूमिर्दोग्ध्री कामानिहोत्तमान्॥[९४]

भूमि मनुष्य की माता के समान है, यह सबकी माता है, अतः सभी को इसके ममत्व की प्राप्ति होनी चाहिये । अतः इसका दान करने से दाता उतरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करता है-

यथा जनित्री स्वं पुत्रं क्षीरेण भरते सदा।

अनुगृह्णाति दातारं तथा सर्वरसैर्मही ॥[95]

जो भूमि दान में दी जाये वह अपने परिश्रम से उपार्जित होनी चाहिये। भूमि दान से बढ़कर कोई दान नहीं है-

इक्षुभिः संततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम्।
गोऽश्ववाहनपूर्णां वा बाहुवीर्यादुपार्जिताम् ॥

निधिगर्भां ददद् भूमिं सर्वरत्नपरिच्छदाम्।
अक्षयांल्लभते लोकान् भूमिसत्रं हि तस्य तत् ॥[96]

अमृतप्रसवां भूमिं प्राप्नोति पुरुषो ददत्।
नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

नास्ति सत्यसमो धर्मो नास्ति दानसमो निधिः ॥[97]

दानसागर में उद्धृत महाभारत के अनुसार कभी भी दान में निम्न प्रकार की भूमि नहीं देनी चाहिये-

न चोषरां न निर्दग्धां महीं दद्यात् कथंचन।
न श्मशानमयीं दद्यान्न च पापनिषेविताम् ॥[98]

अत्रि स्मृति के अनुसार निम्न प्रकार की भूमि देने से सब कुछ दे देने का फल प्राप्त होता है-

सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति ॥
फालकृष्टां महीं दद्यात् सबीजां सस्यमालिनीम्।
यावत् सूर्यकरा लोके तावत् स्वर्गे महीयते ॥[99]

बृहत्पराशरस्मृति के अनुसार भूमि दान करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। गोचर्ममात्र, दस हलों से जोतने योग्य, एक पाद भूमि, क्रय की हुई भूमि, गृह-भूमि, आश्रम मात्र भूमि, हाथभर भूमि, यहाँ तक कि अंगुल मात्र भूमि भी दान करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है।[99] तथापि निम्न प्रकार की भूमि दान करनी चाहिये-

भूमिं सस्यवतीं दद्यात् यस्तु विप्राय मानवः।
स मूल-शूक तुल्यानि विष्णुलोके सदा वसेत् ॥[100]

मनुस्मृति व विष्णुस्मृति की मान्यता है कि भूमिदाता पुनः भूमि प्राप्त करता है । यथा- भूमिदो भूमिमाप्नोति ।[101] वृद्धगौतमस्मृति के अनुसार भूमि दान करने वाले के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं-

यथोदयस्थ सूर्यस्तु तमः सर्वं व्यपोहति।
तथा पापान्नरस्येह भूमिदानं व्यपोहति॥[102]

अग्निपुराण के अनुसार भूमिदाता सब कुछ प्राप्त कर सुखी होता है-

भूमिं दत्वा सर्वभाक्स्यात्सर्वसस्यप्ररोहिणीम्।
ग्रामं वाऽथ पुरं वापि खेटकं च ददत्सुखी॥[103]

अत्रिसंहिता के अनुसार भूमि प्रदान करने वाले का सभी देवगण अभिनन्दन करते हैं-

आदित्यो वरुणो विर्ष्णुब्रह्मा सोमो हुताशनः।
शूलपाणिस्तु भगवानभिनन्दन्ति भूमिदम्॥[104]

बृहस्पतिस्मृति के अनुसार भूमिदान करने पर पितृगण भी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं-

आस्फोटयन्ति पितरः प्रहर्षन्ति पितामहाः।
भूमिदाता कुले जातः स नस्त्राता भविष्यति॥[105]

दानसागर में उद्धृत नन्दिपुराण के अनुसार एक पुरुष का भरण-पोषण करने योग्य भूमि का दान करने से दाता दश कल्प तक स्वर्ग में निवास करता है। इसी प्रकार जितने पुरुषों के भरण-पोषण योग्य भूमि का दान किया जाता है, उतने ही दस गुणा कल्पों तक दाता स्वर्ग में निवास करता है।[106] बृहस्पति के अनुसार गोचर्ममात्र भूमि दान करने से दाता पापों का क्षय प्राप्त कर स्वर्ग लोक में निवास करता है-

अपि गोचर्ममात्रेण सम्यग्दत्तेन मानवः।
धौतपापो विशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते॥

दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्तनम्।
दश तान्येव गोचर्म ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः॥

यत्किचिंत् कुरुते पापं पुरुषो लोभमोहितः।

तत्सर्वं भूमिदानेन क्षिप्रमेव विनश्यति ॥[107]

अनुशासनपर्व के अनुसार गंगादि तीर पर स्थित उपजाऊ भूमि दान देना उचित है-

पुण्यां मृदुरसां भूमिं यो ददाति पुरन्दर।
न तस्य लोकाः क्षीयन्ते भूमिदानगुणार्जिताः ॥[108]

यहीं गृह-भूमि दान के विषय में विचार प्रकट करते हुए कहा गया है-

शीतवातातपसहां गृहभूमिं सुसंस्कृताम्।
प्रदाय सुरलोकस्थः पुण्यान्ते न विचाल्यते ॥
मुदितो वसति स्वर्गे शक्रेण सह पार्थिव।[109]

तथा खेती करने योग्य भूमि दान करने से पुत्र और श्री प्राप्त होते हैं -

क्षेत्रभूमिं ददद्विप्रे पुत्रं श्रियमवाप्नुते। [110]

रत्न-युक्त भूमि दान करने से भी स्वर्ग की प्राप्ति होना माना गया है-

रत्नोपकीर्णां वसुधां यो ददाति पुरन्दर।
स मुक्तः सर्वकलुषैः स्वर्गलोके महीयते ॥[111]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार विभिन्न प्रकार की, अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रयोजनों वाली भूमि को दान करने से भिन्न-भिन्न फलों की प्राप्ति होती है। यथा-

भूमिर्धात्री विधात्री च भूमौ सर्वं प्रतिष्ठितम्।
भूमिर्हि माता सर्वस्य सर्वकामप्रदा वरा ॥

तदुद्भूतेन हविषा तृप्तिमायान्ति देवताः।
भूमिर्हि धारणीविप्रास्त्रैलोक्यस्य निगद्यते ॥

भूमौ हि सर्वं भवति भूमौ सर्वं प्रतिष्ठितम्।
सर्वकामप्रदं ज्ञेयं भूमिदानं नरोत्तम ॥

हस्तमात्रां तु यो दद्याद् भुवं पुरुषसत्तम।
तेनैव ध्रुवमाप्नोति भूमिदानफलं नरः ॥

यदुत्पन्नमथाश्नाति नरः संवत्सरं द्विजाः।
एकं गोचर्ममात्रन्तु भुवः प्रोक्तं विचक्षणैः॥

ब्राह्मणाय ततो दत्वा वसूनां लोकमाप्नुयात्॥
शाकभूमिं ततो दत्वा लोकमाङ्गिरसं व्रजेत्।

आरामभूमिं च दत्त्वा मारुतं लोकमश्नुते।
जलाशयार्थं यो दद्याद्वारुणं लोकमाप्नुयात्॥

यस्य दत्त्वा तु वेश्मार्य तस्य देवस्य सोऽश्नुते।
उद्यानभूमिं दत्त्वा च गन्धर्वैः सह मोदते॥

रत्नाकरं तु वै दत्त्वा शक्रलोके महीयते।
दत्त्वा कनकभूमिं च वह्निलोके महीयते॥

अन्येषामाकरभुवं लोहानां यः प्रयच्छति।
तस्यापि मतिरुद्दिष्टा लोके हौताशने बुधाः॥

धान्याकरभुवं दत्त्वा नाकलोके महीयते।
अंजनाकरभूमिं तु यः प्रयच्छति वै द्विजाः॥

पितृभिर्यमलोकस्थः पूज्यतेऽसौ नरोत्तमः।
लवणाकरभूमिं च सोमलोके महीयते॥

शिम्बिसस्य प्ररोहां तु भुवं दत्त्वा नरोतमः।
साध्यानां लोकमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥

इन्धनाकरभूमिं तु नासत्यैः सहितस्तथा।
शूकधान्यभुवं दत्वा रुद्रलोके महीयते॥

केदारभूमिं धर्मज्ञा यः प्रयच्छति धर्मतः।
स महत्पुण्यमाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति॥

इक्षुभूमिं नरो दत्त्वा द्राक्षाभूमिमथापि च।
सोमलोकमवाप्नोति सर्वकामाँश्च विन्दति॥[112]

भूमि दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मण के स्वरूप के विषय में भारतीय धर्मशास्त्रकारों का मत अत्यन्त व्यावहारिक है। भूमि का दान पवित्र आचरण वाले अग्निहोत्री ब्राह्मण को ही देना चाहिये, जिससे वह उस दान का सदुपयोग कर सके। यथा-

ब्राह्मणं वृत्तिसम्पन्नमाहिताग्निं शुचिव्रतम्।
नरः प्रतिग्राह्य महीं न याति परमापदाम्॥[113]

भूमिं दत्त्वा तु साधुभ्यो विन्दते भूमिमुत्तमाम्।
प्रेत्य चेह च धर्मात्मा सम्प्राप्नोति महद्यशः॥[114]

निर्धन किन्तु सदा यज्ञ करने वाले, अतिथिप्रिय ब्राह्मण को दिया गया दान भी उत्तम होता है-

आहिताग्निं सदायज्ञम् कृशवृत्तिं प्रियातिथीम्।
ये भजन्ति द्विजश्रेष्ठं नोपसर्पन्ति ते यमम्॥[115]

कृशाय म्रियमाणाय वृत्तिग्लानाय सीदते।
भूमिं वृत्तिकरीं दत्वा सत्री भवति मानवः॥[116]

वृद्धगौतम स्मृति में भूमि दान प्राप्त करने योग्य ब्राह्मण का स्वरूप निम्न प्रकार से बताया गया है-

यः प्रयच्छति विप्राय भूमिं रम्यां सदक्षिणाम्।

श्रोत्रियाय दरिद्राय साग्निहोत्राय पाण्डवः॥

स सर्वकामतृप्तात्मा सर्वरत्नविभूषितः।

सर्वपापविनिर्मुक्तो दीप्यमानो रविर्यथा॥

बालसूर्यप्रकाशेन विचित्रध्वजशोभिना।

याति यानेन दिव्येन ममलोकं महातपाः॥[117]

ब्राह्मणाय दरिद्राय भूमिं दत्त्वा तु यो नरः।
न हिनस्ति नरव्याघ्र, तस्य पुण्यफलं श्रृणु॥[118]

सीदमानं कुटुम्बाय श्रोत्रियायग्निहोत्रिणे।

वृद्धस्थाय दरिद्राय भूमिर्देया नराधिप ।।[119]

भूमिदान का मन्त्र निम्न प्रकार से है-

तथा भूमिप्रदानस्य कलांनार्हन्ति षोडशीं।
दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवत्विह ।।[120]

हेमाद्रि ने शिवधर्म पुराण से शिवभूमिदान विधि, विष्णुभूमिदान विधि एवं भानु भूमिदान का भी वर्णन किया है। किन्तु इन दानविधियों में कोई उल्लेखनीय वैशिष्ट्य प्राप्त नहीं होता।

(8) गृह दान

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में दश महादानों के अन्तर्गत गृह-दान का भी परिगणन किया गया है। विभिन्न स्मृतियों में गृह-दान के महत्त्व एवं विधि का बहुशः प्रतिपादन किया गया है। मनु ने ''गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि'' कह कर गृहदान के महत्त्व एवं कर्मवाद के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की है।[121] विष्णु स्मृति में ''वास्तुप्रदानेन नगराधिपत्यम्'' कह कर गृह, आश्रय स्थान, धर्मशाला मठ, देवायतन इत्यादि सभी के दान एवं दान के महत्त्व की ओर संकेत किया गया है।[122] बृहत्पराशरस्मृति में कच्चे या पक्के सभी गृहों के दान का महत्त्व प्रकट करते हुए कहा गया है-

पक्वेष्टचितं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम्।
मृण्मयं वा तथा सद्यः कृत्वा चाश्ममयं तथा।।
दत्त्वा स्थानमवाप्नोति प्राजापत्यमसंशयम्।[123]

वसिष्ठस्मृति में ''गृहप्रदो नगरमाप्नोति'' कहकर गृह-दान का फल नगरप्राप्ति बताया है।[124] वृद्धगौतमस्मृति में गृह एवं धर्मशाला के दान के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा है-

गृहावसथदाना ये गृहैः कांचनवेदिभिः।
व्रजन्ति बालसूर्याभैःधर्मराजपुरन्नराः ।।[125]

अग्निपुराणकार ने गृहदान के सभी भेदों का उल्लेख करते हुए कहा है-

विपुलं तु गृहं कृत्वा दत्त्वा स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक्।

गृहं मठं सभां स्वर्गीं दत्त्वा स्याच्च प्रतिश्रयम्॥
दत्वा कृत्वा गोगृहं च निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात्।[126]

दानसागरकार ने गृहदान के दो प्रकार बताये हैं- प्रथम सोपकरण गृहदान एवं द्वितीय अनुपकरण गृहदान। सोपकरण गृहदान विधि के अन्तर्गत कालिका पुराण को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि- श्रोत्रियों के कुल में वेदज्ञ व शीलवान्, ग्यारह ब्राह्मण युवकों का विवाह करवा कर, उनके लिये ग्यारह सुन्दर घर बनवाने चाहियें। इन घरों की विविध प्रकार के अन्नों से पूजा करनी चाहिये। गृहस्थ में आवश्यक सभी वस्तुओं-गाय, बैल, शय्या, दास, दासी, आसन, पादुका, विभिन्न प्रकार के पात्र, वस्त्र, आदि से इन गृहों को युक्त कर, विवाहित दम्पत्तियों की वृत्ति के लिये सभी को उपजाऊ भूमि प्रदान करते हुए, उनको निर्मित गृहों में प्रवेश करवाना चाहिये। इन ब्राह्मणों को अग्निहोत्र धारण करवाना चाहिये।[127] वृद्ध गौतम स्मृति में भी सोपकरण गृहदान के विषय में कहा गया है-

गृहं दीपप्रभायुक्तं शय्यासनविभूषितम्।
भाजनोपस्करैर्युक्तं धान्यपूर्णमलङ्कृतम्॥

दासीगोभूमिसंयुक्तं संयुक्तं सर्वसाधनैः।
ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियाय युधिष्ठिर॥

दद्यात्सदक्षिणं यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु।
देवाः पितृगणाश्चैव सिद्धयस्त्वृषयस्तथा॥

प्रयच्छन्ति प्रणष्टा वै यानमादित्यसन्निभम्।
तेन गच्छेच्छ्रियायुक्तो ब्रह्मलोकमनुत्तमम्॥[128]

दानसागरकार के अनुसार अनुपकरण गृहदान के अन्तर्गत दाता उपर्युक्त ब्राह्मण को केवल गृह निर्माण करवाकर दान प्रदान करता है। इस विषय में महाभारतकार का कथन है-

निवेशनानां क्षेत्राणां वसतीनां च भारत।
दातारः प्रार्थितानांध पुरुषाः स्वर्गगामिनः॥[129]

नीलकण्ठ ने कूर्मपुराण को उद्धृत करते हुए उत्तम, मध्यम और अधम भेद से

तीन प्रकार के गृहदान का संकेत करते हुए कहा है-

शक्तितः सर्ववित्तेन पूर्णं गृहमपि त्रिधा।
सदक्षिणं द्विज दत्त्वा ब्रह्मलोकं व्रजेन्नरः ।।[130]

यहीं गरुड़ पुराण को उद्धृत करते हुए गृह दान के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है-

ऐष्टकं दारवं वापि मृण्मयं वा स्वशक्तितः।
सर्वोपकरणोपेतं यो दद्याद्विपुलं गृहम्।।

ब्राह्मणाय दरिद्राय विदुषे च कुटुम्बिने।
क्रीडित्वा सुचिरं कालं मानुष्यं लोकमागतः।।

भवत्यनन्तैश्वर्यः सर्वकामसमन्वितः।[131]

हेमाद्रि ने ब्रह्मवैवर्त व अग्निपुराण को उद्धृत करते हुए गृहस्थ एवं गृह के महत्त्व का अत्यन्त रम्य स्वरूप प्रस्तुत कर गृह-दान की आवश्यकता पर बल दिया है-

न गार्हस्थात्परोधर्मो नैव दानं गृहात्परं।
नानृतादधिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात्परः।।

धनधान्यसमायुक्तं कलत्रापत्यसङ्कुलं।
गोगजाश्वगणकीर्णं गृहं स्वर्गाद्विशिष्यते।।

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।
एवं गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति चाश्रमाः।।

धर्ममर्थं च कामंच मित्राश्च प्रथितं यशः।
प्राप्तुकामैर्नरै राजन् सदा सेव्यो गृहाश्रमः।।

न गृहेण विना धर्मो नार्थकामौ सुखन्न च।
लोकयात्रा यशः स्वर्गः प्राप्यते राजसत्तम।।

न स्वर्गे नापवर्गेषु न चान्येष्वपि धामसु।
प्रसार्य पादौ यद्रात्रौ स्वगृहे स्वपतां सुखम्।।

दिनानि तानि गण्यन्ते यानि यान्ति गृहाश्रमे।
अपि शाकम्पचनास्य स्वगृहे परमं सुखं॥

इति मत्वा महाराज कारयित्वा सुशोभनं।
भवनं ब्राह्मणे देयं महतीं भूमिमिच्छता॥[132]

हेमाद्रि का मत है कि दान किया जाने वाला गृह वास्तु लक्षणों से युक्त होना चाहिये तथा गृहनिर्माण से पूर्व पैंतालिस वास्तु देवताओं की स्थापना कर उनका यथाविधि पूजन होना चाहिये। गृह निर्माण के पश्चात् वास्तु शान्ति कार्य करना चाहिये । वास्तु शान्ति जीर्णोद्धार,नवीन गृह का आधान प्रासाद परिवर्तन एवं द्वार बदलने पर करनी चाहिये। (वास्तु पूजन एवं वास्तु शान्ति विधि का विस्तृत विवेचन अध्याय दो में किया गया है।) तदनुसार गृह प्रवेश, प्रारम्भ एवं परिवर्तन के समय वास्तु शान्ति अवश्य करनी चाहिये।[133]

गृह दान करने की विधि के प्रसंग में नीलकण्ठ का मत है कि देय गृह के मध्य दक्षिण भाग में पंचवर्णरज से पद्म बनाकर, उसके ऊपर एक प्रस्थ तिल रखकर, उसके ऊपर शय्या स्थापित कर सुवर्ण निर्मित लक्ष्मीनारायण प्रतिमा की पूजा कर प्रतिग्रहीता का हाथ पकड़कर सपत्नीक घर में प्रवेश करवाना चाहिये। प्रवेश करवाते समय निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करना चाहिये-

एह्येहि नारायण दिव्यरूप सर्वामरैर्वन्दितपादपद्म ।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश लक्ष्मीयुतस्त्वं च गृहं गृहाण॥

नमः कौस्तुभनाथायं हिरण्यकवचाय च।
क्षीरोदार्णवसुप्ताय जगद्धात्रे नमो नमः॥

नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय वै नमः।
चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः॥

भूर्लोकप्रमुखा लोकास्तव देहे व्यवस्थिताः।
नन्दन्ति यावत्कल्पान्तं तथाऽस्मिन्भवने गृही॥

त्वत्प्रसादेन देवेश पुत्रपौत्रैर्युतो गृहे।
पंचयज्ञक्रियायुक्तो वसेदाचन्द्रतारकम् ॥[134]

तत्पश्चात् प्रतिग्रहीता को उत्तर की ओर मुख कर, पूर्व स्थापित शय्या पर बैठाकर स्वयं आसन पर पूर्व की ओर मुख किए हुए बैठकर समस्त उपकरणों से युक्त वह गृह दान में दें। सहस्र सुवर्ण से लेकर एक सुवर्ण पर्यन्त दक्षिणा प्रदान करें।

मठ दान :

तपस्वियों के आश्रय स्थल के रूप में जिस वास्तु का दान किया जाता है, उसे मठ कहते हैं। हेमाद्रि द्वारा उद्धृत स्कन्दपुराण के अनुसार यह मठ पांच या तीन चौक का हो। परकोटे से घिरा हो। यज्ञमण्डप, गन्धपुष्प गृह, भाण्डागार, कोष्ठागार, जलाशय, वातायन, गुप्त मन्त्रस्थान वाला समिधाओं, कुश, ईन्धन आदि से युक्त एवं अतिथिशाला, उद्यान, पुष्प वाटिका, विद्या और व्याख्यान मण्डप, अधिष्ठातृ देव मन्दिर, गौ शाला आदि से युक्त हो।[135]

यहीं उद्धृत वाराहपुराण के अनुसार मठ तीन, दो अथवा एक चौक का भी हो सकता है। इसमें बड़े कक्ष, झरोखे, ध्यान, अध्ययन, होम, व्याख्यान आदि के स्थान, पुस्तकालय, उद्यान, जलाशय, अतिथिशाला आदि होने चाहियें।[136]

प्रतिश्रय (बसेरा) दान :

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत मार्कण्डेय पुराण के अनुसार साधुओं और पथिकों के विश्राम हेतु अपने घर के एक प्रदेश में अथवा अलग से प्रतिश्रय, बसेरा अथवा धर्मशाला का निर्माण करवाना चाहिये । यह कार्य अक्षय पुण्य, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करवाने वाला है।[137]

गौशाला :

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत स्कन्दपुराण के अनुसार गौशाला का दान करने से मनुष्य सौभाग्य व आरोग्य को प्राप्त करता है । धन और रूप से युक्त होकर महान् कुल में जन्म लेता है एवं दिव्य भोगों को प्राप्त करता है। यह गौशाला सुदृढ, विस्तृत, समतल, सर्दी और गर्मी में सुखद, बालुका से मृदु, चारा रखने के अनेक स्थानों से युक्त, धुंए इत्यादि मच्छरों आदि को दूर करने की व्यवस्था से युक्त एवं जल, चारा आदि देने वाले कर्मचारियों से युक्त होनी चाहिये।[138] गृह-दान के उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त धर्मशास्त्रकारों ने कन्यादान रूपी महादान के महत्त्व का वर्णन किया है।

(9) कन्या दान

हेमाद्रि ने नारदीयपुराण को उद्धृत करते हुए कन्यादान के महत्त्व पर निम्न प्रकार से प्रकाश डाला है-

चतुर्णामाश्रमाणान्तु गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते।
गृहस्थाच्च गृहं श्रेष्ठं गृहाच्छ्रेष्ठा वरस्त्रियः॥

तस्मात् कन्याप्रदानस्य नान्यदानैस्तुला स्मृता।
अतः प्रदेया विद्वद्भिः कन्या सर्वार्थकांक्षिभिः॥[139]

यहीं महर्षि देवल को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि तीन कन्याओं को यथावत् पालकर प्रदान करने से पिता नरक में नहीं जाता और नारी भी स्त्रीप्रसवा नहीं कहलाती-

तिस्रः कन्या यथान्यायं पालयित्वा निवेद्य च।
न पिता नरकं याति नारी वा स्त्रीप्रसूयिनी॥[140]

सम्वर्तस्मृतिकार ने कन्या दान के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है-

अलङ्कृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै।
ब्राह्मीयेण विवाहेन दद्यात्तान्तु सुपूजिताम्॥

स कन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विन्दति पुष्कलम्।
साधुवादं लभेत् सद्भिः कीर्तिं प्राप्नोति पुष्कलाम्॥

ज्योतिष्टोमादि सत्राणां शतं शतगुणीकृतम्।
प्राप्नोति पुरुषो दत्वा होममन्त्रैस्तु संस्कृताम्॥

अलङ्कृत्य पिता कन्यां भूषणाच्छादनासनैः।
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूजितस्तु सुरादिषु॥[141]

विवाहोऽष्टमवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते।[142]

वसिष्ठ स्मृति में कन्यादान के महत्त्व को निम्न प्रकार से बताया गया है-

अलङ्कृत्य तु यः कन्यां ब्राह्मोद्वाहेन यच्छति॥
अन्योद्वाहेन केनापि गजदानशतं लभेत्।

गजदानस्य यत्पुण्यं तस्माच्छतगुणं फलम्।।
कन्यादा विधिवत्सर्वं प्राप्नुवन्ति ह्यसंशयम्।[143]

वृद्धगौतम स्मृति में भी कन्यादान को पितरों को प्रसन्नता प्रदान करने वाला कहा गया है-

कन्यां च ये प्रयच्छन्ति,
विप्राय श्रोत्रियाय च।

दिव्यकन्याव्रता यान्ति,
विमानैस्ते यमालयम्।। [144]

पितरस्तस्य तृप्यन्ति ये प्रयच्छन्ति कन्यकाम्।
यावन्ति चैव रोमाणि कन्यायाः कुरुनन्दन।।

तावद्वर्षसहस्राणि मम लोके महीयते।।[145]

अग्निपुराण में भी कन्यादान से इक्कीस पीढियों के उद्धार की बात कही गई है-

त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य कन्यादो ब्रह्मलोकभाक्।।[146]

वृहत्पराशरस्मृति के छठे अध्याय में उत्तम वर और वधू के गुणों का वर्णन करते हुए, कन्या दान करने के अधिकारी के विषय में कहा गया है-

पिता पितामहो भ्राता माता मातामहोऽपि वा।
कन्यादाः स्युः क्रमेणैते पूर्वाऽभावे परः परः।।

अधिकारी यदा न स्यात्तदाऽऽख्याय नृपस्य सः।
तद्गिरा च स्वयं गम्यं कन्यापि वरयेद्वरम्।।[147]

हेमाद्रि ने ब्रह्माण्डपुराण के आधार पर वर के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है-

कन्यान्तु परया भक्त्या अलङ्कृत्य प्रयत्नतः।
कुलीनाय सुरूपाय गुणज्ञाय विशेषतः।।

कन्या वरयमाणाय दद्यादेष विधिः स्मृतः।[148]

गरुड़ पुराण में भी उपर्युक्त विषय में कहा गया है-

सुशीलाय सुवृत्ताय सुविद्याय तपस्विने।
कन्या देया प्रयत्नेन नैतरस्मै कथंचन॥[149]

परिणेय कन्या के गुणों के विषय में स्कन्दपुराण के आधार पर कहा गया है-

सुरूपां लक्षणोपेतामव्यङ्गाङ्गीं कुलोद्भवाम्।
कन्यां भ्रातृमतींचैव धर्मार्थार्थी समुद्वहेत्॥

विशालनेत्रां सुमुखीं नीलकुंचितमूर्द्धजाम्।
आताम्रपाणिपादाग्रां कम्बुग्रीवां सुमध्यमां॥

विशालजघनांचारुनितम्बस्थलभूषितां।
अस्थूलगुल्फदशनां आश्यामाधरतालुकां॥

अपिङ्गाक्षीमकपिलामस्फुरच्चरणां शुभां।
अस्थूलगण्डनासाग्रां शस्तामाहुर्मनीषिणः॥

उद्वहेत्तादृशीं कन्यां रोगदोषविवर्जितां।[149]

लिंगपुराण में कन्या दान में वर-वधू के चित्तानुसार ही विवाह का निश्चय करने का मत प्रकट किया गया है-

कन्यां लक्षणसम्पन्नां सर्वदोषविवर्जिताम्।
माता पित्रोस्तु संवादं कृत्वा दत्त्वा धनं महत्॥

आत्मीकृत्य तु संस्थाप्य वस्त्रं दत्वा नवं शुभम्।
भूषणैर्भूषयित्वा च गन्धमाल्यैरथार्चयेत्॥

निमित्तानि समीक्ष्याथ गोत्रनक्षत्रादिकम्।
उभयोश्चित्तमालोच्य उभौ सम्पूज्य यत्नतः॥

दातव्या श्रोत्रियायैव ब्राह्मणाय तपस्विने।
साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे॥

दासीदासासनाद्यं च भूषणानि विशेषतः।
क्षेत्राणि च धनं वापि तथान्यानि प्रदापयेत्॥

यावन्ति सन्ति रोमाणि कन्यायाश्च तनौ पुनः।
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥[150]

नीलकण्ठ ने ऋष्यश्रृंग को उद्धृत करते हुए कन्यादान की विधि का संक्षिप्त कथन निम्न प्रकार से किया है-

वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम्।
नाम सङ्कीर्तयेद्विद्वान्कन्यायाश्चैवमेव हि॥

तिष्ठेत्पूर्वमुखो दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत्।
मधुपर्कान्वितायैतां तस्मै दद्यात्सदक्षिणम्॥

उदपात्रं ततो गृह्य मन्त्रेणानेन दापयेत्।
गौरीं कन्यामिमां विप्र यथा शक्तिविभूषिताम्॥

गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय।
भूमिं गावश्च दासीश्च वासांसि च स्वशक्तितः॥

महिष्यो वाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि।
ततः स्वगृह्यविधिना होमाद्यं कर्म कारयेत्॥

यथाचारं विधेयानि माङ्गल्यकुतुकानि च।[151]

कन्या दान करते समय निम्न मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

कन्यां कनकसम्पन्नां कनकाभरणैर्युताम्।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया॥

विश्वम्भरः सर्वभूतः साक्षिण्यः सर्वदेवताः।
इमां कन्यां प्रदास्यामि पितृणां तारणाय च॥[152]

नीलकण्ठ ने विवाह में उपयोगी द्रव्य, वस्त्र, अलङ्कार आदि के दान को वैवाहिक दान की संज्ञा दी है एवं वैवाहिक दान से भी इन्द्र लोक की प्राप्ति होना बताया है ।[153]

हेमाद्रि ने कन्या के न होने पर पराई कन्या को ग्रहण कर कन्या दान करने का भी स्कन्दपुराण के आधार पर विधान किया है-

आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयान्तु कन्यकाम्।
धर्मेण विधिना दातुमसगोत्रोऽपि युज्यते॥[154]

(10) कपिला-दान

धर्मशास्त्रीय साहित्य में अन्य सभी प्रकार की गायों के दान में कपिला गौ का दान सर्वोत्तम माना गया है। दस गायों के दान को एक कपिला गौ के दान तुल्य मानते हुए हेमाद्रि ने आदित्यपुराण को निम्न प्रकार से उद्धृत किया है-

सहस्रं यो गवान्दत्वा कपिलांचापि सुव्रत।
सममेव पुरे प्राह ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः॥

यावन्ति रोमकूपाणि कपिलाङ्गे भवन्ति हि।
तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते॥

रुक्मशृंगीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम्।
कांस्योपदोहनां धेनुं वस्त्रच्छन्नामलङ्कृताम्॥

दत्वा द्विजेन्द्राय नरः स्वर्गलोके महीयते।
दशधेनुप्रदानेन तुल्यैका कपिला मता॥[155]

महाभारत के वैष्णवधर्मपर्व में कपिला दान के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि कपिला दान से अश्वमेध यज्ञ व राजसूय यज्ञ का फल मिलता है एवं मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। यथा-

सुवर्णखुरशृंगीं च कपिलां यः प्रयच्छति।
विषुवे चायने चापि सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥

कपिलानां सहस्रेण विधिदत्तेन पाण्डव।
राजसूयफलं प्राप्य मम लोके महीयते॥

यथौषधं मन्त्रकृतं नरस्य,
प्रयुक्तमात्रं विनिहन्ति रोगान्।
तथैव दत्ता कपिला सुपात्रे,
पापं नरस्याशु निहन्ति सर्वम्॥[156]

वृद्धगौतमस्मृति में एक कपिला दान को समस्त पृथिवी दान के बराबर बताया गया है-

सुवर्णाभरणां कृत्वा सवत्सां कपिलान्तु यः।
तिलैः प्रच्छादितां दद्यात् सर्वरत्नैरलङ्कृताम्।।

ससमुद्रनदी तेन सशैलद्वीपपत्तना।
चतुरन्ता भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः।।[157]

वृद्धगौतमस्मृति के दशम अध्याय में कपिला गौ के तत्तत् अंगों में तत्तत् देवों का निवास बताकर कपिला दान को सर्वोच्च महत्ता प्रदान की गई है।[158] अग्निपुराणकार ने विष्णु के आगे कपिला के दान को समस्त कुल का उद्धार करने वाला बताया है-

विष्णवग्रे कपिलां दत्त्वा तारयेत्सकलं कुलम्।[159]

याज्ञवल्क्य ने कपिला दान से सात पीढियों तक कुल के उद्धार की बात स्वीकार की है-

हेमश्रृंगी शफैरौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता।
संकास्यपात्रा दातव्या क्षीरिणि गौः सदक्षिणा।।

दातास्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सरान् रोमसंमितान्।
कपिलांचेत्तारयति भूयस्त्वासप्तमं कुलम्।।[160]

हेमाद्रि ने कूर्मपुराण को उद्धृत करते हुए कपिला दान की विधि के प्रसङ्ग में कहा है कि- दस सुवर्ण से निर्मित सींग, पांच पल से निर्मित खुर, पचास पल ताम्र व पचास पल कांस्य से निर्मित पात्र, धेनु के तिगुने वस्त्र और चौगुनी दक्षिणा, इन सब से अलंकृत घण्टा और आभूषणों से सुशोभित कपिला धेनु को उत्तम ब्राह्मण को दान देने से स्वर्ग व मोक्ष का फल प्राप्त होता है। सात जन्मों में किये गये पापों से मुक्ति मिलती है एवं मनुष्य जो जो कामना करता है, वह सब उसको प्राप्त होता है।[161] दान मन्त्र निम्न प्रकार से उल्लिखित हैः-

कपिले सर्वभूतानां पूजनीयासि रोहिणि।
तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।[162]

उपर्युक्त प्रकार से दाता के कल्याण एवं शान्ति की कामना से किये जाने वाले दश महादानों का प्रकृत अध्याय में धर्मशास्त्रकारों के मतानुसार विवेचन किया गया। ये दान मध्यम वित्त सामर्थ्य वाले गृहस्थों के लिये विहित थे । आज इन दानों में से कुछ की प्रासङ्गिकता विवादास्पद हो सकती है एवं कुछ के स्वरूप में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो सकता है। अश्व, रथ, हाथी, आदि के दान का आज औचित्य प्रतीत नहीं होता, किन्तु आधुनिक प्रचलित वाहन तो आज भी वित्तानुसार दान में दिये जाते हैं। दास-प्रथा आज प्रायः समाप्त हो गई है, किन्तु वृत्तिजीविकों का सम्पन्न घरों में आज भी आदान-प्रदान किया जाता है। कन्या दान में बाल विवाह की प्रथा पर अङ्कुश लगने के कारण आठ, नौ या दस वर्ष की कन्या का विवाह करना दण्डनीय है, तथापि कन्या का विवाह आज भी पवित्र कर्तव्य माना जाता है। कुछ आधुनिक विचारधारा से ओत-प्रोत विचारकों का मत हो सकता है कि कन्या कोई वस्तु नहीं है, जिसका दान किया जा सके। किन्तु इस विषय में यह ध्यातव्य है कि कन्या का विवाह सहधर्मचरण हेतु किया जाता है। दान का तात्पर्य यही हो सकता है कि कन्या के माता-पिता उसके वैवाहिक जीवन में हस्तक्षेप करने का अधिकार न समझें । यदि वर, कन्या के विषय में धर्म पर स्थिर नहीं रहता तो उसको प्रताड़ित करने, समझाने अथवा दण्ड देने का कर्तव्य केवल कन्या के माता-पिता का ही नहीं अपितु सारे समाज का है। वस्तुतः इन दानों को करने का लक्ष्य मनुष्य की समाज के प्रति कर्तव्य भावना व सहअस्तित्व की भावना को बल प्रदान करना है। पुनः समाज के प्रबुद्ध वर्ग में धर्म-भावना व तपश्चरण की उत्कृष्टता स्थापित करना भी दान-कार्य का प्रमुख ध्येय है।

---

1. महाभारत, अनुशासनपर्व 74/9.
2. वही, 85/86.
3. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड-पृष्ठ, 565.
4. वही - पृष्ठ- 566.
5. महाभारत, अनुशासन पर्व 86/35.
6. बृहस्पतिस्मृति पद्य संख्या- 04.
7. वही, पद्य संख्या 31.
8. सम्वर्तस्मृति, पद्य संख्या 76.
9. महाभारत, अनुशासनपर्व 65/1-2.
10. मनुस्मृति- 4/230.

11. विष्णुस्मृति- 92/13.
12. सम्वर्तस्मृति पद्य संख्या- 52.
13. शातातपस्मृति 3/22.
14. दान सागर, पृष्ठ - 420.
15. 3/310/11.
16. चतुर्वर्गचिन्तामणि - दानखण्ड, पृष्ठ - 572.
17. दानसागर- पृष्ठ- 419.
18. वही - पृष्ठ- 417.
19. दानखण्ड पृष्ठ- 572.
20. भगवन्तभास्कर-दानमयूख, पृष्ठ - 164.
21. महाभारत- अनुशासनपर्व, 85/154-159.
22. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3/310/6-15.
23. दानसागर, पृष्ठ-421.
24. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ- 574.
25. दानमयूख, पृष्ठ- 165-166.
26. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ- 578.
27. वही , पृष्ठ- 579.
28. वही, पृष्ठ- 583.
29. वही, पृष्ठ- 573.
30. 10/214.
31. दानखण्ड, पृष्ठ-588.
32. वही, पृष्ठ ' 588.
33. धर्मशास्त्र का इतिहास-प्रथम भाग, पृष्ठ- 447.
34. 4/231.
35. 10/156-157.
36. 1/210.

37. 3/312/6-9.
38. दान मयूख, पृष्ठ 166.
39. दान खण्ड- पृष्ठ- 589.
40. दानमयूख-पृष्ठ- 166-167.
41. वही, पृष्ठ, 167.
42. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दान खण्ड, पृष्ठ- 590-591.
43. भगवन्तभास्कर- दानमयूख, पृष्ठ- 167.
44. बृहत्पराशरस्मृति- 10/339-342.
45. अनुशासन पर्व- क्रमशः 66/11, 66/12, 68/17.
46. मनुस्मृति 4/229.
47. सम्वर्त स्मृति- पद्य- 94.
48. वृद्धगौतमस्मृति 7/82-85.
49. दानसागर पृष्ठ-505.
50. वही।
51. अनुशासनपर्व 66/8.
52. दानसागर पृष्ठ, 507.
53. वसिष्ठस्मृति।
54. भगवन्तभास्कर- दानमयूख, पृष्ठ- 168.
55. दानसागर, पृष्ठ - 505.
56. दानखण्ड, पृष्ठ- 606.
57. वही, पृष्ठ - 600.
58. अत्रि संहिता-
59. भगवन्तभास्कर-दान मयूख, पृष्ठ -169.
60. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड, पृष्ठ- 600.
61. वही, पृष्ठ- 601.

62. वही, पृष्ठ- 601.

63. 11/37-38.

64. भगवन्तभास्कर-दानमयूख, पृष्ठ- 171-172.

65. वही- पृष्ठ- 172.

66. वही- पृष्ठ- 172-173.

67. चतुर्वर्गचिन्तामणि दान खण्ड, पृष्ठ- 621-622.

68. वही , पृष्ठ- 622-623.

69. वही, पृष्ठ- 624.

70. वही, पृष्ठ-626

71. वही, पृष्ठ-627-628

72. वही, पृष्ठ- 606.

73. वही, पृष्ठ- 607-610.

74. वही, पृष्ठ - 610-611.

75. वही- पृष्ठ- 612-613.

76. वही, पृष्ठ- 613.

77. वही, पृष्ठ- 615.

78. वही, पृष्ठ- 614- 615.

79. वही, पृष्ठ- 617.

80. वही, पृष्ठ- 618-619.

81. वही, पृष्ठ- 619-620.

82. वही, पृष्ठ- 595.

83. भगवन्तभास्कर- दानमयूख, पृष्ठ- 173-174.

84. दानखण्ड, पृष्ठ-633.

85. वही, पृष्ठ- 635-636.

86. वही, पृष्ठ- 637.

87. वही, पृष्ठ- 638-639.

88. दानमयूख-पृष्ठ- 174.

89. दानखण्ड, पृष्ठ- 641.

90. वही, पृष्ठ- 641-642.

91. वही, पृष्ठ- 642-643.

92. दानमयूख- पृष्ठ- 172.

93. दानखण्ड, पृष्ठ- 644.

94. वही, पृष्ठ- 644-645.

95. महाभारत, अनुशासन पर्व- 62/3-4.

96. वही, 62/2.

97. वही,62/26.

98. वही,62/81-82.

99. वही,62/91-92.

100. दानसागर, पृष्ठ-321.

101. स्मृति सन्दर्भ, प्रथम भाग, पृष्ठ- 35.

102. 10/175-200.

103. 10/172-174.

104. मनुस्मृति 4/230, विष्णु स्मृति अध्याय- 92 .

105. 6/123.

106. 213/9.

107. पद्य- 335.

108. पद्य- 17-18 .

109. पृष्ठ- 320.

110. दानसागर- पृष्ठ, 323.

111. 62/67.

112. अनुशासनपर्व 66/27-28.

113. वही - 66/31.

114. वही - 62/60.

115. विष्णुधर्मोत्तरपुराणं 3/305/1-17.

116. महाभारत अनुशासन पर्व 62/32.

117. वही, 62/17.

118. वही, 62/76.

119. वही, 62/29.

120. वही, 6/89-91.

121. वही -6/94.

122. वही, 6/119.

123. दानमयूख, पृष्ठ- 176.

124. मनुस्मृति 4/230.

125. अध्याय 92.

126. 10/25-26.

127. 29/14.

128. 5/94-95.

129. 211/17-18.

130. पृष्ठ- 441-442.

131. 7/16-20.

132. अनुशासनपर्व 23/100.

133. दानमयूख,पृष्ठ- 177.

134. वही , पृष्ठ-177.

135. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दान खण्ड, पृष्ठ, 648-649.

136. वही, पृष्ठ - 653-656.

137. दानमयूख, पृष्ठ- 183.

138. दानखण्ड, पृष्ठ - 668-669.

139. वही, पृष्ठ- 672.

140. वही, पृष्ठ- 677.

141. वही,पृष्ठ- 664-665.

142. वही, पृष्ठ- 679.

143. वही, पृष्ठ- 678.

144. सम्वर्त स्मृति- पद्य 61-64.

145. वही, पद्य 68.

146. 10/171-172.

147. 5/92.

148. 6/138-139.

149. 211/37.

150. 6/29-30.

151. दानखण्ड, पृष्ठ- 681.

152. वही।

153. वही।

154. वही, पृष्ठ- 687.

155. दानमयूख, पृष्ठ- 186-187.

156. वही।

157. वही, पृष्ठ- 187-188.

158. दानखण्ड, पृष्ठ- 680.

159. वही, पृष्ठ- 461.

160. पृष्ठ 6346, ग्रीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।

161. 10/8-9.

162. 10/44-56.

163. 213/8.

164. 1/204-205.

165. दान खण्ड, पृष्ठ- 462.

166. वही।

****

पंचम अध्याय

अन्यान्य दान

भारतीय धर्मशास्त्रीय साहित्य में षोडश महादान एवं दश महादान के अतिरिक्त अन्यान्य लघुदान विधियों का भी विवेचन किया गया है, यथा- धेनुदान, पर्वतदान, मेषदान, मेषीदान, अजादान, महिषीदान आदि।

(1) धेनुदान

अमरकोष में धेनु का तात्पर्य नव-प्रसूता गौ से है।[1] धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में कपिला गौ को सर्वोत्तम मानते हुए गौ के दान को अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया गया है। वस्तुतः भारतदेश में गौ का अत्यन्त सम्मानपूर्ण स्थान रहा है। गाय को माता के समान मानकर जीवन में उसके महत्त्व को स्वीकार किया गया है। गाय भारतीय समाज व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था का आधार रही है। चिकित्सा दृष्टि से भी गाय के दूध, घी, दही, गोमय एवं गोमूत्र (पंचगव्य) के गुणों को आयुर्वेद शास्त्र में पहचाना गया है। इसकी सन्तान (वृषभों) से ही कृषि कार्य सम्पन्न होता रहा है। आज गाय के गोबर की रेडियोधर्मी प्रतिरोधिता एवं रासायनिक खादों की तुलना में गोबर की खाद की गुणवत्ता को स्वीकार किया जाने लगा है। अनुशासन पर्व के अनुसार गाय इस (सृष्टि) यज्ञ का मूलभूत साधन है। यथा- यज्ञाङ्गं कथिता गावो यज्ञ एव च वासव।''[2] यही कारण है कि धर्मशास्त्रकारों ने गाय के दान की अत्यन्त प्रशंसा की है। अनुशासनपर्व (66/53) में ऐसी गाय दान में देने का निषेध किया गया है, जो कृश, बिना बछड़े की, बांझ, रोगी, विकल अंग वाली व थकी हुई हो। धर्मशास्त्र में स्वरूपतः धेनु (सवत्सा गौ) दान के अतिरिक्त उसकी अनुकृति में अन्य पदार्थों का दान देने का भी विधान किया गया है। मत्स्यपुराण में दस धेनुओं के नाम लिये गये हैं। यथा- गुड, घृत, तिल, जल, क्षीर, मधु, शर्करा, दधि, रस एवं गोधेनु।[3] व्यावहारिक दृष्टि से तरलधेनुओं को घड़ों में रखने का विधान है तथा अन्य धेनुओं को राशि रूप में रखने का विधान है। कुछ ग्रन्थों में अन्य धेनुओं के नाम भी लिये गये हैं। यथा- सुवर्ण धेनु, नवनीत धेनु एवं रत्नधेनु। अग्निपुराण

में भी दस धेनुओं के नाम लिये गये हैं।[4] वराहपुराण में द्वादश धेनुओं का विस्तार से वर्णन किया गया है।[5] इसमें प्रदत्त धेनुओं में घृत एवं गोधेनु समाविष्ट नहीं हैं, तथा नवनीत, लवण, कार्पास एवं धान्य नामक धेनुओं के नाम नये जोड़े गये हैं।

(1) गुडधेनु :

गुडधेनु दान करने हेतु सर्वप्रथम गोबर से लिपी हुई भूमि पर कुश बिछाकर, कुशों पर चार हस्त प्रमाण का, पूर्वाभिमुख कृष्णमृगचर्म बिछाना चाहिये। इस पर पूर्व की ओर मुख किये व उत्तर की ओर पैर किए हुए धेनु निर्माण करना चाहिये। एक छोटे कृष्णमृर्गचर्म पर इसी प्रकार वत्सनिर्माण करना चाहिये। उत्तम गुडधेनु चार भार तौल की, मध्यमा दो भार तौल की एवं कनिष्ठा एक भार तौल की होगी। धेनु के चतुर्थांश तौल से वत्स की कल्पना होगी। ये धेनु और वत्स सफेद, पतले कपड़े से आवृत्त होंगे। इनके कान सीप से, पैर इक्षु दण्ड से, नेत्र मुक्ताफलों से, सिर के रोम सफेद धागे से, गलकम्बल श्वेत कम्बल से, कुकुद् एवं पृष्ठ भाग ताम्रनिर्मित लोटे से और रोम श्वेत चँवर से निर्मित होंगे। इनके भ्रूयुग मूंगे से,स्तन नवनीत से, पूँछ रेशमी वस्त्र से, दोहन पात्र कांस्य से एवं नेत्र-तारक इन्द्रनीलमणि के होंगे। सींग व आभूषण सुवर्ण के, खुर रजत के, दाँत विविध फलों के एवं घ्राण गन्ध पेटिका के होंगे। इस प्रकार धेनु का निर्माण कर, दाता दान का संकल्प करे, धेनु का आवाहन, प्रतिष्ठापन एवं पूजन करे एवं प्रदक्षिणा कर ब्राह्मण को दान दे। स्वर्ण दक्षिणा में दे एवं ब्राह्मणों को भोजन करवाये। धेनु के आमन्त्रण मन्त्र निम्नलिखित हैं-

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु॥

देहस्था या च रुद्राणी शंकरस्य सदा प्रिया।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः।
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपाऽस्तु सा श्रिये॥

चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च।
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे॥

स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां तथा।
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥[6]

मत्स्यपुराण के अनुसार स्वरूपतः धेनु दानों के अतिरिक्त सभी धेनु दानों में उपर्युक्त विधान ही होगा।[7] केवल मुख्य धेनुद्रव्य का भेद होगा।

(2) तिल धेनु :

तिलधेनुदान में द्रोण भर तिल से धेनु एवं आढक परिमाण तिल से वत्स का निर्माण होगा। इसमें धेनु की जिह्वा शर्करा से, मुख गुड से एवं गलकम्बल ऊर्णा से निर्मित होगा। उत्तम पत्तों से कान एवं फलों से दाँतों का निर्माण होगा। पूँछ पुष्प माला से एवं रोम सफेद सरसों से निर्मित होंगे। धेनु और वत्स मनोहर भक्ष्य फलों एवं मणि मुक्ताओं से युक्त होंगे। इनको सफेद वस्त्र के जोड़े से ढका जायेगा। घण्टा व आभरणों से अलंकृत किया जायेगा। ''केशवः प्रीयताम्'' कहकर धेनुदान दिया जायेगा॥ शेष सभी अंग एवं दानपद्धति गुडधेनु के समान होंगे।[8]

(3) घृत धेनु :

नीलकण्ठ ने विष्णुधर्मोत्तरपुराण को उद्धृत करते हुए घृतधेनुदान के विषय में कहा है कि तिलों के अभाव में घृतधेनु का दान करना चाहिये।[9] सर्वप्रथम जगन्नाथ वासुदेव का घी और दूध से अभिषेक कर, गन्ध, पुष्प और धूप से पूजा कर, एक रात और एक दिन उपवास कर, दाता घृतधेनुदान हेतु तैयार हो। दान से पूर्व अग्नि प्रज्वलित कर वासुदेव जगन्नाथ के नाम मन्त्र से हवन करे। दान देने हेतु पुष्पमालाओं से सुशोभित गाय के घी से भरा हुआ कुम्भ तैयार करवाये। यह कुम्भ कांस्य निर्मित ढक्कन एवं सफेद वस्त्र के जोड़े से ढका हो, कुम्भ में हिरण्य, मणियाँ, मूँगे और मोती हों। नीलकण्ठ के मतानुसार इस कुम्भ का परिमाण सहस्र पल अथवा पांच सौ बारह पल का होगा।[10] यह कुम्भ घृतधेनु दान का प्रधान द्रव्य है। इस दान में धेनु के नेत्र स्वर्ण से, सींग अगरु-काष्ठ से, पार्श्व सप्तधान्य से, गलकम्बल सफेद रेशमी वस्त्र से, नासिका तुरुष्क एवं कर्पूर से, स्तन फलों से, जिह्वा शर्करा से एवं मुख गुड और दूध से निर्मित होंगे। तथैव पूँछ रेशमी वस्त्र से, पीठ ताम्र से एवं रोम सफेद सरसों से निर्मित होंगे। शेष अंग गुड-धेनु के समान होंगे। धेनु के चतुर्थांश द्रव्यों से वत्स का निर्माण होगा। इस प्रकार से

घृतधेनु का निर्माण कर, विधिपूर्वक पूजा कर शास्त्र निपुण, विष्णु भक्त ब्राह्मण को दान देने से मनुष्य निष्पाप होकर विष्णु लोक जाता है। दान देते समय ''प्रीयतां मम देवेशो घृतार्चिः पुरुषोत्तमः'' वाक्य का उच्चारण करना चाहिये।

स्कन्दपुराण के अनुसार घृतधेनु का दान मन्त्र निम्न प्रकार से होगा-

घृतं गावः प्रसूयन्ते घृतं भूम्यां प्रतिष्ठितम्।

घृतमग्निश्च देवाश्च घृतं मे संप्रदीयताम्॥[11]

नीलकण्ठ के मतानुसार दक्षिणा तीन से लेकर एक सुवर्ण पर्यन्त यथाशक्ति होगी।[12] हेमाद्रि के अनुसार दक्षिणा में यथाशक्ति शुद्ध सुवर्ण प्रदान किया जाना चाहिये।[13]

(4) जलधेनु :

धर्मशास्त्रकारों ने विष्णुधर्मोत्तरपुराण को उद्धृत करते हुए जलधेनुदान का वर्णन किया है। तदनुसार जलधेनुदान का मुख्य दातव्य द्रव्य जलपूर्ण कुम्भ है। जलधेनुदान करने के इच्छुक दाता को एक ऐसा जलपूर्ण कुम्भ तैयार करना चाहिये, जो सभी रत्नों से युक्त हो, जिसके साथ सभी प्रकार के ग्राम्य धान्य हों, जो सफेद वस्त्र के जोड़े से ढका हो, जो दूर्वा और पत्तों से सुशोभित हो, जो दर्भ के विष्टर पर स्थित हो और जिसके साथ छत्र और उपानह हों, जिसकी चारों दिशाओं में तिल से भरे हुए चार ताम्र-पात्र हों एवं जो घी और शहद मिश्रित दही से भरे कांस्य-पात्र से मुख पर ढका हुआ हो। दाता को दान दिवस के पूर्व दिन उपवास करना चाहिये। दान के दिन सर्वप्रथम जलशायिविष्णु की आदरपूर्वक पुष्प, धूप और उपहारों से अर्चना करनी चाहिये। जलधेनु दान का संकल्प कर, जलकुम्भ की पूजा कर, चतुर्थांश द्रव्य से निर्मित वत्स की भी पूजा करनी चाहिये। दान के समय दाता सफेद वस्त्र धारण करे। शान्त, वीतराग व मत्सर रहित चित्त वाला होकर, विष्णु प्रीति हेतु श्रेष्ठ ब्राह्मण को जल धेनु का दान करे। दान करते समय ''जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः'' वाक्य का उच्चारण करे। दान के उपरान्त एक दिन व एक रात बिना पके अन्न का भोजन करे।[14] घृतधेनुदान के समान ही धेनु के अन्य सभी अंगों की परिकल्पना करे। शक्त्यनुसार सुवर्ण दक्षिणा में दे, दान का फल निम्न प्रकार से बताया गया है -

अनेन विधिना दत्वा जलधेनुं नराधिप।
सर्वान्कामानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः ।।[15]

(5) क्षीरधेनु :

धर्मशास्त्रीय साहित्य में स्कन्दपुराण को आधार मानकर क्षीरधेनु दान का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गाय के गोबर से लिपी हुई भूमि पर गोचर्म-मान भूमि का पैमाना बनाकर, उस पर कुशों को बिछाकर कृष्णमृगचर्म बिछाना चाहिये। कृष्णमृगचर्म पर गोबर की कुण्डलिका बनाकर, उस पर दूध से भरा हुआ कुम्भ स्थापित करना चाहिये। इसी प्रकार चतुर्थांश से वत्स की स्थापना करनी चाहिये। क्षीरधेनु का मुख स्वर्ण से, सींग चन्दन व अगर से तथा कान उत्तम पत्तों से बनाकर तिल से भरे पात्र पर रखने चाहिये। मुख गुड से, जिह्वा शर्करा से , दाँत उत्तम मूल से, नेत्र मुक्ताफलों से, पैर इक्षुदण्डों से, रोम दर्भ से, गलकम्बल श्वेत कम्बल से, पीठ ताम्र से, दोहन पात्र कांस्य से, पूँछ पट्टसूत्र से, स्तन नवनीत से, सींग के अग्रभाग स्वर्ण से एवं खुर चाँदी से बनाने चाहियें। क्षीरधेनु की चारों दिशाओं में चार तिल से भरे हुए पात्र स्थापित करने चाहिये । इस क्षीरधेनु को वस्त्र के जोड़े से ढककर गन्ध और पुष्प से इसकी अर्चना करनी चाहिये। धूप और दीप इत्यादि से भी अर्चना कर ब्राह्मण को प्रदान करना चाहिये। क्षीरधेनु के दान का मन्त्र गुडधेनु में कहा गया मन्त्र ही है। आप्यायस्व (ऋग्वेद 1.91.16, 9.31.4) मन्त्र से क्षीरधेनु को प्रसन्न करना चाहिये। निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण प्रतिग्रहीता को करना चाहिये-

ग्रह्णामि त्वां देवि भक्तया कुटुम्बार्थे विशेषतः।
भरस्व कामैर्मां सर्वैः क्षीरधेनो नमोऽस्तु ते।।[16]

इस प्रकार दान देकर दिनभर दुग्धाहार पर ही रहना चाहिये। प्रतिग्रहीता ब्राह्मण तीन दिन तक दूध के आहार पर रहे। इस क्षीरधेनुदान का फल एक सहस्र वर्ष तक रुद्रलोक में महानता को प्राप्त करना बताया गया है।

(6) दधिधेनु :

दधिधेनुदान के विषय में धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में कहा गया है कि भूलेपन कृष्णाजिन आस्तरण इत्यादि के उपरान्त सप्तधान्य पर दही से भरा हुआ कुम्भ स्थापित कर उसके

चतुर्थांश से वत्स की स्थापना करनी चाहिये। इन दोनों के मुख भाग पर स्वर्ण रखना चाहिये। कान उत्तम पत्तों से, नेत्र मुक्ताफल से, सींग चन्दन और अगर से, मुख सुगन्धित पुष्पों की माला से अथवा कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्य समूह से, जिह्वा शर्करा से, नाक श्रीखण्ड से, दाँत फल और मूल से, गलकम्बल सफेद धागों से, पृष्ठभाग ताम्र से, रोम कुश से और पूँछ धागों से कल्पित करनी चाहिये। इसके सींग स्वर्ण से, खुर चाँदी से, स्तन नवनीत से, चरण इक्षुदण्ड से बनाने चाहियें। सभी आभूषणों से अलंकृत करके एवं वस्त्र के जोड़े से ढककर पुष्प और गन्ध से पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् बुद्धिमान् सच्चरित्र एवं कुलीन ब्राह्मण को दान प्रदान करना चाहिये। दान के समय, ब्राह्मण धेनु के पुच्छ भाग की ओर बैठा हो। ब्राह्मण को पादुका, उपानह और छत्र देकर गुडधेनु में कहे गये मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। दान देते समय ''दधिक्राव्णो अकारिषं....(ऋग्वेद 4.39.6) मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। दान देने के उपरान्त दिन भर में एक बार दही का आहार ग्रहण करना चाहिये। प्रतिग्रहीता ब्राह्मण तीन दिन तक दही के आहार पर रहे। [17]

(7) मधुधेनु :

धर्मशास्त्रकारों ने स्कन्दपुराण को उद्धृत कर मधुधेनु का वर्णन करते हुए लिखा है कि मधुधेनु सब पापों का नाश करने वाली होती है। मधुधेनु दान हेतु लिपी हुई भूमि पर कुश बिछाने चाहिये। कुशों पर कृष्णमृगचर्म बिछाकर शहद से भरे हुए कुम्भ स्वरूप, मधुधेनु की स्थापना करनी चाहिये। इसी प्रकार चतुर्थांश मधु से वत्स की भी स्थापना करनी चाहिये। इस मधुधेनु का मुख स्वर्ण से, सींग अगर व चन्दन से, पृष्ठ भाग ताँबे से, पूँछ धागों से, पैर इक्षुदण्ड से, गलकम्बल श्वेत कम्बल से, मुखाग्र गुड से, जिह्वा शर्करा से, नेत्र मोती से, दाँत फलों से, रोम कुश से, खुर चाँदी से, कान उत्तम पत्तों से एवं स्तन मक्खन से कल्पित किये जायेंगे। सप्तधान्य साथ में रखे जायेंगे। तिल से भरे चार पात्र धेनु की चारों दिशाओं में रखने होंगे। मधुधेनु को वस्त्र के जोड़े से ढककर, घण्टा और आभरणों से विभूषित कर, कांसे का दोहन पात्र रख, गन्ध और पुष्पों से पूजा कर, पुच्छ प्रदेश में बैठे हुए ब्राह्मणों को प्रदान करना चाहिये। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

रसज्ञा सर्वदेवानां सर्वभूतहितेरता।
प्रीयन्तां पितरो देवा मधुधेनो नमोऽस्तु ते॥

प्रतिग्रहीता दान लेते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करे-

अहं गृह्णामि त्वां देवि कुटुम्बार्थे विशेषतः।
कामान्कामदुघे धुङ्क्ष्व मधुधेनो नमोऽस्तु ते॥

प्रसन्नचित्त होकर ''मधु वाता ऋतायते....' (ऋग्वेद 1.90.6) मन्त्र से दान देने के उपरान्त दाता शहद और दूध का आहार कर दिन व्यतीत करे। प्रतिग्रहीता तीन रात तक दूध व शहद के आहार पर रहे।[18]

(8) रसधेनु :

स्कन्द पुराण को ही उद्‌धृत करते हुए धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में रसधेनु का वर्णन किया गया है। तदनुसार रसधेनु दान करने के लिए लिपी हुई भूमि पर कुश व कृष्णमृगचर्म बिछाकर गन्ने के रस से भरा हुआ धेनु प्रतीक घट स्थापित करना चाहिये। इसी प्रकार चतुर्थांश रस से वत्स की स्थापना करनी चाहिये। इस रस धेनु के पैर इक्षुदण्ड से, खुर रजत से, सींग और आभूषण स्वर्ण से, पूँछ वस्त्र से, स्तन घृत से, गलकम्बल पुष्पों से, मुख और जिह्वा शर्करा से, दाँत फलों से, पृष्ठ भाग ताम्र से, रोम पुष्पों से एवं नेत्र मुक्ताफलों से कल्पित होंगे। यह रस धेनु सप्तधान्य से युक्त होगी एवं इसकी चारों दिशाओं में दीपक होंगे। यह सभी उपकरणों एवं सभी गन्धों से युक्त होगी। इसकी चारों दिशाओं में तिल से भरे पात्र भी रखे जायेंगे। तत्पश्चात् पुष्प, गन्ध और मालाओं से इस धेनु की पूजा कर गुडधेनु में कहे गये मन्त्रों का स्मरण करते हएु उत्तम ब्राह्मण को दान देना चाहिये। दान देने के उपरान्त दाता और प्रतिग्रहीता दोनों ही एक दिन रस को ही भोजन रूप में ग्रहण करें। रसधेनु का दान करने से दाता के वंश के दश पूर्व पुरुषों व दश पर पुरुषों का उद्धार होता है, दाता का भी उद्धार होता है एवं उसको सोमपान का फल प्राप्त होता है, ऐसा धर्मशास्त्रकारों का मत है।[19]

(9) शर्करा धेनु :

शर्कराधेनु दान हेतु लिपी हुई भूमि पर कुश व तदुपरान्त कृष्णमृगचर्म बिछाकर, चार भार (तौल) की शर्करा से उत्तम, दो भार शर्करा से मध्यम अथवा एक भार शर्करा से कनिष्ठा धेनु अनुकृति की स्थापना करनी चाहिये। तीनों धेनुओं में चतुर्थांश भार से वत्स की स्थापना करनी चाहिये। धर्मशास्त्रकारों का मत है कि अपनी शक्ति के अनुसार ही धेनु की स्थापना करनी चाहिये। स्वयं को पीड़ित कर दान कार्य नहीं करना चाहिये।

धेनु के चारों ओर सभी प्रकार के धान्य स्थापित करने चाहियें। धेनु के शृंगाग्र स्वर्ण से, नेत्र मोतियों से, मुख गुड़ से, जिह्वा पिष्ट पदार्थों से, गलकम्बल रेशमी वस्त्र से, पैर इक्षुदण्ड से, खुर रजत से, स्तन नवनीत से, कान उत्तम पत्तों से एवं रोम कुश से कल्पित होंगे। यह धेनु कण्ठाभरण एवं श्वेत चँवर से सुशोभित होगी। पंचरत्न एवं गन्ध और पुष्पों से युक्त होगी। इसका दोहन पात्र कांस्य निर्मित होगा। इस प्रकार की शर्कराधेनु को वस्त्रों से आच्छादित कर, गन्ध और पुष्पों से अलङ्कृत कर दरिद्र, सदाचारी, बुद्धिमान, श्रोत्रिय, वेद-वेदाङ्ग के विद्वान् विशेष रूप से अग्निहोत्री, ईर्ष्या मात्सर्य आदि दोष रहित ब्राह्मण को दान देने से सब पापों का नाश, समस्त कामनाओं की प्राप्ति एवं सब प्रकार से समृद्धि प्राप्त होती है। शर्कराधेनु दान में ब्राह्मण को मुद्रिका एवं कर्णाभूषण भी धारण करवाने चाहियें। शक्ति के अनुसार गन्ध, पुष्प, चन्दन और दक्षिणा भी देनी चाहिये। दान के उपरान्त दाता एक दिन शर्कराहारी व ब्राह्मण तीन दिन तक शर्कराहारी रहे। मन्त्र पाठ इत्यादि अन्य सभी कार्य गुड़धेनु के समान होंगे।[20]

(10) कार्पास धेनु :

वराहपुराण को उद्धृत करते हए नीलकण्ठ ने कपास के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि विश्व के आच्छादन हेतु ब्रह्मा ने वस्त्र की रचना की है और वस्त्रों में भी कपास (के धागे) से निर्मित वस्त्र को उत्तम माना, इसलिए कार्पास धेनु दान का अत्यन्त महत्त्व है। यथा-

एवं विश्वस्य गुप्त्यर्थं ब्रह्मणा चांशुकं कृतम्।
कार्पासमूलं तच्चापि तेनासावुत्तमः स्मृतः॥

एक भार कार्पास से उत्तम, आधे भार कार्पास से मध्यम एवं चौथाई भार कार्पास से कनिष्ठ कार्पास धेनु का दान माना गया है। तिलधेनुदान के समान ही वस्त्र, धान्य, स्वर्ण इत्यादि से युक्त धेनु का एवं चतुर्थांश द्रव्य से वत्स का अंकन कर धेनु दान करना चाहिये । दान करते समय निम्न मन्त्रों का पाठ करना चाहिये-

हेमकुन्देन्दुसदृशे क्षीरार्णवसमुद्भवे।
सोमप्रिये सुधेन्वाख्ये सौरभेयि नमोऽस्तुते॥

दत्तेयमिन्दुनाथाय शशाङ्कायामृताय च।
अत्रिनेत्रप्रजाताय सोमराजाय वै नमः॥

इस प्रकार से कार्पासधेनु दान करने से चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है।[21]

(11) लवण धेनु :

धर्मशास्त्रकारों ने भविष्यपुराण को उद्धृत करते हुए लवणधेनु का वर्णन करते हुए कहा है कि गोबर से लिपी हुई भूमि पर दर्भ बिछाकर, दर्भों पर पूर्वाभिमुख भेड़ की खाल बिछाकर लवणधेनु की कल्पना करनी चाहिये। इसको वस्त्र से ढकना चाहिये। इस लवणधेनु के सींग स्वर्ण से मण्डित, खुर रजत से, पैर इक्षुदण्ड से, स्तन फलों से, जिह्वा शर्करा से, नाक गन्ध द्रव्यों से, कान समुद्र से उत्पन्न सीप से, सींग चन्दन काष्ठ से, नेत्र मोतियों से, कपोल सत्तू के पिण्डों से, मुख जौ से, गलकम्बल रेशमी वस्त्र से कल्पित होंगे। इसके गले में छत्रिका, पीठ पर ताम्रपात्र, अपान में गुड पिण्ड, पूँछ में कम्बल व स्तन प्रदेश मे रस एवं योनिप्रदेश में मधु अर्पित होगा। यह चारों ओर फलों से युक्त होगी। चतुर्थांश द्रव्यों से इसी प्रकार वत्स कल्पित होगा। स्नान कर, देवार्चन कर, धेनु की माला, वस्त्र व आभूषणों से पूजा कर, ब्राह्मणों की पूजा कर एवं सपरिवार धेनु की प्रदक्षिणा कर उपर्युक्त धेनुदान करना चाहिये। दान करते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदेवताः।
सर्वदेवमये देवि लवणाख्ये नमोऽस्तु ते॥

लवण धेनु के दान से सौभाग्य, परमवृद्धि व आरोग्य प्राप्ति होना कहा गया है।[22] नीलकण्ठ के मतानुसार अन्य पुराण में सोलह प्रस्थ लवण से धेनु व चार प्रस्थ लवण से वत्स का निर्माण कहा गया है।[23]

(12) सुवर्णधेनु :

सुवर्णधेनु दान में एक सुवर्ण मान शुद्ध स्वर्ण से धेनु एवं रौप्य परिमाण से वत्स का निर्माण कर दान देने का विधान है। यह धेनु मोतियों से विभूषित मूंगे के सींगों से युक्त, पद्मराग आदि मणियों से जटित, घृत पात्र से स्तनों वाली, कपूर और अगर की नासिका युक्त, शर्करा की जिह्वा युक्त, मिष्टान्न व रसों से युक्त, सींगों के मध्य शङ्ख युक्त, ललाट पर सीप युक्त, फलमय दांतयुक्त, पार्श्व में वस्त्र के जोड़े एवं रेशमी वस्त्र के गलकम्बल युक्त होनी चाहिये। इसके पैर इक्षुदण्ड से, कान नारियल से, घुटने गुड़ से,

अपान पंचगव्य से, पीठ कांस्य से एवं पूँछ रेशमी वस्त्र से कल्पित होनी चाहियें। यह पुष्पफलों से युक्त एवं छत्र व उपानह से युक्त होनी चाहिये। इस प्रकार की धेनु का दान करने से सहस्त्र अश्वमेध यज्ञों के फल की प्राप्ति होना कहा गया है। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

हिरण्यरेताः पुरुषः पुराणः कृष्णपिङ्गलः।
तप्तहेमच्छवि स्त्रष्टा विश्वात्मा प्रीयतामिति॥

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत वह्निपुराण के अनुसार चौदह सुवर्ण से उत्तम, सात सुवर्ण से मध्यम एवं चार सुवर्ण से कनिष्ठा सुवर्ण धेनु दान माना गया है। वत्स सदा चतुर्थांश से कल्पित होगा। अन्य सभी कार्य गुडधेनु के समान होंगे।[24]

(13) वन्ध्यात्वहरसुवर्णधेनुदान :

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में उद्धृत वायुपुराण के अनुसार पुत्र न होने पर चार प्रकार की वन्ध्या स्त्रियाँ होती हैं- वन्ध्या, काकवन्ध्या, स्त्रीप्रसू एवं मृत प्रजा। (पुत्र या पुत्री) किसी भी सन्तान से रहित वन्ध्या, एक सन्तान वाली काकवन्ध्या, केवल स्त्री सन्तान को उत्पन्न करने वाली स्त्री प्रसू एवं मृत सन्तान को उत्पन्न करने वाली मृतप्रजा। चारों प्रकार के बन्ध्यात्व को दूर करने वाले सुवर्णधेनुदान में एक पल स्वर्ण से धेनु तथा चौथाई पल स्वर्ण से वत्स बनवाना चाहिये । गले में घण्टा बाँधना चाहिये एवं धेनु और वत्स दोनों के तिलक होना चाहिये। धेनु के खुर रजत के एवं पूँछ में एक रत्न होना चाहिये। विधिपूर्वक उसकी अर्चना करनी चाहिये। नैवेद्य खीर हो। साथ ही लड्डू, पुए, गुड, लवण व बांस के सूप में जीरा हो। इसके पश्चात उदारवृत्ति, सर्वप्रिय, कालुष्यरहित, विद्या और विनयसम्पन्न सब शास्त्रों के मर्म को जानने वाले धर्मवेत्ता ब्राह्मण को बुलाकर उसकी भक्तिपूर्वक वस्त्र, गन्ध और पुष्पों से पूजा कर, धेनु और वत्स की उसी ब्राह्मण से पूजा करवायें तथा समिधाओं, घी और चरु से होम करवायें। ''सोमो धेनुं सोमो.....'' (ऋग्वेद 1.91.20) मन्त्र का उच्चारण करके धेनु की पूँछ पर हाथ रखकर ब्राह्मण को दान दे। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करें-

धेनुर्याऽङ्गिरसः सत्रे वसिष्ठे सुरभी च या।
दुहिता च तथा भानोरग्नेश्च वरुणस्य च॥

याश्च गावः प्रवर्तन्ते वनेषूपवनेषु च।
प्रीणन्तु ता मम सदा पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनाः॥

प्रयच्छन्तु दिवारात्रमविच्छेदं च सन्ततेः।
वन्ध्यात्वं काकवन्ध्यात्वं कन्याप्रसव एव च॥

तथैव मृतवत्सात्वं दोषं मम चतुर्विधम्।
दानेनानेन हरतु या सा कामदुघाऽनघा॥

इस दान में एक, छः, आठ या दस स्वाभाविक धेनु ब्राह्मण स्त्रियों को भी प्रदान करनी चाहिये।[25]

(14) स्वरूपतः धेनुदान :

सभी धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में धेनुदान की बहुशः प्रशंसा की गई है। गाय और वत्स के स्वरूपतः दान की विधि के विषय में कहा गया है कि गोदान करते समय ब्राह्मण की पूजाकर, सुवर्ण सहित घी का पात्र हाथ में लेकर उस घी में गाय की पूँछ को भिगोकर, ब्राह्मण के हाथ में कुश, तिल और जल ग्रहण करवाकर संकल्पपूर्वक बछड़े सहित गाय का दान किया जाता है। इस दान का फल समस्त वंश का उद्धार, समस्त पापों का क्षय एवं ईश्वर में प्रीति इत्यादि कहे गये हैं। दान करते समय निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करना चाहिये-

यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघप्रणाशिनी।
विश्वरूपधरोदेवः प्रीयतामनया गवा॥

घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः।
घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे॥

घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठितम्।
घृतं मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

धेनु को ले जाते हुए ब्राह्मण का अनुगमन कर गोमती विद्या का जप करना चाहिये। गोमती विद्या को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है -

गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलगन्धिकाः।
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्॥

अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम्।
पावनं सर्वभूतानां क्षरन्ति च वहन्ति च॥

हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि।
ऋषीणामपि होतॄणां गावो होमे प्रतिष्ठिताः॥

सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्।
गावः पवित्रं परमं गावो मङ्गलमुत्तमम्॥

गावः सर्वस्य लोकस्य गावो धन्याः सवाहनाः।
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्यः एव च॥

नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः।
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्॥

एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति।[26]

महाभारत के अनुसार गोमती विद्या का स्वरूप निम्न प्रकार से है-

गावो मामुपतिष्ठन्तु हेमशृंङ्ग्यः पयोमुचः।
सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा॥

गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा।
गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम्॥

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥[27]

दान की प्रतिष्ठा के लिए यथाशक्ति सुवर्ण दक्षिणास्वरूप देना चाहिये।

(15) उभयतोमुखी गोदान :

उभयतोमुखी गाय वह होती है, जो तुरन्त ही बछड़ा देने वाली होती है । गाय के पेट से बछडे का सिर बाहर प्रकट होते समय यह दान दिया जाता है। उभयतोमुखी गोदान के दिन दाता केवल जल अथवा दूध का आहार करे तथा साथ में यथाशक्ति स्वर्णप्रदान करे। इस दान में भी ब्राह्मण को आमन्त्रित कर एवं गाय को अलंकृत कर दान देना चाहिये। इस दान में समस्त व्याहृतियों से घी की चौरासी आहुतियाँ देकर, ब्राह्मणों

को भोजन करवाकर गाय का अनुगमन कर, पूर्व में कही गई गोमती विद्या का जाप कर, केवल जल अथवा दूध का आहार करना चाहिये।[28]

(16) वैतरणीगोदान :

इस दान में लाल अथवा काले रंग की गाय का दान किया जाता है। यह गौ स्वर्ण निर्मित सींगों, रजत निर्मित खुरों, कांस्य निर्मित दोहन पात्र से युक्त, काले रंग के वस्त्र के जोड़े से ढकी हुई, सप्त धान्य से युक्त होनी चाहिये। एक द्रोण कपास के शिखर पर रखे गये तांबे के पात्र में लौहदण्ड से युक्त, महामहिष पर आरूढ, पाश हाथ में लिए हुए यमराज का भी समावेश इस दान में करना चाहिये। इक्षुदण्डों से बनी हुई नौका को रेशमी वस्त्रों से बाँधकर, नौका पर इस धेनु को आरूढ करवाकर, साथ में उपानह और छत्र रखकर, जल के कमण्डलु को हाथ में लेकर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये-

यमद्वारे महाघोरा या सा वैतरणी नदी ।
तर्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं च गाम्॥

तत्पश्चात् प्रतिमा या चावलों के ढेर में विष्णु की, गाय की और ब्राह्मण की पूजा कर वैतरणी गौ का दान करना चाहिये। दान-मन्त्र निम्नलिखित है-

विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेव पङ्क्तिपावन।
सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्ता वैतरणी च गौः ॥

दक्षिणा में सुवर्ण देकर, उस धेनु की पूँछ पकड़कर, अनुगमन करना चाहिये। यह दान यम द्वार पर स्थित वैतरणी नामक महानदी को पार करने हेतु दिया जाता है।[29]

इस प्रकार धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में स्वरूपतः धेनुदान एवं अनुकृति स्वरूप धेनुदान दोनों को ही अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया गया है। वृहत्पराशरस्मृति के दशम अध्याय में भी धेनुदान, उभयतोमुखीगोदान, तिलधेनुदान, घृतधेनुदान,जलधेनुदान एवं सुवर्णधेनुदान का किंचित् सूक्ष्म अन्तर के साथ विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

हेमाद्रि ने आदित्य पुराण को उद्‌धृत करते हुए तिलधेनु के विषय में लिखा है कि यदि कोई दरिद्र तिलधेनु दान करना चाहे, तो लिपी हुई भूमि पर धेनु की आकृति बनाकर उसके सभी अंगों में तिल फैलाकर (विकीर्ण कर) भी दान दे सकता है। हेमाद्रि ने सप्तम

अध्याय में अन्यान्य ग्रन्थों को उद्धृत करते हुए भी धेनुदानों का चित्रण किया है किन्तु मूल रूप में उपरिवर्णित धेनुदानों को ही स्वीकार किया है। अन्य ग्रन्थों में वर्णित धेनुदानों व उपर्युक्त धेनुदानों की विधि में कोई महदन्तर भी प्राप्त नहीं होता है ।

(17) वृषभ दान :

यहाँ गोदान के प्रसंग में वृषभ दान पर विचार करना उचित होगा। हेमाद्रि ने स्कन्दपुराण को उद्धृत कर वृषभ के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है-

उत्पाद्य सस्यानि तृणं चरन्ति,
तदेव भूयः सकलं वहन्ति।
न भारखिन्नाः प्रवदन्ति किंचित्,
अहो वृषैर्जीवति जीवलोकः ॥[30]

महाभारत में वृषभ-दान के विषय में कहा गया है-

युवानमिन्द्रियोपेतं शतेन सह यूथपं ।
गवेन्द्रं ब्राह्मणेन्द्राय भूरिशृंगमलङ्कृतं ॥

वृषभं ये प्रयच्छन्ति श्रोत्रियाय परन्तप।
ऐश्वर्यन्तेऽभिजायन्ते जायमानान् पुनः पुनः ॥[31]

हेमाद्रि ने आदित्यपुराण को उद्धृत कर, वृषभदान की विधि प्रस्तुत करते हुए कहा है-

यो वै ददात्यनड्वाहं सुशीलं साधुवाहिनं।
उभयोः पार्श्वयोर्दत्वा छत्रोपानहकम्बलं॥

शीलवेदाङ्गसम्पन्ने हृष्टे शिष्टे द्विजे नरः।
पुष्ये च जन्मनक्षत्रे अयने विषुवेषु च ॥

दत्त्वा तस्य अनड्वाहं सर्वरत्नैरलंकृतं।
दत्त्वा तस्य अनड्वाहं तस्मिंस्थाने महामुने॥

क्षुत्पिपासार्दितस्यापि अग्रतः प्रतिपद्यते।
दत्त्वा प्रजापतेर्लोकान्विशोकः प्रतिपद्यते॥[32]

हेमाद्रि ने अनुकृति स्वरूप हिरण्यवृषदान एवं रूप्यवृषदान विधियों का भी विस्तार से वर्णन किया है।

(2) पर्वतदान

धेनुदान के अन्तर्गत जिस प्रकार विविध द्रव्यों से धेनु की अनुकृति बनाकर दान दिया जाता है, उसी प्रकार विविध द्रव्यों से पर्वतों की अनुकृति बनाकर दान देने का विधान भी धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस प्रकार के दान को पर्वतदान की संज्ञा दी गई है। मत्स्यपुराण में दस प्रकार के पर्वत दानों का उल्लेख किया गया है। यथा-

प्रथमो धान्यशैलः स्याद्द्वितीयो लवणाचलः ॥
गुडाचलस्तृतीयः स्याच्चतुर्थो हेमपर्वतः ।
पंचमस्तिलशैलः स्यात्षष्ठः कार्पासपर्वतः ॥
सप्तमो घृतशैलः स्याद्रत्नशैलस्तथाष्टमः ।
राजतो नवमस्तद्वद्दशमः शर्कराचलः ॥[33]

(1) धान्य पर्वत

धान्य पर्वत दान करने के इच्छुक यजमान सर्वप्रथम उचित देश और काल का निर्णय कर अठारह हाथ का मण्डप बनवाये। इस मण्डप का पूर्व व उत्तर दिशा में एक ही द्वार हो व एक तोरण होना चाहिये। पूर्व दिशा में एक हाथ का एक कुण्ड व पूर्व दिशा में ही एक हाथ की एक ग्रहवेदी बनवाये। मण्डप के मध्य कुश बिछाकर एक हजार द्रोण परिमित राजशालि नामक उत्कृष्ट चावलों से उत्तम, पाँच सौ द्रोण से मध्यम व तीन सौ द्रोण चावलों से यथाशक्ति मेरु पर्वत बनवाना चाहिये । मेरु के ऊपर मध्य में कल्पवृक्ष तथा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण व उत्तर दिशाओं में क्रमशः हरिचन्दन, सन्तान, मन्दार एवं पारिजात वृक्षों की स्थापना करनी चाहिये। शर्कराचलदान में सन्तान व हरिचन्दन वृक्षों की स्थापना आवश्यक है। अन्य पर्वत दानों में उपर्युक्त दोनों वृक्षों की यथाशक्ति स्थापना की जा सकती है। मेरु की पूर्वादि दिशाओं में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और सूर्य की स्वर्णमयी प्रतिमाएँ तथा मुनियों एवं पक्षियों के समूह स्थापित करने होंगे। पर्वत की पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में सम संख्या में क्रमशः मुक्ताफल और हीरे, गोमेद और पुष्पराग, मरकत और नीलकान्त मणि तथा वैदूर्य और पद्मरागमणियों से विभूषित चार पर्वत शृंग

बनाने होंगे। इन चार शृंगों के बाहर आठों दिशाओं में इन्द्रादि आठों लोकपालों की रजत निर्मित प्रतिमाएं स्थापित करनी होंगी। चारों ओर रंगों के द्वारा लताओं के स्थान पर मूंगे, शिलाओं के स्थान पर सीप, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में मेघों के स्थान पर क्रमशः श्वेत, पीत, कर्बुर एवं रक्त वस्त्र, बांसों के स्थान पर इक्षु दण्ड, जल के स्थान पर घृत का प्रयोग करना होगा। चारों ओर गन्ध, पुष्प और विविध फल स्थापित कर दक्षिण में ऊपर पंचवर्ण वितान बाँधना होगा। तत्पश्चात् मेरु के सोलहवें अंश परिमित यवों से पूर्व में मन्दराचल का निर्माण किया जायेगा। इसके ऊपर नररूपधारी गणत्रय, स्वर्ण का कदम्ब वृक्ष एवं कदम्ब वृक्ष के नीचे स्वर्णनिर्मित कामदेव की स्थापना करनी होगी। अरुणोद सरोवर के स्थान पर दुग्धपूर्ण रजतपात्र रखना होगा। रजत का ही चैत्ररथ नामक वन, गन्ध, पुष्प, फल, वस्त्र आदि स्थापित करने होंगे। दक्षिण दिशा में मेरुं के सोलहवें अंश गेंहू से गन्धमादन पर्वत का निर्माण होगा। इस गन्धमादन पर्वत पर स्वर्णनिर्मित जम्बू वृक्ष, उसके नीचे स्वर्णनिर्मित उत्तराभिमुख कुबेर प्रतिमा, मानसरोवर के स्थान पर घी से भरा रजतपात्र, रजतनिर्मित ही गन्धर्व नामक वन, विविध फल, वस्त्र और मालाएँ भी स्थापित करनी होंगी। पश्चिम दिशा में मेरु के षोडशांश तिल से विपुल पर्वत बनाना होगा। इसके ऊपर स्वर्ण निर्मित पीपल व उसके नीचे पूर्वाभिमुख स्वर्ण निर्मित हंस प्रतिमा, सितोद सरोवर के स्थान पर दूध व दही से भरा रजत पात्र एवं रजत निर्मित वैभ्राजवन, वस्त्र, फल एवं मालाओं की स्थापना करनी होगी। उत्तर दिशा में मेरु के षोडशांश परिमित माष से सुपार्श्व पर्वत, उसके ऊपर स्वर्ण निर्मित वट वृक्ष के नीचे दक्षिणाभिमुखी सवत्सा स्वर्णनिर्मित धेनु, भद्रसरोवर के स्थान पर मधु से भरे हुए रजत पात्र, रजत निर्मित सावित्री वन, वस्त्र एवं फलादि की स्थापना करनी होगी।

तत्पश्चात् दान के पूर्व दिन धान्य पर्वत दान का सङ्कल्प कर, गणेश पूजा, स्वस्ति वाचन, मातृपूजा, नान्दी श्राद्ध, आचार्य ऋत्विग्वरण, उनका मधुपर्क से पूजन, मण्डपपूजन, आचार्य विनियोग आदि कार्य करना चाहिये। आचार्य भी ग्रहादि स्थापना से लेकर कुण्ड के समीप कलश स्थापना तक का कार्य करे। ऋत्विज कुण्ड में ग्रहादि बत्तीस देवताओं को उनके मन्त्रों से तिलों से पृथक् एवं जौ और घृत मिलाकर तथा कुशों से प्रत्येक को आठ-आठ बार आहुति देकर दश लोकपालों,आठ वसुओं और द्वादश आदित्यों में प्रत्येक के लिए समिधाओं या तिलों से आठ-आठ आहुतियाँ दें । तत्पश्चात्

पुरुष सूक्त द्वारा ब्रह्मा, विष्णु व शिव के लिए समिधाओं या तिलों से एवं सूर्य, कामदेव कुबेर, हंस एवं कामधेनु के लिए तिल व घी से एक सौ आठ आहुतियाँ दें। इनमें चौवन तिलों से व चौवन घी से आहुतियाँ होंगी। तदनन्तर यजमान मेरु का आह्वान कर मन्त्रपूर्वक पूजा करे, पूजन मन्त्र निम्न प्रकार से होंगे-

त्वं सर्वदेवगणधामनिधिर्विरुद्धमस्मद्गृहेऽप्यमरपर्वत नाशयाशु

क्षेम विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमां नः संपूजितः परमभक्तिमता मयाद्य।

त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः।
मूर्तामूर्तं परं बीजमतः पाहि सनातन॥

यस्मात्त्वं लोकपालानां पाहि त्वं विश्वमन्दिरम्।
रुद्रादित्यवसूनां च ततः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च शिरस्तव।
तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात्॥

मन्दराचल का पूजन मन्त्र-

यस्माच्चैत्ररथेन त्वं भद्राश्वप्रमुखेन च।
शोभसे मन्दर क्षिप्रमलं तुष्टिकरो भव॥

गन्धमादन पर्वत का पूजन मन्त्र-

यस्माच्चूडामणिर्जम्बूद्वीपे त्वं गन्धमादन।
गन्धर्ववनशोभावाँस्ततः कीर्तिर्दृढाऽस्तु मे॥

विपुलाचल का पूजन मन्त्र-

यस्मात्त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च।
हिरण्मयाश्वत्थशिरास्तस्मात्पुष्टिर्दृढाऽस्तु मे॥

सुपार्श्व पर्वत का पूजन मन्त्र-

उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात्सावित्रेण वनेन च।
सुपार्श्व शोभसे नित्यमतः श्रीरक्षयाऽस्तु मे॥

तत्पश्चात् सबके द्वारा रात्रि जागरण कर लेने के उपरान्त, स्नान कर, कुण्ड के समीप स्थित कलश के जल से यजमान का अभिषेक करें। अभिषेक के पश्चात् दानकर्त्ता पुष्प लेकर मेरु की प्रदक्षिणा कर अन्न की स्तुति करे। स्तुति मन्त्र निम्नलिखित है-

अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
अन्नाद् भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते॥

अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः।
धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नमो नमः॥

इस प्रकार स्तुति कर गुरु आदि को क्रमशः पर्वतों का दान करे। दान के उपरान्त दक्षिणास्वरूप गाय दे। चौबीस गाय दक्षिणा में होने पर, आठ गाय गुरु को व चार-चार ऋत्विजों को दे। दस गाय होने पर छः गुरु को व एक-एक ऋत्विजों को दे। आठ या सात में से चार या तीन गुरु को व एक-एक ऋत्विजों को, पांच होने पर एक-एक सबको, एक होने पर गुरु को ही कपिला गौ व ऋत्विजों को सुवर्ण दक्षिणा में दे। यजमान ग्रहवेदी पर देवताओं की पूजा कर नमस्कार करे। गुरु उनका विसर्जन करे। यजमान मण्डपादि सामग्री गुरु को देकर, ब्राह्मण भोजन करवाकर उनको दक्षिणा देकर विष्णु का स्मरण कर, ब्राह्मणों का आशीर्वाद लेकर, मित्र व बन्धु-बान्धवों के साथ भोजन करे। इस प्रकार से धान्यपर्वत दान का विवेचन प्रस्तुत किया गया। अन्य सभी पर्वत दानों में भी उपर्युक्त विधि का ही अवलम्बन किया जायेगा।

(2) लवणपर्वत :

धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में पुराणों को आधार मानकर ''लवणपर्वतदान'' की विधि का निरूपण करते हुए कहा गया है कि षोडश द्रोण लवण का पर्वत उत्तम, आठ द्रोण लवण का मध्यम और चार द्रोण लवण का कनिष्ठ होता है। यदि दाता के पास धन की कमी हो तो कम से कम एक द्रोण लवण से लवण-पर्वत का दान कर सकता है, किन्तु एक द्रोण से कम लवण नहीं होना चाहिये। मेरु के चतुर्थांश लवण से अर्थात् चार-चार, दो-दो या एक-एक द्रोण लवण से विष्कम्भ पर्वतों का निर्माण करना चाहिये। नीलकण्ठ के अनुसार कतिपय धर्मशास्त्रकारों के मत से मेरु के एक ही चतुर्थांश से भी चारों विष्कम्भ पर्वतों का निर्माण किया जा सकता है।[34] लवणपर्वतदान में भी धान्यपर्वत दान के समान ही ब्रह्मा आदि देवों, स्वर्ण-वृक्षों, लोकपालों, सरोवरों, कामदेव आदि की

स्थापना की जानी चाहिये। तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से अर्चना करनी चाहिये -

सौभाग्यसररससम्भूतो यतोऽयं लवणो रसः।
तदात्मकत्वेन च मां पाहि पापान्नमो नमः॥

यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना।
प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥

विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्द्धनम्।
तस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात्॥[35]

अर्चना के उपरान्त विधिपूर्वक लवणपर्वत का दान करना चाहिये। दान का फल निम्न प्रकार से बताया गया है-

अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम्।
उमालोके वसेत्कल्पं ततो याति परां गतिम्॥[36]

(3) गुडपर्वत :

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में पुराणों को ही उद्धृत करते हुए गुडपर्वत दान का वर्णन किया गया है। तदनुसार उत्तम गुडपर्वत दस भार गुड से, मध्यम गुडपर्वत पांच भार गुड से एवं कनिष्ठ गुडपर्वत तीन भार गुड से निर्मित किया जाता है। अल्प धन सामर्थ्य वाला यजमान इससे भी आधे अर्थात् डेढ भार गुड से गुड पर्वत दान कर सकता है। गुड पर्वत दान में भी धान्य पर्वतदान के समान स्वर्ण वृक्ष, वन, सरोवर, देव, लोकपाल, विष्कम्भ पर्वतादि की स्थापना, होम, रात्रि जागरण, देव पूजन आदि कार्य सम्पन्न होंगे। गुड पर्वत दान देते समय दाता निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण करे-

यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरश्च जनार्दनः।
सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम्॥

प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा।
तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः॥

मम तस्मात्परां लक्ष्मीं ददस्व गुडपर्वत।
यस्मात्सौभाग्यदायिन्या भ्राता त्वं गुडपर्वत॥

निवासश्चापि पार्वत्यास्तस्मान्मां पाहि सर्वदा ॥[37]

उपर्युक्त मन्त्रों का उच्चारण करने के पश्चात् उत्तम ब्राह्मणों को विधिपूर्वक गुडपर्वत दान करना चाहिये। दान का फल निम्न प्रकार से बताया गया है-

अनेन विधिना यस्तु दद्याद् गुडमयं गिरिम्।
पूज्यमानः स गन्धर्वैः गौरीलोके महीयते ॥

पुनः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्।
आयुरारोग्यसम्पन्नः शत्रुभिश्चापराजितः ॥[38]

(4) सुवर्णपर्वत :

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में सुवर्ण पर्वत दान के लिए कहा गया है कि सुवर्ण पर्वत दान से पापों का हरण व ब्रह्मलोक गमन होता है। सहस्र पल स्वर्ण से उत्तम, पांच सौ पल स्वर्ण से मध्यम व दो सौ पचास पल स्वर्ण से कनिष्ठ सुवर्ण पर्वत का निर्माण किया जाता है। अल्प धन वाला यजमान यथाशक्ति एक पल स्वर्ण से लेकर अधिकाधिक स्वर्ण से सुवर्ण पर्वत दान कर सकता है। सुवर्ण पर्वत दान की भी समस्त प्रक्रिया धान्य पर्वत के समान होगी। उसी प्रकार से विष्कम्भ पर्वत ऋत्विजों को एवं मुख्य मेरु पर्वत आचार्य को प्रदान किया जायेगा। दान देते समय दाता को निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करना चाहिये-

नमस्ते ब्रह्मगर्भाय ब्रह्मबीजाय वै नमः।
यस्मादनन्तफलदस्तस्मात्पाहि शिलोच्चय ॥

यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्मात्तेजो जगत्पतेः ॥
हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम ।[39]

तत्पश्चात् धान्य पर्वत के समान विधिपर्वूक सुवर्णपर्वत की अर्चना कर ब्राह्मणों को दान प्रदान करना चाहियें। दान का फल निम्न प्रकार से बताया गया है -

अनेन विधिना यस्तु दद्यात्कनकपर्वतम् ॥
स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकरम्।

तत्र कल्पशतं तिष्ठेत्ततो याति परां गतिम् ॥[40]

हेमाद्रि का मत है कि अल्प द्रव्य होने पर ही गुरु को मेरु पर्वत व ऋत्विजों को विष्कम्भ पर्वतों का दान होगा। पर्याप्त द्रव्य होने पर तो तुलापुरुषदान के समान आधा या चतुर्थांश गुरु को व गुरु की आज्ञा से शेष द्रव्य ऋत्विजों व अन्य विशिष्ट ब्राह्मणों को देय होगा।[41]

(5) तिलपर्वत :

तिल पर्वत दान के विषय में धर्मशास्त्रकारों का मत है कि- उत्तम तिल पर्वत का दस द्रोणतिलों से, मध्यम तिल पर्वत का पांच द्रोण तिलों से व कनिष्ठ तिलपर्वत का तीन द्रोण तिलों से निर्माण करना चाहिये। शेष समस्त अंगों का निर्माण धान्य पर्वत के समान ही करना चाहिये। तिलपर्वत के दान मन्त्र निम्नलिखित हैं-

यस्मान्मधुवने विष्णोर्देहस्वेदसमुद्भवाः।
तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छं नो भवत्विह॥

हव्यकव्येषु यस्माच्च तिलैरेवाभिरक्षणम्।
भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचल नमोऽस्तु ते॥[42]

तिलपर्वत दान का फल निम्न प्रकार से उल्लिखित है-

इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम्॥
स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिर्दुर्लभम्।

दीर्घायुष्यमवाप्नोति पुत्रं पौत्रं च मानवः॥
पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं ब्रजेत्॥[43]

(6) कार्पासपर्वत :

कपास का पर्वतदान भी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ भेद से तीन प्रकार का होता है। बीस भार कपास से उत्तम, दस भार कपास से मध्यम एवं पांच भार कपास से कनिष्ठ कार्पासपर्वतदान होता है। यदि अल्प मात्रा में धन हो, तब भी एक भार कपास से तो पर्वतदान करना ही चाहिये। धान्य पर्वत के समान समस्त सम्भार तैयार कर उसी विधि-विधान से प्रभातकालीन रात्रि में निम्न मन्त्र का पाठ करते हुए कार्पासपर्वत का दान करना चाहिये -

त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा।
कार्पासाचल तस्मात्त्वमघौघध्वंसनो भव॥[44]

दान का फल निम्न प्रकार से कहा गया है -

एवं कार्पासशैलेन्द्र यो दद्याच्छर्वसन्निधौ।
रुद्रलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह॥[45]

(7) घृतपर्वत :

धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में घी को दिव्य तेजोमय बताते हुए घृतपर्वतदान को सभी पापों का नाश करने वाला बताया गया है। बीस घृत कुम्भों का घृतपर्वत उत्तम, दस घृत कुम्भों का मध्यम व पांच घृतकुम्भों का कनिष्ठ माना गया है। अल्पवित्त वाला दाता दो घृत कुम्भों से भी घृतपर्वत दान कर सकता है। कुम्भ का परिमाण सहस्र पल होगा। घृत पर्वत के चतुर्थांश से विष्कम्भ पर्वतों का निर्माण होगा। कुम्भों के ऊपर शालितण्डुल से भरे हुए पात्र रखे जाने चाहियें। इन कुम्भों को दान देने हेतु शोभन प्रकार से रखकर, श्वेत वस्त्रों, इक्षुदण्डों एवं फल आदि से ढकना चाहिये। शेष विधान धान्यपर्वत के समान करना चाहिये अधिवासन, होम, देवपूजन आदि उसी प्रकार से करने चाहिये। प्रभातकालीन रात्रि में इस घृतपर्वत का दान गुरु को देना चाहिये। विष्कम्भपर्वत ऋत्विजों को देने चाहिये। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

संयोगाद्घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसः।
तस्माद्घृतार्चिर्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शङ्करः॥

यच्च तेजोमयं ब्रह्म घृते तच्च व्यवस्थितम्।
घृतपर्वतरूपेण तस्मान्नः पाहि भूधर॥[46]

दान का फल निम्न प्रकार से उद्धृत है-

अनेन विधिना दद्याद् घृताचलमनुत्तमम्॥
महापातकयुक्तोऽपि लोकमाप्नोति शाङ्करम्।
हंससारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना॥
विमानेनार्कवर्णेन सिद्धविद्याधरार्चितः।
विचरेत्पितृभिः सार्द्धं यावदाभूतसंप्लवम्॥[47]

(8) रत्नपर्वत :

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में रत्नपर्वतदान के विषय में कहा गया है कि- सहस्त्र मुक्ताफलों से उत्तम, पांच सौ मुक्ताफलों से मध्यम एवं तीन सौ मुक्ताफलों से कनिष्ठ रत्नपर्वतदान करना चाहिये। मुख्य रत्न पर्वत के चतुर्थांश से चारों ओर विष्कम्भपर्वतों का निर्माण करना चाहिये। पूर्व में हीरे और गोमेद रत्नों से मन्दराचल, दक्षिण में इन्द्रनील और पद्मराग मणियों से गन्धमादन, पश्चिम में वैदूर्य एवं विद्रुम से विपुलाचल एवं उत्तर में पद्मराग और पन्ना से सुपार्श्वपर्वत का विन्यास करना चाहिये । ये सभी मणियाँ सम संख्या में होंगी । शेष समस्त कार्य धान्यपर्वत के समान होगा। इसमें स्वर्णमय-ग्रह देवताओं की पुष्प और जल से अर्चना करनी चाहिये और प्रभात काल में विसर्जन करना चाहिये । दान के समय निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करना चाहिये-

यथा देवगणाः सर्वे रत्नेष्वेव व्यवस्थिताः।
त्वं च रत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचल॥

यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिं प्रकुरुते हरिः।
सदा रत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि पर्वत ॥[48]

दान का फल निम्न प्रकार से बताया गया है-

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमहागिरिम्।
स याति वैष्णवं लोकममरेश्वरपूजितः॥

यावत्कल्पशतं साग्रं वसेदिह नराधिप।
रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥

ब्रह्महत्यादिकं यत्स्यादिह वाऽमुत्र वा कृतम्।
तत्सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा॥[49]

(9) रौप्यपर्वत :

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में रौप्यपर्वतदान अथवा रजत पर्वत दान के विषय में कहा गया है कि दस सहस्त्र पल रजत से उत्तम रजतपर्वत, पांच सहस्त्र पल रजत से मध्यम रजत पर्वत एवं ढाई सौ पल रजत से कनिष्ठ रजत पर्वत का दान करना चाहिये। असामर्थ्य

की अवस्था में कम से कम बीस पल रजत से रजतपर्वतदान करना चाहिये । विष्कम्भपर्वतों की स्थापना चतुर्थांश रजत से करनी चाहिये। स्वर्णनिर्मित लोकपालों, ब्रह्मा, विष्णु व शिव की अर्चना करनी चाहिये। पर्वत का नितम्ब भाग स्वर्ण निर्मित होना चाहिये। अन्य पर्वत दानों में जो-जो अंग रजत से निर्मित होगा, रजत पर्वत दान में वह-वह भाग स्वर्ण निर्मित होगा। धान्यपर्वत दान के समान ही होम जागरण आदि भी करने चाहिये । तत्पश्चात् प्रभातकाल में गुरु को रजत-पर्वत दान करना चाहिये। ऋत्विजों को वस्त्र और आभूषणों से सम्मानित कर विष्कम्भपर्वत दान करने चाहिये । दान देते समय कुश हाथ में लेकर निम्न मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

पितृणां वल्लभं यस्मात् धर्मेन्दोः शङ्करस्य च।
रजतं पाहि तस्मान्नः शोकसंसारसागरात्।।[50]

दान का फल निम्न प्रकार से बताया गया है-

इत्थं निवेद्य यो दद्याद्रजताचलमुत्तमम्।
गवां दशसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः।।

सोमलोके स गन्धर्वैः किन्नराप्सरसां गणैः।
पूज्यमानो वसेद्धीमान्यावदाभूतसंप्लवम्।।[51]

(10) शर्करार्वत :

शर्करा पर्वत के विषय में धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में बताया गया है कि शर्करापर्वत के दान से विष्णु, रुद्र और सूर्य सदा सन्तुष्ट होते हैं। आठ भार तौल शर्करा से उत्तम, चार भार तौल शर्करा से मध्यम व दो भार तौल शर्करा से कनिष्ठ शर्करापर्वत दान माना जाता है। शर्करापर्वत तौल के चतुर्थांश से विष्कम्भ पर्वतों का निर्माण होगा। अल्पधनसामर्थ्य वाला व्यक्ति एक भार या आधा भार शर्करा से भी शर्करापर्वत दान कर सकता है। मेरु पर्वत के ऊपर कल्पवृक्ष के दोनों ओर मन्दार और पारिजात वृक्ष तथा पूर्व और पश्चिम भाग में हरिचन्दन और सन्तान वृक्ष की स्थापना करनी चाहिये। मन्दरपर्वत पर पूर्व की ओर झुके हुए कामदेव, गन्धमादन की चोटी पर उत्तराभिमुख कुबेर, विपुलाचल पर पूर्वाभिमुख वेदमूर्ति हंस एवं सुपार्श्वपर्वत पर दक्षिणाभिमुखी स्वर्णमयी सुरभि गौ की स्थापना करनी चाहिये। धान्य पर्वत के समान आवाहन होमादि सभी कार्य करने चाहियें।

गुरु को मध्य पर्वत दान देना चाहिये व ऋत्विजों को चारों विष्कम्भ पर्वत दान में देने चाहिये। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करना चाहिये-

सौभाग्यामृतसारोऽयं परमः शर्कराचलः।
तन्ममानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा॥

अमृतं पिबतां ये तु निपेतुर्भुवि शीकराः।
देवानां तत्समुदयं पाहि नः शर्कराचल॥

मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः।
धन्योऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात्॥[52]

दान का फल निम्न प्रकार से उद्धृत है-

यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति शिवमन्दिरम्॥

चन्द्रादित्यप्रतीकाशमधिरुह्याऽनुजीविभिः।
स हेमयानमातिष्ठेत्ततो विष्णुपुरं व्रजेत्॥

ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्।
आयुरारोग्यसम्पन्नो यावज्जन्मायुत्रयम्॥[53]

सभी पर्वतदानों में ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिये। दान के पूर्व दिन उपवास करना चाहिये । दान के अनन्तर गुरु आदि की आज्ञा से दूध रहित किन्तु लवण युक्त भोजन करना चाहिये।

(11) शिखरदान :

नीलकण्ठ ने विष्णुधर्मोत्तरपुराण को उद्धृत करते हुए शिखरदान के विषय में कहा है कि माघ अथवा मार्गशीर्षशुक्लतृतीया को, रोहिणी युक्त वैशाख शुक्ल तृतीया को एवं भाद्रपद शुक्ल तृतीया को विशेष रूप से शिखर दान करना चाहिये । गुड,ईख, वस्त्र, लवण, धनिया, जीरा, शर्करा, खजूर, चावल, दाख, शहद, चन्दन, फल इत्यादि का शिखर दान किया जा सकता है। शिखरदान एक बालिश्त से लेकर दाता की लम्बांई के बराबर तक किया जाने का विधान है। दान देने हेतु सर्वप्रथम गोबर से लिपी हुई भूमि पर ईख के पत्ते बिछाने चाहियें। इसके पश्चात् उपर्युक्त पदार्थों में से किसी एक पदार्थ

का शिखर बनाकर, उसके ऊपर गौरी को स्थान प्रदान करना चाहिये। गौरी प्रतिमा में दो हाथ का मूल भाग एवं एक हाथ का सिर बनाना चाहिये। शिखर की भित्ति इक्षु समूह से बनाकर सबको लाल वस्त्र से वेष्टित करना चाहिये। इक्षुपत्रों की बनी चटाई पर ही चतुभुर्जा स्वर्णमयी गौरी की स्थापना कर कुङ्कुम से पूजा करनी चाहिये। (गौरी का स्वरूप परिशिष्ट संख्या 07 में देखा जा सकता है।) सूक्ष्म वस्त्र से देवी व शिखर को ढकना चाहिये। इसके पश्चात् गौरी के आठों अंगों की पूजा भक्तिपूर्वक निम्न मन्त्रों से करनी चाहिये-

नमो भवान्यै पादौ तु कामिन्यै जानुनी नमः।
वामदेव्यै तथा चोरू नाभिं चैव जगत्प्रिये॥

आनन्दायै तु हृदयं नन्दायै पूजयेत्स्तनौ।
सुभद्रायै मुखं पूज्यं ललितायै नमः शिरः॥

इस प्रकार देवी की पूजा कर निम्न प्रकार से शिखरों को अभिमन्त्रित करना चाहिये-

यस्मान्निवासः पार्वत्याः शिखर त्वं सुरैर्वृतः।
तथा निवासः सर्वेषां तस्मान्मां त्राहि भक्तितः॥

तस्मान्मां पाहि भगवँस्त्वं गौरीशिखरः सदा।
यस्मात्त्वं सर्वभूतानामुपरिष्टादवस्थितः॥
तस्माच्छिवः प्रीयतां मे तव दानेन सर्वदा।

स्नान कर प्रभातकाल में उपर्युक्त मन्त्र बोलते हुए आधा, चौथाई या पाँचवां भाग गुरु को देना चाहिये। शेष भाग बन्धुओं, शेष जनों, स्वजनों अनुजीवियों और दीन-अनाथों को देना चाहिये। उस दिन दाता ब्राह्मणों को भोजन करवाये। स्वयं मौन रहकर एवं केश खुले रखकर क्षीर या घृत का भोजन करे। दान का फल निम्न प्रकार से बतलाया गया है-

विधिनाऽनेन यो दद्याद् गौर्याः शिखरमुत्तमम्॥
स वसेद्भवने देव्याः कल्पकोटिशतत्रयम्।
पुण्यक्षयादिहायातो जायते पृथिवीपतिः॥

रात्रिजागरण, उपवास आदि कार्य पर्वतदान के समान ही होंगे।

(3) महिषीदान

भविष्योत्तरपुराण के आधार पर महिषीदान का निरूपण करते हुए धर्मशास्त्रकारों की मान्यता है कि महिषीदान अत्यन्त पवित्र, आयु प्रदान करने वाला, सभी कामनाओं को प्रदान करने वाला एवं सुख प्रदान करने वाला है। चन्द्र, सूर्य ग्रहण, कार्तिक पूर्णिमा, अयन, शुक्लपक्ष की चतुर्दशी एवं सूर्य संक्रान्ति के दिन महिषीदान करना अधिक उत्तम माना जाता है। दान में महिषी प्रथमप्रसूता, तरुणी, सुशीला व दोषरहित होनी चाहिये। वह स्वर्णनिर्मित सींगों व तिलक से सुशोभित, लाल वस्त्र से ढकी हुई व तांबे के दोहन पात्र से युक्त होनी चाहिये। उसके साथ बलिपूर्ण बांस आदि का पात्र व स्वर्ण भी होना चाहिये। सप्तधान्य के साथ यह महिषी वेदपारंगत ब्राह्मण को ही दान करनी चाहिये। दान देते समय महिषी की प्रदक्षिणा कर, दाता निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करे-

इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा।
महिषीदानमाहत्म्यात्साऽस्तु मे कामदा सदा ॥

धर्मराजस्य माहात्म्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः।
महिषासुरस्य जननी या साऽस्तु वरदा मम॥

महिषी का प्रतिग्रह पीठ पर हाथ रखकर किया जाता है। दान का फल निम्न प्रकार से उल्लिखित है-

अनेन विधिना दत्त्वा महिषीं द्विजपुङ्गवे।
सर्वान्कामानवाप्नोति इहलोके परत्र च॥

या स्त्री ददाति महिषीं सा राजमहिषी भवेत्।
वैश्यस्तु धान्यधनवांछूद्रः सर्वार्थसंयुतः ॥[54]

(4) मेषी (भेड़) दान

धार्मशास्त्रीय साहित्य में मेषीदान को समस्त कालुष्य का नाशक एवं त्रिविध पापों को दूर करने वाला बताया गया है। मेषीदान दो प्रकार से दिया जा सकता है- प्रथम, सुवर्ण निर्मित मेषी एवं द्वितीय प्राकृतिकमेषी । दोनों ही प्रकार की भेड़ों (मेषियों) को स्वर्ण के तिलक एवं सभी प्रकार के अलङ्कारों से अलङ्कृत कर दान देने का विधान है। इन मेषियों को रेशमी वस्त्र धारण करवाने चाहियें एवं चन्दन से विभूषित करना चाहिये।

ये उत्तम पुष्पों, सर्वधातु, सर्वरस, सप्तधातु, फलादि से युक्त होनी चाहियें। सुवर्णमेषी सौ सुवर्णमात्र स्वर्ण से निर्मित होनी चाहिये अथवा दाता की शक्ति के अनुसार भी सुवर्णमेषी का निर्माण किया जा सकता है। यह मेषीदान अयन, विषुव, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, दुःस्वप्न देखने पर, जन्मनक्षत्र, तिथिक्षय आदि में करना उत्तम माना जाता है। नदी, तीर्थ, घर आदि में यह दान किया जा सकता है।

मेषीदान करने हेतु सर्वप्रथम चावल के पुंजरूप में अथवा स्वर्ण प्रतिमाओं के रूप में शिव-पार्वती, गायत्री सहित ब्रह्मा, लक्ष्मी सहित विष्णु, रति सहित कामदेव, लोकपालों एवं ग्रहों की स्थापना कर, उनकी विधिपूर्वक गन्ध, पुष्प आदि से पूजा करनी चाहिये। होमकर्त्ता ब्राह्मण को वस्त्रों से अलंकृत कर देवताओं के नाम मन्त्रों से आठ-आठ या अट्ठाईस आहुतियाँ घी में भीगे तिलों से देकर होम करवाना चाहिये। तत्पश्चात् तिलकुम्भ के ऊपर लवण की ओर मुख करके बैठी हुई मेषी की विधिपूर्वक पूजा कर निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

रोमत्वङ्मांसमज्जाद्यैः सर्वोपकरणैः सदा।
जगतः संप्रवृत्ताऽसि त्वामतः प्रार्थयेप्सितम्॥

वाङ्मनः कायजनितं यत्किंचिन्मम दुष्कृतम्।
तत्सर्वं विलयं यातु त्वद्दानानुपसेवितम्॥

इस प्रकार कुटुम्बी ब्राह्मण को मेषीदान देकर दाता न तो उससे बात करे और न ही उसका मुख देखे। दान के उपरान्त दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये। दान का फल निम्न प्रकार से कहा गया है-

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम्।
दत्त्वा दानं शुभां कान्तिं कीर्तिं च विपुलां तथा॥[55]

(5) अजादान

अयन, विषुव, युगादि, ग्रहण, अमावस्या व पूर्णिमा में अजादान करना उत्तम माना जाता है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में अजादान की विधि के संबंध में विचार प्रकट करते हुए कहा गया है कि - सप्तधान्य पर स्थित, वज्र निर्मित नेत्रों वाली, स्वर्णशृंगी, ताम्रनिर्मित पृष्ठ भाग वाली, वस्त्र और मालाओं से सुशोभित, दोहन पात्र युक्त, मेमने युक्त, रजत-

निर्मित खुरों वाली अजा का दान गोदान विधि से करना चाहिये। दान देते समय ब्राह्मण के हाथ पर जल छोड़ना चाहिये एवं निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

मन्त्रावासे अजे श्लक्ष्णे यज्ञसंपत्करे शुभे।
सृष्टा त्वं दह मे पापं जन्मान्तरशतैः कृतम्॥

''प्रीयतां यज्ञनाथाय वासुदेवाय वै नमः'' कहते हुए दानद्रव्य की प्रदक्षिणा कर सूर्य को देखना चाहिये एवं विष्णु का स्मरण कर घर जाना चाहिये । दान फल निम्न प्रकार से उल्लिखित है -

ये बालत्वे कृताः पापाः कामतो वाऽप्यकामतः।
यौवने वार्द्धकोन्मादे प्रसङ्गेनापि पातकम्॥

अजादानस्य माहात्म्यान्निष्पापो जायते नरः।
पुत्रपौत्रसमायुक्तः सदाचारमतिश्चिरम्॥

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहा गया है कि ऊँट, गधे, बकरी, भेड़ या घोड़े का भी यदि यथाशक्ति दक्षिणा सहित दान दिया जाता है, तो दाता अलका नगरी में जाकर श्रेष्ठ यक्षों के साथ प्रसन्नता को प्राप्त करता है। सभी कामनाओं को प्राप्त कर सभी यज्ञों के फल को प्राप्त करता है।[56]

(6) मेषदान

धर्मशास्त्रकारों ने बौधायन को उद्धृत करते हुए मेषदान का वर्णन किया है। तदनुसार जो त्रेताग्नि का विनाशक होता है, उसको अग्निमान्द्य रोग हो जाता है । इस रोग के निवारण हेतु आधा पल, चौथाई पल या इससे भी आधे रजत से अग्नि के वाहन मेष का निर्माण करवाना चाहिये। उसके खुर स्वर्ण से बनवाकर श्वेतवस्त्र से लपेटना चाहिये। श्वेत माला, श्वेत गन्ध एवं मधूत्कट पर धूप देनी चाहिये। दो द्रोण चावलों के ऊपर स्थापित कर मेष की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् आग्नेय दिशा में समिधा, घी और तिल से होम करवाना चाहिये। होमकर्ता आचार्य विनीत एवं सब शास्त्रों के अर्थ को जानने वाला हो । ''अग्निमूर्द्धा...'' (ऋग्वेद 8.44.16) से समिद्धोम ''अग्नेनय...'' (ऋग्वेद 1.189.1) से आज्य होम एवं ''अग्निनाग्निः...'' (ऋग्वेद 1.12.6) से तिलाक्षत होम करवाना चाहिये। अग्नि के सामने उत्तरदिशा में शुभ कुम्भ की स्थापना

करनी चाहिये। प्रणीत से लेकर आमोक्ष पर्यन्त कार्य करने पर स्नान करना चाहिये। ''आपो हिष्ठा...' (ऋग्वेद 10.9.1), ''हिरण्य....'' (1.117.24) एवं पवमान अनुवाक् से रोगी का मार्जन करना चाहिये।

''शन्नो वात....' (यजुर्वेद, 36.10) अनुवाक से शान्ति करनी चाहिये। होमकर्त्ता ब्राह्मण को यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करना चाहिये -

देवानां यो मुखं हव्यवाहनः सर्वपूजितः।
तस्य त्वं वाहनं पूज्यं देवैः सेन्द्रैर्महर्षिभिः॥

अग्निमान्द्यं पूर्वकर्मविपाकोत्थं तु यन्मम।
तत्सर्वंनाशय क्षिप्रं जाठराग्निं प्रवर्द्धय ॥[57]

(7) विनायक-दान

हेमाद्रि ने चतुर्वर्गचिन्तामणि के दान खण्ड के एकादश अध्याय में अनेकानेक देवतादानों का विवेचन किया है। देवताओं में विघ्नहर गणेश की अग्र पूजा होती है। अतः सर्वप्रथम विनायकदानविधि का विवेचन करने हेतु बौधायन को उद्धृत करते हुए कहा है कि विनायकदान हेतु सुवर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य अथवा आकवृक्षमूल के काष्ठ से विघ्नराज की प्रतिमा बनवानी चाहिये। प्रतिमा की सूंड व दोनों नेत्र स्वर्ण से और चूहा उसी द्रव्य का बनवाना चाहिये, जिससे प्रतिमा बनाई गई है। नाग यज्ञोपवीत धारण करवा कर प्रतिमा का पूजन वस्त्र, चन्दन व अगरु से करना चाहिये। गुल्मरोगी दाता स्वर्ण दक्षिणा सहित यह प्रतिमा होम करने वाले, शान्त, सर्वशास्त्रज्ञाता ब्राह्मण को निम्न मन्त्र का पाठ कर दान दे-

विनायक गणेशान सर्वदेवनमस्कृत।
पार्वतीनन्दन मम गुल्ममाशु विनाशय ॥[58]

यहीं अपस्मार, उन्माद आदि रोग, उदररोग आदि की शान्ति के लिए विघ्नेश दानविधियों का भी विवेचन किया गया है।'

(8) दशावतारदान

धर्मशास्त्र में विष्णु के स्वरूपों का दान उत्तम दान माना गया है। अतः पुण्य की

इच्छा रखने वाले को विष्णु स्वरूपों का दान करना चाहिये। विष्णु के दश स्वरूप निम्नलिखित हैं-

मत्स्य कूर्मोऽथ वाराहो नारसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की च ते दश॥

(इन सभी का स्वरूप परिशिष्ट संख्या 07 में देखा जा सकता है) महाभूतघटदान के समान एक बालिश्त से सौ अङ्गुल तक, अपनी धन सामर्थ्य के अनुसार दाता इन विष्णु स्वरूपों का निर्माण करवाये। नाम मन्त्रों द्वारा इन सभी की पुष्प,धूप इत्यादि से पूजा कर प्रणाम और निवेदन करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को बुलाकर, उन सबके पैर धोकर, आसन पर बैठाये। आसन पर बैठाकर सबको चन्दन का लेप प्रदान करे। सभी ब्राह्मणों का सुगन्ध, पुष्प, धूप और दीप से सम्मान करे। उन सबको वस्त्रयुग्म से आच्छादित कर, एक-एक विष्णु रूप, एक-एक ब्राह्मण को समर्पित करे अथवा एक ही विद्वान्, ब्राह्मण को ये सभी दशावतार (विष्णु) रूप समर्पित करे। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करें-

देवरूपं मया विप्र कारितं कांचनं शुभम्।
तद्गृहाण प्रदानेन प्रीयतां विश्वरूपधृक्॥

दान का फल विष्णु से ऐक्य एवं महान् पापों से तत्क्षण मुक्ति कहा गया है। यह दान अयन, विषुव, चन्द्र-सूर्यग्रहण एवं एकादशी का उपवास कर द्वादशी-तिथि में करना चाहिये।[59]

(9) त्रिमूर्तिदान

ब्रह्माण्ड पुराण को उद्धृत करते हुए त्रिमूर्तिदान के विषय में कहा गया है कि यह दान विषुव, अयन, चन्द्रसूर्य-ग्रहण, पूर्णिमा, अमावस्या एवं जन्मनक्षत्र में करना चाहिये। जहाँ भी पवित्र भूमि हो, वहाँ यह दान किया जा सकता है। त्रिमूर्ति दान हेतु सर्वप्रथम एक हाथ, दो हाथ या तीन हाथ वर्गाकार समतल भूमि को गोबर से लीपना चाहिये। उस भूमि पर चारों ओर अक्षतों के साथ पुष्पांजलि विकीर्ण करनी चाहिये। इस भूमि पर सफेद चावलों से मिश्रित तीन तिर्यक् वेदिकायें बनानी चाहिये। इन वेदिकाओं पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश की चतुर्भुज, सायुध, आभूषणधारित, समुकुट स्वर्ण प्रतिमाएँ रखनी चाहिये। इस प्रकार अधिवासन व उपवास के उपरान्त दाता पुष्प हाथ में लेकर, प्रदक्षिणा कर,

इन प्रतिमाओं को प्रणाम करे एवं स्नान, अर्घ्य पाद्य, आचमनीय, वस्त्र, गन्धादि से भक्तिपूर्वक इनका पूजन करे। तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण करते हुए ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रतिमाओं का दान करना चाहिये-

जगत्सृष्टिकरस्त्वमेव त्वमेव सर्वस्य पितामहोऽसि।
त्वमेव कर्ता जगतां विहर्ता त्वमेव धाता जगतां विधाता॥

त्वत्संप्रदानादनघो यथाऽहं त्वया च सायुज्यमुपैमि देव।
तथा कुरु त्वं शरणं प्रपन्ने मयि प्रभो देववर प्रसीद॥

त्वया जगद्व्याप्तमिदं समस्तं त्वां विष्णुमेव प्रवदन्ति सन्तः।
त्वत्स्थानि सर्वाणि वदन्ति देव त्वया धृतं विश्वमनन्तमूर्ते॥

त्वत्संप्रदानादनघो भवामि यथा जगत्कारणकारणेश।
तथा कुरु त्वं शरणं प्रपन्ने मयि प्रभो देववर प्रसीद॥

त्वया सुराणाममृतं विहाय हालाहलं संहृतमेव यस्मात्।
तथा सुराणां त्रिपुरंच दग्धमेकेषुणा लोकहितार्थमीश॥

त्वद्रूपदानादहमप्यशेषैर्दोषैर्विमुक्तो हि यथा भवेयम्।
तथा कुरु त्वां शरणं प्रपन्ने मयि प्रभो देववर प्रसीद॥

दान-फल निम्न प्रकार से उल्लिखित है-

इत्येवमुक्त्वा विधिवद्ददाति स याति सायुज्यमथ त्रिमूर्तेः।
यः कारयेद्विप्रवराय तस्मै सुवर्णसंख्यागणितं हिरण्यम्॥

दद्याच्च वासोयुग्मादरेण तथा कृते तल्लभते फलं तत्।[60]

(10) द्वादशादित्यदान

ब्रह्माण्डपुराण को उद्धृत करते हुए धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में द्वादशादित्य दान को पापहर, आयुष्यकर, श्रीकर, आरोग्यकर, सर्वशान्तिकर, दुःस्वप्न व अद्भुतनाशक, सब प्रकार से मङ्गलकर, शुभ, नेत्रज्योतिप्रदाता, सब रोगों का नाशक एवं भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाला कहा गया है। यह दान विषुव, अयन, चन्द्र-सूर्यग्रहण, जन्म नक्षत्र, रविवार, पूर्णिमा, अमावस्या, सूर्यसंक्रान्ति अथवा सप्तमी-तिथि में करना चाहिये।

अद्भुत व दुःस्वप्नदर्शन पर भी यह दान दिया जा सकता है। देवदान सदा देवालय में, नदी तट पर, तालाब में या जलगृह अथवा अन्य पवित्र स्थानों में करना चाहिये। दान विधि के सम्बन्ध में कहा गया है कि बारह हाथ लम्बीचौड़ी भूमि को गोबर से लीप कर उस भूमि पर सफेद चावल से प्रादेश मान के बारह अष्टदल कमल बनाने चाहियें। उन कमलों पर क्रमानुसार स्वर्णनिर्मित उत्तराभिमुख द्वादश आदित्य प्रतिमाओं को रखे। दाता पूर्वाभिमुख होकर इन प्रतिमाओं का वर्ण, गन्ध आदि से पूजन करे। पूजन के समय क्रमशः एक-एक नाम का उच्चारण करते हुए प्रसन्न होने की प्रार्थना करे। ब्राह्मणों की भी पूजा कर, यह दान ब्राह्मणों को प्रदान करना चाहिये।[61] (द्वादशादित्य प्रतिमाओं का लक्षण परिशिष्ट संख्या 07 में देखा जा सकता है।)

(11) चन्द्रादित्यदान

नीलकण्ठ ने विष्णुधर्मोत्तरपुराण को उद्धृत कर, चन्द्रादित्यदान का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह दान चन्द्र-सूर्यग्रहण, अयन, विषुव, वैशाख की द्वादशी, पुत्रजन्म, कार्तिक और माघ मास की पूर्णिमा आदि के अवसर पर करना चााहिये। इस दान में ''सूर्यमण्डल स्वर्णनिर्मित एवं चन्द्रमण्डल रजत निर्मित होना चाहिये। दोनों बारह-बारह अंगुल के होंगे। सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल पद्माकार होने चाहियें, जिनके मध्य कर्णिका हो। सूर्य घी से भरे ताम्रपात्र में रखना चाहिये और चन्द्र क्षीरपूर्ण शङ्ख के ऊपर रखना चाहिये। सूर्य की पूजा लाल पुष्पों से एवं चन्द्रमा की पूजा श्वेत पुष्पों से करनी चाहिये। सूर्य को सुगन्ध और धूप अर्पित करनी चाहिये तथा चन्द्रमा को गुग्गुल तथा श्वेत गन्ध प्रदान करनी चाहिये। सूर्य को कुङ्कुम और घृतदीप भी प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार चन्द्र और सूर्य की पृथक्-पृथक् पूजा कर दोनों की नमस्कारान्त ''ओम् अमृतमूर्तये सोमाय नमः'' एवं ''ओम् खमोल्काय सूर्याय नमः'' मन्त्र से पुनः-पुनः पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् वेदवेदाङ्ग में पारङ्गत, कुटुम्बी, दरिद्र, आहिताग्नि ब्राह्मण को बुलाकर रक्त वस्त्रधारण करवाकर, उस पर कुङ्कुम का लेप करना चांहिये। दूसरे सूर्य के समान उस ब्राह्मण की पुष्प धूप आदि से पूजा करनी चाहिये। चन्द्रबिम्ब एवं घृतस्थित सूर्य की ओर देखकर यह दान ब्राह्मण को समर्पित कर देना चाहिये। सूर्यदान देते समय निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करना चाहिये-

रुक्मं च पुष्करं चैव. वर्णं पुष्करमेव च।
त्रयी विद्या च साङ्गा तु यस्याङ्गं विश्वरूपिणः॥

स वै दिवाकरो देवः प्रीयतां विप्र मे चिरम्।

चन्द्र दान करते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

क्षीरजं देवदेवं तु द्विजराजं तथैव च ॥
अमृतमूर्तिं शीतांशुं ददामि ते द्विजोत्तम।

इस दान में गायत्री मन्त्र से सूर्य का सत्कार किया जाता है एवं ''तरत्स मन्दी...'(ऋग्वेद 9.58.1) मन्त्र से चन्द्र का सत्कार होता है। इस प्रकार चन्द्रादित्य दान कर बलि ने राज्य प्राप्त किया एवं इन्द्र ने पुनः अपना राज्य प्राप्त किया। दान फल निम्न प्रकार से उल्लिखित है-

सर्वं तेन तु दत्तं स्याद्यो दद्याच्चन्द्रभास्करौ।
सर्वं तेन कृतं राजन् सर्वं तेन च संस्तुतम्॥

सर्वं दक्षिणया चेष्टं संसारे तु नरोत्तमैः।
पूज्यते सिद्धगन्धर्वैर्ऋषिभिर्देवदानवैः ॥[62]

(12) लोकपालाष्टकदान

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड पुराण को उद्धृत कर लोकपालाष्टकदान का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। तदनुसार लोकपालाष्टक दान समस्त पापों का नाशक, सर्वमङ्गलकारक दीर्घायुष्यप्रदाता, सुखकारक, सर्वसिद्धिकारक, एवं शुभ है। अगर कोई स्त्री इस दान को प्रदान करे, तो वह ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त करती है। पूर्व दान में कहे गये किसी भी समय एवं स्थान में यह दान कार्य सम्पन्न किया जा सकता है। दान कार्य करने हेतु छह, आठ, दस या बारह हाथ की चतुरस्र समतल भूमि को गोबर से लीप कर, पूर्व से और उत्तर से चार-चार रेखाएँ बनाने पर नौ कोष्ठक बनेंगे। इन कोष्ठकों में श्वेत चावल की ढेरियों से अष्टदल कमलों की स्थापना करनी चाहिये। मध्य कोष्ठक में रजतनिर्मित कमलासन ब्रह्मा की स्थापना करनी चाहिये। तत्पश्चात् पूर्वादि क्रम से क्रमशः स्वर्णनिर्मित इन्द्र, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम तथा ईशान देव की स्थापना करनी चाहिये। ये देव प्रतिमाएं यथाशक्ति तीन पल स्वर्ण से अधिक स्वर्ण से निर्मित होनी चाहियें। उपर्युक्त प्रकार से देव स्थापना कर कुश-जल छिड़कना चाहिये। दान

का समय आने पर दाता कुश-जल से स्नान कर, ब्रह्मादि सभी देवों की तत्तत् नाम मन्त्रों से नमस्कारपूर्वक गन्धादि द्वारा अर्चना कर ब्राह्मणों को प्रदान करे। दान कार्य सम्पन्न करवाने वाले ब्राह्मण को सुवर्ण संख्या में गिनकर स्वर्ण एवं वस्त्रयुग्म प्रदान करना चाहिये।[63] हेमाद्रि ने लिङ्पुराण के आधार पर भी लोकपालाष्टक दान का विवेचन किया है। यहाँ केन्द्र देवता ब्रह्मा के स्थान पर शिव हैं। दान विधि में भी भेद है, किन्तु दान का मुख्य बिन्दु समान है।[64]

(13) नवग्रहदान

ब्रह्माण्ड पुराण के आधार पर वर्णित नवग्रहदान के विषय में धर्मशास्त्रकारों का मत है कि नवग्रह दान सब प्रकार से सिद्धि करने वाला, शान्ति करने वाला एवं पापों को नष्ट करने वाला है। दान की विधि के संबधं में बताया गया है कि सर्वप्रथम एक, दो या तीन हाथ चतुरस्त्र समतल भूमि को गोबर से लीपना चाहियें। भूमि को लीपकर उस पर पूर्व व उत्तर से चार- चार बराबर रेखाएँ खींचनी चाहियें। इस प्रकार बने नौ कोष्ठकों में सफेद चावलों से कमल बनाने चाहियें। इन कमलों पर पृथक्-पृथक् तीन निष्क अथवा यथाशक्ति स्वर्ण से सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, और केतु के स्वरूप बनवाकर स्थापित करने चाहियें। इन ग्रहों का स्थापना क्रम निम्न प्रकार से होगा-

आदित्यं मध्यमे कोष्ठे दक्षिणेऽङ्गारकं न्यसेत्।
उत्तरे तु गुरुं विद्यादबुधमुत्तरपूर्वके।।
भार्गवं पूर्वतो न्यस्य सोमं दक्षिणपूर्वके।
पश्चिमेऽर्कसुतं न्यस्य राहुं दक्षिणपश्चिमे।।
पश्चिमोत्तरतः केतुः सन्निवेश्यो यथाविधि।

इन सभी ग्रहों की अर्चना इनके स्व-स्ववर्ण के पुष्पों, गन्ध और नाम मन्त्रों से करनी चाहिये। यदि नवग्रहदान शूद्र अथवा स्त्री कर रहे हों, तो भूलेपनादि समस्त कार्य ब्राह्मण से करवाना चाहिये। स्नान के समय कुश एवं तिलमिश्रित जल से स्नान कर यजमान श्वेत वस्त्र धारणकर प्रसन्नचित्त होकर एक-एक ब्राह्मण को पृथक्-पृथक् सूर्यादि

ग्रहों का दान करे। वे ब्राह्मण भी स्वयं को प्राप्त ग्रह का मन्त्रोच्चारण पृथक्-पृथक् निम्न प्रकार से करें-

पद्मासनः पद्मकरो द्विबाहुः पद्मद्युतिः सप्ततुरङ्गवाहः।
दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी मयि प्रसादं विदधातु देवः॥

श्वेताम्बरः श्वेतविभूषणश्च श्वेतद्युतिर्दण्डकरो द्विबाहुः।
चन्द्रोऽमृतात्मा वरदः किरीटी श्रेयांसि मह्यं प्रददातु देवः॥

रक्ताम्बरो रक्तवपुः किरीटी चतुर्भुजो मेषगतो गदाभृत्।
धरासुतः शक्तिधरश्च शूली सदा मम स्याद्वरदः प्रशांतः॥

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी चतुर्भुजो दण्डधरश्च हारी।
चर्मासिधृक् सोमसुतः सदा नः सिंहारूढो वरदः बुधश्च॥

प्रियङ्गुकलिका श्यामो रूपेणाऽप्रतिमो भुवि।
सौम्यः सौम्यगुणोपेतः सदाऽस्तु वरदो मम॥

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी चतुर्भुजो देवगुरुः प्रशान्तः।
दधाति दण्डं च कमण्डलुं च तथाऽक्षसूत्रं वरदोऽस्तु मह्यम्॥

सुराणां च मुनीनां च गुरुः कनकसन्निभः।
बुद्धिदाता त्रिलोकस्य स मां रक्षतु वाक्पतिः॥

श्वेताम्बरः श्वेतवपुः किरीटी चतुर्भुजो दैत्यगुरुः प्रशान्तः।
तथाऽक्षसूत्रं च कमण्डलुं च जपं च विभ्रदवरदोऽस्तु मह्यम्॥

हेमकुन्दमृणालाभो दैत्यानां परमो गुरुः।
सर्वशास्त्रवक्ता च भार्गवो वरदोऽस्तु सः॥

नीलद्युतिः शूलधरः किरीटी गृध्रस्थितस्त्रासकरो धनुष्मान्।
चतुर्भुजः सूर्यसुतः प्रशान्तः स चाऽस्तु मह्यं वरमन्दगामी॥

नीलाम्बरो नीलवपुः किरीटी करालवक्त्रः करवालशूली।
चतुर्भुजश्चर्मधरश्च राहुः सिंहासनस्थो वरदोऽस्तु मह्यम्॥

धूम्रो द्विबाहुर्वरदो गदाभृद् गृध्रासनस्थो विकृताननश्च।
किरीटकेयूरविभूषिताङ्गः सदाऽस्तु मे केतुगणः प्रशान्तः।।

मध्य कोष्ठक का दान गुरु को देना चाहिये। यदि ऐसा न हो तो गुरु को सुवर्ण दक्षिणा व सुन्दर व शुभ वस्त्र युग्म देने चाहियें।[65]

(14) वारदान

सूर्यादि वारों में स्वर्ण सहित तत्तत् वारों की मूर्ति दान करने से ग्रह सन्तुष्ट होते हैं। रविवार को सूर्यमूर्ति, सोमवार को चन्द्रमूर्ति, मंगलवार को मंगलमूर्ति, बुधवार को बुध मूर्ति, गुरुवार को गुरुमूर्ति, शुक्रवार को शुक्रमूर्ति व शनिवार को शनि, राहु एवं केतु की मूर्ति दान करनी चाहिये।

(15) शूलदान

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में वायुपुराण को उद्धृत करते हुए शूलदान का विवेचन किया गया है । तदनुसार अनजाने में किये पापों के निवारण हेतु शूलदान का आश्रय लिया जाता है। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी या अष्टमी तिथि में बारह निष्क स्वर्ण से शुभ लक्षणोंयुक्त त्रिशूल का निर्माण करवाना चाहिये। युगान्तकारी, भयंकर और यज्ञ का विध्वंस करने वाले त्रिशूल का, अनेक रंगों से निर्मित षोडशार चक्र के केन्द्र पर रखे गये एक आढक तिल से भरे ताम्र-पात्र पर न्यास करना चाहिये। ''शूलाय नमः'' मन्त्र से इस त्रिशूल की पूजा करनी चाहिये। इस शूल के निकट कमल के ऊपर पूजित विरूपाक्ष की स्थापना करनी चाहिये एवं अघोर मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। लिङ्ग पुराण में अघोर मन्त्र निम्नलिखित प्रकार से बताया गया है-

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।।

पूजा के पश्चात् प्रणाम कर ज्ञानवान् ब्राह्मण की पूजा कर एवं प्रदक्षिणा कर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये-

भगवन्भगनेत्रघ्न दक्षयज्ञप्रमर्दन।
तवायुधप्रदानेन पापं नश्यतु शङ्करः।।

युगान्ते येन लोकानां त्वमन्तकविनाशनः।
विदग्धं तत्स्वपापेन तेन पापं व्यपोहय॥

येन दग्धं क्षणार्द्धेन त्रिपुरं सुदुर्जयम्।
तेन पाशुपतास्त्रेण मम पापं विनाशय॥

यद्बुद्धिकृतं पापं मम वाक्स्थं च मानसम्।
तत्सर्वं क्षयमभ्येतु तव शूलप्रदानतः॥

इस प्रकार मन्त्र पाठ कर, पूजित ब्राह्मण को यह शूलदान अर्पित करना चाहिये। मनुष्य अज्ञानवश पाप अवश्य करता है, अतः उन पापों की निवृत्ति के लिये शूलदान अवश्य करना चाहिये।[66] हेमाद्रि ने बौधायन का मत उद्धृत करते हुए दूसरे प्रकार की शूलदान-विधि का भी वर्णन किया है। इस शूलदान विधि के अनुसार देय त्रिशूल स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह इत्यादि किसी भी धातु अथवा खदिर काष्ठ का बनाया जा सकता है, शूल लाल माला व लाल वस्त्र से वेष्टित होता है एवं शूल के दक्षिण पार्श्व में दक्षिणाग्नि प्रज्ज्वलित कर होम किये जाने का विधान है।[67]

(16) धनदमूर्तिदान

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में वायुपुराण को उद्धृत कर कहा गया है कि जो मनुष्य दान में विघ्न उत्पन्न करता है, वह दरिद्र हो जाता है, किन्तु धनदमूर्तिदान से ऐश्वर्य को प्राप्त होता है। दान विधि सम्बन्ध में कहा गया है कि एक पल, आधा पल अथवा चौथाई पल स्वर्ण से कुबेर की द्विभुज, वाहन युक्त व नेत्रों को आनन्द देने वाली प्रतिमा बनवानी चाहिये। (कुबेर का स्वरूप परिशिष्ट संख्या 07 में देखा जा सकता है।) इस प्रतिमा के दोनों पार्श्व शङ्ख व पद्मनिधि से युक्त होने चाहियें। प्रतिमा को श्वेत वस्त्र में लपेटकर चार द्रोण, दो द्रोण या एक द्रोण चावल पर रखना चाहिये। श्वेत माला तथा गन्ध से युक्त कर प्रतिमा का पूजन करना चाहिये। आग्नेय दिशा में समिधा, घी और तिलों से होम करना चाहिये। होम मन्त्र ''ओम् राजाधिराजाय श्री कुबेराय'' होगा। धन की आकांक्षा रखने वालों को व्याहृति से तिल होम करना चाहिये। सर्वशास्त्रज्ञ, सर्वमान्य, महाकुलोत्पन्न धर्मज्ञ, सत्यवाक् एवं पवित्र आचार्य से भक्तिपूर्वक कुबेर का पूजन करवाना चाहिये। कुबेर प्रतिमा आचार्य को ही प्रदान करनी चाहिये। दान करते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

उत्तराशापते देव कुबेर नरवाहन।
पद्मशङ्खनिधीनां त्वं पतिः श्रीकण्ठवल्लभः ॥

दानाद्येन यथा प्राप्तं दारिद्रयं मम दुःखदम्।
तत्सर्वमात्मदानेन पापमाशु विनाशय॥

दान का फल निम्न प्रकार से कहा गया है-

एवं कुबेरदानं यः करोति विधिपूर्वकम्।
धनदेन समो मर्त्यस्तत्क्षणादेव जायते ॥[68]

(17) यमदान

यम-दान के अन्तर्गत लौह पात्र में एक कांस्य पात्र रखना चाहिये। इस कांस्य पात्र में रजतनिर्मित पद्म रखकर, उस पर सुवर्णनिर्मित महिष पर बैठे हुए, दण्ड और पाश हाथ में लिए हुए अलंकृत यम प्रतिमा को स्थापित कर, उसके पास खड्ग आदि अस्त्र एवं त्रिलोह निर्मित दण्ड हाथ में लिए हुए कालदूतों को स्थापित कर, ब्राह्मण की अर्चना कर, अपमृत्यु निवारण की कामना से दान देना चाहिये। दक्षिणा में सुवर्ण देना चाहिये। यह दान अष्टमी या चतुर्दशी तिथि में देना चाहिये।[69] अपमृत्यु निवारण हेतु नीलकण्ठ ने भविष्योत्तरपुराण को उद्धृत करते हुए कालपुरुष दान एवं ''मृत्युंजय'' को उद्धृत करते हुए कालचक्रदान विधि का भी विवेचन प्रस्तुत किया है।[70]

हेमाद्रि ने चतुर्वर्गचिन्तामणि के दानखण्ड के एकादश अध्याय में अपस्मार उन्माद रोग हर एवं उदररोग हर विघ्नेश दान विधियों, वाग्दोषहर सरस्वती प्रतिमा दान विधियों, प्रज्ञाहीनताहरकांस्यघंटादान विधि, लूतादि व्रणनाशक लक्ष्मीप्रतिमादानविधि, आन्त्रशोधरोगहर नारायणप्रतिमा दान विधि रतौंधीरोगहर गोपालमूर्तिदानविधि आदि का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त वराह प्रतिमादान, नरसिंह दान, लक्ष्मीनारायणदान, कामला रोगहर गरुड़दान, दद्रुरोगहर उमामहेशदान, कृशत्वरोगहर रुद्रमूर्तिदान, सर्वपापहर-दक्षिणमूर्तिदान, शूलदान के समान ही परशुदान, भ्रमणरोगहर सूर्यमूर्तिदान, कुष्ठरोगहरसूर्यप्रतिमादान, अतिसाररोगहर अग्निमूर्तिदान, मकरदान, विसर्पदोषहर नाग दान, रोगपीड़ाहर अश्विदान, श्वासकासरोगहरध्वजपाशदान, अपमृत्युहर पुरुष त्रयदान,

रुद्राष्टक दान, विश्वम्भरदान, गणेशदान, मरुद्‌दान, कल्पदान आदि का भी विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार विभिन्न देवताओं के लिए किये जाने वाले दान रोग नाशक, इहलोक में सुख व समृद्धि प्रदान करने वाले व पारलौकिक अभ्युदय प्राप्त करवाने वाले कहे गये हैं। मनुष्य इस लोक में आयु, सम्पत्ति इत्यादि की आकांक्षा स्वाभाविक रूप से रखता है। अतः धर्मशास्त्र में इस प्रकार के दान-कर्मों का भी विवेचन किया गया है।

(18) आयुष्यकरदान

नीलकण्ठ ने ब्रह्माण्ड पुराण को उद्‌धृत करते हुए आयुष्कर दान का विवेचन प्रस्तुत किया है। तदनुसार दक्षिणोत्तर गोबर से लिपी शुभ भूमि पर अपने हाथों से सफेद चावलों से भरे हुए चार स्वर्ण मण्डल अथवा कुम्भ स्थापित करने चाहिये। इन पर दक्षिणोत्तर दिशा से क्रमशः स्वर्णमय ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र की प्रतिमाएं स्थापित करनी चाहिये। इन देवों की क्रमानुसार गन्धादि से अर्चना कर प्रत्येक ब्राह्मण को एक-एक प्रतिमा भक्तिपूर्वक देनी चाहिये। दान देते समय तत्तत् देव हेतु निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये-

''संप्रीयतां मे भगवानात्मभूः।''

''संप्रीयतां जगद्‌व्यापी भगवान् विष्टरश्रवाः।''

'' संप्रीयतां मे भगवान् कृत्तिवासा।'' एवं

संप्रीयतां मे भगवान् वज्रपाणिः शतक्रतुः।''

(ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं इन्द्र के स्वरूप को परिशिष्ट संख्या 07 में देखा जा सकता है ।)

(19) सम्पत्करदान

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड पुराण को उद्‌धृत कर सम्पत्करदान का विवेचन किया गया है। तदनुसार सम्पत्करदान अत्यधिक पुण्यकारक है। इस दान को करने से मनुष्य विभिन्न प्रकार की सम्पदाओं को प्राप्त करता है। यह दान आयुष्कर, रोगहर, पापविनाशक एवं दोषनाशक है। यह स्वर्ग, मोक्ष, कुल और पुत्र वृद्धि, लक्ष्मी एवं इष्ट

सिद्धि को प्रदान करने वाला है। पवित्र देश और काल में सम्पत्करदान को करने का विचार कर, प्रातःकाल तिलमिश्रित कुशोदक से स्नान कर, पवित्र होकर, सफेद वस्त्र धारण कर दाता, दान का संकल्प करे। तदुपरान्त विद्वान् ब्राह्मण-गुरु का वरण कर उसकी अनुमति से समस्त कार्य करे। गाय के गोबर और जल से बीस हाथ नाप की चतुरस्त्र भूमि को लीपकर, उसे पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण चार-चार रेखाएँ खींचकर इस प्रकार बने नौ कोष्ठकों में चावल रखे। उन चावलों पर वस्त्र युक्त नौ कुम्भों को विधिपूर्वक स्थापित करे। इन कुम्भों में तीन सुवर्ण से लेकर एक पल तक स्वर्ण से निर्मित प्रतिमा की स्थापना कर, पूजन करें। पश्चिम पंक्ति में उत्तर की ओर से मित्र, वरुण और सोम, मध्यम पंक्ति में ब्रह्मा, विष्णु और शिव तथा अन्तिम पंक्ति में सूर्य, इन्द्र और वह्नि की स्थापना की जायेगी। तत्पश्चात् नौ ब्राह्मणों की पूजा कर, एक-एक ब्राह्मण को एक-एक प्रतिमा का विधिपूर्वक दान करे। गुरु को देय द्रव्य के बराबर स्वर्ण और वस्त्र का जोड़ा प्रदान करना चाहिये।[71]

(20) कृष्णाजिनदान

सभी धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में कृष्णाजिनदान के महत्त्व को बहुशः प्रतिपादित किया गया है। विष्णुस्मृति के 87 वें अध्याय में कृष्णाजिनदान के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है-

यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात् सखुरं शृंगयुतम्।
तिलैः प्रच्छाद्य वासोभिः सर्वरत्नैरलङ्कृतम्।।

ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना।
चतुरन्ता भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः।।

कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्।।

नीलकण्ठ ने कृष्णाजिनदान की विधि के विषय में कहा है कि वैशाख की पूर्णिमा, चन्द्रसूर्यग्रहण, माघ, आषाढ एवं कार्तिक की पूर्णिमा, उत्तरायण अथवा द्वादशी तिथि में कृष्णाजिन दान करना अत्यन्त फलदायी होता है। अतः उपर्युक्त में से किसी एक तिथि को गोबर से लिपी हुई भूमि पर भेड़ के ऊन से बने कम्बल को बिछाकर, उस कम्बल के

ऊपर सींग और खुर युक्त कृष्णमृगचर्म बिछाना चाहिये। इसकी ग्रीवा पूर्व की ओर होनी चाहिये। इस कृष्णमृग चर्म के सींग स्वर्ण के, दाँत रजत के, पूँछ मोतियों की एवं नाभि स्वर्ण की बनाकर उसके ऊपर अपने (दाता के) बराबर तिल बिछाने चाहियें। तिलों के ऊपर वस्त्र बिछाकर, गन्ध व रत्नों से युक्त चार कांस्य पात्र एवं घी, दूध, दही और मधु से भरे हुए चार मृद्पात्र क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में स्थापित करने चाहिये। दान क्षेत्र से बाहर चम्पा की शाखा और साबुत जल से भरा कुम्भ स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् देशकालादि का स्मरण कर, अपनी कामना का उच्चारण कर दाता दान का संकल्प करे। स्नान के उपरान्त पुराने पीले वस्त्र से अपने अंगों को पोंछे। तत्पश्चात् मन्त्र पाठ करते हुए धातुनिर्मित पात्रों को कृष्णमृगचर्म के पैरों पर रखे। यथा-

यानि पापानि काम्यानि मया लोभात्कृतानि वै।
लोहपात्रप्रदानेन प्रणश्यन्तु ममाशु वै॥

उपर्युक्त मन्त्र का पाठ कर तिलपूर्ण लोहपात्र कृष्णमृगचर्म के बायें पैर पर रखे। तथैव-

यानि काम्यानि पापानि कर्मोत्थानि कृतानि वै।
कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा॥

मन्त्र का पाठ कर शहदपूर्ण कांस्यपात्र दक्षिण पैर पर रखें।

परापवादपैशुन्याद्वृथा मांसस्य भक्षणात्।
तत्रोत्थितं च मे पापं ताम्रपात्रात्प्रणश्यतु॥

मन्त्र का पाठ कर तिलपूर्ण ताम्रपात्र वामहस्त (अर्थात् आगे के वाम पाद) पर रखे।

कन्यानृतं गवां चैव परदारप्रघर्षणम्।
रौप्यपात्रप्रदानेन क्षिप्रं नाशं प्रयातु मे॥

मन्त्र का पाठ कर शहदपूर्ण रजतपात्र दक्षिण हस्त (अर्थात् आगे के दक्षिण पाद) पर रखे।

जन्मजन्मंसहस्त्रेषु कृतं पापं कुबुद्धिना।
सुवर्णपात्रदानात्तन्नाशयाशु जनार्दन॥

मन्त्र का पाठ कर अक्षत पूर्ण स्वर्ण पात्र मध्य में नाभि पर रखे। साथ ही स्वर्ण, मुक्ता, मूंगा, अनार, बिजौरा नींबू, कृष्णमृगचर्म के निकट, आम्रादि के दो उत्तम पत्ते कानों पर और सिंघाडे खुरों पर रखने चाहियें। वस्त्र के जोड़े आदि से आहिताग्नि ब्राह्मण की एवं देय द्रव्य की पूजा कर ''प्रीयतां वृषभध्वज'' कहकर समस्त दान द्रव्य विधिपूर्वक ब्राह्मण को प्रदान करना चाहिये। दक्षिणा में सौ निष्क, पचास निष्क अथवा पाच्चीस निष्क देने चाहियें । कृष्णमृगचर्म दान लेने वाला ब्राह्मण अस्पृश्य माना जाता है। उसको चिता के यूप के समान कहा गया है। ऐसा ब्राह्मण दान और श्राद्ध कार्य में दूर से ही वर्जित है। अपने घर से इस ब्राह्मण को भेजकर मण्डल में जलपूर्ण कुम्भ व चम्पा की शाखा से स्नान करना चाहिये। स्नान के समय का वस्त्र और वह पीला वस्त्र कुम्भ सहित चौराहे पर ले जाकर फेंक देना चाहिये। आचार्य कलश को मूर्द्धा पर रखकर ''आप्यायस्व समेतु ते...' (ऋग्वेद 1.91.16) एवं ''समुद्रज्येष्ठा...' (ऋग्वेद 7.49.1) ऋचाओं का आठ-आठ (= 16) बार जाप करना चाहिये। बिना सिले वस्त्र धारण कर एवं आचमन कर पवित्रता को प्राप्त करें । दान का फल निम्न प्रकार से उल्लिखित है-

स्वपितृपुत्रमरणं वियोगं भार्यया सह।
धनदेशपरित्यागं न चैवेहाप्नुयात्क्वचित्॥

समग्रभूमिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
सर्वांल्लोकांश्च चरति कामचारी विहङ्गम॥

आभूतसंप्लवं यावत्स्वर्गमाप्नोत्यसंशयम्।[72]

हेमाद्रि ने कालिका पुराण, आदित्यपुराण एवं अग्नि पुराण के आधार पर भी कृष्णाजिनदान विधि का विवेचन किया है। वहीं पुलस्त्य को उद्धृत कर मध्यमकृष्णाजिन दान, विष्णुधर्मोत्तर पुराण के आधार पर महाकृष्णाजिनदान एवं बौधायन को उद्धृत कर मृगदानविधि का भी वर्णन किया है। मृग वायु का वाहन है । अतः मृगदान से रोगों का नाश व आरोग्य प्राप्ति होना बताया गया है।[70]

(21) शय्यादान

महाभारत में शय्यादान की प्रशंसा करते हुए कहा गया है-

शय्यामास्तरणोपेतां सुप्रच्छादनसंस्कृताम्।
प्रदद्याद्यस्तु विप्राय शृणु तस्यापि यत्फलम्॥

सुरूपः सुभगः श्रीमान्स्त्रीसहस्रैस्तु संवृतः।
दशवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥[74]

नीलकण्ठ ने विष्णुसंहिता को उद्धृत करते हुए शय्या दान का विवेचन प्रस्तुत किया है। तदनुसार दर्पण, जूते, अनेक प्रकार के द्रव्य और आभूषणों को शय्या के चारों कोणों पर रखकर, घी, कुङ्कुम और गेहूँ तथा जल पूर्ण पात्र को रखकर, शय्या की पूजा कर, दाता हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा करे। चारों दिशाओं में प्रमाणी देवी को प्रणाम कर दरिद्र, अध्ययनशील, आत्मज्ञानी ब्राह्मण को वह शय्या प्रदान करे। शय्या दान का फल निम्न प्रकार से उल्लिखित है-

तस्मादिन्द्रपुरं गच्छेत्सेव्यमानोऽप्सरोगणैः।
षष्टिवर्षसहस्राणि क्रीडित्वा च यथासुखम्॥

इन्द्रलोकात्परिभ्रष्ट इहलोके नृपो भवेत्।
षष्टियोजनविस्तीर्णे स्वामी भवति मण्डले॥

यहीं भविष्योत्तरपुराण के आधार पर शय्यादान के विषय में कहा गया है- अष्टदल कमल बनाकर, उस पर तिलप्रस्थ रखकर, उस पर भली प्रकार गद्दा, चादर, तकिया आदि युक्त शय्या बिछानी चाहिये। उसके चारों ओर ईशानादि कोणों में घृत कुम्भ, गेहूँ, जलपात्र, सप्तधान्य, ताम्बूल, दर्पण, कुङ्कुम, शहद, कपूर, चन्दन, दीपिका, जूते, छत्र, चँवर, आसन, भोजन आदि रखने चाहियें। ऊपर पंचवर्ण वितान बाँधना चाहिये। तत्पश्चात् सपत्नीक ब्राह्मण को शय्या पर बैठाकर, लक्ष्मी नारायण प्रतिमा को शय्या पर स्थापित कर प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तत्पश्चात् चारों दिशाओं में प्रमाणी देवी को प्रणाम कर ब्राह्मण को विधिपूर्वक शय्या व अन्य द्रव्य दान करने चाहिये। दान देते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया।
शय्या ममाऽप्यशून्याऽस्तु तथा जन्मनि जन्मनि॥[75]

हेमाद्रि ने उपर्युक्त शय्या दान विधियों के अतिरिक्त शिव शय्यादानविधि एवं सूर्यशय्यादान विधि का भी संक्षिप्त वर्णन किया है।[76]

(22) आसनदान

घर में अतिथि को अथवा अन्य अभ्यागतों को आसन प्रदान करना सामान्य शिष्टाचार है। किन्तु ब्राह्मणों को आसन प्रदान करने का अलग स्वरूप है। जैसे शय्या दान की प्रशंसा की गई है, उसी प्रकार लिंग पुराण में आसनदान की भी प्रशंसा की गई है। यथा-

आसनं शयनं चैव यो ददाति यशस्विने।
समं सर्वेषु भूतेषु तस्य दुःखं न विद्यते॥

हेमाद्रि ने स्कन्द पुराण व आदित्य पुराण को उद्धृत करते हुए लिखा है-

आसनं यः प्रयच्छेत् सम्वीतं ब्राह्मणाय वै।
स्वाराज्यं स्थानमाप्नोति तेजस्वी विगतज्वरः॥

सुगन्धचित्राभरणोपशोभितं, यस्त्वासनं वेदविदे प्रदद्यात्।
ग्रामाधिपत्यं लभते स शीघ्रं, कुले महत्त्वं स लभेत्समग्रम्॥[77]

(23) रत्नदान

नीलकण्ठ ने जाबालि को उद्धृत कर रत्नदान की महत्ता का निम्न प्रकार से निरूपण किया है-

रत्नानि यो द्विजे दद्याद्बहुमूल्यानि मानवः।
अलङ्कारनिमित्तं वा देवताभ्योऽतिदानतः॥

सन्तापपापविनिर्मुक्तो मुक्तिमेव समश्नुते।

तथैव स्कन्द पुराण को उद्धृत कर कहा है कि विद्रुम दान करने से मनुष्य रुद्रलोक में जाता है, मुक्तादान से सभी पापों से मुक्त हो जाता है, वज्रदान से इन्द्र लोक प्राप्त करता है, गोमेद प्रदान कर नन्दन वन में आनन्द प्राप्त करता है, पुष्पराग प्रदान करने से समस्त ग्रह सन्तुष्ट होते हैं, पन्ना प्रदान करने से गरुड की शोभा को जीत लेता है। वैदूर्य मणि से सूर्यलोक को प्राप्त करता है, पद्मराग मणि के दान से आरोग्य को प्राप्त करता है, इन्द्रनील मणियों के दान से विभिन्न लीलाओं का पात्र बनता है, शङ्ख दान करने से सुखी एवं सीप प्रदान कर शक्ति प्राप्त करता है।[78]

हेमाद्रि ने भगन्दर रोग नाशक रत्नदान विधि का वृद्धगौतम के मतानुसार वर्णन करते हुए कहा है-माणिक्य, पद्मराग, वज्र, वैदूर्य, मोती, गोमेद पुष्पराग, मरकत एवं हरित (इन नव) रत्नों को स्वर्ण, रजत अथवा ताम्र-पात्र में रखकर घी से भर देना चाहिये। तत्पश्चात् पुष्प, गन्ध, अक्षत, धूप और नैवेद्य से इन रत्नों की पूजा करनी चाहिये। ग्रहों के तत्तत् नाम मन्त्रों से ग्रहयज्ञोक्त विधि से होम करवाना चाहिये। ब्राह्मण को उपर्युक्त दान देते समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

आदिव्यादि ग्रहाः सर्वे नवरत्नदानप्रदानतः।
विनाशयन्तु मे हृष्टाः क्षिप्रमेव भगन्दरं ।।[79]

हेमाद्रि ने चतुर्वर्गचिन्तामणि में ब्रणध्नरत्नदान, गलगण्डध्नरत्नदान आदि रत्नदान विधियों का भी विवेचन किया है। इस प्रकार रत्नदान विभिन्न फल देने वाला व रोगहर माना गया है।[80]

(24) दीप-दान

महर्षि सम्वर्त ने दीपदान की प्रशंसा करते हुए कहा है-

देवागारे द्विजानां वा दीपं दत्त्वा चतुष्पथे।
मेधावी ज्ञानसम्पन्नश्चक्षुष्माँश्च सदा भवेत्।।[81]

अन्धकार में प्रकाश प्रदान करना प्राकृतिक रूप से तथा साङ्केतिक रूप (अर्थात् अज्ञानी को ज्ञान प्रदान करना) से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। महाभारत में दीपदान की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

दीपप्रदाने वक्ष्यामि फलयोगमनुत्तमं।
यथा येन यदा चैव प्रदेया यादृशाश्च ते।।

ज्योतिस्तेजः प्रकाशं वाऽप्यूर्द्धगत्यापि वर्ण्यते।
प्रदाने तेजसस्तस्मात्तेजो वर्द्धयते नृणाम्।।

अन्धन्तमस्तमिश्रं च दक्षिणायनमेव च।
उत्तरायणमेतस्मिन् दीपदानं प्रशस्यते।।

यस्मादूर्द्धङ्गमे तत्तु तमसश्चैव भेषजं।

तस्मादूर्ध्वगतिर्दाता भवेत्तत्रेति निश्चयः ॥

देवास्तेजस्विनो यस्मात् प्रभावन्तः प्रकाशकाः ।
तामसा राजसाश्चेति तस्माद्दीपः प्रदीयते ॥

आलोक्यदानाच्चक्षुष्मान् प्रभायुक्तो भवेन्नरः ।
तं दत्त्वा नोपसेवेत न हरेन्नोपहिंसयेत् ॥

दीपहर्ता भवेदन्धस्तमोगतिरथाशुभा ।
दीपदः सर्वलोकेषु दीपमाली विराजते ॥

गिरिप्रपाते गहने चैत्यस्थाने चतुष्पथे ।
दीपदाता भवेन्नित्यं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥

कुलद्योतविशुद्धात्मा प्रकाशत्वं स गच्छति ।
ज्योतिषां चैव सायोज्यं दीपदानरतः सदा ॥[82]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत स्कन्दपुराण के अनुसार शिव आदि देव मन्दिरों, यतियों के आश्रमों, अग्निहोत्रगृह, सराय एवं श्रोत्रियों के घरों में शङ्कर का वास समझकर सदा दीप दान करना चाहिये। चौराहों, चैत्यों, विप्रगृहों, वृक्षपंक्तियों, पशुगृहों, वनों आदि में दीपदान करना चाहिये। कार्तिक मास में जो विप्रगृह में दीपदान करता है, वह अग्निष्टोम फल प्राप्त करता है। सन्ध्या दीप प्रदान करने वाला परम गति को प्राप्त करता है।[83]

नीलकण्ठ द्वारा उद्धृत विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार कृष्णपक्ष में अमावस्या और द्वादशी तिथि में विशेष रूप से मशाल (महावर्ति) दान करनी चाहिये। अश्विन मास की पूर्णिमा व्यतीत होने पर कृष्ण पक्ष की अमावस्या और द्वादशी में मशाल दान करने से विशेष फल प्राप्त होता है। देवों के दक्षिण पार्श्व में तेल का तुलादान करना चाहिये, वहीं आठ फलों से युक्त मशाल भी दान करनी चाहिये। पर्वत की चोटियों, नदी के किनारों, चौराहों, गलियों, ब्राह्मणों के घरों, वृक्षमूलों, गाय के बाड़ों एवं गहन वनों में दीपदान से महान् फल की प्राप्ति होती है। दान का फल निम्न प्रकार से कहा गया है-

यावन्त्यक्षिनिमेषाणि दीपः प्रज्ज्वलते नृप ।
तावन्त्येव स राजेन्द्र वर्षाणि दिवि मोदते ॥

दीपदानेन राजेन्द्र चक्षुष्मानिह जायते।
रूपसौभाग्ययुक्तस्तु धनधान्यसमन्वितः ॥[84]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत बिष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार दीपदान घी या तेल का ही करना चाहिये, वसा, मज्जा आदि से कदापि दीपदान नहीं करना चाहिये। दीपदान कर उसको बुझाना नहीं चाहिये। जो ऐसा करता है, उसकी आंख में पुष्प (फूला) रोग हो जाता है। दीपक का हरण करने वाला अन्धा और बुझाने वाला काणा हो जाता है। अतः दीपदान से बढ़कर कोई दान नहीं है।[85]

(25) विद्या दान

हेमाद्रि ने "विद्याख्यमतिदानमारभ्यते"[86] कहकर विद्यादान को अतिदान की श्रेणी में रखा है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में विद्यादान की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है-

विद्या कामदुघा धेनुर्विद्या चक्षुरनुत्तमं।
विद्या दानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥

विद्यावान् सर्वकामानां भाजनं पुरुषो भवेत्।
तस्मात् विद्या हि ददता सर्वदत्तं भवेदिह ॥[87]

महर्षि याज्ञवल्क्य ने विद्यादान को सब दानों से बढ़कर बताया है-

सर्वदानमयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकन्ततः।
तं ददत् समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतः ॥[88]

यम ने विद्या दान को समस्त पृथ्वीदान के तुल्य बताया है-

य इमां पृथ्वी दद्यात् सर्वरत्नोपशोभिताम्।
दद्याच्छास्त्रं च विप्राणां तच्च दानं च तत्समम् ॥[89]

नीलकण्ठ ने विद्यादान तीन प्रकार का माना है- प्रतिमा दान, पुस्तकदान और अध्यापन।[90] प्रतिमा दान के अन्तर्गत गरुड़पुराण को उद्धृत करते हुए वेद प्रतिमाओं के दान के विषय में लिखा है कि-

आम्नायरूपाणि विधाय सम्यग्घैमानि पूर्वोदितलक्षणानि।
विशुद्धनानामणिभूषितानि ऋगादिवेदक्रमतो निवेश्य।।

अर्थात् महाभूतघटदान में उल्लिखित स्वरूप वाली वेद प्रतिमायें स्वर्ण से बनवाकर और अनेक प्रकार की मणियों से विभूषित कर दान देनी चाहियें। साथ में ऋग्वेदादि क्रम से क्रमशः पीले, श्वेत, लाल व नीले वस्त्र व इन्हीं वर्णों के पुष्प देकर, गन्ध, अक्षत, धूप और दीप से पूजा कर, सुगन्धित मोदक युक्त घृत पायस एवं शहदयुक्त अन्न, पुआ और घी क्रमशः वेदों के लिए निवेदन कर, विधिपूर्वक प्रणाम कर, वेदों की प्रदक्षिणा करनी चाहिये। इन वेद प्रतिमाओं की पूजा गायत्री मन्त्र से करनी चाहिये। व्याहृतियों का उच्चारण कर आह्वान व विसर्जन करना चाहिये। निम्नलिखित मन्त्रों से इनका अनुमन्त्रण करना चाहिये -

ऋग्वेद पद्मपत्राक्ष मां त्वं रक्ष क्षिपाऽशुभम्।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि देहि मे हितमद्भुतम्।।

यजुर्वेद नमस्तेऽस्तु लोकत्राणपरायण।
त्वत्प्रसादेन मे कामा निखिलाः सन्तु सन्ततम्।।

सामवेद महाबाहो त्वं साक्षादधोक्षजः।
प्रसादसुमुखो भूत्वा कृपयाऽनुगृहाण माम्।।

अथर्वन्सर्वभूतानां त्वदायत्तं हिताहिते।
शान्तिं कुरुष्व देवेश पुष्टिमिष्टां प्रयच्छ नः।।

इस प्रकार वेदों का अनुमन्त्रण कर तीन-तीन पल स्वर्ण के साथ एक-एक वेद एक-एक ब्राह्मण को देना चाहिये। सामर्थ्य न होने पर एक-एक पल स्वर्ण भी दिया जा सकता है। जो वेदों का अध्ययन न करने वाला हो, उसके लिए ही वेददान की उपर्युक्त विधि है, जो अध्ययन करता हो उसके लिए वेददान की एकमात्र विधि अध्यापन है।[91]

नीलकण्ठ ने पुराण-दान के विषय में वराह पुराण को उद्धृत करस्ते हुए कहा है कि पुराण और उपपुराणों को लिखकर, स्वर्णसहित विशेष तिथियों में जो प्रदान करता है, वह विद्यानिपुण हो जाता है। विशेष तिथियाँ, विधि एवं दानफल का भी अलग-अलग उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त रामायण महाभारत इत्यादि के दान के विषय में निम्न प्रकार से विचार प्रकट किये गये हैं-

रामायणं भारतं च दत्त्वा स्वर्गे महीयते।
पुराणं तर्कशास्त्रं च छन्दोलक्षणमेव च ॥

वेदमीमांसिकान्दत्वा शिवधर्मं च वै नृप।
सप्तद्वीपपृथिव्यां च राजराजो भवेद्धि सः ॥[92]

तथा-

धर्मशास्त्रं नरो दत्वा स्वर्गलोके महीयते ।

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत नन्दिपुराण के अनुसार विद्याएँ चौदह प्रकार की कही गई हैं- छह वेदाङ्ग, चार वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा एवं तर्कशास्त्र । इन्हीं से आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, शिल्पवेद, सस्यवेद आदि अन्य विद्याएँ उत्पन्न हुई हैं। इन सबमें सर्वप्रधान आत्मविद्या है।[93] हेमाद्रि ने विष्णुधर्मोत्तरपुराण को उद्धृत करते हुए कहा है कि वेद-दान से मनुष्य समस्त यज्ञों का फल प्राप्त करता है, उपवेद का दान कर गन्धर्वो के साथ प्रसन्न होता है, वेदाङ्गों के दान से इन्द्रलोक को प्राप्त करता है।[94]

नीलकण्ठ ने भविष्यपुराण को उद्धृत कर पुस्तकदान के विषय में लिखा है-

शास्त्रसद्भावविदुषे वाचके प्रियंवदे।
वस्त्रयुग्मेन संवीतं पुस्तकं प्रतिपादयेत् ॥[95]

यह पुस्तक स्वर्ण, रजत, गजदन्त अथवा काष्ठनिर्मित पुस्तक यन्त्र (आसन) पर रखकर एवं पूजा कर दान करनी चाहिये।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में अध्यापन के विषय में कहा गया है-

पराध्यापनतः क्लेशं हि पुरुषस्तु यदश्नुते।
तपस्तत्परमन्तस्य ब्रह्मलोकं परं स्मृतम् ॥

दानानामुत्तमं लोके तपसा च तथोत्तमं।
विद्यादानं महाभागाः सर्वकामफलप्रदं ॥[96]

वह्नि पुराण में अध्यापन को पृथ्वी दान के समान माना है एवं अध्ययन के लिए आवश्यक उपकरण जुटाने को भी विद्यादान के समान माना गया है-

प्रातरुत्थाय यो वेदान् वेदाङ्गमपि पाठयेत्।
पृथिवीदानतुल्यं स्यात् फलं तस्य नरोत्तम॥

यो वृत्तिं पठमानानां करोत्यनुदिनं नृप।
स यज्ञफलमादत्ते दानाच्छादनभोजनैः॥[97]

गरुड़पुराण में भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किये गये हैं-

उपाध्यायस्य यो वृत्तिं दत्त्वाऽध्यापयते जनं।
किं न दत्तं भवेत्तेन धर्मकामार्थदर्शितम्॥

छात्राणां भोजनाभ्यङ्गं वस्त्रं भिक्षामथापि वा।
दत्त्वा प्राप्नोति पुरुषः सर्वकामान्न संशयः॥

विवेकी जीवितं दीर्घं धर्मकामार्थानाप्नुयात्।
सर्वमेव भवेद्दत्तं छात्राणां भोजने कृते॥[98]

वहीं नन्दिपुराण में कहा गया है-

येऽपि पत्रं मषीपात्रं लेखनी सम्पुटादिकं।
लघुशास्त्राभिमुक्ताय तेऽपि विद्याप्रदायिनां॥

यान्ति लोकान् शुभान् मर्त्याः पुण्यभाजो नराधिप।[99]

वाराहपुराण में विद्या-दान की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कहा गया है-

ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः।
धर्माधर्मं न जानन्ति विद्यादानबहिष्कृताः॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विद्यादानं प्रयच्छति॥[100]

देवी पुराण में भी कहा गया है-

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विद्या देया सदा नरैः।
इहैव कीर्तिमाप्नोति मृतो याति पराङ्गतिम्॥[101]

(26) वस्त्र-दान

वस्त्र दान हेतु पात्र और अपात्र, देश अथवा काल का विचार करने की आवश्यकता

नहीं होती, क्योंकि वस्त्र मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। वस्त्र दान में आवश्यकता पर ध्यान देना ही उचित है। इसमें दान ग्रहण करने वाला पात्र किसी भी वर्ण, समुदाय अथवा अवस्था का हो सकता है। अतः हेमाद्रि ने नन्दि पुराण को उद्धृत करते हुए कहा है-

वस्त्रं यच्चार्थिने दद्याच्छुभ्रं वापि यदृच्छया।
स भवेद्धनवान् श्रीमान् वृहस्पतिपुरे वसेत्॥[102]

नीलकण्ठ ने विष्णुधर्मोत्तरपुराण को उद्धृत कर कहा है-

वासो हि सर्वदैवत्यं सर्वप्रायोज्यमुच्यते।
वस्त्रदानात्सुमेधः स्याद्रूपद्रविणसंयुतः॥

युक्तो लावण्यसौभाग्यैर्नीरोगश्च तथाद्विज।
दत्वा कार्पासिकं वस्त्रं स्वर्गलोके महीयते॥

दत्वा सरोमं तत्रापि फलं दशगुणं भवेत्।
आविकं वसनं दत्वा भूदानां लोकमाप्नुयात्॥

छागं दत्वा चाङ्गिरसं क्षौमं दत्वा वृहस्पतेः।
कृमिजं च तथा दत्वा सोमलोके महीयते॥

अग्निष्टोममवाप्नोति दत्वैव मृगलोमिकाम्।[103]

हेमाद्रि ने सामान्य जन के अतिरिक्त दैवप्रयोजन से किये जाने वाले वस्त्र-दान के फल का भी विवेचन किया है। रुद्रैकादशवस्त्रदान विधि में ग्यारह ब्राह्मणों को रुद्र स्वरूप मानकर, उनको अलग-अलग वस्त्र, दक्षिणा आदि देने का विधान है। आदित्य पुराण के अनुसार अग्निदेव को वस्त्र प्रदान करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। नन्दिपुराण के अनुसार शिव को वस्त्र प्रदान करने से शिवलोक में निवास मिलता है। वराह पुराण के अनुसार विष्णु को वस्त्र प्रदान करने से स्वर्ग लोक में जाता है। वृद्धबौधायन के अनुसार रोग शोक दूर करने हेतु विशेष विधि से वस्त्र दान किया जाता है।[104]

वस्त्र दान में उष्णीष दान का भी समावेश किया जा सकता है। हेमाद्रि ने विष्णुधर्मोत्तरपुराण को उद्धृत कर उष्णीष दान के विषय में कहा है-

उष्णीषाणि विचित्राणि यः प्रदद्याद्द्विजातिषु।
रक्तानि वाऽथ श्वेतानि कौसुम्भान्यथवा पुनः॥

स सौन्दर्यं परं प्राप्य वनितावल्लभो भवेत्।
सुकेशाः सुमुखा राजन् यस्मादुष्णीषदायिनः॥

तस्मात् तेषां प्रदानेषु प्रयतस्व महाभुज।[105]

यहीं उद्धृत काश्यप के मतानुसार ऊन का प्रावरण प्रदान करने से समस्त दुःखों का नाश एवं सुख की प्राप्ति होती है-

और्णं प्रावरणं योऽपि भक्त्या दद्याद्द्विजातये।
सोपि याति परां सिद्धिं मर्त्यैरन्यै सुदुर्लभं॥

यस्त्वकिंचनवृत्तिभ्यस्तपस्विभ्यः प्रयच्छति।
निरस्तसर्वदुःखौघो जायते स महाधनी॥[106]

वह्नि पुराण के आधार पर कम्बल दान के महत्त्व को निम्न प्रकार से बताया गया है-

नवं सूक्ष्मं सुविपुलं यः प्रयच्छति कम्बलं।
शीतार्दिने द्विजेन्द्राय तेषां मार्गसुखप्रदः॥[107]

नारदीय पुराण के आधार पर ऊनी वस्त्र प्रदान करने का महत्त्व निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया गया है-

निष्किंचनेभ्यो दीनेभ्यः शीतवातमहातपैः।
अर्दितेभ्यः करुणया वस्त्रमौर्णं ददाति यः॥

न तस्य सुकृतं वक्तुं शक्यते त्रिदशैरपि।
आधिव्याधिविनिर्मुक्तः सोऽक्षयं सुखमश्नुते॥[108]

(27) अन्नदान

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत विष्णुधर्मोत्तरपुराण में अन्न दान के विषय में विचार करते हुए कहा गया है-

सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते।
अन्नदानात्परं दानं न भूतो न भविष्यति॥

नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमस्तथा।
न च देशः परीक्ष्योऽत्र देयमन्नं सदैव तत्॥

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितेभ्यस्तथैव च।
कृमिकीटपतङ्गेभ्यो देयमन्नं सदैव हि॥

अन्नं हि जीवितं लोके प्राणाश्चान्ननिबन्धनाः।
अन्नदः प्राणदो लोके सर्वदश्च तथान्नदः॥[109]

यहीं उद्धृत स्कन्दपुराण के आधार पर अन्न दान की श्रेष्ठता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है-

सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतं।
सद्यः प्रीतिकरं दिव्यं बलबुद्धिविवर्द्धनं॥

नान्नदानसमं दानं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
अन्नाद् भवन्ति भूतानि म्रियन्ते तदभावतः॥

गर्भस्था जायमानाश्च बालवृद्धाश्च मध्यमाः।
आहारमभिकांक्षन्ति देव दानव तापसाः॥

क्षुधा हि सर्वरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः।
तस्यान्नौषधलेपेन प्रतीकारः प्रकीर्त्तितः॥

अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चापि सर्वदः।
तस्मादन्नप्रदानेन सर्वदानफलं लभेत्॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसाधनं।
स्थितिस्तस्यान्नपानाभ्यामतस्तत् सर्वसाधनं॥

अन्नं प्रजापतिः साक्षादन्नं विष्णुः शिवः स्वयं।
तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति॥[110]

महाभारत के अनुशासन पर्व में अन्न दान के विषय में कहा गया है कि-

कृत्वापि पातकं कर्म यो दद्यादन्नमर्थिने।
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन युज्यते॥

ब्राह्मणेष्वक्षयं दानमन्नं शूद्रे महत्फलं।
अन्नदानं हि शूद्रे न ब्राह्मणेभ्यो विशिष्यते॥

न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायं देशमेव वा।
भिक्षितो ब्राह्मणेनेह दद्यादन्नं प्रयाचितः॥[111]

अन्न की आवश्यकता केवल मनुष्यों को ही नहीं होती, अतः कृमि कीट पतङ्गादि को भी अन्न देने का उल्लेख हेमाद्रि द्वारा उद्धृत नन्दिपुराण में किया गया है-

अपि कीटपतङ्गानां शुनां चाण्डालयोनिनां।
दत्वान्नं लोकमाप्नोति प्राजापत्यं समासतः॥

बान्धवेभ्योऽतिथिभ्योन्नं मित्रेभ्यश्च प्रयच्छतां।
दीनान्धकृपणानां च स्वर्गः स्यादन्नदायिनां॥[112]

अन्नदान दो प्रकार से किया जा सकता है- बिना पका कच्चा अन्न व भोजन के रूप में पकाया गया अन्न। पकाये गये अन्न दान के विषय में महर्षि देवल का कथन है-

अघृतं भोजयन् विप्रान् स्वगृहे सति सर्पिषि।
परत्र निरयं घोरं गृहस्थः प्रतिपद्यते॥[113]

मृष्टमन्नं स्वयं भुक्त्वा पश्चात् कदशनं लघु।
ब्राह्मणान् भोजयेन्मूर्खो निरये चिरमावसेत्॥

यो मृष्टमन्नं द्विजपुङ्गवानां दद्यात् सुराणामथवातिथिभ्यः।
स पुत्रपौत्रैरभिवर्द्धमानः समानतां वृत्ररिपोरुपैति॥[114]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी पक्वान्नदान के विषय में कहा गया है-

पक्वान्नदानात् फलदं नृलोके।
शुष्कान्नमुक्तं हि तदाप्तिरस्मात्॥

यजन्ति यज्ञैर्हि ततो द्विजेन्द्रा -
स्तस्मात्तु तत् पुण्यतमं प्रदिष्टं॥[115]

व्यास ने एक ही पंक्ति में अन्नदान में भेदभाव करने की निन्दा की है-

यस्त्वेकपङ्क्त्यां विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद् वा यदि वार्थहेतो।
देवैश्च दृष्टं मुनिभिश्च गीतं तां ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति॥[116]

(28) उदकदान

प्राणिमात्र के प्राण धारण के लिए जैसे अन्न आवश्यक है,उसी प्रकार जल भी अत्यावश्यक है। अतः महाभारत में कहा गया है-

अन्नमेव मनुष्याणां प्राणानाहुर्मनीषिणः।
तच्च सर्वं नरव्याघ्र पानीयात् सम्प्रवर्तते॥

तस्मात् पानीयदानात् वै न परं विद्यते क्वचित्।[117]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत मनु ने भी जल-दान की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा है-

सलिलं यः प्रयच्छेत् जीवानां प्राणधारणं।
शीतलं ग्रीष्मकाले तु तस्य पुण्यफलं श्रृणु॥

कपिलाकोटिदानस्य यत् पुण्यं हि विधीयते।
तत् पुण्यफलमाप्नोति पानीयं यः प्रयच्छति॥

पूर्णचन्द्रप्रकाशेन द्यां विमानेन रोहति॥[118]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत भविष्यत्पुराण में भी इस प्रकार के ही विचार प्रस्तुत किये गये हैं-

ग्रीष्मे चैव वसन्ते च पानीयं यः प्रयच्छति।
वक्तुं जिह्वासहस्रेण तस्य पुण्यं न शक्यते॥[119]

यहीं नन्दिपुराण को उद्धृत कर कहा गया है-

योऽपि कश्चित्तृषार्त्ताय जलपानं प्रयच्छति।
स नित्यतृप्तो वसति स्वर्गे युगशतं नरः॥[120]

स्कन्दपुराण में कहा गया है कि जल तीनों लोकों का जीवन है, अतः जल-दान अवश्य देना चाहिये। धर्मशास्त्र में उदक-दान की अनेक विधियाँ बताई गई हैं।[121] यथा- पथिक विप्र को करयन्त्रि देना, जलकरक (कमण्डलु) दान, घटीपात्र, कुण्डिका, मिट्टी का घड़ा, गलन्तिका दान आदि।

हेमाद्रि ने विष्णु को उद्धृत करते हुए जल पूर्ण धर्मघटदान के विषय में कहा है-

शीतलेन सुगन्धेन वारिणा पूरितं घटं।
शुक्लचन्दनदिग्धाङ्गं पुष्पदामोपशोभितं॥

दध्योदनयुतं कुर्याच्छरावं तस्य चोपरि।
उपानच्छत्रसंयुक्तं धर्माख्यं कल्पयेद् घटं॥

पुष्पाक्षतं गृहीत्वा विष्णुरूपाय नमः सागरसम्भव।
अपां पूर्णोद्धरास्मांस्त्वं दुःखसंसारसागरात्॥

उदकुम्भो मया दत्तो ग्रीष्मे काले दिने दिने।
उदकुम्भ प्रदानेन प्रीयतां मधुसूदन॥[122]

भविष्योत्तरपुराण में कहा गया है कि जलकुम्भ देने में भी जो व्यक्ति अशक्त हो वह अश्वत्थ वृक्ष सींचे। यथा-

उदकुम्भप्रदानेऽपि ह्यशक्तो यः पुमान् भवेत्।
तेनाश्वत्थतरोर्मूलं सेच्यंनित्यं जितात्मना॥[123]

हेमाद्रि ने चतुर्वर्गचिन्तामणि के दान खण्ड में अश्वत्थ सेचन, मणिकदान, प्रपादान आदि की विधियों का विस्तार से विवेचन किया है।[124]

(29) अन्य-दान

उपर्युक्त अन्न-वस्त्र-जल आदि दान स्वरूपों से भारतीय धर्मशास्त्र की लोकोपकार दृष्टि एवं जन-जन में कर्तव्य बुद्धि-आधान की योग्यता का परिचय प्राप्त होता है। आज के युग में बड़े दान कर्म सुलभ न होने पर भी अन्न, वस्त्र और जल का दान तो मनुष्य यथाशक्ति कर ही सकता है। मानव की प्राणि मात्र के प्रति सहिष्णुता बढ़ाने में ये दान सहायक हो सकते हैं। उपर्युक्त दान के अतिरिक्त भी अनेक दान कर्म ऐसे हैं जो मनुष्य

की सहिष्णुता व करुणा को जीवित रखने के पर्याय रूप में देखे जा सकते हैं। यथा-अन्धों, लंगड़ों, अशक्तों, वृद्धों और पथिकों को यष्टि दान, हेमन्त और शिशिर में ईंधनदान, हेमन्त अैर शिशिर ऋतु में देवमन्दिर, मठ, बाजार, चौराहे आदि पर अग्नीष्टिका (फायर प्लेस) व ईंधन दान, व्यजन (पंखा) दान, छाता और जूता दान, अभयदान, वितानदान, पान्थ-सुश्रूषा, गो-सुश्रूषा आदि। देवता और ब्राह्मण के लिये दर्पण, चँवर, गन्ध ताम्बूल, पुष्प, गीतादि मनोविनोद, भोजन पात्र, भाण्ड, स्थाली, यज्ञोपवीत आदि के दान को भी महत्ता प्रदान की गई है, ताकि, देव मन्दिरों के कार्य सुचारू रूप से चलते रहें।

(30) मासक्रमानुसारदेयदान

नीलकण्ठ ने विष्णुधर्मोत्तरपुराण को उद्धृत कर मासक्रमानुसार देय दानों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है-

तिलप्रदानान्माघे तु याम्यं लोकं न गच्छति।
प्रियङ्गुं फाल्गुने दत्वा प्रियो भवति भूतले॥

चैत्रे चित्राणि वस्त्राणि दत्त्वा सौभाग्यमश्नुते।
अपूपानां प्रदानेन वैशाखे स्वर्गमश्नुते॥
छत्रदानं तथा ज्येष्ठे सर्वान्कामान्समश्नुते।
आषाढ़े चन्दनं देयं सकर्पूरं महाफलम्॥

श्रावणे वस्त्रदानस्य कीर्तितं सुमहत्फलम्।
प्रौष्ठपदे तथा मासे प्रदानात्फाणितस्य च॥

आश्विने घृतदानेन रूपवानभिजायते।
कार्तिके दीपदानेन सर्वथोज्ज्वलमाप्नुयात्॥

लवणं मार्गशीर्षे तु दत्त्वा सौभाग्यमश्नुते।
पौषे कांचनदानेन परां तुष्टिं तथैव च॥

पुष्पाणां च सिते पक्षे दानं लक्ष्मीकरं मतम्।
फलानां च तथा दानं कृष्णपक्षे महाफलम्॥[125]

हेमाद्रि ने भी काल विशेष से दान विशेषों का कथन किया है। तदनुसार विशेष तिथि, नक्षत्र, वार, योग, करण और संक्रान्तियों के अनुसार विशिष्ट दान विधियों का निरूपण किया गया है। इन दान विधियों का लक्ष्य यही प्रतीत होता है कि मनुष्य को सदा समय चक्र का ज्ञान रहे एवं समयानुसार अपनी आय में से वह कुछ न कुछ पुण्य कार्य करता रहे।

अब तक वर्णित सम्पूर्ण दान विधियों पर चिन्तन करने से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने दान कर्म का जटिलतम से सरलतम तक जो स्वरूप उपस्थित किया है, उसमें समाज के सभी वर्गों को जोड़ने का प्रयत्न किया है। किसी भी वर्ग को दान कर्म से अछूता नहीं रखा है। दान में दाता, प्रतिगृहीता, देयद्रव्य, देश व काल की शुद्धता व उत्तमता को विशेष महत्त्व प्रदान किया है, अन्यथा दान के वैफल्य का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। दरिद्र श्रोत्रिय को दान देने का अधिक महत्त्व बताया है। यह उचित भी है क्योंकि जिसको किसी वस्तु की उत्कट आवश्यकता है, वही उसका उचित सदुपयोग कर सकता है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर प्रथम तो दान ग्रहण करने को ही हेय बताया गया है, यदि दान ग्रहण भी किया जाये तो तप और स्वाध्याय न करने पर दान लेने की निन्दा व प्राप्तकर्ता के नष्ट होने की भी पूरी आशंका व्यक्त की गई है। समाज में सहअस्तित्व की भावना, परोपकार की भावना, सहिष्णुता, दया, करुणा आदि गुणों का विकास भी दान कर्म करते रहने से अक्षुण्ण रहता है। मनुष्य में यह बोध बना रहता है कि ''समाज के प्रति मेरा भी कुछ कर्तव्य है''। अहंकार का नाश होकर ईश्वर के प्रति आस्था को बल मिलता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समाज के सुचारु एवं सम्मानपूर्ण संचालन में दान संस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

दान से पर्याप्त साम्य रखने वाला उत्सर्ग कर्म है। उत्सर्ग और दान में प्रत्यक्षतः स्थूल भेद दृष्टिगोचर न होने पर भी सूक्ष्म भेद अवश्य है। दान कर्म में दाता का देय द्रव्य में कोई अधिकार नहीं रहता और न ही वह उसका कभी उपभोग कर सकता है। उत्सर्ग की गई वस्तु पर भी दाता का कोई अधिकार नहीं रहता किन्तु सामान्य जन की तरह वह उसका उपयोग कर सकता है। दान व्यक्तिगत उपयोग हेतु किया जाता है, किन्तु उत्सर्ग सामान्य जन के कल्याण के लिए किया जाता है। अग्रिम अध्याय में इस बिन्दु को लेकर ही विचार करने का प्रयत्न किया जायेगा।

1. अमरकोश- 2/9/71.
2. अनुशासनपर्व- 83/17.
3. मत्स्यपुराण 82/17-22.
4. अग्निपुराण 210/11-12.
5. वराह पुराण- अध्याय 99/110.
6. मत्स्यपुराण 82/11-15.
7. वही, 82/16.
8. विष्णुधर्मोत्तरपुराण-3/308/1-10.
9. दानमयूख, पृष्ठ- 192.
10. वही, पृष्ठ- 192.
11. वही, पृष्ठ- 193.
12. वही, पृष्ठ- 193.
13. दानखण्ड, पृष्ठ- 414.
14. विष्णुधर्मोत्तर पुराण 309/1-9.
15. दानमयूख, पृष्ठ - 194.
16. वही, पृष्ठ - 195.
17. वही, पृष्ठ - 195-196.
18. वही, पृष्ठ - 196-197.
19. वही, पृष्ठ - 197-198.
20. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड पृष्ठ 430-431.
21. दानमयूख, पृष्ठ - 199-200.
22. भविष्यपुराण- उत्तर पर्व, अध्याय-155.
23. दानमयूख, पृष्ठ - 201.
24. वही, पृष्ठ - 201-202.
25. वही, पृष्ठ - 202-203.
26. वही, पृष्ठ - 204-205.

27. महाभारत अनुशासन पर्व 78/23-24 एवं 80/3.
28. दानमयूख, पृष्ठ - 212.
29. वही, पृष्ठ - 214-215.
30. चतुर्वर्गचिन्तामणि, दानखण्ड, पृष्ठ - 481.
31. महाभारत, अनुशासनपर्व- 78/14-15.
32. दानखण्ड, पृष्ठ -482.
33. मत्स्यपुराण- 83/4-6.
34. दानमयूख, पृष्ठ - 229.
35. मत्स्यपुराण- 84/6-8.
36. वही, - 84/9.
37. वही, 85/5-7.
38. वही, 85/8-9.
39. वही, - 86/4-5.
40. वही, - 86/6.
41. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड, पृष्ठ- 365.
42. मत्स्यपुराण- 87/4-5.
43. वही, 87/6-7.
44. वही, 88/4.
45. वही - 88/5.
46. वही, 89/7-8.
47. वही- 89/9-10.
48. वही, 90/7-8.
49. वही- 90/9-11.
50. वही, 91/8.
51. वही- 91/9-10.
52. वही- 92/10-12.

53. वही, 92/13-15.
54. दानमयूख- पृष्ठ- 215-216.
55. वही, पृष्ठ - 217-218.
56. वही, पृष्ठ - 218-219.
57. वही, पृष्ठ - 219-220.
58. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड, पृष्ठ- 720-721.
59. दानमयूख, पृष्ठ - 247-248.
60. वही, पृष्ठ - 248-249.
61. वही, पृष्ठ - 250.
62. वही, पृष्ठ - 251-252.
63. वही, पृष्ठ- 252-253.
64. दानमयूख, पृष्ठ - 794-798.
65. वही, पृष्ठ - 253-255.
66. वही, पृष्ठ - 255-256.
67. दानखण्ड, पृष्ठ - 755-756.
68. दानमयूख, पृष्ठ - 358-359.
69. वही, पृष्ठ - 262-263.
70. वही, पृष्ठ - 260-262.
71. वही, पृष्ठ - 264-265.
72. कृत्यकल्पतरु-दानकाण्ड, पृष्ठ- 180-185.
73. दानखण्ड, पृष्ठ - 700-710.
74. दानमयूख, पृष्ठ - 269.
75. वही, पृष्ठ - 269-270.
76. दानखण्ड, पृष्ठ- 917-918.
77. वही, पृष्ठ - 816-817.
78. दानमयूख, पृष्ठ - 279.

79. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दानखण्ड, 899-900.

80. वही, पृष्ठ- 900-902.

81. सम्वर्त स्मृति- पद्य संख्या- 93.

82. महाभारत- अनुशासन पर्व- 98/45-54.

83. दानखण्ड, पृष्ठ- 940.

84. विष्णुधर्मोत्तपुराण- 1/166/1-18.

85. वही, 1/166/31-33.

86. दानखण्ड, पृष्ठ- 511.

87. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3/303/1-2.

88. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/212.

89. दानसागर में उद्धृत, पृष्ठ- 472.

90. दानमयूख- पृष्ठ- 278.

91. वही, पृष्ठ - 277.

92. वही, पृष्ठ- 275-276.

93. दानखण्ड, पृष्ठ- 513-514.

94. वही, पृष्ठ- 518.

95. दानमयूख, पृष्ठ- 278.

96. विष्णुधर्मोत्तर पुराण- 3/303/4-5.

97. चतुर्वर्गचिन्तामणि दान खण्ड में उद्धृत पृष्ठ- 525.

98. वही, पृष्ठ- 525.

99. वही, पृष्ठ- 559.

100. वही, पृष्ठ- 562.

101. वही।

102. वही, पृष्ठ- 904.

103. दानमयूख, पृष्ठ - 271.

104. दानखण्ड, पृष्ठ - 906-909.

105. वही, पृष्ठ- 910.

106. वही, पृष्ठ- 910.

107. वही,

108. वही,

109. विष्णुधर्मोत्तर पुराण- 3/315/1-4.

110. दानखण्ड, पृष्ठ - 980.

111. 62/16-18.

112. दानखण्ड, पृष्ठ- 984.

113. वही

114. वही, पृष्ठ- 986.

115. विष्णुधर्मोत्तर पुराण- 3/314/15.

116. दानखण्ड, पृष्ठ- 985.

117. महाभारत-अनुशासनपर्व- 68/15-16.

118. दानखण्ड, पृष्ठ 988.

119. वही, पृष्ठ 989.

120. वही,

121. वही,पृष्ठ 991.

122. वही, पृष्ठ - 992-993.

123. वही - पृष्ठ- 994.

124. वही, पृष्ठ- 994-996.

125. विष्णुधर्मोत्तर पुराण- 3/317/9-15.

****

परिशिष्ट संख्या (7)

देवादि- स्वरूप

1- गोविन्द-

अधश्चक्रं गदामूर्द्ध्वे वामयोः करयोः क्रमात्।
उर्ध्वे शङ्खमधः पद्मं गोविन्दः कपिलाङ्गकः ।।

2- विश्वकर्मा-

विश्वकर्मा तु कर्तव्यः श्मश्रुलोरस्तनाधरः।
सन्दंशपाणिर्द्विभुजस्तेजो मूर्तिधरो महान्।।

3- अग्नि-

कमण्डलुं स्रुवञ्चैव शक्तिं दर्भमपिक्रमात्।
कलयन्त्यङ्गिरो नाम्ना कराग्राणि समन्ततः।।

पाणयश्चाग्निना सोऽपि कलयन्ति जपस्रजं।
शक्तिञ्च पुस्तकञ्चैव क्रमादेव कमण्डलुम्।।

4- प्रजापति-

यज्ञोपवीती हंसस्थ एकवक्त्रश्चतुर्भुजः।
अक्षं स्रुचं स्रुवं धत्ते कुण्डिकाञ्च प्रजापतिः।।

विधाता का स्वरूप भी ऐसा ही होगा, किन्तु यह चतुर्मुख होगा।

5- पर्जन्य-

पर्जन्यनामा विज्ञेयो गजवक्त्रत्रयान्वितः।
यो धत्ते सर्वजीवात्मा वरं बीजञ्च शङ्खकम्।।

कुठारञ्च पयोजञ्च चिन्तारत्न महाशुचिः।
पाशञ्चक्रं किसलयं कुण्डी च दशभिः करैः॥

6- पितृ-

कुशविष्टरपद्मस्थाः पितरः पिण्डपात्रिणः।

7- धर्म-

चतुर्वक्त्रश्चतुष्पादश्चतुर्बाहुः सिताम्बरः।
सर्वाभरणवान् श्वेतो धर्मः कार्यो विजानता॥
दक्षिणे चाक्षमाला च तस्य वामे तु पुस्तकं।

8- मित्र-

मित्रः कमलपाणिश्च कमलासनसंस्थितः।
द्विभुजः श्वेतमूर्तिश्च सर्वभूतहिते रतः॥

9- गन्धर्व-

वरदो भक्तलोकानां किरीटी कुण्डली गदी।
कार्यः सुरूपो गन्धर्वो वीणावाद्यरतस्तथा॥

10- विष्णु-

प्रदक्षिणं दक्षिणाधः करादारभ्य नित्यशः।
विष्णुः कौमोदकी- पद्म-शङ्ख-चक्रैरलङ्कृतः॥

11- धर्मराज-

धर्मराजस्तु महिषारूढश्चतुर्भुजो दण्ड-पाश-पाणिः कर्तव्यः।

12- सूर्य-

सूर्योऽपि सुवर्णमयः पद्मासनः पद्मधरः कार्यः।

13- मृत्युञ्जय-

अक्षमालाधरो देवो दक्षिणेन तु पाणिना।
वामेनामृतकुण्डीं च धारयन्नमृतान्वितां॥

वरदाभयपाणिश्च दिव्याभरणभूषितः।
शुक्लः सुनीलवासाश्च पद्मस्योपरि संस्थितः।।

14- दिग्गज-

शुभ्राभश्च चतुर्दंष्ट्र श्रीमानैरावतो गजः।
पुष्पदन्तो वृहत्साभ्रः षड्दन्तः पुष्पदन्तवान्।।
सामान्यगजरूपेण शेषा दिक्करिणः स्मृताः।

15- वेदांग-

मूर्तानि ब्रह्मणो लोके साक्षसूत्राणि तानि तु।
द्विजातिषु शुभास्यानि वामे दधति कुण्डिकाम्।।

16- पुरन्दर (इन्द्र)-

चतुर्दन्तो गजारूढो वज्रपाणिः पुरन्दरः।
प्राचीपतिः प्रकर्तव्यो नानाभरणभूषितः।।

17- अग्नि-

पिङ्गभ्रूश्मश्रुकेशाक्षः पीनाङ्गजठरोरुणः।
छागस्थः साक्षसूत्रश्च सप्तार्चिः शक्तिधारकः।।

18- यम-

ईषत्पीनो यमः कार्यो दण्डहस्तो विजानता।

19- निर्ऋति-

रक्तदृक् पाशधृक् क्रुद्धो निर्ऋतिर्विकृताननः।
पुंस्थितः खड्गहस्तश्च भूतवान् राक्षसावृतः।।

20- वरुण-

वरुणः पाशभृत् सौम्यः प्रतीच्यां मकराश्रयः।

21- समीरण-

धावन् हरिणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः।

22- सोम-

दशाश्वरथगः सोमो गदापाणिर्वरप्रदः।

23- परमेश्वर-

पूर्वोत्तरे त्रिनेत्रश्च वृषभस्थः त्रिशूलभृत्।
कपालपाणिश्चन्द्रार्द्धभूषणः परमेश्वरः॥

24- ब्रह्मा-

पद्मपत्रासनथश्च ब्रह्मा कार्यश्चतुर्मुखः।

अक्षमालास्त्रजं विभ्रत् पुस्तकञ्च कमण्डलुम्॥
वासः कृष्णाजिनं तस्य पार्श्वे हंसस्तथैव च।

25- शिव-

पञ्चवक्त्रो वृषारुढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः।
कपाल-शूल-खट्वाङ्गी चन्द्रमौलिः सदाशिवः॥

26- विष्णुधर्मोत्तर- पुराण में सूर्य-

रविः कार्यः शुभश्मश्रुः सिन्दूरारुणसुप्रभः।
पद्मासनः पद्मकरो भूषितो रशनाधरः॥

27- उमा-

गौरीं शङ्खेन्दुवर्णाभां शर्वरीशनिषेविताम्।
वृत्तपद्मासनासीनां साक्षसूत्रकमण्डलुम्॥

वरदोद्यतरूपाढ्यां सर्वमाल्यफलप्रियाम्।

28- लक्ष्मी- पद्मासनस्थां कुर्वीत श्रियं त्रैलोक्यमातरम्।
गौरवर्णां सुरूपाञ्च सर्वालङ्कारभूषितां॥

रौक्मपद्मकरव्यग्राम्वरदां दक्षिणेन तु।

29- वसु-

प्रसन्नवदनाः सौम्याः वरदाः शक्तिपाणयः।
पद्मासनस्था द्विभुजाः कर्तव्या वसवः सदा॥

30- द्वादश-आदित्य-

पद्मासनस्था द्विभुजाः पद्मगर्भान्तकान्तयः।
करादिस्कन्धपर्यन्तनालपङ्कजधारिणः॥

अधः संस्थितमेषादिराशयः प्रावृताङ्घ्रिकाः।
इन्द्राद्या द्वादशादित्यास्तेजोमण्डलमध्यगाः॥

31- मरुत्-

वायु-तुल्य अथवा समीरण-तुल्य।

32- शेषशायी विष्णु-

देवदेवश्च कर्तव्यः शेषसुप्तश्चतुर्भुजः।
एक पादोऽस्य कर्तव्यो लक्ष्म्युत्सङ्गगतः प्रभुः॥

तथापरश्च कर्तव्यः शेषभोगाङ्क संस्थितः।
एकोभुजोऽस्य कर्तव्यस्तत्र जानौ प्रसारितः॥

कर्तव्यो नाभिदेशस्थस्तथा तस्यापरः करः।
तथैवान्यः करः कार्यो देवस्य तु शिरोधरः॥

सन्तानमञ्जरीधारी तथावास्य करः परः।
नाभिसम्भूतकमले सुखासीनः पितामहः॥

नाललग्नौ तु कर्तव्यौ पद्मस्थौ मधुकैटभौ।
शंख-चक्र-गदादीनि मूर्त्तानि परितो न्यसेत्॥

33- प्रद्युम्न-

दक्षिणोर्ध्वकरे पद्मं दद्याच्छंखमधः करे।
चक्रमूर्ध्वे ततो वामे गदां दद्यात् तथा द्विज।
चापेषुधृग्वा प्रद्युम्नो रूपवान् विश्वमोहकः॥

34- महालक्ष्मी- (प्रकृति)

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी।
मातुलिङ्ग-गदा-खेटं पानपात्रञ्च विभ्रती।
नागयोनिञ्च लिङ्गञ्च विभ्रती नृप मूर्द्धनि॥

35- सङ्कर्षण- (बलराम)

वासुदेवस्य रूपेण कार्यः सङ्कर्षणः प्रभुः।
स तु शुक्लवपुः कार्यो नीलवासा यदूत्तमः।
गदास्थाने च मुशलञ्चक्रस्थाने च लाङ्लम्॥

36- अनिरुद्ध -

कृष्णं चतुर्भुजं दक्षे शरं खड्गं तदुत्तरे।
धनुः खेटधरं वीरमनिरुद्धं प्रचक्षते॥

37- वासुदेव-

वासुदेवः शिवः शान्तः सिताञ्जश्च चतुर्भुजः।
योगमूर्द्धोर्ध्वशङ्खश्च हृद्देशार्पितहस्तकः।
धारयेदुत्तरे चक्रं करे वै दक्षिणे गदाम्॥

38- सावित्री- गायत्री-

सावित्री दक्षिणे पार्श्वे गायत्री नाम वामतः।
विलोकयन्त्यौ ब्रह्माणं साक्षसूत्रकमण्डलुम्॥

39- सप्तर्षि-

सप्तर्षयस्त जटिला- कमण्डल्वक्षसूत्रिणः।
ध्याननिष्ठः वशिष्ठस्तु कार्यो भार्या समन्वितः॥

40- ऋषि-

जटिलाः श्मश्रुलाः शान्ता दशाधमनिसन्तताः।
कुसुम्भाक्षधराः कार्या मुनयो द्विभुजाः सदा॥

41- नारद-

तेषु सव्यभुजामूलश्लिष्ट धीरस्तु नारदः।
कर्पूरगौरदेहश्च साक्षसूत्रकमण्डलुः॥

42- वाराह-

वाराहरूपः कार्यस्तु शेषोपरिगतः प्रभुः।
शेषश्चतुर्भुजः कार्यश्चारुरत्नफणान्वितः॥

कर्तव्यौ शौरिमुशलौ करयोस्तस्य यादव।
सर्परूपश्च कर्तव्यस्तथैव रचिताञ्जलिः॥

आलीटस्थानसंस्थानस्तत् पृष्ठे भगवान् भवेत्।
वामारत्नगता तस्य योषिद्रूपा वसुन्धरा॥

नमस्कारपरा तस्य कर्तव्या द्विभुजा शुभा।
यस्मिन् भुजे धरा देवी तत्र शङ्खः करे भवेत्॥

अन्ये तस्य कराः कार्याः पद्म-चक्र-गदा-धराः॥

43- श्री-

पद्मासनस्थां कुर्वीत श्रियं त्रैलोक्यमातरम्॥
गौरवर्णां सुरूपाञ्च सर्वालङ्कार भूषिताम्।

रौक्मपद्मकरव्यग्रां वरदां दक्षिणेन तु॥

44- कामदेव-

कामदेवस्तु कर्तव्यो रूपेणाप्रतिमो भुवि।
अष्टाबाहुः प्रकर्तव्यः शङ्खपद्मविभूषणः॥

चापबाण करश्चैव मदादञ्चितलोचनः।
रतिः प्रीतिस्तथा शक्तिर्भार्याश्चैतास्तथोज्ज्वलाः।

चतस्रः तस्य कर्तव्याः पत्न्योरूपमनोहराः।
चत्वारश्च करास्तस्य कार्या भार्याः स्तनोपगाः॥
केतुश्च मकरः कार्यः पञ्चबाणमुखोमहान्।

45- नन्दिकेश्वरः-

ऊर्ध्वस्त्रिनेत्रो द्विभुजः सौम्यास्यो नन्दिकेश्वरः।
वामे तु शूलभृद्दक्षे चाक्षमालासमन्वितः॥

46- अश्विनीकुमार-

द्विभुजो देवभिषजौ कर्तव्यावश्ववाहनौ।
तयोरोषधयः कार्या दिव्या दक्षिणहस्तयोः।

वामयोः पुस्तकौ कार्यो दर्शनीयौ तथाद्विज॥

47- नारायण-

नारायणो चतुर्बाहुः शङ्खं चक्रं तथोत्तरे।
दक्षिणे तु महापद्मं नीलञ्जीमूतसन्निभे।

वामे श्रीर्वल्लकीहस्ता पुष्टिः पद्मकरा परा॥

48- गरुड़-

ओं ऐन्द्रस्याग्रतः पक्षी गुडाकेशः कृताञ्जलिः।
सव्यजानुगतो भूमौ मूर्द्धा च फणिमण्डितः॥

पक्षिजङ्घो नरग्रीवस्तुङ्गनासो नराङ्गकः।
द्विबाहुः पक्षयुक्तश्च कर्तव्यो विनतासुतः।

49- विनायक-

चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च कर्तव्योऽत्र गजाननः।
नागयज्ञोपवीतश्च शशाङ्ककृतशेखरः॥

दन्तं दक्षकरे दद्याद्वितीये चाक्षसूत्रकम्।
तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थे मोदकं तथा॥

50- शक्ति-

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा तथापरा।
प्रज्ञा सत्या तथेशाना नवमी वाप्यनुग्रहेति॥

सर्वा दक्षिणहस्तेन वरदेन विराजिता।
सव्येन चक्रे धारिण्यः स्त्रीरूपाश्चारुभूषणा॥

51- मत्स्य-

वामे शङ्खं गदां दक्षे द्विभुजोमत्स्यरूपधृक्।
नराङ्घ्रिमत्स्यरूपो वा मत्स्यरूपो जनार्दनः॥

52- कूर्म-

कूर्म का भी उपर्युक्त लक्षण ही होगा, केवल मत्स्य के स्थान पर कूर्म पढा जायेगा।

53- नृसिंह-

ज्वलदग्निसमाकारं सिंहवक्त्रं नराङ्कम्।
दंष्ट्रा करालवदनं ललज्जिह्वं सुभीषणम्॥

वृत्ताक्षं जटिलं क्रुद्धं आलीढं पीनवक्षसम्।
अभेद्यतीव्रनाखरं वामोरूकृतदानवं॥

तद्वद्यो दारयन्तं च कराभ्यां नरवरैर्भृशं।
गदाचक्रधरं द्वाभ्यां नरसिंहं जगत्प्रभुम्॥

54- वामन-

कुण्डीच्छत्रधरो द्विर्द्योर्वामिनः परिकीर्तितः।

55- परशुराम-

क्षत्रान्तकरणं घोरमुद्वहन् परशुं करे॥
जामदग्न्यः प्रकर्तव्यो रामो रोषारुणेक्षणः।

56- राम-

युवा प्रसन्नवदनः सिंहस्कन्धो महाबलः॥
आजानुबाहुः कर्तव्यो रामो बाणधनुर्धरः।

57- कृष्ण-

शङ्खचक्रधरः कार्यो नीलोत्पलदलच्छविः।
कृष्णो दीर्घद्विबाहुश्च सर्वदैत्यक्षयङ्करः।

58- बुद्ध-

काषायवस्त्रसंवीतः स्कन्धसंसक्तचीवरः।।
पद्मासनस्थो द्विभुजो ध्यायी बुद्धः प्रकीर्तितः।

59- कल्की-

खड्गोद्यतकरः क्रुद्धो हयारूढो महाबलः।।
म्लेच्छोच्छेदकरः कल्की द्विभुजः परिकीर्त्तितः।

60- ब्रह्माणी-

गौरी चतुर्मुखी वीरा अक्षमाला स्रुचान्विता।
कुण्डाज्यपात्रिणी वामे ब्रह्माणी हंससंस्थिता।।

61- रुद्राणी-

त्रिनेत्रा शूलहस्ता च जटाखण्डेन्दुमण्डिता।
कपालमालिनी शुक्ला रुद्राणी वृषसंस्थिता।।

62- कौमारी-

रक्ता शक्तिधरा देवी रक्तमाल्याम्बरान्विता।
शिखिपृष्ठसमारूढा कौमारी स्कन्दरूपिणी।।

63- वैष्णवी-

शङ्ख-चक्र-गदा शार्ङ्ग-खड्गहस्ता च तार्क्ष्गा।
श्यामा चतुर्भुजा देवी वैष्णवी वनमालिनी।।

64- वाराही-

कृष्णा पीनोदरा क्रूरा शूकरास्यानुकारिणी।
सवस्त्रा यौवनोद्भिन्ना नार्याभरण भूषिता।।

65- मदिरा-

महिषस्था तु मदिरा दण्डधारिणी।
खड्ग-खेटकसंयुक्ता अथवापि चतुर्भुजा॥

66- इन्द्राणी-

सहस्राक्षा गजारूढा हेमाभा वज्रधारिणी।
इन्द्राणी सर्वसिद्धार्था सर्वाभरणभूषिता॥

67- चामुण्डा-

गर्ताक्षी क्षीणदेहा तु क्षामकुक्षिभयङ्करी।
विवृतास्या च दंष्ट्रोग्रा शिवे वा कौशिके स्थिता॥

लेलिहाना विमुक्ताक्षी ज्वलत्केशाहिमण्डिता।
द्वीपिचर्माम्बरा क्रुद्धा चामुण्डा मुण्डमालिनी॥

जटिला वर्तुला त्र्यक्षा चतुर्बाहुषु बिभ्रती।
कपालकर्त्तरीयाम्ये पाशं शूलञ्च वामत॥

68- पृथिवी-

शुभवर्णा मही कार्या दिव्याभरणभूषिता।
चतुर्भुजासौम्यवपुश्चन्द्रांशुसदृशाम्बरा॥

रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमौषधसंयुतम्।
पद्मं करे च कर्तव्यं भुवो यादवनन्दन॥

दिग्गजानां चतुर्णा सा कार्या पृष्ठगता तथा।
सर्वौषधियुता देवी शुक्लवर्णा ततः स्मृता॥

69- आपः-

तस्य ध्यानवतः पूर्वमापः प्रत्यक्षतां ययुः।
स्त्रीरूपाः शुभ्रवर्णाश्च द्विभुजाः श्वेतवाससः।
दधानाः पाशकलशौ करयोर्मकरासना॥

70- आकाश-

नीलोत्पलाभं गगनन्तद्वर्णाम्बरधारि च।
चन्द्रार्कहस्तं कर्तव्यं द्विभुजं सौम्यदर्शनम्।

द्विरष्टवर्षाकारञ्च स्त्रीपुंसव्यञ्जनोज्झितम्॥

71- रुद्र-

रक्तवर्णास्त्रिनयना द्विभुजा चन्द्रमौलयः।
जटिलाश्च प्रकर्तव्या रुद्रा बाणधनुर्धरा॥

72- अस्त्र-

खड्ग-शूल-गदा शक्ति-कुन्ता-ङ्कुश-धनूंषि च।
स्वधितिश्चेति शस्त्राणि तेषु चापं प्रशस्यत॥

73- मङ्गल -

दक्षिणावर्तशङ्खश्च रोचना चन्दनन्तथा।
मुक्ताफलं हिरण्यञ्च छत्रञ्चामरमेव च॥

74- लक्ष्मीनारायण-

पद्मासनगतं कुर्याद्देवदेवं चतुर्भुजं॥
दक्षिणाधः करे पद्मं शङ्खमूर्ध्वकरे न्यसेत्।

वामोर्ध्वे च भवच्चक्रं लक्ष्मीपृष्ठे करोऽपरः॥
वामोत्सङ्गगता लक्ष्मीरत्नपात्रकरा भवेत्।

दक्षिणश्च भुजो देव्याः पृष्ठे देवस्य चक्रिणः॥

75- नव-ग्रह-

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः।
सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः॥

श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः।
गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी॥

रक्तमाल्याम्बरधरः शक्ति- शूल-गदाधरः।
चतुर्भुजो मेषगमो वरदः स्याद्धरासुतः॥

पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारदलद्युतिः।
खड्ग-चर्म-गदा-पाणिः सिंहस्थो वरदः बुधः॥

देवदैत्यगुरुस्तद्वत्पीतवेतेतौ चतुर्भुजौ।
दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्र कमण्डलू॥

इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः।
बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतः सदा॥

करालवदनः खड्ग-चर्म-शूली वरप्रदः।
नीलः सिंहासनश्च राहुरत्र प्रशस्यते॥

धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः।
गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः॥

सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः।
स्वाङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं सदा॥

76- कुमारकार्तिकेय-

कुमारः षण्मुखः कार्यः शिखण्डकविभूषितः।
रक्ताम्बरधरः कार्यो मयूर-वरवाहनः॥

कुक्कुटश्च तथा घण्टा तस्य दक्षिणहस्तयोः।
पताका वैजयन्ती च शक्तिः कार्या च वामयोः॥

77- मित्र-

पद्मगर्भसमः कार्यो मित्रः कमलसंस्थितः ।
अजोऽतुलोविनालान्त विकचाम्भोजधृक् प्रभुः ॥

78- अश्विनी कुमार-

द्विभुजौ देवभिषजौ कर्तव्यौ चारुलोचनौ।
तयोरोषधयः कार्या दिव्या दक्षिणहस्तयोः॥

वामयोः पुस्तकौ कार्यो दर्शनीयौ तथा द्विज।
एकस्य दक्षिणे पार्श्वे वामे चान्यस्य यादव॥

79- कुबेर-

ह्रस्वमापिङ्गनेत्रञ्च गदिनं पीतविग्रहम्।
पुष्पकस्थं धनाध्यक्षं ध्यायेत् शिवसखं सदा॥

80- वेद-स्वरूप-

ऋग्वेदस्याक्षसूत्रन्तु यजुर्वेदस्य पङ्कजं।
सामवेदस्य वीणा स्याद्वीणां दक्षिणतो न्यसेत्॥

अथर्ववेदस्य पुनः सुक्स्रुवौ कमलं करे।
पुराणवेदो वरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः॥

81- उमाशङ्कर-

चर्माम्बरश्चतुर्बाहुः शूलखट्वाङ्पाशधृक्
वृषाङ्कः शङ्करो गौरी वामोत्सङ्गे स्थिता भवेत्॥

82- काल-

कालः करालवदनो पीताङ्गश्च विभीषणः।
पाशहस्तो दण्डहस्तः कार्यो वृश्चिकरोमवान्॥

83- सुरभि-

सवत्सा सुरभी धेनुरागता प्रस्नुतस्तनी।

84- दुर्गा-

शक्तिं, बाणं तथा शूलं खड्गं चक्रं च दक्षिणे।
चन्द्रबिम्बमधो वामे खेटमूर्ध्वे कपालकम्॥

सुकङ्कटं च बिभ्राणा सिंहारूढा तु दिग्भुजा।
एषा देवी समुद्दिष्टा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी॥

समस्त देवस्वरूपों हेतु द्रष्टव्य भगवन्त भास्कर-
दानमयूख एवं चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड।

षष्ठ अध्याय

'उत्सर्ग' शब्द की पारिभाषिकता

(1) व्युत्पत्तिपरकविवेचन-

'उत्सर्ग' शब्द 'उत्' उपसर्ग पूर्वक 'सृज्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय का योग होने से निष्पन्न हुआ है। 'शब्दकल्पद्रुम' में 'उत्सर्ग' शब्द का अर्थ 'त्याग' अथवा दान किया गया है। 'शब्दकल्पद्रुमकार' ने 'तिथ्यादितत्वम्' के आधार पर 'उत्सर्ग' शब्द का अर्थ 'साग्निकर्त्तव्यक्रियाविशेष' भी कहा है तथा 'वैधोत्सर्गविधि' के अन्तर्गत उत्सर्ग का तात्पर्य निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया है- 'स्नानसंध्याचमनानि कृत्वा नारायणनवग्रहगुरून् संपूज्य देयद्रव्यं वामहस्तेन धृत्वा दक्षिणहस्तेन त्रिरभ्यर्च्य तद्द्रव्याधिपतिदेवतां सम्प्रदानञ्च अर्चयित्वा संकल्प्य कुशजलत्यागपूर्वकदानम्।'[1] शब्दार्थचिन्तामणि में 'उत्सर्ग' अथवा 'उत्सर्जन' का अर्थ अपानवायु का व्यापार विशेष भी किया है।[2] शब्दार्थ कौस्तुभ में 'उत्सर्ग' शब्द का अर्थ भेंट अथवा अर्पण करना, छोड़ देना आदि किया गया है।[3]

(2) पारिभाषिक- विवेचन-

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'उत्सर्ग' भी दान का ही एक स्वरूप है। याज्ञवल्क्य स्मृति की अपरार्क टीका में महर्षि देवल का मत उद्धृत करते हुए दान के ध्रुव, आजस्रिक, काम्य और नैमित्तिक क्रम से चार भेद माने गये हैं। यथा-

ध्रुवमाजस्रिकं काम्यं नैमित्तिकमिति क्रमात्।
वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विजैः॥

प्रपारामतटाकादि सर्वकामफलं ध्रुवम्।
तदाजस्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिने दिने॥

अपत्यविजयैश्वर्यस्त्री बालार्थं यदिष्यते।
इच्छासंस्थं तु तद्दानं काम्यमित्यभिधीयते॥

कालापेक्षं क्रियापेक्षमर्थापेक्षमिति स्मृतम्।
त्रिधा नैमित्तिकं प्रोक्तं सहोमं होमवर्जितम्॥[4]

उपर्युक्त प्रकार से प्रपा, आराम, तडाग आदि का दान ध्रुव दान के अन्तर्गत माना गया है। मनु ने इष्ट और पूर्त भेद से दान के दो भेद माने हैं-

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम्।[5]

लघुशंख स्मृति में इष्टापूर्त विषय को और स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

इष्टापूर्तौ तु कर्त्तव्यौ ब्राह्मणेन विशेषतः।
इष्टेन लभते स्वर्गं मोक्षं पूर्तेन विन्दति॥

वापीकूपतडागानि देवतायनानि च।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते॥

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैवधारणम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च इष्टमित्यभिधीयते॥

इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्ये धर्मसाधने।
अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके॥[6]

लिखित स्मृति में भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किये गये हैं।[7] लघु यम स्मृति में इष्ट को वित्तापेक्ष बताते हुए कहा गया है -

वित्तापेक्षं भवेदिष्टं तडागं पूर्तमुच्यते।
आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च॥[8]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि इष्ट और पूर्त दान के ही दो भेद हैं। इष्ट से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और पूर्त से मोक्ष प्राप्त होता है। इष्ट कर्म के अधिकारी सभी द्विजाति होते हैं किन्तु पूर्त कर्म में शूद्र का भी अधिकार होता है। इष्ट का क्षेत्र अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदज्ञान, आतिथ्य और वैश्वदेव है, जबकि पूर्त का क्षेत्र वापी, कूप, तडाग,

आराम, देवमंदिर आदि जनकल्याण के कार्य हैं। इष्ट कर्म में धन आवश्यक है किन्तु पूर्त कर्म में शारीरिक परिश्रम से भी कार्य हो सकता है। वस्तुतः 'इष्ट' शब्द 'इष् इच्छार्थक' या 'यज् यज्ञार्थक' धातु से क्त प्रत्यय के योग से बना है, जिसका अर्थ है अभिलषित, प्रिय अथवा पूज्य और यज्ञ किया हुआ । इष्ट के साथ कामना जुड़ी हुई है अतः इष्ट कर्म का फल स्वर्ग प्राप्ति अथवा अन्यान्य कामनाओं की पूर्ति है। स्वर्ग फल भोग कर प्राणी को पुनः जन्म लेना आवश्यक है। जबकि 'पूर्त' शब्द 'पृ पूर्णे' धातु से क्त प्रत्यय के योग से बना है, जिसका तात्पर्य है पूर्ण, पोषित, रक्षित। (अथवा परोपकार का कार्य)

इष्ट कर्म के मूल में स्वकल्याण की भावना है, जबकि पूर्तकर्म के मूल में परकल्याण की भावना है। अतः पूर्त से मोक्ष प्राप्ति होना उचित ही कहा गया है। पूर्त कर्म के अन्तर्गत वापी, कूप, तडाग, जलाशय आदि एवं वृक्ष, आराम, देवालय आदि का निर्माण परिगणित किया गया है, किन्तु निर्माण करने के उपरान्त विधिपूर्वक जब तक इनका उत्सर्ग नहीं किया जाता, तब तक पूर्त कर्म पूर्ण नहीं माना जाता। महर्षि पाराशर ने स्पष्ट रूप से कहा है-

तडागादि निपानानां यावन्नोत्सर्जनं कृतम्।
तावत्तत्परकीयं तु स्नानादीनामनर्हकम्॥

अप्रतिष्ठितखातानामपेयं तोयमुच्यते।
तदुत्सर्गः प्रकर्तव्यो निजवित्तानुसारतः ॥[9]

इस प्रकार उत्सर्ग व पूर्त शब्द समान अर्थ को प्रकट करते हैं। उत्सर्ग भी दान से साम्य रखता है, किन्तु प्रो. काणे के मतानुसार दान एवं उत्सर्ग के पारिभाषिक अर्थ में कुछ अन्तर है। दान में स्वामी अपना स्वामित्व किसी अन्य को दे देता है और उसका उस वस्तु से कोई संबंध नहीं रह जाता अर्थात् न तो वह उसका प्रयोग कर सकता है और न ही उस पर किसी प्रकार का नियंत्रण ही रख सकता है, किन्तु जब उत्सर्ग किया जाता है, तो वस्तु जनता की हो जाती है और दाता जनता के सदस्य के रूप में उसका उपयोग कर सकता है। यह धारणा अधिकांश लेखकों की है, किन्तु कुछ लेखक उत्सर्ग की हुई वस्तु का दाता द्वारा प्रयोग अनुचित ठहराते हैं।

(३) अधिकारी :

'उत्सर्ग' कर्म करने का अधिकार चारों वर्णों को देते हुए याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है-

'भर्त्रा प्रीतेन यद्त्तं तस्मिन्मृतेऽपि तत् सा यथाकाममश्नीयाद् दद्याद्वा।'

अर्थात् विधवा स्त्रियाँ भी अपने स्त्री धन में से दान और भोग कर सकती हैं।[10]

उत्सर्जनीय वस्तुएँ

भारत जैसे उष्ण कटिबन्धीय देश में पशुपालन और कृषि कर्म मौसमी वर्षा पर निर्भर रहते आये हैं। अतः भारतीय जनमानस में जल को दैवी वरदान के रूप में स्वीकार किया गया है। 'जल ही जीवन है' कहकर उसकी पवित्रता एवं उपयोगिता का प्रत्यय जन-जन में इस प्रकार स्थापित कर दिया गया कि धर्म में श्रद्धा रखने वाला व्यक्ति एक बून्द जल व्यर्थ करना भी पाप समझता है। जल में वरुण देव का निवास माने जाने के कारण जल और जल स्थलों को अत्यन्त पूज्य मानता है। यही कारण है कि भारतीय धर्मशास्त्र में जल संरक्षक, प्रपा, कूप, वापी, जलाशय, पुष्करिणी आदि के निर्माण को अत्यन्त पवित्र एवं मोक्ष प्रदान करवाने वाला कहा गया है। ऋग्वेद में भी पुष्करिणी का उल्लेख हुआ है।

एक-एक घर, गाँव व गली मोहल्ले तक में वर्षा एवं भूमिगत जल संरक्षण की ऐसी व्यवस्था पर ध्यान दिया गया कि वर्ष भर तक प्राणिमात्र की जल की आवश्यकता पूरी होती रहे। आज वैज्ञानिक पराश्रयता के युग में जल की कमी से जनता संत्रस्त रहती है, किन्तु पहले कभी जैसलमेर जैसे रेगिस्तानी प्रदेश में भी कोई प्यासा रहा हो, ऐसे संकेत नहीं मिलते। प्राचीन शासकों ने भी अपने -अपने राज्य में जल संग्रहण क्षेत्र निर्माण करने को अत्यन्त महत्त्व दिया। आज भूमिगत जल के अंधाधुंध दोहन ने जल अपव्यय के सभी मानदण्डों को तोड़ दिया है। भोगवादिता के समक्ष समस्त धार्मिक आस्थाएँ बौनी होती प्रतीत हो रही हैं। आवश्यकता है, भारतीय धर्मशास्त्र के जल संबंधी विचारों की पुनर्स्थापना की एवं जन-जन को आगामी जल संकट के प्रति सावचेत करने की।

भारतीय ऋषि और मनीषी इस तथ्य को भली प्रकार जानते थे कि जल और वृक्षों का अन्योन्याश्रय संबंध है। वे यह जानते थे कि जल है तो वृक्ष हैं और वृक्ष हैं तो जल

(वर्षा) है। इस चिन्तन के अन्तर्गत वृक्षों को देव स्वरूप माना गया। उनमें जीवन मानते हुए वृक्ष, आराम आदि के संरक्षण, उत्सर्ग आदि को अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया गया। पर्व और त्यौहारों से वृक्षाराधना को जोड़कर वैज्ञानिक तथ्यों को जन-जन के हृदय में आस्था के रूप में स्थापित कर दिया गया। उत्सर्ग कार्य देव, पितरों और मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला कहा गया। जल स्रोतों के पास, सड़कों के किनारे, चौराहों आदि पर फलदार एवं छायादार वृक्ष लगाना अत्यधिक पुण्यकारक माना गया। उद्यानों, वृक्षपालियों आदि के निर्माण को भी अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया। वृक्षों से केवल सूखी लकड़ियाँ मात्र संग्रह करने पर बल दिया गया। जल और वृक्षों के संतुलित प्रयोग का जैसा सामंजस्य प्राचीन धर्मशास्त्र एवं धार्मिक आस्थाओं में मिलता है, वैसा सम्भवतः अन्य किसी संस्कृति में नहीं प्राप्त होता। यहाँ जल देवता है और वृक्ष पुत्र हैं। देवता को पूर्ण सम्मान व पुत्रों को जब पूर्ण संरक्षण प्राप्त होने लगे, तो प्राकृतिक अथवा पर्यावरण संतुलन में बाधा आने का प्रश्न ही नहीं उठता। यही भारतीय मनीषा की क्रान्तदर्शिता एवं सूझ-बूझ का परिणाम है।

भारतीय धर्मशास्त्र के अनुसार संन्यासी एवं यति कभी भी अधिक समय तक एक स्थान पर नहीं रह सकते। सन्यासी के लिए खडाऊ, परिधान, भोजपत्र, ताड़पत्र या कागज पर लिखी पुस्तकों, कमण्डलु आदि अन्य साधारण वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ भी संग्रह करना वर्जित था। अतः सन्यासियों के आश्रय हेतु कस्बे या गाँव में कुटिया बनवा दी जाती थी, जिसे मठ कहा जाता था। किन्तु विस्तीर्ण रूप में कुटिया या मठ वह स्थान थे, जहाँ आचार्य या गुरु की अध्यक्षता में बहुत से शिष्य धार्मिक सिद्धान्तों, आचारों तथा दार्शनिक तत्वों का अध्ययन, विवेचन आदि किया करते थे। कालान्तर में ये मठ श्रद्धालुओं व शिष्यों से प्राप्त सम्पत्तियों के कारण अत्यधिक वैभव सम्पन्न होते गये। मठों में ही मंदिरों की स्थापना भी की जाती थी। इस प्रकार यतियों व संन्यासियों के आश्रयस्थल के रूप में मठों इत्यादि की स्थापना को भी प्राचीन काल में अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया गया। यहाँ संन्यासियों को अपनी धर्म चर्चा निर्विघ्न रूप से करने का पूर्ण अवकाश था। भ्रमणशील संन्यासियों के अनुभव एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं ऐक्य हेतु ये मठ उत्तम साधन सिद्ध हुए।

भारतीय धर्मशास्त्र ने प्रतिश्रय (धर्मशाला) के दान को भी एक धार्मिक कृत्य माना। यात्रा पर निकले मनुष्य को मध्य में विश्राम हेतु किसी आश्रय की महती आवश्यकता

होती हैं अतः नगरों, कस्बों, गाँवों इत्यादि में प्रतिश्रय दान को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। दीनों, अनाथों और अकिञ्चनों हेतु भी आवसथ (बसेरा) बनवाने की संस्तुति की गई। रोगी जनों हेतु वैद्यों और उपकरणों युक्त आरोग्य शाला बनवाकर उत्सर्ग करने को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना गया।

उपर्युक्त प्रकार से उत्सर्जनीय वस्तुओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. जल संबंधी- कूप, प्रपा, वापी, तडाग, जलाशय, बाँध आदि।
2. वृक्ष संबंधी- आराम, उद्यान, वृक्षपाली इत्यादि।
3. विश्राम संबंधी- आश्रय, प्रतिश्रय, आवसथ, आरोग्यशाला आदि।

भारतीय धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में उपर्युक्त वस्तुओं के उत्सर्ग-महत्त्व एवं उत्सर्ग-विधि का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना प्राचीनकाल में था।

---

1. शब्दकल्पद्रुम- प्रथम खण्ड, पृष्ठ 228, सम्पादक- राजा राधाकान्तदेव, प्रकाशक- नाग प्रकाशक, दिल्ली।
2. शब्दार्थ-चिन्तामणि- प्रथम खण्ड, पृष्ठ 354, सम्पादक ब्राह्मावधूत सुखानन्द नाथ, प्रकाशक, प्रिन्टवैल, जयपुर।
3. शब्दार्थ- कौस्तुभ- पृष्ठ 232, सम्पादक- तारिणीश झा, प्रकाशक- रामनारायण लाल, बेनीमाधव, इलाहाबाद।
4. याज्ञवल्क्यस्मृति- प्रथम आचाराध्याय- पृष्ठ 289.
5. मनुस्मृति 4/227.
6. लघुशंखस्मृति 1/1 एवं 1/4-6.
7. लिखितस्मृति 1-6
8. लघुयमस्मृति 69
9. बृहत्पराशर स्मृति- 11/207-209.
10. धर्मशास्त्र का इतिहास- डा. पी. वी.काणे- प्रथम खण्ड- पृष्ठ 473.
11. याज्ञवल्क्य स्मृति, मिताक्षरा टीका 2/113.

सप्तम अध्याय

(1) जलाशयोत्सर्ग माहात्म्य

जलाशय का तात्पर्य यहाँ जलस्थान से है। ग्रीष्म ऋतु में मार्ग चलते हुए प्यास लगने पर प्रपा (प्याऊ) का महत्त्व ज्ञात होता है। महाभारत में प्रपादान के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है-

आपोनित्यं प्रदेयास्ते पुण्यं ह्येतदनुतमम्॥
प्रपाश्च कार्या दानार्थं नित्यन्तु द्विजसत्तम।

भुक्तेप्यन्नं प्रदेयं तु पानीयं वै विशेषतः।

निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितं।
स दुर्गं विषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्नुते॥[1]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में प्रपा एवं प्रपा के उपकरणों के पृथक्- पृथक् दान का महत्त्व निम्नलिखित शब्दों में बताया है-

प्रपां पथि तथा कृत्वा नाकलोके महीयते।
प्रपास्थानं शुभं कृत्वा स्थानमाप्नोति शाश्वतम्॥

तस्य स्थानात्तथा त्यागात्फलवृद्धिः प्रकीर्तिता।
तस्योपलेपनं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

दत्त्वा रज्जुमपां स्थाने गोदो भवति मानवः।
वारिधानीं तथा दत्त्वा तदेव फलमाप्नुयात्॥

कुम्भप्रदानाद्भवति सदा पूर्णमनोरथः।
प्रपायाश्च तथा कृत्वा पुरुषं परिचारकम्॥

सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते।[2]

भविष्यपुराण के उत्तरखंड में प्रपादान विधि के विषय में श्रीकृष्ण ने विचार प्रकट करते हुए कहा है-

अतीते फाल्गुने मासे प्राप्ते चैत्रे महोत्सवे।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते ग्रहचन्द्रबलान्विते॥

मंडपं कारयेद्विद्वान् घनच्छायं मनोरमम्।
पुरस्य मध्ये पथि वा कांतारे तोयवर्जिते॥

देवायतने वाऽपि चैत्यवृक्षतलेऽपि वा।
सुशीतलं च रम्यं च विचित्रासनसंयुतम्॥

तन्मध्ये स्थापयेद्भव्यान् मणिकुम्भांश्च शोभनान्।
आकालमूलान्करकान्वस्त्रैरावेष्टितानथ।
ब्राह्मणः शीलसम्पन्नः वृत्तिं दत्त्वा यथोचितम्॥

प्रपापालः प्रकर्तव्यो बहुपुत्रपरिच्छदः।
पानीयपानेनाश्रान्तान्त्यान्यः कारयति मानवान्॥

एवं विधां प्रपां कृत्त्वा शुभेऽहनि विधिपूर्वकम्।
यथा शकृत्या नरश्रेष्ठ प्रारम्भे भोजयेद्द्विजान्॥

ततश्चोत्सर्जयेद्विद्वान्मन्त्रेणानेन मानवः।
प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता॥

अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु च पितामहाः।
अनिवारितं च ततो देयं जलं मासचतुष्टयम्॥

त्रिपक्षम्वा महाराज जीवानां जीवनं परम्।
गंधाढ्यं सुरसं शीतं शोभने भाजने स्थितम्॥

प्रदद्यादप्रतिहतं मुखञ्चानवलोकयन्।
प्रत्यहं कारयेत्तस्यां भोजनं शक्तितो द्विजान्॥

अनेन विधिना यस्तु ग्रीष्मे तापप्रणाशनं।
पानीयमुत्तमं दद्यात्तस्य पुण्यफलं श्रृणु॥

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम्।
तत्पुण्यफलमाप्नोति सर्वदेवैः सुपूजितः॥

पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं विमानं सोऽधिरुह्य च।
याति देवेन्द्रनगरे पूज्यमानोऽप्सरोगणैः॥

विंशत्कोट्यो हि वर्षाणां यक्षगन्धर्वसेवितः।
पुण्यक्षयादिहागत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत्।

ततः परं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥[3]
सुस्वादुशीतसलिला क्लमनाशिनी च,

प्रांते पुरस्य पथि पांथसमाजभूमौ।
यस्य प्रपा भवति सर्वजनोपभोग्या,

धर्मोत्तरः स खलु जीवति जीवलोके॥[4]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कूप महत्त्व को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है-

उदकेन विना वृत्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा।
तदा जलाशयाः कार्याः पुरुषेण विपश्चिता॥

अग्निष्टोमसमाः कूपास्त्वश्वमेधसमं सरः।
कूपः प्रवृत्तपानीयस्त्वर्धं हरति दुष्कृतम्।
कूपकृत्स्वर्गमासाद्य देवभोगान्समश्नुते॥[5]

विष्णुधर्मसूत्र में कूप निर्माण की प्रशंसा करते हुए कहा गया है-

अथ कूपकर्तुस्तत्प्रवृत्ते पानीये दुष्कृतस्यार्धं विनश्यति।
तडागकृन्नित्यतृप्तो वारुणं लोकमश्नुते जलप्रदः
सदा तृप्तो भवति।[6]

हेमाद्रि ने देवी पुराण को उद्धृत कर कूप निर्माण विधि के संबंध में लिखा है-

कूपारामं यथा शस्तं कर्ता लोके प्रजायते।
तथा कुर्यात् सुरश्रेष्ठ यथा शोभायतं भवेत्॥

पूर्वमाश्रित्य कर्तव्यं तस्योत्त्रपथेऽपि वा।
न पूर्वव्यत्यं कुर्यान्नच देवालयाद्गृहात्॥

कृतं भयप्रदं लोके तथा चाग्निभयं जलं।
वायव्यं वापि देवस्य भयदं जायते कृतं॥[7]

यहीं गर्ग को उदृधृत करते हुए कूपपरिमाण के विषय में कहा गया है-

कुर्य्यात् पञ्चकरादूर्ध्वं पञ्चविंशतिकरावधि।
कूपं वृत्तायतं प्राज्ञः सर्वभूतसुखावहं॥[8]

वृत्ताकार कूप ही शुभ होता है, ऐसी मान्यता है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वापी दश कूप के समान कही गई है।[9] वापी वह कूप होता है- जिसमें चारों ओर से या तीन, दो या एक ओर से सीढियाँ हों और जिसका मुख पचास से सौ हाथ तक हो।'[10] हेमाद्रि द्वारा उद्धृत नन्दिपुराण के आधार पर यह वापी वृत्त, आयत, चतुरस्र, अर्द्ध-चन्द्राकार अथवा धेनुचक्रसमाकृति की हो सकती है। साधारण वापी वृत्त, आयत या चतुरस्र होती है। शेष वापी काम्य विधि से बनाई जाती हैं।[11]

वापी विधि के संबंध में नन्दिपुराण को उद्धृत कर हेमाद्रि का कथन है कि-

यो वापीमग्निसाक्ष्येण विधिवत् प्रतिपादयेत्।
कूपेषूदककुम्भस्थान् समुद्रानर्च्य श्रद्धया॥

चतुरश्चतुरन्ता तु तेन दत्ता मही भवेत्।
तत्सन्निधौ द्विजानर्च्य विधिवत् पानभोजनैः॥

स याति वारुणं लोकं दिव्यकामसमन्वितं॥[12]

महाभारत में तडाग निर्माण के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है-

तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां चापि ये गुणाः।
त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजनीयस्तडागवान्॥

अथवा मित्रसदनं मैत्रं मित्रविवर्धनम्।
कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम्॥

धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः।
तडागसुकृतं देशे क्षेत्रमेकं महाश्रयम्॥

चतुर्विधानां भूतानां तडागमुपलक्षयेत्।
तडागानि च सर्वाणि दिशन्ति श्रियमुत्तमाम्॥

देवा मनुष्यगन्धर्वाः पितरोरगराक्षसाः।
स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयम्॥[13]

तथा-

वर्षाकाले तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति।
अग्निहोत्रफलं तस्य फलमाहुर्मनीषिणः॥

शरत्काले तु सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति।
स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम्॥

हेमन्तकाले सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति।
स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम्॥

यस्य वै शैशिरे काले तडागे सलिलं भवेत्।
तस्याग्निष्टोमयज्ञस्य फलमाहुर्मनीषिणः॥

तडागं सुकृतं यस्य वसन्ते तु महाश्रयम्।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं स समुपाश्नुते॥

निदाघकाले पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति।
वाजिमेधफलं तस्य फलं वै मुनयो विदुः॥

स कुलं तारयेत्सर्वं यस्य खाते जलाशये।
गावः पिबन्ति सलिलं साधवश्च नराः सदा॥

तडागे यस्य गावस्तु पिबन्ति तृषिता जलम्।
मृगपक्षिमनुष्याश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥

यत् पिबन्ति जलं तत्र स्नायन्ते विश्रमन्ति च।
तडागे यस्य तत् सर्वं प्रेत्यानन्त्याय कल्पते॥[14]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण का भी मत है कि तडाग का निर्माण कर मनुष्य वरुण लोक को प्राप्त करता है। गोचर भूमि में तडाग का निर्माण कर मनुष्य गोलोक प्राप्त करता है, मार्ग में तडाग का निर्माण कर इन्द्रलोक प्राप्त करता है, मरुभूमि में जिसके तालाब में पानी ठहरता है, वह मनुष्य सूर्यवर्ण के विमान से ब्रह्मलोक जाता है।[15] तथा देव मंदिर प्रदेश में स्थित तडाग का जलशोधन कर मनुष्य दश गोदान का फल प्राप्त करता है। पुराने तडाग को दान के पत्थरों से पक्का कर मनुष्य स्वर्गलोक में सुख प्राप्त करता है। नहरों के निर्माण से उत्कृष्ट संतोष को प्राप्त करता है। जो मनुष्य अपने परिश्रम से तडाग खोदता है, वह राजसूय व अश्वमेध का फल प्राप्त करता है, आदि।[16] महामहोपाध्याय श्री पी. वी. काणे तडाग का नाप दो सौ से तीन सौ हाथ लम्बा मानते हैं। पुष्करिणी का व्यास सौ से दो सौ हाथ का मानते हैं। रघुनन्दन द्वारा उद्धृत वसिष्ठ संहिता के अनुसार पुष्करिणी चार सौ हाथ लम्बी और तडाग इसका पांच गुना बड़ा होता है, ऐसा प्रो. काणे का कथन है।[17]

जल संग्रहण का एक अन्य प्रकार द्वारी-बन्ध है। द्वारी बन्ध का तात्पर्य है- पहाड़ी झरने का बाँध बनाना। बाँध निर्माण में जल की प्राकृतिक ऊँची सतह पर बाँध बनाकर उसको नहरों के माध्यम से कृषि हेतु उपलब्ध करवाया जाता है। यह जल दूर-दूर तक कृषि भूमि को सींचने के काम आता है। इस प्रकार द्वारी बंध प्रणाली का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। जब बाँध बहुत बड़ा हो तो अधिक जल निकास हेतु जल-रोध-द्वार का भी प्रयोग किया जाता है। इसमें जल तक जाने हेतु सोपान पंक्तियों का भी निर्माण किया जा सकता है। बाँध के निकट उद्यान और मंदिरों का भी निर्माण किया जा सकता है।

हेमाद्रि एवं लक्ष्मीधर ने देवीपुराण को उद्धृत कर द्वारी बंध विधि का सुविस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।[18] प्रस्तुत किये गये विवरण से स्पष्ट है कि उस समय उदाहरण रूप में कोई बाँध अवश्य रहा होगा, जिसके आधार पर इतना सूक्ष्म एवं विस्तृत विवरण प्रदान किया गया।

(2) जलाशयोत्सर्ग की इतिकर्तव्यता

हेमाद्रि ने वह्निपुराण को उद्धृत कर जलाशयोत्सर्ग के काल निर्णय के विषय में लिखा है कि जब शुभ दिन, शुभ नक्षत्र व शुभ मुहूर्त हो तो वापीकूपतडागादि विधि करनी चाहिये। कर्क राशि में वापी-कूप-तडागादि विधि करने पर पुत्रलाभ, मकर राशि में सुख,

मीन में यश और अर्थलाभ, कुम्भ में प्रचुर जल, वृष और मिथुन में वृद्धि, वृश्चिक में निर्जलता, कन्या राशि में पितृ-तृप्ति व तुला में शाश्वत गति प्राप्त होती है। सिंह, मेष और धनु में जल का नाश प्राप्त होता है।[19]

मत्स्यपुराण में ज़लाशयोत्सर्ग की विस्तृत विधि प्रस्तुत की गई है। तदनुसार उत्तरायण के व्यतीत हो जाने पर माघ माह के शुक्ल पक्ष में ज्योतिर्विद द्वारा बताये गये किसी शुभ दिन में ब्राह्मण वाचन करवाकर, तड़ागादि के निकटवर्ती, पूर्वोत्तर ढलान वाले स्थान पर, चार हाथ प्रमाण की, चतुरस्र, चतुर्मुख वेदी की स्थापना करनी चाहिये। मण्डप भी षोडश हस्त प्रमाण का व चार द्वारों वाला बनाना चाहिये। वेदी की चारों दिशाओं में चार व ईशान दिशा में एक आचार्य कुण्ड का निर्माण करना चाहिये । सभी दिशाओं और विदिशाओं में पीतरक्तकृष्णनीलाञ्जन के समान शुक्ल, कृष्ण व हरित् वर्ण की पताकाएँ स्थापित करनी चाहिये। मध्य में क्षुद्र घण्टिकाओं से युक्त ध्वज स्थापित किया जाना चाहिये। मण्डप की प्रत्येक दिशा में अश्वत्थ, उदुम्बर, प्लक्ष व वट की शाखाओं से निर्मित द्वार होने चाहियें।[20]

यज्ञ हेतु शुभ प्रवृत्तियों वाले आठ होता, आठ द्वारपाल व आठ ही वेद निपुण ब्राह्मण जापकों का वरण करना चाहिये। सभी लक्षणों से युक्त, मन्त्रवित्, जितेन्द्रिय व कुलशीलवान् उत्तम ब्राह्मण का वरण स्थापक, पुरोहित या आचार्य के रूप में करना चाहिये। पवित्र दिन की शुभ लग्न के प्रारम्भ में ब्राह्मण वाचन करवाना चाहिये।

उत्सर्ग विधि के पूर्व दिन तड़ागादि उत्सर्ग विधि करने का संकल्प कर यजमान वृद्धि श्राद्ध एवं आभ्युदयिक कर्म कर ब्राह्मण वाचन करवाये। ब्राह्मण वाचन के उपरान्त पूर्वोक्त विधि से वास्तुपूजा करवाये।

प्रत्येक कुण्ड के पास दो-दो आसन, दो-दो ताम्रपात्र, दो-दो विष्टर, पंखा, वस्त्र और माला एवं चन्दन आदि से सुशोभित पञ्चरत्नयुक्त कलश की स्थापना करनी चाहिये। यज्ञ के उपकरण यथा आचमनी, थाली,स्रुक्, स्रुव, इध्म कुश, समिधा, घी, स्थापित किये जाने वाले देवताओं हेतु बलिपदार्थ एवं अर्ध्य, अनेक वर्ण की मालाएँ, गन्ध, धूप, दीप, क्षीर वृक्ष से निर्मित यूप आदि भी एकत्र कर लेने चाहियें। यह यूप अरत्निमात्र लम्बा या यजमान प्रमाण का होगा। मन्त्रोच्चारण कर आचार्य सभी देवों को बलि प्रदान करे।

यजमान वरण किये गये पच्चीस ब्राह्मणों को स्वर्ण निर्मित कुण्डलों, कडों, भुजबन्धों अंगूठियों आदि से अलंकृत करे एवं अनेक प्रकार के वस्त्र प्रदान करे । गुरु को सदा दुगुना द्रव्य देना चाहिये। गुरु को शय्या के साथ अपनी कोई प्रिय वस्तु भी प्रदान करें।

सर्वौषधि युक्त जल से वैदिक विद्वानों द्वारा स्नान करवाया हुआ यजमान श्वेत वस्त्र व श्वेत माला धारण करे एवं श्वेत गन्ध का लेप करे। इस प्रकार पवित्र होकर सुवर्ण निर्मित कछुवा एवं मगरमच्छ, रजत निर्मित मछली और सर्प विशेष, ताम्र निर्मित केकड़ा और मेढंक, कौआ और सूंस लेकर, पत्नी और पुत्र-पौत्रों सहित पश्चिम द्वार से मण्डप में प्रवेश करे। प्रवेश के उपरान्त मंगल-घोष एवं भेरी नाद के मध्य स्वर्ण आदि से निर्मित सभी जन्तुओं को पञ्चरत्न युक्त स्वर्ण-पात्र में रख दे।

तत्पश्चात् तण्डुलादि के पञ्चवर्ण चूर्ण से मण्डल बनाकर, पद्म गर्भ युक्त षोडशारचक्र बनाना चाहिये। यह चक्र चारों ओर चतुरस्र एवं मध्य में वृत्ताकार हो। वेदी के ऊपर प्रत्येक दिशा में, मन्त्रपूर्वक ग्रहों और लोकपालों की स्थापना की जानी चाहिये। वारुण मन्त्र का आश्रय लेकर मध्य में मकरादि को स्थापित करना चाहिये। ब्रह्मा, शिव और विष्णु की स्थापना भी वहीं करनी चाहिये। विनायक, लक्ष्मी और दुर्गा की स्थापना कर शान्ति हेतु सभी लोकों के सभी प्राणियों की भी स्थापना करनी चाहिये। सभी देवों को पुष्प और भक्ष्य फल अर्पित करने चाहियें। तत्पश्चात् कुण्डों के समीप स्थित रत्नों से युक्त कुम्भों पर वस्त्र लपेटकर, गन्ध और पुष्पों से अलंकृत करना चाहिये। **'एतद्वसत'** कह कर आचार्य इन कुम्भों की पूजा करें। ऋग्वेदी ब्राह्मण पूर्व दिशा में, यजुर्वेदी ब्राह्मण दक्षिण में, सामवेदी ब्राह्मण पश्चिम में एवं अथर्ववेदी ब्राह्मण उत्तर में कुण्डों के समीप स्थान ग्रहण करें। यजमान उत्तर की ओर मुख कर वेदी के दक्षिण में बैठे। इसी प्रकार जापक और द्वारपालों को भी स्थान प्रदान करना चाहिये।

तत्पश्चात् ऋत्विग्गण वारुण मन्त्रों से आज्य और समिधा होम करें। जापक मन्त्र पाठ करें। वारुण मंत्र निम्नलिखित हैं-

'तत्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा...ऋ. 1/24/II -15.

'त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्...4/1/4-5.

'इमं मे वरुण श्रुधि...1/25/19.

ग्रहों, इन्द्र, शिव, मरुतों, लोकपालों और विश्वकर्मा के लिए आचार्य आहुतियाँ प्रदान करें। समिधाओं और घी की 108 आहुतियाँ दी जायेंगी एवं ग्रह आदि में प्रत्येक को अट्ठाईस- अट्ठाईस आहुतियाँ दी जायेंगी। रात्रि सूक्त, रुद्र सूक्त, पवमान मन्त्र एवं पुरुष सूक्त का जाप करते हुए पूर्व दिशा से पृथक् आहुतियाँ दी जायेंगी। विश्वकर्मा हेतु मंत्र निम्न प्रकार से हैं-

रुद्र सूक्त	1/114/1-11.	
पवमान मंत्र	9/13/2.	
रात्रि सूक्त	10/127/1-8.	'रात्रीव्यख्यदायती..
पुरुष सूक्त	2/42/1-35.	'कनिक्रदज्जनुषम्...

दक्षिण दिशा में यजुर्वेदी शक्र, रुद्र, सोम, कूष्माण्ड एवं सौर सूक्तों से होम करें। मन्त्र संदर्भ निम्न प्रकार से हैं-

शक्र	=	इन्द्रं वो विश्वतस्परि...	1/7/10.
रुद्र	=	'इमा रुद्राय स्थिरधन्वने	7/46/1-6.
सोम	=	'सोमो धेनुम्	1/91/20-25.
कूष्माण्ड	=	मद्देवा अदः सलिले	10/72/6.
जातवेदससूक्त	=	'यस्त्या हृदा कीरिणा	5/4/10.
सौर-सूक्त	=	'सूर्यो देवीमुषसं	1/115/2-6.

पश्चिम द्वार पर सामगान करने वाले वैराज, पुरुष, सुपर्ण, रुद्रसंहिता, शैशव, पञ्चनिधनवामदेव्य, गायत्र, जयेष्ठसाम, वामदेव्य, बृहत्, सौम्य, रौरव, रथन्तर, गवांव्रत, विकर्ण, रक्षोघ्न एवं यशस् का गान करते हैं। मन्त्रों के संदर्भ क्रमशः निम्न प्रकार से है-

वैराज	=	'पिवा सोममिन्द्रमन्दतु	7/22/1.
पुरुष	=	'सहस्रशीर्षा पुरुषः	10/90/1
सौपर्ण	=	'उदधेदभिश्रुतामधं	उ.6/3/4/1 तीन साम।

रुद्र संहिता	=	'आ वो राजानमध्वरस्य	4/3/1.
शैशव	=	'उच्चा ते जातमन्धसो	9/61/10.
पञ्चनिधनवामदेव्य	=	'कया नश्चित्र आ भुव	4/31/1.
गायत्र	=	'तत्सवितुर्वरेण्यं	3/62/10.
ज्येष्ठसाम	=	'मूर्धानं दिवो	6/7/1.
वामदेव्य	=	ग्राम गेय	
बृहत्साम	=	त्वामिद्धि हवामहे	6/46/1
सौम्य	=	सोमव्रतं सन्ते पयांसीति	
रौरव	=	'पुमानः सोम	9/107/4.
रथन्तर	=	'अभित्वा शूर नोनुम	7/32/22.
गवांव्रत	=	'ते मन्वत प्रथमं	4/1/16.
विकर्ण	=	'विभ्राड्बृहत्पिबतु	10/170/1.
		विभ्राड्बृहत्सुभृतं	10/170/2.
रक्षोध्न	=	'अग्ने रक्षाणो अहंस	7/15/13.
		अग्ने युक्ष्वा हि ये	6/16/43.
यशः	=	'बृहदिन्द्राय गायत	8/89/1.

अथर्ववेदी जापक भी शान्तिक पौष्टिक मंत्रों का पाठ करें। अन्त में सभी जापक अपनी-अपनी शाखा के अनुसार वारुण-सूक्त का पाठ करें। पहले दिन रात्रि में इस प्रकार अधिवासन कर, दूसरे दिन गजशाला, अश्वशाला,वल्मीक, नदी संगम, गहरेह्रद, गोशाला एवं चौराहे से मिट्टी लाकर कुण्डों में डालनी चाहिये। साथ ही गोरोचना, सफेद सरसों एवं गुग्गुल भी कुम्भों में डालना चाहिये। तत्पश्चात् जलकुम्भ के पञ्चभंग युक्त जल से निम्नलिखित मंत्रों का पाठ करते हुए यजमान का अभिषेक करना चाहिये-

शक्रादि देवताः सर्वा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः।
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु प्रयच्छन्तु धनानि च॥

नारायणः जगन्नाथस्तथा संकर्षणो विभुः॥
प्रद्युम्नाश्चानिरुद्धश्च ऋद्धिं यच्छन्तु ते सदा।

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणः॥
गन्धर्वाः किन्नरा यक्षाःसिद्धा विद्याधरोरगाः।

अभिनन्दन्तु ते सर्वे नद्यः सागरपर्वताः॥
वेदशास्त्रपुराणानि मीमांसा-छन्द- आगमाः।

वृहत्कथादिकाश्चान्याः कथाः सर्वाः शुभप्रदाः।
गायत्री चैव सावित्री शची लक्ष्मीः सरस्वती।

मृडानी मातरः सर्वा भवन्तु वरदाः सदा॥
आदित्यचन्द्रमा भौमो बुधो जीवः सितार्कजः।

ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः॥
इन्द्रो वह्निर्यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा।

वायुः कुबेर ईशानो दिक्पालाः पान्तु सर्वदा॥
सम्वत्सरायने मासास्तिथिर्वाराश्च नाडिकाः।

मुहूर्तान्यभिषिञ्चन्तु नक्षत्राणि दिवानिशं॥

इस प्रकार विधिपूर्वक किये गये कार्य में रात्रि व्यतीत कर प्रभातकाल होने पर सौ, अड़सठ, पचास, छत्तीस अथवा पच्चीस गायें ब्राह्मणों को दक्षिणास्वरूप देनी चाहियें। तत्पश्चात् ज्योतिषी द्वारा बताई गई शुद्ध लग्न में वेदशास्त्र जप, संगीत एवं वाद्य वादन के मध्य स्वर्ण से अलंकृत कर एक गाय को तडागादि में अवतरण करवाना चाहिये। गाय की पूंछ पकड़कर यजमान को भी तैरना चाहिये। उस समय निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिये-

इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व शुद्धपूतो अमृतः सन्तु नित्यं।
मान्तारयन्ती कुरु तीर्थाभिषेकं लोकालोकन्तरते तार्यतेति॥

यह गाय साम गान करने वाले ब्राह्मण को प्रदान करनी चाहिये।

तत्पश्चात् पञ्चरत्नयुक्त स्वर्ण पात्र को लेकर उसमें से मगरमच्छ, मछलियों

आदि को सब जगह डालना चाहिये। वेद वेदांग में निपुण चार ब्राह्मणों के द्वारा पकड़े गये, महानदी के जल से युक्त, दही और अक्षत से सुशोभित उस स्वर्ण पात्र को जल के मध्य उत्तराभिमुख झुकाना चाहिये। तदुपरान्त आथर्वण साम- **'शन्नो देवीरभिष्टये...**(अथर्ववेद 1.1.6.1), 'पुनर्माम् ऋचा एवं 'आपोहिष्ठा' (ऋग्वेद 10.9.1) मंत्रों का जाप करते हुए मण्डप में आ जाना चाहिये। मण्डप में आकर सर्वोपयोग हेतु जलाशय का उत्सर्ग करना चाहिये । इस समय सभी सदस्यों की पूजा कर सब ओर बलि देनी चाहिये। इसके पश्चात् भी वरुण का स्मरण करते हुए चार दिन तक होम करना चाहिये। तत्पश्चात् चतुर्थी कर्म करना चाहिये और उसमें भी दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। यज्ञ पात्र, यज्ञोपकरण आदि ऋत्विजों में समान रूप से बाँटकर मण्डप को भग्न कर दें। स्वर्ण पात्र और शय्या गुरु को प्रदान करें । अन्त में एक हजार या एक सौ आठ, पचास या बीस ब्राह्मणों को भोजन करवायें।

कूप, वापी, तडाग, पुष्करिणी आदि की प्रतिष्ठा एवं उत्सर्ग विधि उपर्युक्त प्रकार से प्रस्तुत कर यह भी कहा गया है कि धन की न्यूनता होने पर एकाग्नि कार्य भी किया जा सकता है।

हेमाद्रि ने चतुर्वर्गचिन्तामणि में बह्वृचपरिशिष्ट के आधार पर भी जलाशयोत्सर्ग विधि का विवेचन किया है।[21] अग्निपुराण के अध्याय चौसठ में जलाशयोत्सर्गविधि विस्तार से वर्णित है। बृहत्पराशरस्मृति के एकादश अध्याय में भी जलाशयोत्सर्ग विधि का विवेचन किया गया है। किन्तु पराशर द्वारा वर्णित विधि में उपर्युक्त विधि से किंचित् भिन्नता है। यहाँ पच्चीस ब्राह्मणों के स्थान पर पाँच ब्राह्मणों को ही वरण करने का विधान है, मण्डप का माप सोलह हाथ के स्थान पर दस हाथ ही है। तड़ाग की पाल पर ही मण्डप बनाने का विधान है, यजमान ब्राह्मण हो तो यजमान के शिरः प्रमाण का पलाश काष्ठ का यूप;क्षत्रिय यजमान के विषय में कण्ठ प्रमाण का न्यग्रोध काष्ठ का यूप; वैश्य यजमान के विषय में वक्ष प्रमाण का बिल्व काष्ठ का यूप; शूद्र यजमान के विषय में नाभि प्रमाण का औदुम्बर काष्ठ का यूप स्थापित करने का विधान किया गया है। इसके अतिरिक्त देवस्थापना व मन्त्रोच्चारण के विषय में भी भेद है।[22] नीलकण्ठ ने भविष्यपुराण के आधार पर जलाशयोत्सर्ग विधि का संक्षिप्त विवेचन किया है।[23]

वस्तुतः जलाशयोत्सर्ग विधि का लक्ष्य जलाशय में दैवी शक्तियों का आधान कर निरन्तर जल उपलब्धि एवं जल की पवित्रता रहा है। श्रद्धा और विश्वास ही ऐसे तत्व हैं,

जो मनुष्य को त्रुटियाँ करने से रोक सकते हैं। तर्क के आधार पर कुतर्कों को जन्म लेने में अधिक समय नहीं लगता। अतः भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने जल की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए जलाशयोत्सर्ग विधि का सम्पादन किया।

---

1. महाभारत - अनुशासन पर्व 68/22 एवं 67/6.
2. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 297/4-8.
3. भविष्यपुराण- उत्तर खण्ड 172/2-17.
4. वही, 172/26.
5. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 297/5-7.
6. विष्णु धर्मसूत्र 91/1-2.
7. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड- पृष्ठ 1003.
8. वही।
9. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 296/8.
10. धर्मशास्त्र का इतिहास- पृष्ठ 473.
11. चतुर्वर्गचिन्तामणि-दान खण्ड, पृष्ठ 1004.
12. वही।
13. महाभारत- अनुशासन पर्व 58/4-8.
14. वही 58/10-18.
15. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 296/9-12.
16. वही- 296/17-23.
17. धर्मशास्त्र का इतिहास- पृष्ठ 473.
18. चतुर्वर्गचिन्तामणि दान खंड पृष्ठ 1007-1014 एवं कृत्यकल्पतरु दानकाण्ड पृष्ठ 289-299.
19. वही- पृष्ठ 1014-1015.
20. मत्स्यपुराण- अध्याय 59.
21. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड पृष्ठ 1022-1023.
22. वही - पृष्ठ 1028-1029.
23. बृहत्पराशरस्मृति II/203-246
24. दानमयूख पृष्ठ 22-23

***

अष्टम अध्याय

(1) वृक्षारोपण एवं आराम-प्रतिष्ठा महत्त्व

भारत में वृक्षों की महत्ता को सभी कालों में स्वीकार किया गया है। वृक्ष फल, पुष्प, छाया, औषधियाँ विभिन्न उपयोगों हेतु काष्ठ, ईंधन आदि देने के अतिरिक्त प्राण वायु भी प्रदान करते हैं। प्राचीनकाल में वृक्षों का उपयोग यज्ञयूपों, समिधाओं, जुहू, स्रुक, स्रुव आदि यज्ञ पात्रों एवं करछुलों आदि के लिए बहुतायत से होता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में सात प्रकार के वृक्ष पवित्र बताये गये हैं ।[1] तैतिरीय संहिता में कहा गया है कि समिधाएँ न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ एवं प्लक्ष नामक वृक्षों की होती हैं, क्योंकि इनमें गन्धर्वों एवं अप्सराओं का निवास है। इसके अतिरिक्त वृक्ष अपने हरित पत्रों से पक्षियों को शीतलता प्रदान करते हैं।[2] हेमाद्रि द्वारा उद्धृत ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार अश्वत्थ, उदुम्बर, प्लक्ष, आम्र एवं न्यग्रोध की पत्तियाँ पंचभङ्ग कही जाती हैं और सभी कृत्यों में मंगलमय मानी जाती हैं।[3] बौधायनधर्मसूत्र में कहा गया है कि पलाश परम पवित्र है, अतः उसके भाग से आसन, पादुका, दाँतुन आदि नहीं बनाने चाहिये।[4] महाभारत के अनुशासनपर्व में वृक्षों से प्राप्त होने वाले लाभों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है-

पुष्पैः सुरगणान् वृक्षाः फलैश्चापि तथा पितृन्।
छायया चातिथिं तात पूजयन्ति महीरुहः ॥
किन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः।
तथा ऋषिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान्॥
पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्।
वृक्षदं पुत्रवद् वृक्षास्तारयन्ति परत्र तु॥
तस्मात् तडागे सद्वृक्षा रोप्याः श्रेयोऽर्थिना सदा।
पुत्रवद् परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः ॥[5]

विष्णुधर्म सूत्र में वृक्षों के विषय में कहा गया है-

वृक्षारोपयितुर्वृक्षाः परलोके पुत्रा भवन्ति।

वृक्षप्रदो वृक्षप्रसूनैर्देवान् प्रीणयति,

फलैश्चातिथीन् छायया चाऽभ्यागतान्,

देवे वर्षत्युदकेन पितृन्।[6]

महाभारत में शान्ति पर्व में कहा गया है कि दुर्गों के दोनों ओर के क्षुद्र वृक्षों को राजा जड़ से उखड़वा दे, किन्तु चैत्य-वृक्षों को छोड़ दे। बढे हुए वृक्षों की शाखायें कटवा दें, किन्तु चैत्य वृक्षों का तो पत्ता भी न टूटने दे-

दुर्गाणां चाभितो राजा मूलच्छेदं प्रकारयेत्।
सर्वेषां क्षुद्रवृक्षाणां चैत्यवृक्षान् विवर्जयेत्॥

प्रवृद्धानां च वृक्षाणां शाखां प्रच्छेदयेत् तथा।
चैत्यानां सर्वथा त्याज्यमपि पत्रस्य पातनम्॥[7]

इसी पर्व में तर्कसम्मत रीति से यह सिद्ध किया है कि वृक्षों में जीवन है, वे भी सुख-दुःख का अनुभव करते हैं और काट लिये जाने पर पुनः अंकुरित होते हैं।[8] भविष्यपुराण में वृक्षारोपण के लिये प्रेरित करते हुए कहा गया है-

अश्वत्थमेकं पिचुमर्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिंचिणीकम्।
कपित्थबिल्वामलकं त्रयं च पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत्॥

मनु और याज्ञवल्क्य ने स्नातकों के लिये मार्ग के प्रसिद्ध वृक्षों की परिक्रमा करना आवश्यक माना है।[9] कादम्बरी में महारानी विलासवती पुत्र कामना से वृक्षों की पूजा करती है- **'अश्वत्थप्रभृतीनुपपादितपूजान्महावनस्पतीन्कृतप्रदक्षिणा ववन्दे।'**[10] वसिष्ठस्मृति में यज्ञ में काम आने वाले वृक्षों तथा खेती की भूमि वाले वृक्षों के अतिरिक्त अन्य फल पुष्प देने वाले वृक्षों को काटने से मना किया है-

पुष्पफलोपगान्पादपान्न हिंस्यात्कर्षणकरणार्थं योगहन्यात्।'[11]

विष्णुधर्मसूत्र में वृक्षों इत्यादि को काटने वाले के लिये उत्तम, मध्यम साहस का दण्ड विधान किया गया है-

फलोपगमद्रुमच्छेदी कीटोपघाती तूत्मसाहसं दण्ड्यः।
पुष्पोपगमद्रुमच्छेदी मध्यमम्।

वल्लीगुल्मलताच्छेदी कार्षापणशतम्।
तृणच्छेद्येकं सर्वे च तत्स्वामिनां तदुत्पत्तिम्।[12]

महाभारत के अनुशासन पर्व में वनस्पतियों के भेद बताते हुए वृक्षारोपण से प्राप्त होने वाले फलों का निम्न प्रकार से निरूपण किया गया है-

स्थावराणां च भूतानां जातयः षट् प्रकीर्तिताः।
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः॥

एता जात्यस्तु वृक्षाणां तेषां रोपे गुणास्त्विमे।
कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव शुभं फलम्॥

लभते नाम लोके च पितृभिश्च महीयते।
देवलोके गतस्यापि नाम तस्य न नश्यति॥

अतीतानागते चोभे पितृवंशं च भारत।
तारयेद् वृक्षरोपी च तस्माद् वृक्षांश्च रोपयेत्॥

तस्य पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः।
परलोकगतः स्वर्गं लोकांश्चाप्नोति सोऽव्ययान्॥[13]

हेमाद्रि द्वारा उद्धृत पद्मपुराण में वृक्षों को पुत्र के समान बताकर एक पीपल को सहस्र पुत्रों के बराबर बताया है -

अपुत्रस्य च पुत्रत्वं पादपा इह कुर्वते।
यच्छन्ति रोपकेभ्यस्ते सतीर्थं तर्पणादिकम्॥

यत्नेनापि च राजेन्द्र पिप्पलारोपणं कुरु।
स तु पुत्रसहस्राणामेक एव करिष्यति॥[14]

यहाँ यह भी बताया गया है कि किस प्रकार के वृक्ष से किस प्रकार का फल प्राप्त होता है -

धनीवाऽश्वत्थवृक्षेण ह्यशोकः शोकनाशनः।
प्लक्षो यज्ञपतिः प्रोक्तश्चिञ्चा चायुः प्रदा स्मृता॥

जम्बूकी कन्यदा प्रोक्ता भार्यादा दाडिमी तथा।
अरुण रोगनाशाय पलाशो ब्रह्मदस्तथा॥

प्रेतत्वं जायते पुंसः रोपयेद्यो विभीतकं।
अंङकोले कुलवृद्धिः स्यात् खदिरे चाप्यरोगता॥

निम्बप्ररोपको यस्तु तस्य तुष्टो दिवाकरः।
श्रीवृक्षे शंकरो देवः पाटलायान्तु पार्वती॥

शिंशपायामप्सरसः कुन्दे गन्धर्वसत्तमाः।
तिन्तिणीके दासवर्गो वकुलो दस्युदस्तथा॥

पुण्यस्त्रीदायकश्चैव चन्दनः पनसस्तथा।
सौभाग्यदश्चम्पकश्च करीरः पारदारकः॥

अपत्यनाशदस्तालो नादेय कुलवर्द्धनः।
बहुभार्यानारिकेली द्राक्षासर्वांगसुन्दरी।

रतिप्रदा तथा केली मोचको शत्रुनाशकः॥[15]

प्लक्ष = वट, चिञ्चा = इमली, अरुण = पुंनाग,
विभीतक = बहेड़ा, अंङ्कोल = पिश्ते का पेड़, पाटला = लाल लोध्र,
तिन्तिणीक- अम्ल पनस= कटहल, नादेय = कास, वानीर,
मोचक = सहिजन।

हेमाद्रि ने भविष्यपुराण को उद्धृत कर वृक्षों को पुत्रों से भी श्रेष्ठ कहा है-

बहुभिर्वत सञ्जातैः पुत्रैर्धर्मार्थवर्जितैः।
वरमेकः पथि तरुर्यत्र विश्रमते जनाः॥

पुष्पपत्रफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः।
धन्या महीरुहा येषां विफला यान्ति नार्थिनः॥

पुत्राः संवत्सरस्यान्ते श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः।
प्रत्यहं पादपाः पुष्टिं यथेष्टां जनयन्ति हि॥

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे।
फलन्ति च परार्थेषु न स्वार्थैकपरा द्रुमाः॥

अतो द्रुमाः सदा रोप्याः सर्वकामसमृद्धये।[16]

(2) वृक्षाराम-प्रतिष्ठा-विधि

लक्ष्मीधर ने कृत्यकल्पतरु में देवीपुराण को उद्धृत कर आरामप्रतिष्ठा-विधि के अन्तर्गत लिखा है कि अतिस्निग्ध, जलाशयसहित स्थान पर ही आराम प्रतिष्ठा की जानी चाहिये-

अनूपे सजले स्थाने पुमान् दैवेऽथ वा जले।
आरामं रोपयेत् प्राज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा॥[17]

आरामारोपण अथवा वृक्षारोपण में कतिपय तत्वों का ध्यान रखना आवश्यक है। ये तत्व हैं- काल, देश, पात्र, बीज तथा बीजक्रिया विधि-

कालं देशं तथा पात्रं बीजं बीजक्रियाविधिः।
तथा फलमसंसृष्टमेवमारोपितं भवेत्॥[18]

यहाँ पात्र से तात्पर्य बीज वपन विधि को भली प्रकार जानने वाला है। बीजक्रियाविधि से तात्पर्य बीजों के प्रसंस्करण से है। यदि विधि में व्यतिक्रम किया जाता है, तो नदी की बाढ आदि से नाश का भय उपस्थित हो जाता है-

विधिव्यत्ययबीजादिभूषिते भूपरिग्रहे।
कूलादिभिः सुरश्रेष्ठ यजमानो विनश्यति॥[19]

अतः निर्दिष्ट भूमि पर द्विजाति मन्त्रपूर्वक एवं शूद्रविधि से बीज वपन करें-

एवं यथोदितां भूमिं शुद्धां प्लवसमाहिताम्।
परिगृह्य यजेद्देवं धनपालं शिखिध्वजम्॥
सोमं च नागराजं च ततः कुर्यात्परिग्रहम्।
यद्बीजं मंत्ररहितं गर्भाधानादिवर्जितम्॥

वापितं सहकारादि यद्बीजं मन्त्रवर्जितम् ।
तज्जातं वाऽपकाराय तथा जायते वैकृतम्।

'शंकराये 'ति मन्त्रेण' 'इन्द्र एही' ति मन्त्रितम्।
त्र्यम्बकेन तु राजेन्द्र बीजं भवति शोभनम् ॥

फलं तेषां लभन्ते न इह चाऽन्ते ह्यधोगतिः ।
ये शूद्राः शूद्रविधिना कुर्वन्ति च न रोपणम्॥

ते आत्मनृपलोकानां महासंशयकारकाः ।[20]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में विस्तार से निर्दिष्ट है कि दिशाओं का ध्यान रखते हुए उद्यान में विभिन्न जातियों के वृक्ष लगाने का विधान है। कांटोंयुक्त वृक्ष लगाने का निषेध है। यहाँ वृक्षारोपण हेतु शुभ नक्षत्रों का भी उल्लेख किया गया है। उद्यान में पुष्करिणी कूप आदि की व्यवस्था का विधान किया गया है। उद्यान में आरोपित किये जाने वाले प्रशस्त वृक्षों, वृक्षारोपण में वृक्ष से वृक्ष के मध्य की दूरी, रोग होने पर चिकित्सा, वृक्षों की दोहद चिकित्सा आदि का भी विवेचन किया गया है।[21]

(3) आरामोत्सर्ग की इति कर्तव्यता

नीलकण्ठ ने उत्सर्ग मयूख में कहा है कि जलाशय के समान ही वृक्ष आराम आदि का उत्सर्ग करना चाहिये, ऐसा कुछ आचार्यों का मत है। स्वयं नीलकण्ठ ने मत्स्यपुराण को आधार मानते हुए आरामोत्सर्ग विधि काअलग से विवेचन किया है।

तदनुसार जलाशयोत्सर्ग हेतु जिन तिथियों का निर्देश किया गया है, उन्हीं तिथियों में से किसी एक तिथि का निश्चय कर, यजमान को उत्सर्ग विधि के प्रथम दिन एक समय भोजन करना चाहिये । नियमपूर्वक पूर्वाभिमुख बैठकर वृक्ष अथवा आराम उत्सर्ग का संकल्प करना चाहिये। संकल्प के उपरान्त गणेशपूजा, स्वस्ति वाचन, मातृपूजा, आभ्युदयिक श्राद्ध, गुरु ऋत्विग्वरण एवं पूजन, मण्डप-प्रवेश, मण्डप-पूजन आदि कार्य सम्पन्न करने चाहियें। अग्निस्थापन से पूर्व आचार्य चतुरस्र पीठिका के मध्य थाले बने हुए एवं सर्वौषधि जल से सींचे गये वृक्षों को सुगन्धि चूर्ण (पिष्टातक) पुष्प मालाओं और वस्त्रों से अलंकृत करें। स्वर्णमय सुई से प्रत्येक वृक्ष की शाखा के समीप कर्णवेध करें। कर्णवेध के ऊपर के प्रदेश में शलाका से नेत्राञ्जन लगाकर गुग्गुल धूप देकर तने के पास

बनी हुई चतुरस्र पीठिका के ऊपर जौ, गेहूँ आदि सप्तधान्य रखकर उनके ऊपर जलपूर्ण, स्वर्णादि युक्त ताम्रकलशों को स्थापित करें। प्रत्येक वृक्ष के पास कलश-स्थापन, जल-सिंचन इत्यादि करना संभव न हो तो आठ वृक्षों के निकट करें। अग्निस्थापना के अनन्तर गुरु वेदी पर षोडशार चक्र के ऊपर लोकपालादि देवताओं को जलाशयोत्सर्ग विधि के समान स्थापित करें। प्रत्येक वृक्ष के निकट सात या आठ स्वर्णफलों को वेदी पर कूर्ममकरादियुक्त पात्री के स्थान पर 'वनस्पते बीड्वङ्गो हि...' (ऋग्वेद 6.47.26) मन्त्र से स्थापित करें। इसके पश्चात् ब्रह्मा, शिव, विष्णु, विनायक, लक्ष्मी, दुर्गा एवं समस्त प्राणिसमूह की स्थापना कर सबकी पूजा करें । तत्पश्चात सभी देवताओं को बलि देकर पूर्व कुण्ड से तीन पद भूमि छोड़कर पूर्व में ही जलाशय उत्सर्ग के समान यूप गाडें। तत्पश्चात् सभी ऋत्विग्गण आज्य भाग के अन्त में 'वनस्पतेऽव सृजोप...' (ऋग्वेद 3.4.10.7.2.10) मन्त्र से एक सौ आठ घी की आहुतियाँ दें। तदनन्तर ग्रहों से लेकर विश्वकर्मा तक प्रत्येक देवता को समिधाओं, जौ और काले तिलों से अट्ठाईस- अट्ठाईस आहुतियाँ प्रदान करें। तत्पश्चात् स्विष्टकृद् होम करें। इस प्रकार अधिवासन के अन्त में प्रातःकाल कुण्ड के समीप स्थित कलशों के जल से यजमान का अभिषेक करें एवं स्नान करवायें। यजमान सब प्रकार से अलंकृत श्वेत वस्त्र धारिणी सुवर्ण श्रृंगों से सुशोभित उत्तराभिमुखी गाय को निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए वृक्षों के मध्य छोड़े-

इदं वनं पवित्रं कुरुष्व शुद्धं पूतममृतमस्तु नित्यं मां।
तारयन्ती सर्वतीर्थाभिषिक्तं लोकाल्लोकं तरते तीर्यते च।

एक वृक्ष की प्रतिष्ठा में 'इदं वनं के स्थान पर 'इमं वृक्षं' प्रयोग होगा। तदुपरान्त अभिषेक मंत्रों, वाद्य, मंगल गीतों, ऋग्यजुसाम मंत्रों एव वारुण मंत्रों से श्रेष्ठ ब्राह्मण, यजमान को स्नान करवायें। यजमान शुक्ल वस्त्र धारण कर सभी ब्राह्मणों का कड़े, अंगूठी, यज्ञोपवीत, वस्त्र, शय्या, पादुका आदि से पूजन करें। तदुपरान्त 'समुद्रादूर्मि...(यजुर्वेद 17.89) एवं ' ये वाऽमी रोचने दिवः...(यजुर्वेद 13.8) इन दो मंत्रों का उच्चारण कर, गाय की पूंछ के जल से देवताओं और पितरों का तर्पण कर 'सूयवसाद् भगवती हि...(ऋग्वेद 1.164.40) मंत्रों का जाप करें। मंत्रों के जाप के उपरान्त कुश, जौ, तिल और जल हाथ में लेकर निम्नलिखित मंत्रों का पाठ करते हुए वनोत्सर्ग अथवा वृक्षोत्सर्ग करें-

सर्वभूतेभ्य उत्सृष्टं मयैतद्वनमूर्जितम्।
रमन्तां सर्वभूतानि स्थितिभक्षोत्सवादिभिः॥

सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मयादत्तमिदंवनम्।
रमन्तां सर्वभूतानि स्थितिभक्षोत्सवादिभिः॥[22]

तदनन्तर वृक्षमूल में स्थापित जलों से यजमान का पुनः अभिषेक करें एवं स्नान करवायें। इस समय वरुण मंत्र 'सुरास्त्वाम्..' का पाठ करते हुए उत्सर्ग कर्म की प्रतिष्ठा के लिए सौ, अड़सठ, पचास, छत्तीस अथवा पच्चीस गायें गुरु और ऋत्विजों को दक्षिणा में दें। दक्षिणा देकर स्वर्ण यज्ञोपवीत कड़े अंगूठियाँ, शय्या, पादुका आदि वस्तुएँ ऋत्विजों अथवा गुरु को प्रदान करें। फिर 'आपोहिष्ठा मयो भुवस्ता..' (ऋग्वेद 10.9.1) आदि तीन ऋचाओं को जपते हुए दूध की अविच्छिन्न धारा से उद्यान को तीन बार सींचकर एक ब्राह्मण को यथेष्ट दूध पिलायें। तत्पश्चात् गुरु लोकपालों को पूर्ववत् बलि प्रदान करें। इसके उपरान्त भी चार दिन तक वृक्ष की जड़ो में दुग्धसिंचन, ग्रहादिपूजन, वेदी पर प्रतिष्ठित देवों की अर्चना, वनस्पति होम से लेकर वैश्वदेवकर्म होम तक का कार्य कर चतुर्थी कर्म करें। आरामोत्सर्ग विधि में पूर्णाहुति होम वनस्पति मंत्र से होगा। तत्पश्चात् अभिषेक, ग्रहपूजा, अग्नि पूजा, विसर्जन, शय्या दान, मण्डपादि उपकरणों का दान, विप्रभोजन इत्यादि जलाशयोत्सर्ग विधि के अनुसार ही करने चाहिये।

(4) तरुपुत्रविधि

भारतीय धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में वृक्ष को पुत्र स्वीकार करने हेतु तरुपुत्रविधि का निरूपण किया गया है। हेमाद्रि एवं लक्ष्मीधर ने स्कन्दपुराण को उद्धृत करते हुए कहा है कि-

सुपुत्रार्थं भूमिरुहं ग्रहीष्यामीति पार्वति।
सोपवासा भवेन्नारी शुचिवृत्ता शुचिवृता॥

ततश्चैव सहस्रांशावस्तश्रृंगगते रवौ।
विप्रानामन्त्रयेद्रात्रौ पावनान् वेदवादिनः॥

विप्रानामन्त्रयित्वा तु शुचिवस्त्रा शुचिव्रता।
शयीत सनमस्कारा सदर्भा भूमिमाश्रिता॥

गमयित्वा तथा रात्रीं सवितर्युदितेऽपि च।
भक्ष्यभोज्यं समादाय व्रजेद्यत्र भवेत्तरुः॥
ततस्तं स्नापयित्वा तु सातपत्रं सभूषणम्।
तं तरुं तरुणीकृत्य ततश्छायानुगामिनम्॥
यथोपपन्नमन्नाद्यं भोजयित्वा द्विजोत्तमान्।
पुण्याहं कारयित्वा तु ऋत्विजाऽप्यथवाऽऽत्मना॥
तृप्तानां ब्राह्मणानां वै तद्वेलाकूतमात्मनः।
निवेद्य कृतमुद्दिश्य सद्भावेन परेण हि॥
अपुत्राऽहं हि भगवन् पुत्रप्रकृतकंतरुम्।
ग्रहीष्यामि ममाऽनुज्ञा कर्तुमर्हथ सत्तमाः॥
ततस्तैरप्यनुज्ञातं तं तरुं तरुणायुषि।
भूमिदेवभक्षं वै गृह्णीयात्तनयं प्रियम्॥

तरुपुत्रविधि का फल निम्न प्रकार से कहा गया है-

गृहीतो विधिनाऽनेन शुभभूमिरुहात्मजः।
शुभे सुखाय भवति विपरीतेन दुःखदः॥
न पुत्राणां शतं वाऽपि पीनश्रोणिपयोधरे।
एकोऽपि भूरुहः श्रेष्ठः पुत्रत्वे कल्पितः सुतः॥[23]

निष्कर्ष रूप में वृक्ष की महत्ता को निम्न प्रकार से प्रकट किया गया है -

दशकूपसमावापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥[24]

---

1. बृहत्पराशरस्मृति 11/203-246.
2. दानमयूख, पृष्ठ 22-23.

3. तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/1/3.

4. तैत्तिरीय संहिता 3/8/4/8, सम्पादक सातवलेकर, प्रकाशक- स्वाध्याय मण्डल, पारडी बलसाड़।

5. चतुर्वर्गचिन्तामणि दानखंड, पृष्ठ 109.

6. बौधायन धर्मसूत्र- 2/3/25.

7. 58/28-31.

8. 91/4-5.

9. 69/41-42.

10. 184/1-18.

11. उत्तरखण्ड 128/11.

12. मनुस्मृति 4/39, याज्ञवल्क्यस्मृति 1/133.

13. कादम्बरी- विलासवत्या देवताराधनम् ।

14. वसिष्ठस्मृति- 19/8.

15. विष्णुधर्मसूत्र- अध्याय 6.

16. 58/23-27.

17. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड- पृष्ठ 1030.

18. वही- पृष्ठ 1031.

19. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखण्ड पृष्ठ 1032-1033.

20. कृत्यकल्पतरु दानकाण्ड, पृष्ठ 300.

21. वही।

22. वही।

23. वही- पृष्ठ 302-303.

24. विष्णुधर्मोत्तरपुराण- द्वितीय खण्ड- अध्याय तीस।

25. कृत्यकल्पतरुउत्सर्ग मयूख पृष्ठ 26.

26. कृत्यकल्पतरु दानकाण्ड पृष्ठ 309-310.

27. मत्स्यपुराण 154/512.

***

नवम अध्याय

आश्रय, प्रतिश्रय एवं आरोग्यशाला

प्रस्तुत प्रबन्ध के अध्याय चार में वर्णित गृह-दान के अन्तर्गत आश्रय (मठ) और प्रतिश्रय (धर्मशाला) के संबंध में किचिंत् विचार किया गया था। गृह वास्तु से संबंधित होने के कारण हेमाद्रि आदि आचार्यों ने इन्हें गृह-दान की श्रेणी में रखा है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो आश्रय, प्रतिश्रय और आरोग्यशाला उत्सर्ग के ही विषय होने चाहियें। क्योंकि इनका उपयोग भी लोक कल्याण हेतु ही होता है। दान के समान इन पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं होता, अपितु ये सर्वजनोपभोग्य होते हैं।

कृत्यकल्पतरुकार लक्ष्मीधर ने आश्रय और प्रतिश्रय को दान कहते हुए भी आरोमत्सर्ग विधि के क्रम में इनका वर्णन कर यह संकेत किया है कि ये उत्सर्ग के विषय हैं । आश्रय दान के संबंध में कालिकापुराण को उद्धृत करते हुए उन्होंने माना है कि-

सुशीलं चारुनिर्माणं परिचारसमन्वितम्।
व्याख्यामण्डपसंयुक्तमासनैर्विविधैर्युतम्॥

पुष्पोद्यानसमायुक्तं सोदकं शङ्करालये।
ग्रामे दीपेन्धनाद्यर्थं प्रेष्याणां चैवोत्तमे॥

कौपीनोपानहाद्यर्थमाश्रयेऽपि नियोजयेत्।
ततोऽभ्यर्च्य यतीन् भक्त्या भोजयित्वा विशेषतः॥

वस्त्रैश्चैव प्रपूज्येशं शक्त्या तेभ्यो निवेदयेत्।
अनेनाश्रयदानेन सर्वकामयुतो नरः॥

भुक्त्वा चाऽमरलोकानां भोगान् गच्छेत्तदालयम्॥[1]

हेमाद्रि ने ब्रह्मपुराण को उद्धृत करते हुए मठ (आश्रय) व प्रतिश्रय को उत्सर्ग

विधि बताते हुए कहा है-

मठं प्रतिश्रयं वापि सर्वोपकरणैर्युतं।
कारयित्वा द्विजातिभ्यः पुण्यकाले समुत्सृजेत्॥

तस्य पुण्यकृता लोका क्षीयन्ते न कदाचन।[2]

भविष्यपुराण में मठ की विशेषताएँ निम्न प्रकार से कही गई हैं -

कारयित्वा दृढस्तम्भं शुभं पक्वेष्टकामयं।
मठं कमठपृष्ठाभमाभासित दिगन्तरं

सुधानुल्पितं गुप्तञ्च सुखशालाविराजितं।
दद्यादनन्तफलदं शैववैष्णवयोगिनां।[3]

स्कन्दपुराण एवं वाराहपुराण के अनुसार मठ की विशेषताएँ प्रस्तुत प्रबन्ध के अध्याय चार में वर्णित हैं।

भविष्यपुराण में यात्रियों और अतिथियों के लिए 'प्रतिश्रय' निर्माण करने का महत्त्व निम्न प्रकार से कहा गया है-

प्रतिश्रये सुविस्तीर्णे कारिते सजलेन्धने।
दीनानाथजनार्ताय ततः किन्न कृतं भवेत्॥[4]

'कृत्यकल्पतरु' में 'देवीपुराण' को उद्धृत कर 'प्रतिश्रय' के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि प्रतिश्रय दक्षिण, उत्तर,पूर्व या पश्चिम किसी भी दिशा में बनाया जा सकता है। प्रतिश्रय भवन के मध्य इन्द्र की स्थापना की जानी चाहिये। देवताओं के साथ स्थापित इन्द्र सब सुखों को प्रदान करने वाला होता है। इन देवताओं के मध्य में महिषमर्दिनी, वाम भाग में नायक व दक्षिण में यक्षराज की स्थापना की जानी चाहिये। दो द्वारों के मध्य यक्ष और नायक को स्थापित नहीं करना चाहिये। यथा-

दक्षिणोत्तरपूर्वेण पश्चिमेन सुरेश्वरः
अथ मध्यगतः शक्रः कार्योऽयं तत्प्रतिश्रयः॥

यत्र श्रान्ताश्च खिन्नाश्च विश्राम्यन्ति द्विजातयः।
प्रतिश्रयस्य कर्तारः स्वर्गे तिष्ठन्ति ते चिरं॥

तस्मात् प्रतिश्रयः कार्यो दृष्टादृष्टफलार्थिभिः।
देवताधिष्ठितः शक्रः सर्वसौख्यप्रदो भवेत्॥

देवतानान्त्रयं प्रोक्तं चतुर्थी नोपपद्यते।
महिषध्नीं तथा यक्षं नायकं चाऽत्र कारयेत्॥
वामतो नायकः कार्यो दक्षिणो यक्षराट् तथा॥

अथवा दिग्गता कार्या तत्रापि कथयामि ते।
यद्द्वारं सम्मुखं तस्य देवीं तत्र प्रतिष्ठयेत्॥

न यक्षं नायकं कार्यं द्वाराभ्यां मध्यतः स्थितं।
एवं कृते फलं यत्तु वक्तुं तत्केन शक्यते।
केवलं फलमेतस्य सुखं राज्यं यशः श्रियं॥[5]

महाभारत के अनुशासन पर्व में 'विहार' 'आवसथ' इत्यादि के दान की प्रशंसा करते हुए कहा है -

विहारावसथोद्यान कूपाराम- सभाप्रदाः।
विप्राणाञ्चोपकर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥[6]

यहाँ दानसागर ने 'विहार', 'आवसथ' इत्यादि को उत्सर्ग का विषय बताकर कहा है- नानासत्वविश्रामार्थं सभामुत्सृज्य दद्यात्।'[7] अनुशासन पर्व में ही प्रतिश्रय और आच्छादन के दान के विषय में कहा गया है-

'प्रतिश्रयाच्छादनसंप्रदाता प्राप्नोति तान्येव न संशयोऽत्र।'[8] दानसागरकार ने यहाँ भी उपर्युक्त दान को उत्सर्ग का विषय बताया है। यथा- 'श्रान्तविश्रामार्थं प्रतिश्रयमुत्सृज्य दद्यात्'[9] इस प्रकार दानसागरकार ने भी मठ, आवसथ प्रतिश्रय आदि को उत्सर्ग विधि से लोकहित में अर्पण करने का विधान किया है।

हेमाद्रि ने आरोग्यदान के अन्तर्गत नन्दिपुराण को उद्धृत करते हुए आरोग्यशालादान का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है यथा-

धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं साधनं यतः।
अतस्त्वारोग्यदानेन नरो भवति सर्वदा॥

आरोग्यशालां कुरुते महौषधपरिच्छदां।
विदग्धवैद्यसंयुक्ता भृत्यावसथसंयुतां ।।

वैद्यस्तु शास्त्रवित् प्राज्ञोदृष्टौषधपराक्रमः।

औषधीमूलवर्णज्ञः समुद्धरणकालवित्।
रसवीर्यविपाकज्ञः शालिमांसौषधिगणे ।
योगविद्देहिनां देहं यो धिया प्रविशेद् बुधः।।

धातुपथ्यमयज्ञश्च निदानविदतन्द्रितः।
व्याधीनां पूर्वलिङ्गज्ञस्तदुत्तरविधानवित्।

देशकालविधानज्ञश्चिकित्साशास्त्रवित्तथा।
अष्टाङ्गायुर्वेदवेत्ता मुष्टियोगविधानवित्

एवं विधः शुभो वैद्यो भवेद्यत्राभियोजितः।
आरोग्यशालामेवन्तु कुर्याद्योधर्मसंश्रयः।।

स पुमान् धार्मिकोलोके स कृतार्थः स बुद्धिमान्
सम्यगारोग्यशालायामौषधैः स्नेहपाचनैः।।

व्याधिनं विरुजी कृत्य अप्येकं करुणायुतः।
प्रयाति ब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंयुतः।।[10]

यहीं उद्धृत स्कन्दपुराण के अनुसार रोगी चिकित्सा में कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिये यथा-

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रान्रोगार्तान् परिपाल्य च।
तत्पुण्यं महदाप्नोति न तत्सर्वैर्महामखैः।।[11]

उपर्युक्त प्रकार से आश्रय, प्रतिश्रय एवं आरोग्यशाला का निर्माण वास्तुविधि से किया जाता है। अतः गृह-दान के समान वास्तु-पूजा आदि कृत्यों का सम्पादन कर इन भवनों का उत्सर्ग किया जाना चाहिये।

इस प्रकार आश्रय, प्रतिश्रय आवसथ, आरोग्यशाला, कूप, वापी, तड़ाग,

जलाशय, वृक्ष, आराम आदि के लोककल्याणार्थ उत्सर्ग का विधान भारतीय चिन्तन की जनमंगल भावना का द्योतक है।

उपसंहार

'दान' और **'उत्सर्ग'** की धर्मशास्त्रीय अवधारणा विषयक विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारत में वैदिक काल से ही 'दान' 'उत्सर्ग' आदि विषयों पर चिन्तन मनन होता रहा है। यह चिन्तन विषय के महत्त्व एवं उपयोगिता का स्वतः ही प्रतिपादक है। स्वार्थ के साथ परमार्थ का भी ध्यान रखने एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना में 'दान' और 'उत्सर्ग' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। 'दान' और उत्सर्ग' के प्रति आस्था के कारण ही भारतीय संस्कृति के मूल्य सुरक्षित रह पाये एवं कर्तव्य बोध कभी क्षीण नहीं हुआ। विद्वान् ग्रन्थकर्ताओं ने यदि जन-जन को दान और जनोपयोगी कार्य करने के लिए प्रेरित किया तो प्रतिग्रहीता के लिये भी अनेक शुभ्र गुणों का समावेश करना अत्यावश्यक बताया, अन्यथा वह दान लेने का अधिकारी नहीं माना गया। दान में द्रव्य की शुद्धता व श्रद्धा पर विशेष बल दिया गया। दान की सामन्य परिभाषा से ही यह तथ्य स्पष्ट होने लगता है।

दान की परिभाषा में ही दान देने के अधिकारी की विशेषताओं, श्रद्धा की महती आवश्यकता, प्रतिग्रहीता के तप, स्वाध्याय आदि गुणों, देय द्रव्य की शुद्धता, पवित्र स्थान व पवित्र समय का इतना अधिक सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया गया कि दान दया का अथवा लालच का पर्याय न रहकर श्रद्धा और सम्मान का केन्द्र बन गया। आज दान के उस उज्ज्वल स्वरूप को स्पष्ट करने से ही भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों की रक्षा सम्भव है।

विषय-विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने जहाँ समाज के सभी वर्णों को दान, दया करुणा, ईश्वर-प्रणिधान, जनकल्याण आदि कर्तव्यों को करते रहने की प्रेरणा दी, वहीं यह भी निरन्तर ध्यान रखा कि समाज के सभी लोगों के पास धर्म-कृत्य निष्पादन हेतु एक समान साधन नहीं होते। यही कारण है कि द्रव्य-प्रतिनिधि जैसे बिन्दु का समावेश किया। दान के विभिन्न स्वरूपों के अध्ययन से भी यह तथ्य पूर्णतः स्पष्ट होता है कि समाज के सभी वर्गों को ध्यान में रखते हुए अधिकतम द्रव्य एवं न्यूनतम द्रव्य वाले दान, उत्सर्गादि कार्यों की कल्पना प्रस्तुत की गई।

दान कर्म में वास्तु विद्या, सौन्दर्य-शास्त्र, गणित, देव-शास्त्र आदि का भव्य स्वरूप दर्शनीय है। मण्डप-निर्माण, उसकी सजावट, माप, देव-स्थापना आदि हेतु आचार्य को उपर्युक्त विद्याओं का सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक था। इस प्रकार के विद्वान् के प्रति ही श्रद्धा की कल्पना की जा सकती है। धर्म भी श्रद्धा का ही विषय है, अतः धार्मिक, सांस्कृतिक मूल्यों एवं ज्ञान की दृष्टि से 'दान' और उत्सर्ग' तत्व की स्थापना भारतीय ऋषियों की उन्नत एवं दूरदर्शी विचारधारा का परिणाम है।

भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने दान-कर्म का जो जटिल से सरलतम स्वरूप उपस्थित किया, उसमें समाज के सभी वर्गों को जोड़ने का प्रयास किया । तुला पुरुष दान का वर्णन करते करते ऋषि अन्न, जल और वस्त्र के दान तक आ जाता है और जिस प्रकार तुलापुरुषदान के महत्त्व का वर्णन करता है,उसी प्रकार अन्न वस्त्र और जल के दान की भी महत्ता का गान करता है।

सम्पूर्ण विवेचन में एक बात और ध्यान देने योग्य है, वह यह कि सदा विद्वान् व शुभ्र गुणों में युक्त किन्तु दरिद्र श्रोत्रिय को दान देने की महत्ता पुनःपुनः बताई गई। यह शाश्वत सत्य है कि जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, वही उस वस्तु का पूर्ण सदुपयोग कर सकता है। दान के विषय में प्रथम तो दान लेना ही हेय बताया गया है और यदि दान ग्रहण भी किया जाये तो तप और स्वाध्याय करना आवश्यक बताया गया है।

वस्तुतः समाज में सहअस्तित्व की भावना, परोपकार की भावना, सहिष्णुता, दया, करुणा आदि गुणों का विकास दान-कर्म करते रहने से अक्षुण्ण रहता है। मनुष्य में यह बोध बना रहता है कि समाज के प्रति मेरा भी कुछ कर्तव्य है। अहंकार की भावना का नाश होकर ईश्वर के प्रति आस्था को भी दान-कर्म करते रहने से बल मिलता है। समाज के सुचारु एवं सम्मानपूर्ण संचालन में भी दान-कर्म का महत्त्वपूर्ण योगदान रह सकता है, किन्तु यह तभी संभव है जबकि दान के वास्तविक उद्देश्य एवं स्वरूप को उचित परिप्रेक्ष्य में समझा जाये। प्राचीन-चिन्तन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रख कर उसकी प्रासंगिकता के निर्धारण से ही हम अपने सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करते हुए श्रेय और प्रेय का निर्वाह कर सकते हैं।

'**उत्सर्ग**' तत्व का निरूपण कर भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने अपने जनमंगलकारी चिन्तन को मूर्तरूप प्रदान किया है। जल और वृक्षों के अन्योन्याश्रय संबंध को समझते

हुए जलाशय और वृक्षारोपण का जैसा महत्त्व प्रतिपादित किया गया है, उसको जीवन में उतार कर कार्य किया जावे तो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़ आदि आपदाओं से बहुत कुछ त्राण पाया जा सकता है। स्थावर-भूतों के प्रति सम्मान को प्रकट करते हुए महाभारतकार ने उनमें जीवन की वर्तमानता को सिद्ध करने के लिये जिन-जिन तर्कों का आश्रय लिया है, उन तर्कों को सुनने के पश्चात् वृक्षों में जीवन सिद्ध करने हेतु किसी यन्त्र या उपकरण की आवश्यकता नहीं रह जाती। आज जिस पर्यावरण, प्रदूषण की बात की जाती है, उसको दूर करने के उपाय तो भारतीय धर्मशास्त्र में सदियों से विद्यमान हैं। अभी तो आधुनिक पर्यावरणविद् भौतिक पर्यावरण शुद्धि की ही बात कर रहे हैं, किन्तु भारतीय धर्मशास्त्र तो भौतिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार की पर्यावरण शुद्धि का उपाय क्रमशः उत्सर्ग एवं दान के माध्यम से निश्चित कर देता है। अपितु यह कहा जा सकता है कि मानसिक और भौतिक अशुद्धि के कारणों को लगभग जड़ से उखाड़ने का साधन ही प्रस्तुत कर देता है।

---

1. कृत्यकल्पतरु दानखण्ड, पृष्ठ 311-312.
2. दानखंड, पृष्ठ 667.
3. वही- पृष्ठ 671.
4. वही- पृष्ठ 673.
5. कृत्यकल्पतरु दानखण्ड - पृष्ठ 312-313.
6. 23/99.
7. दानसागर- पृष्ठ 449.
8. 57/37.
9. पृष्ठ-450
10. चतुर्वर्गचिन्तामणि- दानखंड, पृष्ठ 891-892.
11. वही।

***

संदर्भ- ग्रन्थ- सूची

1.अग्निपुराण — नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, सन् 1985

2.अग्निपुराण — चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी। पुनर्मुद्रित 1991

3.अमरकोष — चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1982

4.आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलिः — ग्रन्थाङ्क 48, सन् 1929.

5.आपस्तम्बगृह्यसूत्रम् — चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, तृतीय संस्करण 1991

6.आपस्तम्बधर्मसूत्रम् — चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1993

7.ऋग्वेद संहिता — सम्पादक- श्रीपाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट, पारडी, सन् 1993

8. एकादशोपनिषदः — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1993

9.ऐतरेयब्राह्मणम् — आनन्दाश्रम प्रेस, पूना ग्रन्थांक-32, सन् 1977

10. याज्ञवल्क्य स्मृति (अपरार्क टीका) प्रथम भाग । — ग्रन्थाङ्क 46, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् 1903

11. याज्ञवल्क्य स्मृति (मिताक्षरा टीका) — चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सम्वत् 1987

12. यज्ञमधुसूदनः-स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्याय — वैदिक प्रेस मुद्रणालय, अजमेर, सन् 1928

13. वाचस्पत्यम् — राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान दिल्ली, पुनर्मुद्रण- 1990

14. विष्णुस्मृति-टीकाकार-नन्दपण्डित, — सम्पादक, वी.कृष्णमाचार्य, अड्यार लाईब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, सन् 1964

15. वीरमित्रोदय-परिभाषा प्रकाश — चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1987
16. विष्णुधर्मोत्तरपुराण — नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, सन् 1985
17. लिङ्गपुराण — नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1989
18. निरुक्त — वैदिक प्रेस मुद्रणालय, अजमेर, सन् 1966,
19. मत्स्य पुराण — नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1983
20. मनुस्मृति (9 टीका युक्त) — भारतीय विद्या भवन, बम्बई, सन्1972
21. महाभारतम् — गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2045
22. महाभारतम् — सम्पादक- टी.आर. कृष्णमाचार्य व टी.आर. व्याकरणाचार्य-सतगुरु पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
23. मीमांसाशबरभाष्यम् — व्याख्याकार युधिष्ठिर मीमांसक-रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़।
24. भगवन्तभास्कर — नीकलण्ठ- चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1986
25. भविष्यपुराण — नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, सन् 1985
26. धर्मशास्त्र का इतिहास — महामहोपाध्याय पी.वी.काणे, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, सन् 1984
27. ब्रह्मवैवर्तपुराण — नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1995
28. वृहदारण्यकोपनिषद् — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली। गीताप्रेस, गोरखपुर सम्वत् 2055
29. बौधायनधर्मसूत्रम् — चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, सम्वत् 1991
30. गौतमधर्मसूत्राणि — चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1993
31. दानसागर-वल्लालसेन — रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, सन् 1993

32. दानक्रियाकौमुदी-गोविन्दानन्द — एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, सन् 1903

33. छान्दोग्योपनिषद् — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, गीताप्रेस, गोरखपुर; सम्वत् 2050

34. चतुर्वर्गचिन्तामणि (हेमाद्रि) दानखण्ड — चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1985

35. तैत्तिरीयसंहिता (सम्पूर्ण) — रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़,सोनीपथ, हरियाणा, सं.-2039

36. तैत्तिरीयसंहिता — सम्पादक-सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट पारडी, बलसाड़, चतुर्थ संस्करण

37. तैत्तिरीयब्राह्मण (द्वितीयाष्टकम्) — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् - 1985

38. काठकसंहिता — सम्पादक-श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट, पारडी, चतुर्थ संस्करण

39. कादम्बरी- बाणभट्ट — प्रकाशक- सुभाष बाजार, मेरठ(साहित्य भण्डार) 1969 ई.

40. कृत्यकल्पतरु (दान काण्ड) — लक्ष्मीधर, ब ड़ौदा ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, सन् 1941

41. कुण्डमण्डपसिद्धिः श्री विट्टलदीक्षित — संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, 1982

42. कुण्डनिर्माणस्वाहाकारपद्धति — दौलतराम गौड- ठाकुरप्रसाद पुस्तक भण्डार, वाराणसी, सन् 1982

43. पराशरस्मृति-टीकाकार — माधवाचार्य-रायल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, सन् 1974

44. प्रतिष्ठामहोदधिः — पं. वायुनन्दन मिश्र- चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, सम्वत् 1028

45. शब्दकल्पद्रुम- सम्पादक, राजा राधाकान्त देव प्रकाशक, नाग प्रकाशक, नई दिल्ली, सन् 1988

46. शब्दार्थ कौस्तुभ सम्पादक, तारिणीश झा, प्रकाशक, रामनारायणलाल, बेनीमाधव, इलाहाबाद, सन् 1971

47. शब्दार्थ-चिन्तामणि सम्पादक, ब्रह्मावधूत सुखानन्द नाथ प्रकाशक- प्रिन्ट वैल, जयपुर, सन् 1992

48. श्रीमद्भगवद्गीता स्वामी रामसुखदास- गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2048

49. शतपथब्राह्मण गंगा विष्णु श्रीकृष्ण दास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, मुम्बई,सन् 1940

50. श्राद्धचिन्तामणि भाग 3 (चतुर्वर्ग चिन्तामणि), सन् 1985

51. षड्दर्शनम् सम्पादक- स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली, सन् 1988

52. स्मृतिसंदर्भ-भाग 1-6 (सभी स्मृतियाँ) नाग प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1988

53. स्मृतिचन्द्रिका- देवण भट्ट नाग प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1988

54. स्मृतिकौस्तुभ-तिथिदीधित मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, सन् 1985

55. स्कन्दपुराण नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, सन् 1986

56. ताण्ड्यमहाब्राह्मण चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली सन् 1989

57.मत्स्यमहापुराणम् मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली सन् 1984